Shri Atmananda Jain Granth Ratnamala Serial No. 84

理機能工程

AND

ORIGINAL NIRYUKTE

OF

STHAVIR ARYA BHADRABAHU SWAMI

A Bhashva by Shri Sanghadas Gani Kshamashramana thereon with a Commentary begun by Acharya Shri Malayagiri and Completed by Acharya Shri Kshemakirti.

Volume III

CONTAINING

PRATHAMA UDDESHA

EXCLUDING

Pralamba Prakrita & Masakalpa Pi

EDITED BY

GURU SHRI CHATURVIJAYA

AND HIS

SHISHYA PUNYAVIJAYA

THE FORMER BEING THE DISCIPLE OF

PRAVARTAKA SHRI KANTIVIJAYAJI

INITIATED BY

NYAYAMBHONIDHI SHRIMAD VIJAYANANDA SURIJI,

1ST ACHARYA OF

BRIHAT TAPA GACHCHHA SAMVIGNA SHAKHA.

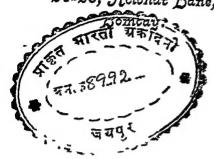
Publishers:-SHRI ATMANAND JAIN SABHA, BHAVNAGAR

Vir Samvat Vikrama Samvat 1992

Copies 500

Atma Samvat

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Hirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Bane,





Pačlished by Vallabhadas Fribhavandas Gandhi, Secretary, Jain Htmananda Sabha, Bhavnagar, श्रीभात्मानन्द-जैनग्रन्थरतमालायाः चतुरशीतितमं रत्नम् (८४)

स्थविर-आर्यभद्रवाहुस्वामिप्रणीतस्वोपज्ञनिर्युक्तयुपेतं

बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणसङ्कालितभाष्योपद्ृंहितम् ।

जैनागम-प्रकरणाद्यनेकग्रन्थातिगृहार्थपकटनप्रौहटीकाविधानसम्प्रण्ठव्ध-'समर्थटीकाकारे'तिख्यातिभिः श्रीमद्भिमेलयगिरिसुरिभिः प्रारव्धया बृद्धपोशालिकतपागच्छीयैः श्रीक्षेमकीर्त्या-चार्यैः पूर्णीकृतया च बृत्त्या समलङ्कृतम् ।

> तस्यायं तृ ती यो वि भा गः प्रथम उद्देशः ।

[प्रसम्बद्यकृत-मासकल्पप्रकृतानन्तरवर्त्यकाः ।]

तत्सम्पादकौ—

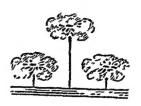
सकलागमपरमार्थप्रपञ्चनप्रवीण-बृहत्तपागच्छान्तर्गतसंविम्नशाखीय—आद्याचार्थ— न्यायाम्भोनिधि—श्रीमद्विजयानन्दसूरीश(प्रसिद्धनाम—श्रीआत्मारामजी— महाराज)शिप्यरत्नप्रवर्त्तक-श्रीमत्कान्तिविजयमुनिपुङ्गवानां शिष्य-प्रशिष्यो चतुरविजय-पुण्यविजयो ।

> प्रकाशं प्रापयित्री— भावनगरस्था श्रीजैन-आत्मानन्दसभा।

वीरसंवत् २४६३) ईस्वी सन १९३६)

प्रतयः ५००

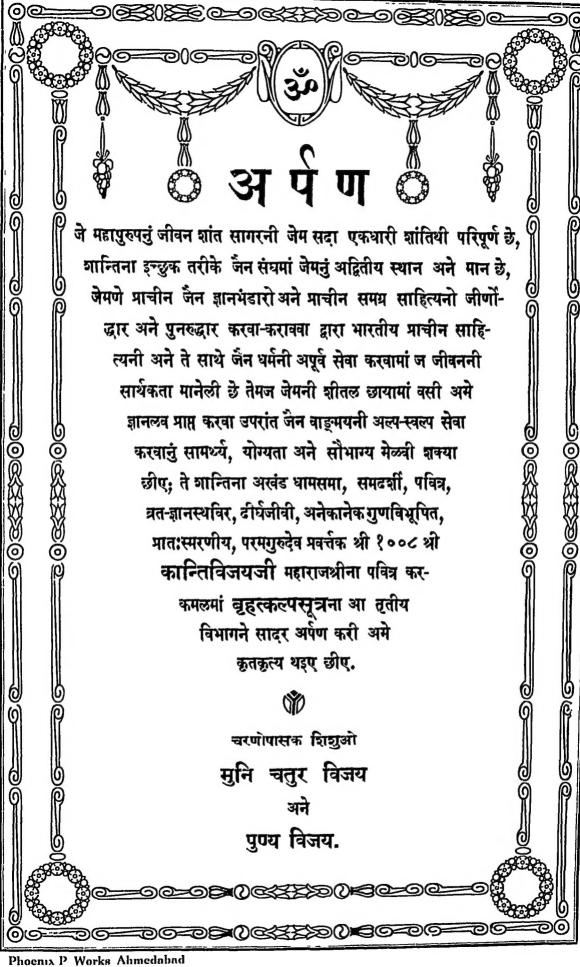
विक्रम संवत् १९९२ भारमसंवत् ४० इदं पुस्तकं सुम्बय्यां कोलभाटवीथ्यां २६–२८ तमे गृहे निर्णयसागर-सुद्रणालये रामचन्द्र येसु शेडगे-हारा सुद्रापितम्



प्रकाशितं च तत् "वहुभदास त्रिभुवनदास गांधी, सेकेटरी श्रीआत्मानन्द जैन सभा, भावनगर" इत्यनेन







बृहत्कल्पसूत्रसंशोधनकृते सङ्गृहीतानां प्रतीनां सङ्केताः।

भा० पत्तनस्थभाभापाटकसत्कचित्कोशीया प्रतिः । त० पत्तनीयतपागच्छीयज्ञानकोशसत्का प्रतिः । दे० अमदावादंडेलाउपाश्रयभाण्डागारसत्का प्रतिः । मो० पत्तनान्तर्गतमोकामोदीभाण्डागारसत्का प्रतिः । रे० पत्तनसागरगच्छोपाश्रयगतलेहेरुवकीलसत्कज्ञानकोशगता प्रतिः ।

कां प्रवर्तकश्रीमत्कान्तिविजयसका प्रतिः।

ता॰ ताडपत्रीया मूलस्त्रप्रतिः टीकाप्रतिः भाष्यप्रतिर्वा । (स्त्रपाठान्तरस्थाने स्त्रप्रतिः, टीकापाठान्तरस्थाने टीकाप्रतिः भाष्यपाठान्तरस्थाने च भाष्यप्रतिरिति ज्ञेयम् ।)

प्रवन्तरे (टीप्पणीमध्योद्धृतचूर्णिपाठान्तः वृत्तकोष्ठकगतपाठेन सह यत्र प्र० इति स्यात् तत्र प्रत्यन्तरे इति ज्ञेयम्, दृश्यतां पृष्ठ २ पंक्ति २७-३२ इत्यादि ।)

मुद्यमाणेऽसिन् प्रन्थेऽसामिर्येऽगुद्धाः पाठाः प्रतिपूपलञ्घास्तेऽस्तरकल्पनया संशोध्य () एताह-ग्वृत्तकोष्ठकान्तः स्थापिताः सन्ति, दृश्यतां पृष्ठ १० पिक्क २६, पृ० १७ पं० ३०, पृ० २५ पं० १२, पृ० ३१ पं० १७, पृ० ४० पं० २४ इत्यादि । ये चासामिर्गलिताः पाठाः सम्भावितास्ते [] एताहक्चतुरस्रकोष्ठकान्तः परिपूरिताः सन्ति, दृश्यतां पृष्ठ ३ पंक्ति ९, पृ० १५ पं० ६, पृ० २८ पं० ५, पृ० ४९ पं० २६ इत्यादि ।

टीकाकृताऽस्माभिर्वा निर्दिष्टानामवतरणानां स्थानदर्शकाः सङ्गेताः ।

- 600

अनुयो० আ্বাত প্রত প্রত ভত आव० हारि० वृत्ती आव० नि० गा० रे आव० निर्द्य**० गा०** ∫ **आव० मृ० भा० गा०** ट० मु० उत्त० अ० गा० अविनि० गा० करपबृहद्भाष्य गा० चूर्णि जीन० भा० गा० तत्त्वार्थ० दुग्र० अ० ड० गा० द्यु० ४० गा०] द्युर्वे० अ० गा०∫ देश० चृ० गा० द्वन्द्र० गा० पञ्चव० गा० पिण्डनि० गा० मना० पद মহাদ০ প্রা০ मन्द्र० महानि० अ० विशे० गा० विदेशयचूर्णि व्य० मा० पी० गा० व्यव० ६० मा० गा०

अनुयागद्वारस्त्र थाचाराङ्गसुत्र श्रुतस्कन्य अध्ययन उद्देश थावञ्यकस्त्र-हारिमद्रीय-वृत्ते। आवस्यकसूत्र निर्शुक्ति गाथा आवस्यक्रमुत्र मृख्माप्य गाथा टह्य सुत्र उत्तराच्ययनसूत्र अध्ययन गाथा व्यावनिर्वक्ति गावा बृहत्कस्पबृहद्वाप्य गाथा **बृहत्क्रस्यचा**र्ण र्जातकस्पमाप्य गाथा तत्त्वार्थाविगम<u>स</u>्त्राणि द्यवैकालिकस्त्र अध्ययन उद्य गाथा दश्वेकालिकस्त्र अध्ययन् गाथा दश्वेकालिकसूत्र चृलिका गाथा देवेन्द्र-नश्केन्द्रप्रकरणगत देवेन्द्रप्रकरण गाथा

देवेन्द्र-नर्केन्द्र-नर्णगत देवेन्द्रमः पञ्चवस्तुक गाथा प्रिण्डिनिर्युक्ति गाथा प्रज्ञापनोपाइसटीक पद प्रश्नपति आर्या मच्यिगरीया टीका महानिर्धायसुत्र अध्ययन विशेषावस्यकमहामान्य गाथा स्ट्राक्तस्पविशेषचूर्णि व्यवहारसूत्र साप्य पीठिका गाया व्यवहारसूत्र टेहेश साप्य गाथा श्र ड० श्र अ० ड०़ सि० } सिद्ध०∫ सि० हे० औ० स् हेमाने० द्विस्त० शतक उद्देश श्रुतस्कन्य अध्ययन उद्देश सिद्धहेमशब्दानुशासन सिद्धहेमशब्दानुशासन औणादिक सूत्र हेमानेकार्थमङ्गह द्विस्वरकाण्ड

यत्र टीकाकृद्धिर्मन्थामियानादिकं निर्दिष्टं स्यान् तत्रास्मामिरुष्टिखितं श्रुतस्कन्य-अध्ययन-उद्देश-गाथादिकं स्थानं तत्तद्वस्ययस्कं ज्ञेयम् , यथा पृष्ट १५ पं० ९ इत्यादि । यत्र च तत्रोष्टिखितं मनेत् तत्र सृचिन-सुद्देशादिकं स्थानमेतन्सुद्यमाणचृहत्करूपमन्थसत्कमेव ज़ेयम् , यथा पृष्ट २ पंक्ति २-३-४, ५० ५ पं० ३, ५० ८ पं० २७, ५० ११ पं० २७, ५० ६० पं० १२ इत्यादि ।

अनुयोगद्वारसूत्र-अनुयोगद्वारसृत्र चूर्णा-अनुयोगद्वारस्त्र सटीक । मलघारीया टीका **आचारा**ङ्गसूत्र सटीक-आवञ्यकसृत्र चूर्णी-षावस्यकसूत्र सटीक (श्रीमल्यगिरिकृत टीका) आवञ्यकसूत्र सटीक (आचार्य श्रीहरिभद्रकृत टीका) आवश्यक निर्युक्ति-ओवनिर्युक्ति सटीक-कल्पचृर्णि---कल्पबृहद्भाप्य---कल्पविशेपचूर्णि-कल्प-व्यवहार-निशीथसूत्राणि-

होठ देवचन्द्र लालमाई जैन पुन्तकोद्धार फंड युरत । रतलाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी खेताम्बर संस्था । होठ देवचन्द्र लालमाई जैन पुन्तकोद्धार फण्ड युरत । आगमोदय समिति । रतलाम श्रीऋषमदेवजी केशरीमलजी खेताम्बर संस्था । आगमोदय समिति ।

आगमोद्य समिति ।

आगमोदय समिति प्रकाशित हारिभद्रीय टीकागत । आगमोदय समिति हस्तिलेखित ।

"

"

जैनसाहित्यसंगोधक समिति ।

हचलिमित ।

आगमोद्य समिति ।

जीवाजीवामिगमसूत्र सटीक-द्गवैकालिक निर्युक्ति टीका सह— द्शाश्रुतस्कन्य अष्टमाध्ययन ो (कल्पसूत्र) देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरण सटीक-नन्दीसूत्र सटीक (मस्यगिरिकृत टीका) निर्धाथचूर्णि— पिण्डनिर्युक्ति-यज्ञापनोपाङ्ग सटीक-वृहस्कर्मविपाक-महानिर्गाथसूत्र-राजप्रश्लीय सटीक-विपाकसूत्र सटीक-विशेषणवती-विशेषावस्यक सटीक-व्यवहारस्विनियुक्ति भाष्य टीका— सिद्धप्रामृत सटीक-सिद्धहेमगठ्यानुगासन-सिद्धान्तविचार-सूत्रकृताङ्ग सटीक--

स्थानाङ्गसूत्र सटीक

आगमोदय समिति । शेठ देवचन्द्र ढाळमाई वैन पुस्तकोद्वार फण्ड सुरत । शेठ देवचन्द्र ठालमाई जैन पुरतकोद्वार फंड सुरत I श्रीजैन आत्मानन्द्र सभा भावनगर । आगमोदय समिति । हस्तिलिन्नित् । शेठ देवचन्द्र लालमाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सुरत । थागमोदय समिति । श्रीजैन आत्मानन्द समा भावनगर । हर्खालेखित । आगमोद्य समिति । रतराम श्रीऋपमदेवजी केशरीमरुजी श्वेताम्बर संस्या । श्रीयञोत्रिनय नैन पाठशाला बनारस । श्रीमाणेक्स्तिजी सम्पादित । श्रीजैन आत्मानन्द समा मावनगर । रोठ मनयुत्तमाई भगुमाई अमदावाद ।

॥ अर्हम् ॥

भार्संधिक निकेदन ।

निर्शुक्ति-भाष्य-ष्टित्तसिहत ब्रह्त्कल्पसूत्रना आ अगाड अमे वे विभागो प्रकाशित करी चूक्या छीए। आजे एनो, "प्रथम उद्देश संपूर्ण" सुधीनो त्रीजो विभाग प्रसिद्ध करवामां आवे छे। प्रथमना वे विभागोमां अमे ब्रह्त्कल्पसटीक—प्रथमखंडनी जुदा जुदा मंडारोमांनी छ प्रतिओनो उपयोग कर्यो हतो, जेमनो परिचय अमे प्रथम विभागमां आप्यो छे। आ विभागथी अमे एना द्वितीयखंडनी ए ज मंडारोमांनी छ प्रतिओ अने ते उपरांत एक वाडपत्रीय प्रतिनो उपयोग कर्यो छे, जेमनो परिचय आ नीचे आपीए छीए।

द्वितीयखण्डनी प्रतिओ

१ भा० प्रति—आ प्रति पाटणना भाभाना पाडामांना विमळना ज्ञानभंडारनी छे। तेनां पानां २८६ छे। दरेक पानानी एक वाजुए १८ लीटीओ छखेली छे, पण २१७ थी २८६ पाना सुधीमां १९ लीटीओ छखवामां आवी छे। दरेक लीटीमां ४८ थी ५० अक्षरो छे। प्रतिनी छंवाई साडाअगीआर इंचनी अने पहोळाई साडाचार इंचनी छे। प्रतिना अंतमां नीचे प्रमाणे छेखकनी पुष्पिका छे—

आ उद्घेखमां ज्यां खाली मींडां मूक्यां छे ते अक्षरोने ए प्रतिना कोई उठाउगीरे भूसी नाख्या छे। प्रतिनी स्थिति साधारण छे। आ प्रति भाभाना पाडाना ज्ञानभंडारनी होई एनी अमे भा० संज्ञा राखी छे। आ प्रति अमे भंडारना वहीवटदार शेठ उत्तमचंद नागरदास द्वारा मेळवी छे।

२ त० प्रति—आ प्रति पाटणना फोफलीयावाडानी आगलीसेरीमांना तपगच्छीय ज्ञानभंडारनी छे । आ भंडार अलारे पंचासराना पोळिया उपाश्रयमां राखनामां आच्यो छे । आ प्रतिनां पानां १८९ छे । दरेक पानानी पुठीदीठ १७ लीटीओ छे अने ए दरेक लीटीमां ७० थी ७५ अक्षर छे । प्रतिनी छंवाई १३। इंचनी अने पहोळाई ५ इंचनी छे । एना अंतमां छेखनसमयने सूचवती छेखकनी पुष्पिका आदि कर्छंय नथी ते छनां प्रतितं रूप जोतां ते सोळमां मदीमां छछाई होय तेम छागे छे। प्रति माबारण स्थितिमां छे। छिपि सुंदर छे। प्रति तपराच्छीय भंडारनी होई एनी अमे त० मंडा गावी छे। आ प्रति अमे भंडारना संग्युक शेठ महुक्कचंद दोलाचंद हारा मेळवी छे।

३ है॰ प्रितृ—आ प्रतिनो परिचय असे प्रयम विसागना "प्राम्निक्त निवेदन"मां आप्यो छे ते उपरांत अहीं असारे एटछुं ज उमेरवातुं छे के आ प्रतिनां पानां ६११ छे अने नेना अनसां आ प्रसाणे केम्बक्ती प्रुपिका छे—

थ माँ० प्रति—आ प्रति पाटणना साग्रगन्छना उपाण्यमां स्केळ केंट मोंका मोदीना संदार्ता छे। एतां पानां १३४ छे। दरेक पानानी पुटीदीट सत्तर सत्तर कीटीओ छे अने ए दरेक कीटीनां ६६ थी ७० अअरो छे। प्रतिनी छंबाई १३॥। इंचर्ना अने पहोळाई ५। इंचर्ना छे। प्रतिने छेडे नीचे प्रमाणनी पुष्पिका छे—

॥ छ॥ इति श्रीकराबुत्ति हिनीयखंडं समानं ॥ छ॥ संबन् १५७४ वर्षे साद्रपद्मासे कृष्णपंत्र तृतीया मागेव लिखिनं

प्रतिनी न्यिति जीणंप्राय छे । प्रति मीदीना भंडारनी होई एनी संज्ञा मी० राखी छे ।

५ हैं प्रिति—आ प्रति पाटणना साग्रग्च्छना द्राध्यमां रहेल हेहेह वक्तिलना भंडारनी छे। एनां पानां १३६ छे। देख पानानी पूर्वादीट मचर मचर लीटीओ छे अने दरेख लीटीमां ६९ णी ७४ अक्षरो छे। प्रतिनी लंबाई १३॥ इंच अने पहोळाई ५ इंच छे। प्रतिना अनमां लेककनी पुष्पिका आदि कर्युय नयी। प्रतिनी स्थिति जीणिप्राय छे। प्रति हेहेह वक्तीलना भंडारनी होई एनी असे हैं ० संबा राली छे।

उपरोक्त बन्नेय प्रतिश्रो अमे हेमचंद्रममा हारा मेळर्वा छे।

६ कों ० प्रति—आ प्रतिनो पग्चिय असे प्रथम विमानमां आप्यो छे एटले आना संबंधमां अमारे अहीं कर्युं व विकेष कहेबातुं नर्या ।

७ ता॰ प्रति—आ प्रति पाटण-त्रखतजीनी सेनीनां रहेळा संघना भंडार्ना छे। एनां पानां ४२० छे, जे पैकी पत्र ९ र्था १९८ सुर्यानां सुन थयां छे। पानानी पुटीवीट ४ र्था ६ कीटीओं छे अने ए ररेक कीटीमां १२० र्था १३० अक्षरो छे। प्रतिनी छंबाई ३१॥।

शासंगिक निवेदन।

इंचनी अने पहोळाई २।। इंचनी छें। प्रति छांची होई त्रण विभारामां छखाएँछ छे. १११ एना अंतमां लेखकनी पुष्पिका वगेरे कछुंज नथी। आ प्रति ताडपत्रीय होई तेनी संज्ञा अमे ता० राखी छे। पुस्तक वांधवानी वेकाळजीने परिणामे प्रति वळी गएळ छैतांजुनेनी स्थिति एकंदर सारी छे। आ प्रति अमे मंडारनी संरक्षक शेठ-धर्म चंद-अमेचंदनी पेढी हारा मेळवी छे।

द्वितीयखंडनी विभाग

खपर जणावेल द्वितीयखंडनी सात प्रतिओनो अमे प्रस्तुत संशोधनमां उपयोग कर्यों है। आ सात प्रतो पैकी भा० प्रति सिवायनी वधीये प्रतिओमां द्वितीयखंडनी शरुआत मासकल्पप्रकृत पूर्ण थया पछी वगडाप्रकृत्यी थाय छे, ज्यारे भा० प्रतिमां द्वितीयखंडनो प्रारंभ मासकल्पप्रकृत पूर्ण थवा पहेलांथी थाय छे (जुओ मुद्रित विभाग २ पृष्ठ ५९३ टिप्पणी १) अने द्वितीयखंडनी समाप्ति आ साते प्रतोमां जुदे जुदे ठेकाणे करवामां आवी छे। त० छे० अने ता० प्रतिमां द्वितीयखंडनी समाप्ति मुद्रित चतुर्थ विभागना पत्र ११९२ मां तृतीय उद्देशना १७ मा सूत्र अने भाष्यगाथा ४४१३ नी टीका पछी थाय छे (जुओ पृ० ११९२ टि०१), मो० ले० प्रतिमां द्वितीयखंडनी समाप्ति मुद्रित चतुर्थ विभागना १०१५ पानामां द्वितीय उद्देशना २० मा सूत्र अने ३३५४ मी गाथानी टीका पछी मूळसूत्रनी ज्याख्या पछी थाय छे (जुओ पृ० १०१५ टि०५), कां० प्रतिमां द्वितीयखंडनी समाप्ति मुद्रित चतुर्थ विभागना पत्र ११९१ मां तृतीय उद्देशना १७ मा सूत्र अने ४४१२ गाथानी अधूरी टीकाए थाय छे (जुओ पत्र ११९१ टि०३) अने भा० प्रतिमां १२०३ पानामां तृतीय उद्देशना १८ मा सूत्र अने ४४५८ गाथानी अधूरी टीकाए थाय छे (जुओ पत्र ११९१ टि०३) अने भा० प्रतिमां १२०३ पानामां तृतीय उद्देशना १८ मा सूत्र अने ४४५८ गाथानी अधूरी टीकाए थाय छे (जुओ पत्र ११९१ टि०१)।

आ प्रमाणे हस्तिलिखित प्रतोना लखावनाराओए द्वितीयखंडनी पूर्णता जुदे जुदे ठेकाणे करी छे जे पैकी सामान्यतया त० डे० अने ता० प्रतिना लखावनाराओए द्वितीयखंडनो विभाग एकंदर ठीक पाड्यो गणाय। वाकीना लखावनाराओए जे विभाग पाड्या छे ए केवल निर्विवेकपणे ज पाड्या छे, जेमां सूत्रने के कोई अधिकारने पूर्ण नथी थवा दीधां एटलुं ज निह पण चालु गाथानी टीकाने पण पूर्ण थवा दीधी नथी। अस्तु गमे तेम हो ते छतां एटली वात चोकस छे के आ ग्रंथना खंडो पाडनाराओए बुद्धिमत्तापूर्वक खंडो पाड्या नथी।

प्रतिओनी समविषमता

प्रस्तुत तृतीयविभागना संशोधन माटे उपर जणाव्या मुजव द्वितीयखंडनी 'कुछ सात' प्रतो एकत्र करवामां आवी छे जे चार वर्गमां वहेंचाई जाय छे । अर्थात् मो० ले० ता० प्रतिनो एक वर्ग छे, त० हे० प्रतिनो बीजो वर्ग छे, भा० त्रीजो वर्ग छे अने कां० चोथो वर्ग छे। आ चारे वर्गनी प्रतिओ एक बीजा वर्गनी प्रतिओ साथे पाठभेदवाळी

छतां मी० है० ता० वर्गनी प्रतिओ अने त० है० वर्गनी प्रतिओ परस्पर घणुं खर्र मळती ज रहे छे ज्यारे भा० प्रति अने कां० प्रति परस्पर जुदा वर्गनी तेमज अतिशय पाठमेद्वाळी छतां परस्पर घणीं वार मळती रहे छे । आम छतां पाठमेद्नी वावतमां केटलीए वार एक बीजा वर्गनी प्रतिओ सेळमेळ पण यहं जाय छे । अर्थात् केटलीक वार अग्रुक सरखा पाठो अथवा पाठमेदो त० हे० कां० प्रतिमां होय तो केटलीक वार अग्रुक सरखा पाठो अथवा पाठमेदो त० हे० कां० प्रतिमां होय तो केटलीए वार भा० मी० हे० प्रतिमां एकसरखा पाठो होय छे, केटलीक वखत भा० त० हे० प्रतिमां सरखा पाठमेदो होय ज्यारे केटलोक वखत मी० हो० कां० प्रतिमां समानता घरावता पाठो होय छे। आ वश्चं छतां घणी वार एम पण वन्युं छे के केटलाक पाठो वर्धाये प्रतिओमां एकसरखा होय ते छतां मात्र अग्रुक एक वर्गनी प्रतोमां ज त्यां पाठभेद होय छे। आ वश्चाय समविषम पाठमेदोने अमे पाने पाने नोंबेला छे जेने विद्वानो खयं जोई शकशे। आ वश्चा पाठमेदो पंकीना केटलाक पाठमेदोने क्यारेक चूणिंनो तो कोइक वार विशेषचृणिंनो अने केटलीक वार उभयनो टेको होय छे; ते उपरांत केटलीक वार अग्रुक एक ज स्थळना जुदा जुदा पाठमेद पंकी अग्रुक पाठने चूणिंनो टेको होय अने अग्रुक पाठने विशेषचृणिंनो टेको होय एम पण वनवा पान्युं छे; आ ववेय ठेकाणे अमे चूणिं विशेषचृणिंना पाठो सरसामणी माटे टिप्पणमां नोंच्या छे।

प्रस्तुत प्रन्थमां विद्वानीए पोवानी इच्छानुसार इस्तक्षेप करवाने लीबे एनी जुदी जुदी इसिलिखित प्रतिओमां अनेक प्रकारना पाठमेदो वधी पड्या छे। जेवा के—केटलीक बार अवतरणो उमेरायां छे, क्यारेक गाथाना पाठमेदो कराया छे, केटलोक बखत चूर्णी आदिना पाठो उमेराया छे, कोइक बार गाथाओने निर्युक्तिगाथा पुरातनगाथा वगेरे जुदा जुदा निर्देशो कराया छे, केटलीक बार यित्तमां विशदता छाववामाटे पाठमेद अने उमेरो करायेल छे अने केटलेक टेकाणे गाथाओनो कमभेद करायो छे. आ वयायने अंगे अमारे यणुं यणुं कहेवानुं छे जे अमे प्रस्तुत प्रन्थना छेहा विभागमां स्पष्टता पूर्वक जाणावीछुं।

आ सित्राय स्त्रोनी संख्यादर्शक अंको, प्रकृतोनी विभाग वगेरे के के नवीन वावतोनी अमे रमेरों कर्यों छे तेविषे पण अमारे के के कहेवानुं छे ते अंतिम विभागमां स्पष्टरीते कहीछुं।

अहीं मात्र अमे एटछुं ज निवेदन करीए छीए के अनेक विद्वानोना मनस्ती हस्तक्षेपने परिणामे जन्मेछा पाठमेदोनो विवेक करवामां अदांत सावधानी तेम ज तटखाता जाळ-ववा छतां अमारी स्वडना थएछी जणाय तो सुन्न विद्वानो क्षमा करे।

निवेदक—गुरु-शिष्य स्रुनि चतुरविजय-पुण्यविजय

॥ अर्हम् ॥

प्रथमोद्देशकप्रकृतानामनुक्रमः।

सूत्रम्	श्रकुतनाम	पत्रम्	सूत्रम्	प्रकृतनाम	पत्रम्
१ -4	प्र लम् वप्रकृतम्	२५५	३०-३१	प्रतिबद्धशय्याप्रकृतम्	७२७
६-९	मासकल्पत्रकृतम्	३४१	३२-३३	गाथापतिकुलमध्यवास-	_
30-66	वगडाप्रकृतम्	६११		प्रकृतम्	८६७
१२-१३	औपणगृह-रध्यामुखा-		३४	च्येवशमन प्रकृतम्	७५१
	दिप्रकृतम्	इ५१	३५–३६	चारप्रकृतम्	७७०
28-24	अपाद्यतद्वारोपाश्रयप्रकृतम्	६५९	३७	वैराज्य-विरुद्धराज्यप्रकु-	
१६-१७	घटीमात्रकप्रकृतम्	६६९		तम्	७७८
१८	चिलिमिलिकाप्रकृतम्	६७२	३८-४१	अवग्रहप्रकृतम्	926
१९	दकतीरप्रकृतम्	६७६	४२–४३	रात्रिभक्तप्रकृतम्	८०१
२०-२१	चित्रकर्मप्रकृतम्	६८९	88	रीत्रिवस्रादिग्रहणप्रकृतम्	८३९
२ २–२४	सागारिकनिश्राप्रकृतम्	६९१	84	हैरियाहडियाप्रकृतम्	282
२५-२९	सागारिकोपाश्रयप्रकृतम्	६९५	४६	अध्वप्रकृतम्	८५६
			४७	सङ्गडिप्रकृतम्	८८१
	' वृत्तिकृता ३२४१–४२ भ मेतत्प्रकृतसूत्रं रथ्यामुखापप		86-88	विचारभूमी-विहारभूमि-	
	निर्दिष्ट (दृश्यतां पत्रं ९०६)		-	प्रकृतम् , -	6.90
	कृतं १२-१३ सूत्र-२२९७		40	आर्यक्षेत्रप्रकृतम्	९०५
भाष्यमाध	1-नदात्त्वाप्राणमाणमधिकता <i>:</i>	-IIITE			

१ भाष्यकृता एतत् प्रकृतं प्राभृतसूत्रलेन निर्दिष्टम् (दर्यतां गाथा ३२४२), च्यूणिकृता पुनः प्राभृतसूत्रसमानार्थकेन अधिकरणसूत्रलेनो-हिस्तितम् (द्रयतां पत्र ९०६ टिप्पणी २)॥

२ ययप्यत्र वस्त्रप्रकृतम् इति सुद्रितं तथाप्यत्र रात्रिवस्त्रादिग्रहणप्रकृतम् इति बोद्धव्यम् ॥

३ हरियाहिडियाप्रकृतम् इलिसन् नामनि हताहतिकाप्रकृतम् हरिताहतिकाप्रकृतम् इत्युमे अपि नाम्नी अन्तर्भवतः ॥

भाष्यगाथा-तह्याख्याप्रामाण्यमधिकृत्य आपण-गृह-रथ्यामुखादिशकृततयोहिखितम्॥

२ एतत्त्रकृताभिधानस्थानेऽसाभिर्विस्मृत्या अपा-चृतद्वारोपाश्रयप्रकृतम् इति मुद्रितं वर्तते तथापि तत्र आपणगृहर्थ्यामुखादिप्रकृतम् इति वाचनीयम् ॥

३ एतत्प्रकृतस्यारम्म. २३२५ माष्यगाथावृत्तेरन-न्तरं सूत्रम् इलस्य प्राग् विज्ञेयः । अत्रान्तरे— ॥ आपणगृह-रथ्यामुखादिप्रकृतं समाप्तम् ॥ अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृतम् इति हेयम्॥

॥ अहम् ॥

बृहत्कल्पसूत्र तृतीय विभागनो विषयानुकम।

•	प्रथम उद्देश ।	
गाया	विषयं	पत्र
२१२५२२९४	वगडाप्रकृत सृत्र १०-११	६११–५०
२१२५-२२८७	१० पहेर्त्कुं वगडासूत्र	इ११-४९
	एक परिलेप-किञ्चात्राळा अने नीकळवा-पेसवाना	
	एक ज दरवाजाबाळा गाम, नगर बगेरेमां निर्धन्य	
	निर्प्रन्याञीए एक साथै न रहेर्बु	
२१२५२६	वगडास्त्रनो पूर्वना स्त्र साथे संबंध	६११
	पहेला वगडासूत्रनी च्याख्या	६१२
२१२ ७	वगडा, द्वार अने निर्गम-श्रवेशपदर्ना व्याख्या	६१२
२१२८−३१	द्वार अने निर्गम-अवेशपद समानार्थक छतां वेमांथी	
	एक पदनुं प्रहण न करतां वलेच पदोनुं प्रहण जा	
	माटे ? एप्रकारनी शिष्यनी शंका अने तेर्नु समायान	
	करवामांटे वगडा अने द्वारपदनी चतुर्मेगी	६१२–१३
२१३२–२२३१	वगडा अने द्वारपदनी चतुर्भङ्गी पैकी	
•	'एकवगडा-एकडार'रूप पहेला भागा-	
	वाळा गाम, नगर आदिमां निर्शन्य-निर्शन	
	न्याओने समकाळे रहेवायी छागता	
	दोपोतुं विस्तृत वर्णन अने विविध	
	प्रायश्चित्तो	६१३-३६
२१३२-३४	एकवगडा-एकटारवाळा क्षेत्रमां निर्यन्थ के निर्यन्यी	
•	पैकी कोई समुदाय रहा होय त्यां वीजो वर्ग	
	आर्ताने रहे तेमांना आचार्य, प्रवर्धिनी यगेरेने	
	स्रागता दोषो अने प्रायिश्वतो	६१३–१४
ર્શરૂપ-પર	गच्छने रहेवा छायक क्षेत्रनी पडिछेहणा—तपान	
	ऋरवामांटे मोक्ळेडा श्रमणोनी स्तेतनायी-प्रेरणायी	
	सार्घ्वाञोए अचगृहीन करेला क्षेत्रने द्वाववा माटे	

गाया	विष्य	पत्र
	विचार करनार, तेमज ए क्षेत्रमां जवानी निर्णय करनार आचार्य, उपाध्याय, दृपम, भिक्ष वगेरेने छक्षीने प्रायश्चित्तो अने तेथी उत्पन्न थता वेदोद्य आदि दोषोनुं अग्निना दृष्टान्त द्वारा समर्थन	६१४–१८
૨१५ ४–५६	देहशोभाथी रहित, नीरसभोजी तेमज खाध्याय- ध्यान आदिमां रच्यापच्या साधुओने वेदोदय आदि दोपो लागे ज क्यांथी, १ ए प्रकारनी शिष्यनी शङ्का अने तेनुं समाधान	(
२१५७–६२	वेदोदयना अतिप्रवलपणानुं समर्थन अने ते विषे	६१८
२१६३—७२	योद्धातुं अने गारुडिकतुं इप्टान्त अमण अने अमणीओ जुदी जुदी वसितमां वसता होई एक वीजाना सहवासने तजी शके परन्तु गाममां वसनार अमणोमाटे गृहस्थ खीओनो सह- वास अनिवार्य होई, शिष्यद्वारा अमणोमाटे वनवा- सनुं समर्थन अने ते सामे आचार्यनो प्रतिवाद चूतफलदोषदशीं राजानुं दृष्टान्त तेमज अमणीओना	·६१८ <u>-</u> १९
२१७३	सहवासवाळा गाम आदिना त्यागनां कारणो एकवगडा-एकद्वार आदिवाळां गाम, नगरादिमां साथे वसता श्रमण-श्रमणीओने विचारभूमी, भिक्षा- चर्या, विहारभूमी, यति-वैत्यवन्दनं आदि निमित्ते लागता दोपो	६ २०—२२ ६२२
२१७ ४-८०	एक दरवाजा आदि वाळा प्राम, नगर आदिमां साथे रहेता श्रमण-श्रमणीओने विचारभूमीए—खंडिलभू- मीए जतां रस्तामां परस्पर भेगा थवाथी उत्पन्न	
२१८१-९३	थता विविध दोषो अने तेने छगतां प्रायिश्वतो प्रक्तारवाळा गाम-नगर आदिमां साथे वसता श्रमण-श्रमणीओने भिक्षाचर्यामादे जतां सेरी देवळ' वगेरेमां अणधारी रीते परस्पर भेगा थई जवाथी छागता दोपो अने सेरी देवळ वगेरेमां श्रमण-श्रमणीओना पेसवा-नीकळवाने छगती चतुभेड़ी	६२२–२४
	अने ए चतुर्भङ्गीने आश्री प्रायश्चित्तोना पांच आदेशो	६२४–२७

<u>ኧ</u> ፟፟፟፟፟፟፟፟		
गाथा	विषय	पत्र
२१९४ – २२०४	एक द्रवाजावाळा गाम-नगर आदिमां श्रमणीओ रहेली होय त्यां श्रमणीना रहेवाथी श्रमणीओने	
	विचारभूमी-भिक्षाचर्या आदि निमित्ते पडती हरकता	६२८–३०
, ,	अने ते विषे भोगिकतुं दृष्टान्त	
२२०५-१७	एकद्वार आदिवाळा गाम-नगरादिमां श्रमणीओ	
	रहेली होय त्यां रहेला श्रमणोने कुल्खविरो द्वारा रहेवाना कारणनी प्रश्न अने कारणसर एकक्षेत्रमां	
	रहेवाना कारणना प्रश्न अने कारणतर एक्स्प्रिया साथे वसता निर्घन्य-निर्घन्यीओनी विचारमूमी	
:	साथे वसता निमन्थ-निमन्याजारा स्व सर्द्याः सिम्राचर्या आदि विपयक व्यवस्था	६३०-३३
	भिक्षाच्या आद ।वपयक व्यवस्था	•
२२१८ –३१	जुदा जुदा समुदायना श्रमण श्रमणीओ एक क्षेत्रमां एकी साथे रहेला होय त्यां एकवीजा समुदायनी	
	श्रमणीओने परस्परमां छडी पडवानां कारणो अने	
	तेनी ज्ञान्तिमाटे आचार्य, प्रवर्तिनी वगेरेए शुं करबं	
	तेनो विधि तेमज एथी उछटा वर्त्तनार आचार्याहिने	
	प्राप्त थता कलंकादिदोषो अने प्रायश्चित्तो	६३३–३६
र् <i>४४</i> ३४−७७	वगडा-द्वारपदनी चतुर्भङ्गी पैकी 'एक-	
,	नगहा-अनेकद्वार'रूप वीजा भागावाळा	
	गाम-नगर आदिमां समकाळे साथे रहेवाथी निर्यन्थ-निर्यन्थीओने लागता	
		६३६–४६
,	दोपो 'एकवगडा-अनेकद्वार'रूप वीजा भागामां लागता	
ર્વેર્વર–રેઇ	राक्तवराडा-अनकद्वार रूप वाजा मारामा अस्या होपोना वर्णनमाटे प्रतिज्ञा अने द्वारगाथा	६३६
		६३७–३८
२२३५-४०	१ एकग्राखिकाद्वार वाहना आंतरात्राळा एक ओळमां रहेळा घरमां	
	साथे वसता निर्श्रन्थ-निर्श्रन्थीओने परस्पर वार्ती-	
	छाप, झुश्छप्रश्न आदि निमित्ते छागवा दोषो	
	्रिक्त वर्ष वर्ष के स्वार्थनी सार्वनी वा द्वार	६३९
२२४१–४४	निर्यन्थीना उपाश्रयनी सामे, वाजुए अगर पाछळ	
	द्रवाजाबाळा उपाश्रयमां निर्प्रथोना वसवायी संम-	
	वता दोपो	

गाथा	विषय	पत्र
२२४५–६३	४ उन्ननीचद्वार	६३९– ४३
	श्रमण-श्रमणीओ एकवीजानी एकवीजा उपर के	11701
	सामे नजर पडे तेवा उपाश्रयमां रह्या होय तेथी	
	उद्भवता दोषो अने तेने लगतां विविध प्रायश्चित्तो	. •
	[गाथा २२५८-६१दश कामावस्थातं-काम-	
	विकारना आवेगोनुं खरूप]	
२२६४-७१	५ धर्मकथाद्वार	-1483-88
	निर्मन्थ-निर्मन्थीओ ज्यां एक वीजानी नजीकमां	
	वसता होय त्यां रात्रिना वखते धर्मकथा स्वाध्याय	
	वगेरे करवानो विधि	
२२७२७७	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओ अशिव दुर्भिक्ष आदि कारणोने	
° 3	लई एकाएक अणधारी रीते एकवगडा-अनेकद्वार-	7
4 4 *	वाळा गाम-नगरादिमां भेगा आवी पडे त्यां उपाश्रय	
	मेळववाने लगती तेम ज योग्य उपाश्रय न मळतां	
	एकवीजाना उपाश्रयनी नजीकमां वसवानो प्रसंग	,
5 - 6 - 5	प्राप्त थतां एक वीजाए केम वर्त्तवुं तेने छगती	
	जयणाओ	६४५–४६
२२७८-८७	वगडा-द्वारपदनी चतुर्भङ्गी पैकी 'अनेकवगडा-	•
	एकद्वार' रूप त्रीजा भांगावाळा गाम-नगरादिमां	
	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने समकाळे रहेवाथी लागता	
	दोषो अने ते विषे कसुंबलवस्त्रनी रक्षानिमित्ते	
	नम थुनार अगारी, अश्व, फुम्फुक अने पेशीनां	4
	द्यष्टान्तो	६४७–४९
२२८८-९४	११ बीजुं वगडासूत्र	686-60
	निर्मन्थ-निर्मन्थीओए 'अनेकवगडा-अनेकद्वार'वाळा	M
	गाम-नगरादिमां वसवुं जोइए	
२२८८-८९	जे गाम-नगरादिमां निर्प्रनथ-निर्प्रनथीओनी भिक्षा-	
	भूमी, संडिलभूमी, विहारभूमी वगेरे जुदां जुदां	
	होय तेवा क्षेत्रमां तेओए रहेवुं	६४९
२२९०-९४ -		_
8	पुरुषनो सहवास अनिवार्य होई शिष्यद्वारा तेमना	

गाथा	निषय	पत्र
	अरण्यवासर्तुं समर्थन अने ते सामे प्रतिवाद	
	करवासाँट ग्रुक्णडराजना द्तुतं उदाहरण	६४९-५०
	-	
२२९५–२३२५	आपणगृह-रश्यामुखादिप्रकृत	
	स्त्र १२-१३	६५१-५९
१२९६-१३२४	१२ प्रथम आपणगृहादिसूत्र	हद् १-६२
	ने डपाश्रयनी चोमेर के पड़सामां हुकानो होय तां	
	अथवा ने उपाश्रय त्रण रस्ता, चार् रस्ता के छ	
	रस्ता नेवा घोरी रस्ता उपर आख्यो होय तां निर्ध-	
	न्याओए रहेर्नु नहि	***
२२९५–९६	वगडासुत्र साथे आपणगृहादिसृत्रनो संबंध	६५१
	प्रथम आपणगृहादिसृत्रनी व्याख्या	६५१
२२९७२३०३		
	अंतरापण आदि पदोनी व्याख्या अने आ स्थानीमां	
	रहेछा उपाश्रयमां यसनार श्रमणीओने प्रायश्रिची	દ્ધ્ય— ૫ રૂ
र३०४–२४	आपणगृह, रथ्यासुख आदि मार्वजनिक स्थानोमां	
	थावेळा उपाश्रयोमां वसर्वा श्रमणीओने जुवान	
	पुरुषों, वेदयार्खाओं, विवाह वर्गरेना वरघोडाओं,	
	राजा आदि अछड्डृत-विभृषित पुरुषो वगेरेने जोवार्था उड़वना दोषो तेम ज सरियाम रस्ता उपर	
	रहेती सार्घाओंने लोई छोकोमां थता अवर्णवादादि	
	दोषोतुं विस्तृतवर्णन अने योग्य उपाश्रयना अभा-	
~	वमां तेवा च्याश्रयोमां वसबुं पडे तेने छगती लयणात्रो	६५३–५८
२३२ ५	१३ बीनुं आपणगृहादिसूत्र	हद्
	निर्यन्थो आपणगृह, रथ्यासुन्य आदि नाहेर स्थानोमां	
	आवेटा उपाश्रयोमां कारणसर यननापृर्वकवर्सा झके	•

१ पृष्ट ६५१ ने मयाङे अमारी विस्कृतिने र्राषे अपाञ्चतद्वारोपाश्चयप्रकृतम् एम छपायेल छ तेने बद्चे आपणगृह-रथ्यामुखाद्रिप्रकृतम् एम् समनतं ॥

गाथा	विषय	पत्र
२३२६–६१	अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृत सूत्र १४-१५	६५९–६९
२३२६—५२	्र १४ पहेलुं अपावृतद्वारोपाश्रयसूत्र निर्धन्थीओए दरवाजा विनाना खुद्धा उपाश्रयोमां न रहेबुं. दरवाजावाळो उपाश्रय न मळे तो छेवटे तेवा उपाश्रयमां पडदो वांधीने रहेबुं	६५९–६६
२३२६	अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	६५९
	पहेला अपावृतद्वारोपाश्रयसूत्रनी न्याख्या	६६०
२३२७	निर्मन्थीविपयंक अपावृतद्वारोपाश्रयसूत्रने आचार्य प्रवर्त्तिनीने न समजावे, प्रवर्त्तिनी पोतानी श्रमणी- ओने न संभळावे तेम ज श्रमणीओ ए सूत्रने न	
(सांभळे तेने छगतां प्रायिधतो	६६०
२३२८—३०	दरवाजा विनाना उपाश्रयमां रहेती प्रवर्त्तिनी, गणावच्छेदिनी, अभिपेका अने श्रमणीओने लगतां	•
	प्रायश्चित्तो अने त्यां रहेवाथी संभवता दोपो	६६०
२३३१ –५२	अपवादपदे दरवाजा विनाना उपाश्र- यमां श्रमणीओने रहेवानो विधि	६६१–६६
२३३१— ३३	द्रवाजा विनाना उपाश्रयमां कटना द्रवाजाने	
	वांधवानी युक्ति	६६१–६२
२३३४–३५	द्रवाजानी रक्षा करनार प्रतिहारसाध्वी-द्वारपा-	
	लिका श्रमणी अने तेना गुणो	६६२
२३३६	दरवाजा विनाना खपाश्रयमां गणिनी, प्रतिहारसाध्वी	
	अने वाकीनी साध्वीओने रहेवाना स्थाननो निर्देश	६६३
२३३७-४०	प्रस्नवणादिमाटे वहार जवा-आववामां विलम्ब	
	करती निर्श्रनथीओने ठपको आपवानो तेम ज	
	निर्यन्थीने वद्छे कोई वीजो मनुष्य उपाश्रयमां	
	पेसी न जाय तेमाटे तेमनी परीक्षा करवानो विधि	६६३–६४
२३४१	प्रतिहारसाध्वीद्वारा उपाश्रयना दरवाजानी रक्षा	६६४

१ था प्रकृतनी शहआत पत्र ६५९ मा भाष्यगाया २३२५ नी वृत्ति पछी सूत्रम् ना पहेलाथी थाय छे। था ठेकाणे—॥ आपणगृह-रथ्यामुखादिपकृतं समाप्तम् ॥ अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृतम् एटछं उमेरी छेवुं॥

गाया	विषय	-पन्न
२३४२-४४	व्रवाजा विनाना डपाश्रयमां रहेती निर्श्रेन्थीओनी	
•	मात्रकविषयक तेम ज सुवाने छगती यतनात्रो	६६४
2324-29	निर्घन्यीक्रोए, तेमना उपाश्रयमां रात्रिना समये कोई	
	मनुष्य पेसी गयो होय तेने काही मृकवानो विधि	६६५–६६
२३५०-५२	विद्वार आदि प्रसंगे मार्गमां आववां गामोमां सुर-	
	ब्रित द्वारवाळी उपाश्रय न मळे लारे तेम ज तेवा	
	चपात्रयमां अणवायों भयजनक प्रसंग आती पहे	
•	लारे तमण वृद्ध सार्थ्वाओए केम वर्त्तवुं तेनो विवि	६६६
२३५३–६१	१५ चीजुं अपावृतद्वारोपाश्रय सूत्र	६६७–६९
	निर्प्रथोने दरवाजा विनाना च्पाश्रयमां रहेवुं कल्पे	
٤	वीजा अपावृतद्वारोपाश्रवसूत्रनी व्याख्या	६६७
२३५३–६१	रुसर्गयी निर्प्रन्यो उपाश्रयनां द्वार वन्य न करे.	
	अपवादपदे ने कारणसर दरवाना वंघ करी शके	
	ते कारणोनुं निरुपण अने ते कारणसर द्वार यंघ	
	न करे तेने छगतां प्रायश्चिचो	६६७–६९
	-	
२३६२-७०	घटीमात्रकप्रकृत सूत्र १६-१७	६६९-७२
२३६२–६ ४	१६ पहेऌं घटीमात्रक सूत्र	६६९
	निर्यन्थीओने घटीमात्रक राख्युं अने तेनो उपयोग	,
,	करवो कल्पे	
२३६२	घटीमात्रकप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	६६९
	ं पहेला घटीमात्रकसूत्रनी व्याख्या	६६९
२३६३	निर्घन्यीविपयक घटीमात्रकस्त्रने आचार्य प्रवर्ति-	
	नीने न समजाने, प्रवर्त्तर्ना पोतानी शिष्याञ्जोने	
•	न संमळावे तेम ज निर्धर्न्याओं ए सूत्रने न सांमळे	
	तेने छगवां प्रायिश्वतो	६७०
२३६४	निर्घन्यीओना घटीमात्रकर्तुं स्तरूप	६७०
२३६५-७०	१७ वीजुं घटीमात्रक सूत्र	६७०–७२
	निर्मन्योने घटीमात्रक राख़बुं के वापरबुं करूपे निह	

		χ, ν,
गाथा	विषय	पत्र
२३६५–६६	निर्पन्थो निष्कारण घटीमात्रक राखे तेने लगतां	
	प्रायश्चित्तो, तेनां कारणो अने तेने अंगे अपवाद	६७०-७१
२३६७	'धारयितुं परिहर्त्तुं' पदनी व्याख्या	६७१
२३६८-७०	निर्यन्थ-निर्यन्थीओने घटीमात्रक राखवानां कारणो	
	अने घटीमात्रकना अभावने छगती यतनाओ	६७१-७२
२३७१-८२	चिलिमिलिकाप्रकृत सूत्र १८	६७२-७६
	निर्घन्थ-निर्घन्थीओने कपडानी चिलिमिलिका—	
<u>.</u>	पडदो राखवो अने तेनो उपयोग करवो कल्पी शके	
२३७१	चिलिमिलिकाप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	६७२
	चिलिमिलिकासूत्रनी व्याख्या	६७२
२३७२	'धारयितुं परिहर्तुम्'पदनी व्याख्या अने सूत्रमां	-
	चेलचिलिमिलिकाने यहण करवानुं कारण	६७३
२३७३	चिलिमिलिकातुं स्वरूप वर्णववामाटेनी द्वारगाथा	६७३
२३७४	१ भेदद्वार अने २ प्ररूपणाद्वार	६७३
	१ सूतरनी २ रज्जुनी–दोरीनी ३ वल्कनी–झाडनी	
	छालनी ४ दंडनी अने ५ कटनी एम पांच प्रकारनी	
	चिलिमिलिका अने तेनुं खरूप	
2304-00	३ द्विविधप्रमाणद्वार	६७३
	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओए पांच प्रकारनी चिलिमिलिका	_
	पैकी कई केवडी अने केटली राखनी तेनुं प्रमाण	
२३७८–८२	४ 'जपभोगो द्विपक्षे' द्वार	६७४–७६
	निर्मथ-निर्मथीओ जे जे कारणसर चिलिमिलिका-	
	ओनो उपयोग करे ते कारणोर्नं वर्णन	
;		
२३८३—२४२५	दकतीरप्रकृत सूत्र १९	६७६—८९
	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने जलाशय, नदी आदि पाणीनां	
	स्थानोनी नजीकमां अथवा किनारे ऊभा रहेवुं,	
	वेसवुं, आडे पडखे थवुं, उंघी जवुं, अशन-पान	

गाथा	त्रिपय	पत्र
i	आदि आहार करवो, स्ताध्याय-ध्यान-काउसग वगेरे कहुं य करहुं कल्पे नहि	
२३८३	दकतीरप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	६७६
	१९ दकतीरसूत्रनी च्याख्या	६७६
२३८४	द्कतीरसूत्रनी विस्तृत च्याख्यामाटे द्वारगाथा	६७७
२३८५-२४१२	१ दकतीरद्वार	६७७-८५
२३८५-८६	'दकतीर क्यां सुधी कहेवाय ?' तेने छगता सात आदेशो-मतो अने ते पंकीना प्रामाणिक मतोनो	
	निर्णय	६७७
२३८७	पाणीना किनारे कमा रहेवुं, वेसवुं, सुवुं, खाध्याय-	
२३८८-९८	ध्यान वगेरे करवाधी छागता अधिकरणादि दोषो अधिकरणदोपनुं स्त्ररूप	थ ७ ३
4366-46	जावकरणदापनु स्वरूप जलाशय वगेरेना नजीकमां श्रमण-श्रमणीओने ऊभेला, वेटेला, सुतेला, स्वाध्याय-ध्यान-काडसग वगेरे करता जोई स्त्री, पुरुप, पशु, जंगली माणसो, जंगली पशु वगेरे तरफथी उत्पन्न थता अधिक- रणदोपनुं सहस्प	६७८—८ १
२३९९	पाणीनी नजीकमां ऊभा रहेबुं, वेसबुं वगेरे दश	
	स्थानोने छगतुं सामान्य प्रायश्चित्त	६८२
२४००	निहा निहानिहा प्रचला प्रचलाप्रचलातुं स्ररूप	६८२
२४०१-१२	संपातिम तथा असंपातिम एम वे प्रकारना पाणीना किनारे वेसबुं वगेरे दश खान सेवनार आचार्य, उपाध्याय, भिक्ष, स्वविर, क्षुड़क ए पांच निर्प्रन्थ अने प्रवर्त्तिनी, अभिषेका, भिक्षुणी, स्वविरा,	.′ ,
; · · ·	अन अवातना, आमपका, ामळुणा, स्थावरा, श्रुष्टिका ए पांच निर्धन्यीओने लक्षीने प्रायश्चित्तना विविध आदेशो [गाथा २४०२—सम्पातिम असम्पातिम दकती- रनुं सहप]	६८२-८५
૨ ૪ १ ३–१५	२ यूपकद्वार यूपकतुं सहप अने तेने छगतां प्रायश्चित्तो	६८५–८६

गाथा	विएय	पत्र
२४१६–१९	े ३ ओतार्पनाद्वार	६८६-८७
•	पाणीना किनारे आतापना लेवाथी लागता दोपो	
२४२०-२५	दकतीरद्वार, यूपकद्वार अने आतापनाद्वारने	- 2
	लगतो अपवाद अने जयणाओ	६८७-८९
		ξ.
२४२६–३३	चित्रकर्मप्रकृत सूत्र २०-२१	EC9-99
	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने चित्रकर्मवाळा ख्पाश्रयमां	0
	रहेवुं न फल्पे परंतु चित्रकर्म रहित उपाश्रयमां रहेवुं कल्पे	•
२४२६–२७	चित्रकर्मप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्वन्ध	६८९
	२०-२१ चित्रकर्मसूत्रनी व्याख्या	६९०
२४२८	चित्रकर्मसूत्रना व्याख्यानमाटे द्वारगाथा	" ६९०
२४२९–३०	निर्दोप सदोप चित्रकर्मनुं खरूप	६९०
२४३१	आचार्य, उपाध्याय, वृपम आदिने आश्री चित्रकर्म-	
	वाळा उपाश्रयमां रहेवाने लगतां प्रायश्चित्तो 🥏	६९०
२४३२	चित्रकर्मवाळा उपाश्रयमां रहेवाथी छागता विकथा,	
	स्वाध्यायच्याघातादि दोपो	६९१
२४३३	अपवादपदे निर्घन्थ-निर्घन्थीओने चित्रकर्मवाळा उपाश्रयमां रहेवुं पडे तेने छगती जयणाओ	६९१
	उपात्रयमा रहेषु पड तम लगता जयणाजा	421
२४३४–४८	सागारिकनिश्राप्रकृत सूत्र २२–२४	E 99-94
र्४३४–४५	२२-२३ सागारिकनिश्रासुत्र	६९१-९४
	निर्घेन्थीओने शय्यातरनी-वसतिना स्वामिनी निश्रा-	
	तेमनी संभाळ राखवानी कचूलात सिवाय कोई	
	पण ठेकाणे रहेवुं कल्पे नहि किन्तु इाय्यातरनी निश्राए ज रहेवुं कल्पे	
२ ४३४	सागारिकनिश्रासूत्रनो पूर्वसूत्र साथै सम्वन्ध 🖰 🕝	६९१
	२२-२३ सागारिकनिश्रासूत्रनी व्याख्या	' ६९३
२४३५	सागारिकनिश्रासूत्रने आचार्य प्रवंत्तिनीने न समजावे,	• •

गाधा	निपय	पत्र	
	प्रवर्त्तिनी मिश्रुणीयोने न समजावे, मिश्रुणीयो		
	ते न सांमळे तेने छगतां प्रायश्चित्तो अने दोषों	६९२	
२४३६	मागारिकर्ना-टाय्यानरनी निश्राए न रहेनार निर्शन्थी-	•	
,	श्रोने प्रायश्चित्ता	६९२	
२ ४३७–४२	मागारिकर्ना निश्रा सिवाय रहेनार निर्प्रन्थीओने	• • •	
,	छागता दोषो अने तेना समर्थनमाटे ग्वादिप्युवर्ग,	, pa	
,	अजिका-चकरी, पकान्न, इक्षु, घी आदि दृष्टान्ती	६९२–९३	
२ ४४३–४५	अपवादपदे सागारिकनी निश्रा सिवाय रहेवुं पडे		
	सारे केती वसतिमां—इपाश्रयमां रहेतुं ? योग्य		
	वसतिना अभावमां वृपमो केवी रीते निर्वन्थीओनी		
	रक्षा करे अने ते यूपमो केया सहुणोथी विभृपित		
	होय ? तेनुं खरूप	६९३–९४	
२४४६–४८	२४ सागारिकनिश्रासूत्र	६९४	
	निर्प्रनथो मागारिकनी निश्राए के अनिश्राए रही शके		
	२४ सागारिकनिश्रासृत्रनी व्याख्या	६९४	
२४४६	निर्घन्थो उत्सर्गर्था सागारिकनी निश्राए न रहे पण	, .	
	कारणसर तेओ सागारिकनी निश्राए रही शके	६९४	
२४४७	विनाकारणे सागारिकनी निश्राए रहेनारने प्राय-		
	श्चित्त अने छागवा दोषो	६९५	
२४४८	अपवादपदे निर्घन्योने सागारिकनी निश्राए रहेवानां		
	कारणी	६९५	
२४४९–२५८	२ सागारिकोपाथ्रयप्रकृत सूत्र २५-२९	हरुप-७२६	
२४४९–२५५		३१७-७१८	
	निर्प्रन्य-निर्प्रन्यीत्रोने सागारिकना सम्बन्धवाळा		
	रपाश्रयमां रहेर्नुं कल्पे नहि		
२४४९	सागारिकोपाश्रयप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	६९५	
(२५ पहेला सागारिकोपाश्रयसूत्रनी व्याख्या	६९६	
२४५०-२५५		द्९द-७१८	
2840	सागारिकपदना निह्नेपो	६९६ [?]	

		* *
गाथा	विपय	पत्र
२४५१–६४	सागारिकपदनो द्रव्यनिश्लेप	६९६-९९
२४५१–५४	सागारिकपदना द्रव्यनिक्षेपना रूप, आभरणविधि,	•
	वस्न, अछंकार, भोजन, गन्ध, आतोद्य, नाट्य,	
	नाटक, गीत आदि प्रकारो, तेनुं खरूप तथा तेने	
	लगतां प्रायश्चित्तो	६९६–९७
२४५५–६४	द्रव्यसागारिकना सम्बन्धवाळा उपाश्रयमा निवास	4
	करवाथी निर्मन्थ-निर्मन्थीओने लागता दोपोतुं वर्णन	६९७–९९
२४६५-२५५०	सागारिकपद्नो भावनिक्षेप	६९९-७१८
२४६५–६६	भावसागारिकतुं स्ररूप	६९९
२४६७	अत्रह्मचर्यना कारणरूप सामान्यप्रजा, कौटुंविक	
	अने दंडिकनी मालकीवाळा भावसागारिकतुं अर्थात्	
	दिव्य मनुष्य अने तिर्यंच संबंधी रूपनुं-प्रतिमानुं	
	तथा रूपसहराततुं खरूप अने तेना जघन्य मध्य-	
	मादि प्रकारो	६९९-७००
२४६८–२५१५	दिन्यप्रतिमानुं स्वरूप	७००-११
२४६८–६९	दिव्यप्रतिमाना प्रकारो	600
2000 45		
२४७०–८६	निर्प्रन्थोने अब्रह्मचर्यना कारणरूप दिव्यप्रतिमायुक्त	
4800-65	उपाश्रयोगां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते	
२४७०—८६	उपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी	
	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते छागतां प्रायश्चित्तो अने तेने छगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी	७०० – ४
२४८ <i>७</i> —८ <i>६</i>	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते छागतां प्रायश्चित्तो अने तेने छगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रनथ-निर्प्रनथीओने दिन्यप्रतिमायुक्त खपाश्रयमां	७०० – ४
	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते छागतां प्रायश्चित्तो अने तेने छगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिन्यप्रतिमायुक्त खपाश्रयमां वसवाथी छागता आज्ञाभंग, अनवस्था, मिथ्यात्व,	
	उपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिन्यप्रतिमायुक्त उपाश्रयमां वसवाधी लागता आज्ञाभंग, अनवस्था, मिथ्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं न्याख्यान	७०० - ४ ७०४-६
	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते छागतां प्रायश्चित्तो अने तेने छगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिञ्यप्रतिमायुक्त उपाश्रयमां वसवाधी छागता आज्ञामंग, अनवस्था, मिण्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं ज्याख्यान [गाथा २४८९ मां—अविकोप्य आज्ञा विषे	
₹ <i>8८७</i> — <i>९३</i>	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिन्यप्रतिमायुक्त खपाश्रयमां वसवाधी लागता आज्ञामंग, अनवस्था, मिध्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं न्याख्यान [गाथा २४८९ मां—अविकोप्य आज्ञा विपे मौर्योनुं दृष्टान्त]	
₹ <i>8८७</i> — <i>९३</i>	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिञ्यप्रतिमायुक्त खपाश्रयमां वसवाधी लागता आज्ञामंग, अनवस्था, मिथ्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं व्याख्यान [गाथा २४८९ मां—अविकोष्य आज्ञा विषे मौर्योनुं दृष्टान्त]	
₹ <i>8८७</i> — <i>९३</i>	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिन्यप्रतिमायुक्त उपाश्रयमां वसवाधी लागता आज्ञाभंग, अनवस्था, मिध्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं न्याख्यान [गाथा २४८९ मां—अविकोप्य आज्ञा विषे मौर्योतुं दृष्टान्त] निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने देवादिकना सान्निध्यवाळी अत्रह्मचर्यना कारणरूप दिन्यप्रतिमायुक्त उपाश्रयमां वसवाधी तेमना तरफथी परीक्षा, प्रस्तनीकपणुं तेम	
₹ <i>8८७</i> — <i>९३</i>	खपाश्रयोमां वसवाधी स्थान अने प्रतिसेवना निमित्ते लागतां प्रायश्चित्तो अने तेने लगती शिष्याचार्यनी प्रश्नोत्तरी निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने दिन्यप्रतिमायुक्त खपाश्रयमां वसवाधी लागता आज्ञामंग, अनवस्था, मिध्यात्व, विराधना, विकथा आदि दोपो अने तेनुं न्याख्यान [गाथा २४८९ मां—अविकोप्य आज्ञा विपे मौर्योनुं दृष्टान्त] निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने देवादिकना सान्निध्यवाळी अन्नह्मचर्यना कारणरूप दिन्यप्रतिमायुक्त उपाश्रयमां	

गाथा	विषय	पत्र
२५०४	देवताना सान्निध्यवाळी प्रतिमाओना प्रकारो	500
२५०५-८	प्रतिमानुं सान्निध्य करनार देवताना १ सुखविब्रप्य-	
	सुखमोच्य २ सुखविज्ञप्य-दुःखमोच्य वगेरे चार	
	प्रकारो अने तेने छगतां अकरनैगम, रत्नदेवता,	
	विद्यादेवता अने मातंगविद्यादेवतानां दृष्टान्तो	७०८-९
२५०९–१५	सामान्यजनता, कौंद्वंविक अने दंडिकनी मास्की-	
	वाळी दिव्यस्त्रीप्रतिमानुं, तेमनी स्त्रीओनुं तेम ज तेने	
	छगतां प्रायश्चित्तोतुं उतरता-चढियातापणुं अने तेनां	
	कारणो	७०९–११
२५१६–३३	मनुष्यप्रतिमानुं स्वरूप	७१२–१५
२५१६–२६	सामान्यजनता, कोटुम्चिक अने दंडिकना स्वामित्व-	
	वाळी मनुष्यप्रतिमाना जघन्य-मध्यमादि प्रकारो	
	अने तेनो विभाग तेम ज आवी प्रतिमावाळा उपा-	
	श्रयमां वसवाथी निर्घन्थ-निर्घन्थीओने छागतां स्थान	
•	अने प्रतिसेवनाविषयक प्रायश्चित्तो तथा दोपोतुं खरूप	७१२–१४
२५२७–३३	१ सुखविज्ञप्य-सुखमोच्य २ सुखविज्ञप्य-दुःत्वमोच्य	
	वगेरे मनुष्य स्त्रीना चार प्रकारो अने तेनां उदाह-	
	रणो, तेने छगतां प्रायश्चित्तो अने दोपो तथा तेना	
	डतरता-चढियातापणानो विभाग अने कारणो	७१४–१५
२५३४–४६	तिर्यंचय्रतिमानुं स्वरूप	७ १५–१७
२५३४–४३	सामान्यप्रजा, कोंटुंविक अने दंडिकना आविपत्य-	
	वाळी तिर्यंचप्रतिमाना जघन्य-मध्यमादि प्रकारो	
	अने आ जातनी प्रतिमावाछ। उपाश्रयमां वसवायी	
	निर्यन्य-निर्यन्यीओने छागनां स्थान अने प्रतिसेचना-	
	विपयक प्रायिश्वत्तो अने दोषो	७१५–१६
२५४४–४६	सुखविज्ञप्य-सुखमोच्य आदि तियँचस्त्रीना चार	
	प्रकारो अने तेने लगतां उदाहरणो	७१६–१७
	[गाथा २५४६—मनुष्य साथे मैथुनप्रसंग सेव-	
	नार सिंहणतुं दृष्टान्त]	
२५४७	निर्प्रन्यीओने आश्री दिन्य, मनुष्य, तिर्यंच स्त्रीनी प्रतिमाने वद्ले पुरुषप्रतिमा समजवानी भलामण	
·	ગામનાન લગ્ન ઉલ્વયાલના સમયનાના મહાનન	

	बृहत्करपसूत्र तृतीय विभागनो विपयानुकम ।	২ ৬
गाथा	विपय	पत्र
	अने कुतरा साथे मैथुनप्रसंग सेवनार अगारीनुं इप्टान्त	७१८
२५४८–५०	सागारिकोपाश्रयसूत्रने छगतो अपवाद अने तेने अंगेनी जयणाओ	
7441-67	२६-२९ सागारिकोपाश्रयसूत्रो	५१०
(())	निर्यन्थ-निर्यन्थीविपयक विभागवार सूत्रो	७१९–२६
२ ५५१	२६-२९ सागारिकोपाश्रयसूत्रोनो २५ मा सागा-	
	रिकोपाश्रयसूत्र साथै सम्बन्ध	७१९
	२६-२९ सागारिकोपाश्रयसूत्रोनी व्याख्या	७१९
२५५२—५५	२५ मा सूत्रमां कहेली हकीकत ज २६ थी २९ सूत्रोमां कहेवानी होई आ सूत्रोनी रचना निरर्थक	
	छे ए प्रकारनी शिष्यनी शंका अने तेतुं समाधान	७१९-२०
२५५६–७७	निर्अथविषयक २६-२७ सागारिकोपा-	
	श्रयसूत्रनी विस्तृत ज्याख्या	७२०-२५
	. सविकार पुरुप अने पुरुषप्रकृति तेम ज स्त्रीप्रकृति नपुंसकनुं स्वरूप, तेमना १ मध्यस्य २ आभरण- प्रिय ३ कांदिषक अने ४ काथिक ए चार प्रकारोनुं स्वरूप, तेना भेद-प्रभेदो अने तेमना संबंधवाळा उपाश्रयोमां निष्कारण वसवाथी लागता संयम-	
	विराधनादि दोपो अने प्रायश्चित्तो तथा कारणसर सागारिकना संबंधवाळा उपाश्रयोमां रहेवुं पडे तेने छगती जयणाओ अने अपवादो	•
२५७८–८२	निर्मन्थीविपयक २८-२९ सागारिकसूत्रोनी व्याख्यानी निर्मन्थसूत्रोनी व्याख्यानी जेम भछामण	७२५–२६
२५८३–२६२८	प्रतिबद्धशय्याप्रकृत सूत्र ३०-३१	७२७–३८
	३० पहेलुं प्रतिबद्धशय्यासूत्र	७२७–३५

जे उपाश्रयनी नजीकमां गृहस्थो रहेता होय त्यां निर्श्रन्थोने रहेवुं कल्पे नहि

गाया	विषय	पत्र
२५८३	प्रतिबद्धराण्याप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथै सम्बन्ध	७२७
,,-,	पहेला प्रतिवद्धशच्यासूत्रनी न्याख्या	७२७
२५८४-८६	'प्रतिवद्धं' पदना निशेषो, भावत्रतिवद्धना प्रस्तवण	
() 5 5 - (स्थान रूप अने शब्द ए चार प्रकारो, द्रव्यप्रतिबद्ध-	
	सावप्रतिवदृपद्नी चतुर्भंगी अने तेने छगतो विधि-	
	निपेघ	७२७
२५८६–९१	निर्प्रन्थोने 'द्रव्यतः प्रतिवद्ध-भावतः अप्रतिवद्धं रूप	
	पहेला भांगावाळा उपाश्रयमां वसवायी लागता	
	अधिकरणादिदोपो, तेतुं सहप अने तेने लगती	
	चतनाओ	७२७–२९
२५९२–२६१३	निर्प्रयोने 'इञ्यतः अप्रतिवद्ध-भावतः प्रस्रवण-	
	स्यान-रूप-राञ्च्यप्रतिवद्धं रूप वीजा भागावाळा उपा-	
	श्रयमां वसवायी लागता दोषो, तेतुं खरूप अने	
	तेने छगती विविय यतनाओ	७२९–३४
	[गाया २५९३—प्रस्रवण, स्थान, रूप अने अवद्-	
	प्रतिवद्धपद्नी पोडसभंगी]	
२६१४-१५	निर्प्रयोने 'द्रव्य-भावप्रतिवद्धं रूप त्रीजा भांगावाळा	
	च्पात्रयमां वसवायी छागदा दोषो वगेरेनी भछामण	
	अने 'त्रव्य-भावअप्रतिवर्द्ध' भांगाबाळा उपाश्रयोनी	
	निर्दे[पतार्ड कथन	હર્ધ
२६१६-२८	३१ वीज्ञं प्रतिवद्धशय्यासूत्र	७३५-३८
	ने चपाश्रयनी नजीकमां सागारिक रहेता होय त्यां	
	निर्प्रन्यीओने रहेर्बु करने	
२६१६	निर्प्रन्यीविषयक प्रतिवद्धश्य्यास्त्रनी व्यास्यामाटे	
	निप्रन्यसूत्रना च्याख्याननी भडामण	७३५
२६१५-२०	हृज्यप्रतित्रद्ध च्पाश्रयमां वसवायी निर्प्रन्यीत्रोने	
	छागता दोषो यतना वरोरे	७३५-२६
२६२१–२८	भावप्रविषद्ध उपाष्ट्रयमां वसवाधी निर्देन्धीश्रोने	
	छानवा दोपो यवना यगेर अने पृपलिकाखादकर्नु	
	टराहरण 	७३६–३८

गाथा	विषय ।	पत्र
२६२९-७५	'रेहपतिकुलस्थवासप्रकृत सूत्र ३२-३	३ ७३८-५०
२६२९ –६७	३२ ^५ पहेलुं गृहपतिकुलमध्यवाससूत्र	৩३८–४८
ॱ२६२९ ं	निर्प्रन्थोने गृहपतिकुलना वच्चोवच रहेवुं कल्पे नहि गृहपतिकुलमध्यवासप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	८ ६०
2830-819	पहेला गृहपतिकुलमध्यवाससूत्रनी व्याख्या मध्यपद्नी विस्तृत व्याख्या	シデシ シ ピータデの
२६३०–६७ २६३०–३२	मध्यपद्ना निर्वाहि-अनिर्वाहि सद्भावमध्य अने निर्वाहि-अनिर्वाहि असद्भावमध्य ए चार प्रकारो अने ते दरेकना शाला, मध्य, छिंडी ए त्रण प्रकारो	७३९–४८
	अने तेने लगतां प्रायश्चित्तो	७३९
२६३३-४४	२ ग्रालाद्वार निर्मथोने शालामां वसवाथी थती हरकतो अने लागता दोषोनुं १ प्रत्यपाय २ वैक्रिय ३ अपादृत ४ आदर्श ५ कल्पस्थ ६ भक्त ७ पृथ्वी ८ उदक ९ अग्नि १० वीज अने ११ अवहन्न ए अगीआर हारथी वर्णन	७३९–४२
२६४५–५ २	२ मध्यद्वार निर्जन्थोने शालाना मध्यमां आवेला ओरडा वगेरेमां वसवाथी थती हरकतो अने लागता दोपोनुं उप- रोक्त प्रत्यपायादि अगीआर द्वार उपरांत १ अति- गमन २ अनामोग ३ अवभाषण ४ मज्जन अने ५ हिरण्य ए पांच द्वारथी निरूपण	.
२ ६५३–५८ :	३ छिंडीद्वार ०६-२२ व्यक्ति च्याच	७४५–४६
२६५९–६७	निर्प्रन्थोने छिंडीमां वसवाथी लागता दोषो 'शाला, मध्य अने छिंडीद्वारने लगती यतनाओ	ॅ७४ ६ –४८
२६६८-७५	३३ बीजं गृहपतिकुलमध्यवाससूत्र निर्श्रन्थीओने गृहपतिकुलना वचोवच वसवुं कल्पे नहि	086-40

१ आ ठेकाणे मूळमां गाथापतिकुलमध्यवासप्रकृतम् एम छपायुं छ तेने वदले गृहपतिकुल-मध्यवासप्रकृतम् ए रीते वाचवुं ॥

गया -	डिण्ड	पत्र
२६६८-७५ -	निर्घर्गकोने झाडा कादिमाँ वसमावी सागता	
	दोषोत्तं वर्जन अने प्रमुत सुत्रनी मार्थकता	७४९–५०
२६७६–२७३१	व्यवश्यनप्रकृत सूत्र ३४	७५१–६९
	मिह्न, आचार्य, उराव्याय, मिह्नुनी आदिए एक-	
•	र्वाना साथे हुंब बचो होब नो परस्पर उपअन घारण	
-	कर्राने हेशनी शान्ति कर्ग छेत्री लोइए. कोई मिल्लु,	
	श्राचार्यादि पोवे झान्त थाय पग सामी व्यक्ति	
	शान्त न शव तो ते शान्त शव ते आग्रवक छे	
	अने ते शान्त न थाय वे विरायक हे एस समज्रु ं	
२६७६	व्यवक्रमनप्रकृतनो पूर्वप्रकृत माथे सन्यन्य	७५१
-	३४ व्यवदामनसूत्रनी व्याख्या	હક્
হ্হড়ত	सूत्रमां मात्र मिळुगव्द होई चशव्दद्वारा आचार्य,	
	चराष्यदिनुं भह्प	७५२
२६७८–७९	व्यवसमित अने प्रास्त्रकव्ना एकार्थिको नया	
	इच्छा अने आडाङ्क्तो अर्थ	હઇ,૨,–५३
55/0-65	'अधिकरण'पदना निक्षेपो	ওই:=২८
२६८०-८१	द्रव्यविकरणतुं स्वरूप	७५३
	इच्छ्छछिकरणना निर्वर्तना, निर्देषणा, संयोजना	
	अने निसर्वना ए चार प्रकारो अने टेतुं खहर वेन	
	च प्रसंगोपात योनिषासृतादि ग्रंय द्वारा अधी-	
	त्यादक मिछ्सेनाचार्य अने द्रव्ययोगनो उपदेश	
	करनार इनर आचार्यनां दशन्दो	
२६८२-९२	भावाधिकरणतुं स्वरुप	8-148
२६८२-८४	भावायिकरम-ऋषायद्वारा जीवो केवी रांदे जुई।	
	जुर्दा गतिमां जाय छे देतुं सक्य	७५४–३५
		0.3

[्]रश प्रकृति साध्यकार पा॰ ३२४९ मां प्रामृतसूत्र दर्शके श्रेत सूर्णिकार-विशेषसूर्णि॰ कारोए अधिकरणसूत्र दर्शके गायेउ छे (हुओ स्टेन प्रुट ९०६ दि० २) दे छटा प्रस्त सूत्रन वाद्यकृष्ट क्षरप्ने घ्यत्मां तरं अने का रहत्तं नाम व्यवशामनप्रहत्तम् एवं कार्यु है । प्रस्त अने क्षविद्राप छच्ट एक पैंड छे॥

गाथा	विषय	'पत्र'
२६८५-८८	निश्चय-व्यवहारनयनी अपेक्षाए द्रव्योना गुरुत्व,	
	लघुत्व, गुरुलघुत्व अने अगुरुलघुत्वनुं खरूप	७५५-५६
२६८९–९१	जीवो खाधीनपणे कर्मों करे छे छतां तेमनी उंच-	·
	नीच गति स्वाधीनपणे न थतां कमोंने आश्रीने ज	
	थाय छे तेनुं हुं कारण ए शंकानुं समाधान	७५७
२६९२	जीवो जे कर्मो खपावे छे ते उदीर्ण होय के अनु-	
	दीर्ण तेनुं खरूप	७५८
२६९३–९७	१ सचित्त २ अचित्त ३ मिश्र ४ वचोगत ५	
	परिहार अने ६ देशकथा ए पांच द्वारो वडे भावा-	
	धिकरण उत्पन्न थवानां कारणोनुं निरूपण	७५८-५९
२६९८-२७०५	निर्घन्थ-निर्घन्थीओमां परस्पर अधिकरण-क्रेश	
	थतो होय त्यारे उपेक्षा, उपहास, उत्तेजना अने	
	सहायपणुं करनारने प्रायश्चित्तो अने उपेक्षा उपहा-	
	सादि पदोनी व्याख्या	७६०-६१
२७०६–७	निर्घन्थ-निर्घन्थीओ परस्पर अधिकरण करता होय	
	तेनी उपेक्षा करनार अथवा तेने शान्त नहि कर-	
	नार आचार्यादिने लागता दोपो अने तेने लगतुं	
:	सरीवरवासी जलचरो अने हस्तियूथउं दृष्टान्त	७६२
२७०८-१२	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओ परस्पर क्वेश करता होय तेनी	
	उपेक्षा करवाथी आचार्यादिने व्यवहार अने निश्च-	
	यनयनी अपेक्षाए लागता दोपोनुं खरूप	७६३
२७१३–१७	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओमां परस्पर थता अधिकरण-	
	छेशने शान्त करवानी रीत अने तेने लगतो उपदेश	ं ७६४–६५
२७१८–३०	निर्मन्थ-निर्मन्थीओ परस्पर अधिकरण करता होय	
•	त्यारे आचार्यादिनी समजावटथी एक जण शान्त	
	थाय पण पर—वीजो शान्त न थाय सारे शुं करवुं	
	तेने लगतो विधि वताववाना प्रसंगमां 'पर'शब्दना नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल आदेश कम वहु	
	प्रधान अने सावनिश्लेपो अने तेनुं रहस्यपूर्ण विवेचन	७६६–६९
२७३१	अधिकरण-क्षेश करवाने लगतुं अपवादपद	७६५–५५
1041	Allanda - 64	- 7 3

गावा	विषय	पत्र
२७३२–५८	चारप्रकृत सूत्र ३५-३६	990-96
२७३२-४७	३५ पहेलुं चारस्त्र	৫ ৩-৩১
	निर्प्रन्य-निर्प्रन्थांक्रोने चोनासामां एक गामणी वीते	
	गाम नवुं ऋस्ये नहि	
२७३२–३३	चारप्रकृतनो पूर्वसृत्र साथे सम्बन्य	৩৩৩
	पहेला चारसूत्रनी व्याख्या	৩৩৩
રહક્ષ્ટ	वर्षावासना प्रावृट् अने वर्षा ए वे प्रकारो अने	
	तेमां विहार करवार्या देमन वर्षाऋतु पूर्व थया	
	पर्छा विद्यार निहि करवार्या छागतां प्रायिक्तो	৩৩৩
२७३५–३७	निर्घन्य-निर्घन्यीञ्चोने वर्षावासमां विद्यार ऋरवायी	
	छागता आज्ञा-विरावनादि दोषो	७७१
२७३८–४७	निमन्य-निर्पन्योत्रोने वर्षावासमां विद्यार करवाने	
~	छ्यतां आपत्राहिक कारणो अने तेने अंगेनी चननाओ	<i>ডডঽ—</i> ড४
2,5-2805	३६ वीर्जु चारसूत्र	96-266
	निर्जन्य-निर्जन्यीओने इमंत अने श्रीप्मऋनुमां विहार	
	इत्वो इस्	
२७४८	र्वाजा चारसुत्रनो पृर्वसूत्र साथै संबंब	७७५
	त्री जा चारस्त्रनी च्याल्या	ড ড ২
२७४९-५०	निर्यन्य-निर्यन्याञ्जोने हमंत-श्राप्मऋतुमां विहार नहि	
	करवार्था छागना दोषो अने विहार करवार्था थवा	
	डामो	७ ७५
२७५१–५८	निर्मन्य-निर्मन्यीत्रोने हेर्मव-श्रीत्मऋतुनां विहार	
	करतां मार्गमां आवतां मासकल्यने योग्य गाम-	
	नगरादि क्षेत्रोन चेत्यवन्द्रनादि निनिच छोडी देवार्थ	
	छानवा दोषो अने देने छन्तुं अपवाद्यद	७७६–७८
३७५९-९१	वैराज्य-विरुद्धराज्यप्रकृत सूत्र ३७	495-50
	निर्यन्य-निर्यन्यीओने वराज्य-विनद्धराज्यमा तुरता-	
	तुरत जर्तुं आवर्तुं करंगे नहि	
२७५९	वरान्य-विरद्धरान्यप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाथे सम्बन्ध	७७८

	बृहत्कल्पसूत्र तृतीय विभागनो विपयानुक्रम ।	\$\$
गाथा	विषय	पत्र
	वैराज्यविरुद्धराज्यसूत्रनी व्याख्या	See
२७६०–६१	वैराज्य, विरुद्धराज्य, सद्योगमन, सद्योआगमनादि	
	पदोनी व्याख्या	७७९
२७६२	'वैर'पदना निक्षेपो अने भाववैरने छग्तुं महिप-	r
-	वृपभ-व्याघ्र-सिंहादिशव्दोथी सूचित चौरसेनाधि-	
2	पति अने ग्राममहत्त्रतुं दृशन्त	, ७७९
२७६३–६४	वैराज्यपद्ना अराजक, यौवराज्य, वैराज्य अने	å
	द्वैराज्य ए चार प्रकारो अने तेनुं खरूप	650
२७६५	विरुद्धराज्यपदनी व्याख्या	960
२७६६–८३	वैराज्य-विरुद्धराज्यमां गमनागमन्ने छगता अन्नाण-	
	दिवा-पथ-दृष्टपदवडे ६४ भांगाओ अने ते द्वारा	
	थता संयम-आत्मविराधनादिदोषोनुं विस्तृत खरूप	७८१–८५
२७८४–९१	वैराज्य-विरुद्धराज्यमां जवा-आववा अंगेना अप-	
	वादो अने जयणाओ	७८५-८७
	,	
२७९२–२८३	५ अवग्रहप्रकृत सूत्र ३८–४१	966-608
२७९२–२८१३		986-68
	गृहपतिने त्यां भिक्षाचर्यामाटे गएला निर्पेथने कोई	
	वस्त्र, पात्र, कांबळ आदि माटे विज्ञप्ति करे तो ते	
	निर्प्रथने ते उपकरण आचार्य थक्कं लइने आचार्य	
	समक्ष हाजर करी तेमनी आज्ञा लीधा पछी ज	
	राखवुं के वापरवुं कल्पे	
२७९२–९३	अवमहप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संवंध	926
	पहेला अवग्रहसूत्रनी व्याख्या	' 656
२७९४–९५	वस्त्रना याच्यावस्त्र अने निमन्नणावस्त्र ए वे प्रकारो	
	अने याच्चावस्नना खरूपमाटे पीठिकामांनी ६०३-	
	४८ गाथानी मलामण अने निमंत्रणावस्नुतुं स्वरूप	.७८९

निमंत्रणावस्रने लगती पृच्छादि सामाचारी अने

तेथी विरुद्ध वर्त्तवाथी छागता प्रायश्चित्त अने

७९०

आज्ञादि दोपो

२७९६

गाद्या	विषय	पत्र
२७९७–२८०२	पृच्छादिसामाचाराविरद्ध निमंत्रगावस्ने ग्रहण करतां स्रागता दोषोतुं निष्यात्व, शंका सने विरा-	
	थना द्वारवडे वर्णन	७९०–९१
₹८०३–७	पुच्छादिसामाचारीविरद्ध निमंत्रणावस्ने ग्रहण ऋषी	-
	पछी छागना दोषो	७९२–९३
₹८०८-९	निमंत्रणावसनी शुद्रवार्त्तं स्वरूप	७९३
२८१०-१३	मिक्षाचर्यामाटे गएछा निर्यन्थो पृच्छादिसामाचारी- शुद्ध रीते जे निमंत्रणावस्त्रने महग करे ते वस ते निर्यन्थो आचार्य पासे न पहोंचे त्यां सुवी कोनी	
	सत्तामां रहे वेतुं निरुपण	७९४
२८१४	३९ वीजुं अवग्रहसूत्र	७१५
	संडिल्स्मूर्ना आहिए जता निर्देयने कोई वसाहिनी विव्वति करे तो ते उपकरणादि ते निर्देयने आचा-	
	र्यनी निश्राए छई तेमनी पासे हाजर ऋरी वेमनी आज्ञा लीया पछी ज राखवुं वेमज वापरवुं ऋन्ये	
२८१६ —३ <u>६</u>	४०-४१ त्रीजं चोशुं अवग्रहसूत्र गृहपतिने तां मिक्षाचर्यामाटे अथवा संडिलमूमि आदिमाटे गएली निर्नर्थाने चोई गृहपति वल- पात्रादि उपकरणनी विद्यप्ति करे तो ते वल-पात्रादि ते निर्मर्याने प्रवर्त्तिनी थकुं छई प्रवर्त्तिनी समक्ष हातर करी प्रवर्त्तिनीनी आहा लीवा पत्नी ज राखवुं तेम ज वागरवुं कर्षे	७१५-८०१
२८१५–१९	निर्मर्था पोते वस प्रहण करे तेने छगतां प्रायिश्वतो अने तेथी संभवता निष्यात्व, शंका, अभियोग	
	आहि होषो अने पृहुक्तुं दृष्टान्त	७९६–९७
२८२०	निर्प्रन्थीमाटेनां बस्तर्नाः परीक्षानी अने तेमने बस्त आपवानी विधि	७९ ७.
२८२१	निर्घन्यीए पोते बख लेवामाटे नियेघ करातो होवायी	
٠	प्रस्तुत स्त्रनी सार्यकता शी ए शंकानुं समायान	७९७

गाथा	विष्य	पत्र
२८२२–२९	निर्प्रथीओए वस्त्रमहणमाटे वर्जनीय अवर्जनीय	
२८३०–३५	स्थानो अने तेमणे वस्त्र वापरवामाटेनो विधि । लाभ-हानिसूचक वस्त्रोनी परीक्षा अने शुभाशुभ	७९८–९९
	फळनो निर्देश	803-19
२८३६–२९६८	रात्रिभक्तप्रकृत सूत्र ४२-४३	८०१–३९
२८३६-२९२३	_	८०१-२८
	'निर्पन्थ-निर्पन्थीओने रात्रिमां के विकाळ वेळाए	
	अञ्चन-पानादि ग्रह्ण करवुं कल्पे नहि	
२८३६–३७	रात्रिभक्तप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	, ु ८०१
	पहेला रात्रिभक्तसूत्रनी व्याख्या	८०१
२८३८	'रात्रि' अने 'विकाल' पदनी च्याख्या अने तद्विष-	
	यक इतर आचार्योना मतो	८०२
२८३९–४०	पंचमहाव्रत के भिक्षाचर्याना वेंतालीस दोषोमां	
	रात्रिभक्तत्रहणनो निषेघ नहि होवा छतां अहीं तेनो	
,	निषेध केम करवामां आवे छे ए शंकानुं समाधान	८०२
२८४१–४८	रात्रिमां भक्त प्रहणं करवाथी लागता आज्ञा, अन- वस्था, मिध्यात्व, संयमात्मविराधनादि दोषो तथा	
	प्राणवध, महाव्रतादि विषयक शंकादि दोषो	८०२–५
	[गाथा २८४१—रात्रिभक्त प्रहण करंवाथी	
	मिध्यात्वगमनदोषविषये मिक्षुतुं दृष्टान्त]	
२८४९-७१	रात्रिभोजनविषयक 'दिवा गृहीतं दिवा भुक्तम्,	
	दिवा गृहीतं रात्री भुक्तम् इलादि चतुर्भगी, तेतुं	
	विस्तृत स्वरूप अने तेने छगतां सामान्य प्रायश्चित्तो	
	तथा नौसंस्थित प्रायश्चित्तो अर्थात् प्रायश्चित्तोनी	
	चार चार नावाओ	८०५–१४
२८७२–२९२३	रात्रिभक्तग्रहणने लगतां आपवा-	
	दिक कारणो	८१४–२८
२८७ २	रात्रिभक्तग्रहणने लगता अपवाद्पद्वर्णनविषयक	
	द्वारगाथा .	८१४

गाथा	विष्य	पत्र
રં ૮ ૯કં–૭૪	१ ग्लानद्वार	द१४
	ग्डानने आश्री रात्रिभक्त्यहर्गावपयक चतुर्भंगी अने	
	देने छन्तुं अपवाद्यद	
2664 -	२ प्रथम, ३ द्वितीय अने ४ अमृद्धिणुद्वार	634
	श्चित, पिपासित अने असहिष्णुने आणी रात्रि-	
	सन्छ्यह्गविषण्कः अपवाहपर	
२८७६	५ चन्द्रवेषद्वार	८१५
	चन्द्रवेषअन्ञनने आणी रात्रिमच्छ्रहर्गावरपञ्	
	अनवाहरह	
२८७७–२९२३	६ अञ्चहार	684-26
2666-68	अध्वद्वारने ऋगती स्टूडिस अने मुमिष्ट पहने शारी	
	चतुर्मंनी अने दे पेकी प्रथम दृतीय मंगे हान	
	द्शंन चार्त्त्र निनिने अव्याननर्ना अर्थान देशा-	
	न्त्ररामनर्ग श्रनुहा	८१५-१६
२८८२–२९२३	अध्यतमनोपयोगी उपकरणोर्नु स्वरूप	८१६–२८
२८८२-८३	अव्यनमनोरणेनी अर्थान् विद्यारमार्गेरयोगी टर-	
	करा विषयक द्वारमाया अने श्विद्वारमाया	८१६–१७
२८८४-८७	१ चर्महार	८१६-१८
	विज्ञा, पुट, वर्ब, क्रोय़क, कृत्रि, सिष्क, कारी-	
	तिहा आदि चर्मनां दरहरणों, ठेतुं कहर अने	
	हेनी दर्याग	
2666-68	२ छोइम्रहगद्वार	636
	निष्मल्ह, सूची, थारी, नलरहन बादि छोहोप-	
	करम अने अस्रहोसतुं स्टर्म अने देनो सम्मोग	
२८९०	३ मन्द्रीयाजनहार अने ४ वर्षकरबहार	636
	नर्न्याञ्चन अने वर्मक्रकतुं स्टब्स अने तेनी	
	इपरोग	
२८९१	५ पर्तिर्थिकोपकरणहार	८१९
	पर्तार्थिकोरकरणतुं खरूर अने टेनो उरयोग	
5,605	६ गुडिकाइगर अने ७ कोच्छार	233
n	गुन्निका अने मोजतुं खत्र अने देनो दार्गेप	

गाथा	विषय	पत्र
२८९३९५	अध्वगमनोपयोगी उपकरण नहि लेनारने प्रायश्चित्तो	
	अने प्रयाण करतां शकुनावलोकन	८१९-२०
२८९६	सिंहपर्षदा, वृषभपर्षदा अने मृगपर्षदा ए त्रण पर्प-	
•	दातुं स्ररूप	८२०
२८९७–२९००	जे सार्थनी साथे मार्गमां गया होय ते सार्थनी	
	अधिपति साधुओने अधवचे रखडावी मूके तेने	
	समजाववानो उपाय तेमज भिक्षा वगेरे न मळे	
•	तेने छगतो विधि आदि	८२०–२१
२९०१५	विहार करतां मार्गमां सिंहादिपर्षदाओने आगळ-	
	पाछळ चालवानो कम आदि	८२१
२९०६–२३	मार्गमां अन्न-पाणी न मळे तेने छगतो विधि	८२२–२७
२९०६	मार्गमां अन्न पाणी वगेरे न मळे लारे तेने मेळ-	
	ववाने छगता विधिविषयक द्वारगाथा	८२२
२९०७-८	१ प्रतिसार्थद्वार	८२३
,	रस्तामां आवी मळेळा वीजा सार्थमांथी गीतार्थ-	
	संविद्योए भिक्षा लेवानो विधि	
2808-80	२ स्तेनपछीद्वार	८२ ^१ ३–२४
	चोरपह्णीमां मळता आहारने प्रहण करवानो विधि	
	अने अविधिथी भिक्षा छेवा अंगेनां प्रायश्चित्तो	
२९११ –१७	३ शून्यग्रामद्वार	८२४–२५
1	खाली पडेला गाममांथी भिक्षा लेवानो विधि अने	
	अविधियी भिक्षा ग्रहणकरतां लागतां प्रायिश्वतो	
	[गाथा २९१२— उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य द्रव्योतुं	
	स्तरूप]	
२९१८–१९	४ 'रुक्खाईण पलोयण' द्वार	८२५–२६
२९२०	५ निन्द्रहार	८२६
, ,	'नन्दि' पदनी व्याख्या	4510 50
२९२१२३	६ द्विविधद्रव्यद्वार	८२७–२८
	आहार-पानविपयक यतनाओ	

गाथा	विषय	पत्र
२९२४–६८	४३ वीजुं रात्रिभक्तसूत्र	८२८-३९
	पूर्वप्रतिछिखित वसति संस्तारकादि सिवाय रात्रिमां	
	वीजुं कशुं ज छेवुं कल्पे निह	
	वीजा रात्रिभक्तसूत्रनी व्याख्या	८२८
२९ २ ४—२६	उत्सर्गथी रात्रिमां संस्तारक, वसति आदि प्रहण	
	करनारने लागतां प्रायिश्वत्तो अने दोपो	८२८
२९२७–३४	रात्रिमां वसति आदि महणने छगता अपवादो	८२९–३१
२९३५–४२	रात्रिमां गीतार्थ निर्यन्थोमाटे वसति ग्रहणनो विधि	८३१–३३
२९४३–५७	अगीतार्थमिश्रित गीतार्थ निर्श्रन्थोए रात्रिमां वसति	
	प्रहण करवानो विथि तेम ज अंधारामां वसतिनी	
	प्रतिलेखनामाटे प्रकाश मंगाववाने लगती यतनाओ	८३३–३६
२९५८–६८	श्रामादिनी बहार बसति श्रहणने छगती यतनाओ,	
	कुछ, गण, संचादिनी रक्षा निमित्ते छागता अपरा-	
	घोनी निर्दोपता अने तेने छगतुं सिंहत्रिकघातक	40.0
	कृतकरण श्रमणतुं उदाहरण	८३६–३९
	20-0	
२९६९—३०००		८३९–४७
	निर्मन्य-निर्मन्यीओने रात्रिसमय अथवा विकाळ	
	वेळाए बन्नादि छेत्रां करुपे नहि	
२९६९	रात्रिवलादिग्रहणप्रकृतनो पूर्व सूत्रसाथे सम्बन्ध	८३९
	रात्रिवस्त्रादिग्रहणसूत्रनी व्याख्या	८३९
२९७०-७३	रात्रिमां वस्त्रादि ब्रहण करवाथी छागतां प्रायिश्वत्तो	
	अने तेने लगतो अपवाद	८३९–४०
२९७४-७५	चौरविषयक संयतमह गृहिमह अने संयतप्रान्त	
	गृहिपान्त पद्नी चतुर्भंगी	680
२९७६-७८	संयत्मद्र-गृहिपान्त चोरद्वारा गृहस्थो छुंदाया होय	
	ह्यारे तेमने वस्त्रादि आपवाने छगती विधि	८४०-४१

१ क्षा टेकाणे मूळमा चस्त्रप्रकृतम् एम छणायुं छे तेने बट्छे रात्रिवस्त्रादिग्रहणप्रकृतम् एम बांचवुं ॥

गाथा	विषय	पत्र
२ ९७९–८१	गृहिभद्र-संयतप्रान्त चोरद्वारा निर्प्रन्थ निर्प्रन्थी पैकी कोई एक छुंटायुं होय तेमणे परस्पर वस्त्र	
	लेवा-देवानो विधि	८४१–४२
२९८२–३०००	श्रमण गृहस्थ, श्रमण श्रमणी, समनोज्ञ अमनोज्ञ के संविप्न असंविप्न ए उभय पक्ष छुंटाया होय त्यारे	
	एक वीजाने वस्त्र आपवा-लेवाने लगतो विधि	८४२–४७
२००१–३७	हरियाहडियाप्रकृत सूत्र ४६	८४८–५६
३००१	हरियाहिडयाप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाथे संवंध	282
	हरियाहडियासूत्रनी व्याख्या	282
३००२–४	अध्वगमननां कारणो	686-88
३००५–३७	अध्वगमननो विधि	८४९–५६
३००५-७	मार्गमां आचार्यने गुप्त राखवानो विधि अने तेनां	
	कारणी	८४९
३००८	संयतप्रान्त-गृहिभद्र आदि चार प्रकारना चोर	८४९
३००९–१३	चोरोए चोरेलां श्रमण-श्रमणीओनां वस्त्रादिने तेमनो	
	भद्रिक सेनाधिपति पाछां मोकलावे अने ते चोरो	• •
	ते वस्त्रादिने ज्यां त्यां नास्त्री जाय तेने राखवा	
	आदिने लगतो विधि	८४९–५०
३०१४–२२	पापी चोरो अथवा चोरसेनापति आचार्यने मारी	
	नाखवा इच्छे त्यारे आचार्यने गुप्त राखवानो विधि	८५१–५२
३०२३–३७	चोरोए चोरेलां वस्रोने पाछां मेळववाने लगतो	
	विस्तृत विधि	८५२–५६
३०३८—३१३८	अध्वगमनप्रकृत सूत्र ४६	८५६–८०
	निर्यन्थ-निर्यन्थीओने रात्रिमां अगर विकाळ वेळाए	-
	अध्वगमन कल्पे निह	
३०३८-३९	अध्वगमनप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	८५६

गांघा	विषय	पश्र
	अध्वगमनसूत्रनी च्याख्या	८५६
३०४०	सामान्य रीते निर्घन्य-निर्घन्यीओमाटे अध्वगम-	
	ननो निपेय होई रात्रिमां एमाटे सविशेष निपेष	८५७
३०४१-४२	अध्वना पंथ अने मार्ग ए वे प्रकार अने 'रात्रि'-	·
	विपयक सान्यताने अंगे वे आदेशो	८५७
इ०४३-५०	१ मार्गद्वार	८५७-५ ९
	रात्रिमां मार्गहर अध्वगमनयी छागता मिध्यात्व,	
	डड्राह, मृल्गुण-उत्तरगुणरूप संयमविरायना,	
	आदि दोपोतुं वर्णन अने तेने छगतो अपवाद	
३०५१-६०	२ पथिद्वार	८५९–६१
ર્ ૦૫૧–૫૨	पन्थना छित्राच्या अने अच्छित्राच्या ए वे प्रकार	649
३०५३–६०	रात्रिमां पंथरूप अध्वनमनयी लागता निध्यात्व,	•
	च्ड्राह, संयमविरायना आदि दोषोनुं स्ररूप अने	
	अध्वोपयोगी उपकरण नहि राखवाथी छागता दोपो	८५९–६१
३०६१–६५	अपवाद्पदे अञ्चगमनने छगतां कारणो अने अघ्वो-	
	पयोगी डपकरणोनो संग्रह तेम ज योग्य सार्थनी	
	तपास करवानो विधि	८६१–६२
३०६६–६८	१ भंडी २ वहिलक ३ भारवह ४ और रिक अने	
	५ कार्पटिक ए पांच प्रकारना सार्थी अने कया	
5	सार्थ साथे निर्प्रन्य-निर्प्रन्यीओए नहुं तेनो विधि	८६२–६३
३०६९–७९	निर्धन्य-निर्धन्याञ्चोए अध्वगमनने योग्य सार्थ केवी	
	छे ? सार्थवाह केनो छे ? आवियात्रिक अर्थान्	
	सार्यना व्यवस्थापको केवा छे ? सार्थ खाद्य पदार्थ	
	वगेरे केवां करियाणां छड्ने जाय छे ? सार्थ रस्तामां रोजना केवडा पडाव करशे ? सार्थ कये वसते	
	राजना कवडा पहाव करशे ! साथ कथ वसत चाली कये वसते पहाव करशे ! इसादि वावतोनी	
•	वणस करवानो विवि	८६३–६६
३०८०	आठ प्रकारना सार्थवाहो अने आठ प्रकारना आति-	~ 4 4 -
4000	यात्रिको-सार्थव्यवस्थापको	८६६
३०८१-८५	अष्ट्रगमनदिपयक ५१२० भांगाओ	\$\$\$ - \$0`
, -,		* 1 3 3 *

		0,1
गाथा	विषय	বন্ধ
३०८६-९१	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओए सार्थवाहनी अनुज्ञा लेवानो	
	विधि अने भिक्षा, भक्तार्थना, वसति, खंडिल	
	आदिने लगती यतनाओनुं खरूप	८६७–६९
३०९२–९८	अध्वगमनोपयोगी अध्वकल्पनुं स्वरूप	८६९-७०
3099-3903	अध्वकल्पनो चपयोग निर्दोष ? के आधाकर्मिक	
	पिण्डादिनुं छेनुं निर्दोप ^१ ए प्रकारनी शिष्यनी	
	शंका अने तेनुं समाधान आदि	८७१–७२
३१०४-३८	अध्वगमनने छगता अशिव, दुर्भिक्ष, राजद्विष्ट	
	आदि व्याघातो—अडचणो अने तेने छगती यतना-	
	ओतुं विस्तृत वर्णन	८७३-८०
३१३९—३२०६	संखडीप्रकृत सूत्र ४७	cc?-?o
	निर्यन्थ-निर्यन्थीओने रात्रिसमये संखडिमां अथवा	
	संखडिने छक्ष्यमां राखी क्यांय जवुं कल्पे नहि	
३१३९	संखडिप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	८८१
	संखडिसूत्रनी व्याख्या	१७०
३१४०-४१	'संखडि'पदनी व्याख्या अने तेमां जनार निर्घन्थ-	
	निर्प्रनथीओने प्रायश्चित्त	668
३१४२–४८	दिवस अने पुरुपसंख्या द्वारा संखिंडना प्रकारो	
	अने तेने छगतां प्रायश्चित्तो	८८१-८३
३१४९-५०	संखिड-जमण ज्यां थतुं तेवां शैलपुरतुं ऋपि-	
	तडाग, भरुचना कुण्डलमेण्ठ व्यन्तरनी यात्रा,	
	प्रभास, अर्बुद्वाचल, प्राचीनवाह आदि पुरातन	
	ऐतिहासिक स्थानोनुं वर्णन	८८३
३१५१-५४	मायाकपट, लोलुनता आदि कारणोने लीधे संख-	
2044	डिमां जनारने लागतां प्रायश्चित्तो	668
३१५५-५७	संखडिवाळा गाम आदिमां जतां रस्तामां लागता	A 213 214
201.4	मिथ्यात्व, उड्डाह, विराधना आदि दोपोनुं खरूप	668-64
३१५८–६७	संखिडवाळा गाममां पहोंच्या पछी वसति, परती- थिंकतर्जना, विरुधर्म, वादित्रशब्द, गीतशब्द,	1
6	नियमानामा रयक्षित्रमा यात्रियसंबर्धे वामसंबर्धे	·

राम्या	<u>বিষয়</u>	দর্গ
	सविकारबीशच्छ निमिन छागवा दोषोतुं वेम ज	_
	क्षावर्यक, साव्याय, प्रतिकेलना, मोजन, भाषा,	
1	र्वाचार, ग्लान विषयक दोषोनुं वर्णन	664-64
३१ <i>६८</i> –७६	वसति, पर्रार्थिकतर्जनादि तेम ज आवश्यक,	
	स्ताध्याय आदि विषयक दोषोना बचाव न्यानर	
	संविडवाळा गाममां वाखल न थतां गामनी यहार	
e	ग्हेबायी लाग्ता दोपोर्नु यर्णन अने तेने अंगे	
	शिष्य-आचार्यर्ना प्रश्नोत्तरी	666-69
३१७७-८२	संन्रहिमां जवार्था कयां कारणमर दोयां छागे अने	
ź "	कयां कारणसर दोषो न छाने तेतुं निरुपण	८९०-९१
३१८३-८९	यायन्तिका, प्रगणिना, संख्रेत्रा, अक्षेत्रा, वाह्या,	
y #	आक्रीणां आदि अनार्चार्ण संखडिओना प्रकारो, वेतुं	
	स्तरप अने तेने छगवां प्रायिश्वनो	८९१-९३
३१९८—३२०६	संविद्यमां जवा योग्य आपवादिक कारणो अने तेने	
ب بر م	छगर्ता जयणाञ्जो-होपर्था वचवाना प्रकारो	८९३–९७
३२०७–३९	विचारभृमी-विहारभृमीप्रकृत	
	_	
	सूत्र ४८–४९	८९७–९०५
इ२०७–२१	सूत्र ४८–४९ ४८ पहेलुं विचारसृमी-विहारसृमी सूत्र	८९७–९०५ ८९७–९००
इ२०७–२१		
इ२०७–२१	४८ पहेलुं विचारसृमी-विहारसृमी सूत्र	
३२०७−२१ -	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारम्मी सूत्र निर्वन्थोने रात्रिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए-	
इ २०७-२१ - ३२०७	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारम्मी सूत्र निर्वन्थोने रात्रिमां विचारमूर्माए के विहारमूर्मीए— साध्यायमूर्माए एकटा जहुं करने नहि पण वीजाने	
-	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारम्मी सूत्र निर्वन्थाने राज्ञिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए— साध्यायम्मीए एक्टा नहुं कस्त्रे नहि पण बीजाने माथे छईने नहुं कस्त्रे	८० <u>,</u> ७-०,००
-	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारभूमी सूत्र निर्वन्थाने राजिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए— स्वाध्यायम्मीए एकटा नतुं करने निह पण बीजाने माणे लईन नतुं करने विचारम्मी-विहारम्मीप्रकृतनो पूर्वमृत्र साथे संबंध पहेला विचारम्मी-विहारस्मी सृत्रनी व्याख्या विचारम्मीना काणिकीस्मी अने उचारस्मी ए वे	८ २,७-२,०० ८९७
३२०७	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारस्मी स्त्र निर्वन्थाने रात्रिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए— साध्यायम्मीए एकछा नहुं करने निह पण बीजाने माथे छईने नहुं करने विचारम्मी-विहारम्मीप्रकृतनो पूर्वस्त्र साथे संबंध पहेछा विचारस्मी-विहारस्मी सृत्रनी व्याख्या विचारस्मीना कार्यिकाम्मी अने उचारस्मी ए वे पक्षारे अने तेने अंगे रात्रिमां एक्टा जनार निर्वन	८ २,७-२,०० ८९७
३२०७	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारस्मी स्त्र निर्यन्थाने रात्रिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए— साध्यायम्मीए एकछा नहुं करने निह पण बीजाने माथे छईने नहुं करने विचारम्मी-विहारम्मीप्रकृतनो पूर्वस्त्र साथे संबंध पहेछा विचारस्मी-विहारस्मी सृत्रनी व्याख्या विचारम्मीना कार्यकीस्मी अने उचारस्मी ए वे प्रकारों अने तेने अंगे रात्रिमां एक्ट्रा जनार निर्यन्थने छागता होषोनं वर्णन तथा तेने छगनो अप-	८ ०,७-०,०० ८९७ ८९७
३२०७	४८ पहेलुं विचारम्मी-विहारस्मी स्त्र निर्वन्थाने रात्रिमां विचारम्मीए के विहारम्मीए— साध्यायम्मीए एकछा नहुं करने निह पण बीजाने माथे छईने नहुं करने विचारम्मी-विहारम्मीप्रकृतनो पूर्वस्त्र साथे संबंध पहेछा विचारस्मी-विहारस्मी सृत्रनी व्याख्या विचारस्मीना कार्यिकाम्मी अने उचारस्मी ए वे पक्षारे अने तेने अंगे रात्रिमां एक्टा जनार निर्वन	८ २,७-२,०० ८९७

गाथा	विष्य	पत्र
३२२२-३ ९	४९ बीजुं विचारभूमी-विहारभूमी सूत्र निर्प्रन्थीने एकलीने रात्रे विचारभूमीए के स्वाध्या- यभूमीए जबुं कल्पे निह पण वे त्रण चार आदि भेगा मळीने जबुं कल्पे	९०१-५
३२२२२४	विचारभूमीए एकली जनार निर्घन्थीने प्रायश्चित्त अने स्नीस्त्रभावनुं वर्णन	९०१
३२२५–३४	निर्मन्थीने योग्य उपाश्रयो अने तेने छगती यत-	
३२३५–३९	नाओ अने अपवाद निर्भन्थीने योग्य विहारमूमीविषयक यतनाओ अने	९० २– ३
	अपवाद	९०४–५
३२४० —८९	आर्यक्षेत्रप्रकृत सूत्र ५०	९०५–२१
•	निर्यन्थ-निर्यन्थीओना विहारयोग्य क्षेत्रनी मर्यादा	**
३२४०-४३	आर्यक्षेत्रप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	९०६–७
	प्रथम उद्देशानां ५० सूत्रो पैकी कयां कयां सूत्रो द्रव्य, क्षेत्र, काळ, भाव साथे संबंध धरावे छे तेने लगतो विभाग	
	आर्यक्षेत्रसूत्रनी व्याख्या	९०७
३ <i>२४४-८</i> ९	आर्यक्षेत्रसूत्रनी विस्तृत व्याख्या	९०७- २१
३२४४-५८	आर्यक्षेत्रविषयक प्रस्तुत सूत्रने अथवा संपूर्ण कल्पा- ध्ययन छेदशास्त्रने निह जाणनार अथवा जाणवा छतां तेने आचारमां निह मूकनार आचार्यनुं अयो- ग्यपणुं अने ते विषे सापनुं,—तेना माथाना अने तेनी पूंछडीना रमुजी संवादरूप,—हष्टान्त अने	
1	तेनो उपनय–घटना	९०७–११
	[गाथा ३२५१—खसद्धमशृगालनं आख्यानक गाथा ३२५२—वानर अने सुगृहिका (सुघरी) चकलीनं संवादात्मक कथानक]	
३२५९-६०	कल्पाध्ययनने नहि जाणनार आचार्यनुं अयोग्य-	~
	पणुं दर्शाववा वैद्यपुत्रतुं उदाहरण अने तेनी घटना	९ १२

३२७५-८९

ज्ञान-दर्शन-चारित्राहिनी रक्षा अने वृद्धि माटे

आर्यक्षेत्रनी बहार विचरवानी आज्ञा अने तेने

९१७–२१

छगर्तुं संप्रतिराज्ञतुं च्छान्त

॥ अर्हम् ॥ पूज्यश्रीभद्रबाहुस्वामिविनिर्मितस्वोपज्ञनिर्युत्तयुपेतं

बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणस्त्रितेन लघुभाष्येण भूषितम् । आचार्यश्रीमलयगिरिपादविरचितयाऽअर्धपीठिकावृत्त्या तपाश्रीक्षेमकीर्त्याः चार्यवरानुसन्धितया शेषसमग्रवृत्त्या समलङ्कृतम् ।

प्रथम उद्देशः ।

[प्रसम्बद्धत-मासकल्पप्रकृतानन्तरवर्त्तर्यशः ।]

॥ बृहत्करपस्त्रतृतियविभागस्य शुद्धिपत्रम् ॥

		100000	
पत्रम्	पहि:	थशुदम्	जु द्म
६४५	१२	सिंगार वज	सिंगारवज
६७८	3.0	पथ	पथा
६८२	र्ष्ट	तर्त्र	तर्त्र
ç 6 =	13	भा॰। [°] ञ	भा॰॥ ७ ° झ
७०९	२८	कर्तरद	कर्तरद
७१०	88	मामेश्वर्याद्	मा मश्रयीद्
७८९	१५	६०२	६०३
७९२	58	किं निमित्तं	किंनिमिचं
535	26	रागो	^c नागो
668	३२	वचति सग्प	वर्षति सरए
९२१	१३	-पेटा यक्त-	-पटामक-

॥ प्रकृतनाम्नां संशोधनम् ॥

पत्रं ६५१ पिङ्कः । अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृतम् इत्यसंस्थाने र ध्या मु खापण गृहादि प्रकृत म् इति हेयम्॥

पत्रं ६५९ पिक्कः १५ ॥ २३२५ ॥ सूत्रम् — इलस्य स्थाने

॥ २३२५॥

॥ रथ्यामुखापणगृहादिप्रकृतं समाप्तम् ॥

अपा चृत द्वा रो पा श्रय प्रकृत म्

इति हैयम्॥

इलस्य स्थाने

सूत्रम्--पत्रं ७३८ पङ्कि. १७ गाथाप ति कुल मध्य वास प्रकृत म् इलस्य स्थाने गृहपति कुल मध्य वास प्रकृत म् ^{इति क्षेयम्}॥ पत्रं ७५० पङ्काः २८ ॥ गाथापतिकुलमध्यवासप्रकृतं समाप्तम् ॥ इलस्य स्थाने गृहपतिकुलमध्यवासप्रकृतं समाप्तम् ॥ इति होयम् ॥ पत्रं ८३९ पिह्नः ७ वस्त्र प्रकृतम् इससस्याने इति ज्ञेयम्॥ रात्रिव स्नादि ग्रहण प्रकृत म् पत्रं ८४७ पद्धि २८ ॥ वस्त्रप्रकृतं समाप्तम्॥ इलस्य स्थाने ॥ रात्रिवस्त्रादिग्रहणप्रकृतं समाप्तम् ॥ पत्रं ८५६ पङ्कि. ११ आ ध्व प्रकृत मृ इलस्य स्थाने अ ध्वगमन प्रकृतम् इति हैयम्॥ पत्र ८८० पिक्क २९ ॥ अध्वप्रकृतं समाप्तम् ॥

॥ अध्वगमनप्रकृतं समासम्॥ इति होयम्॥



॥ णमो त्थु णं गोयमाइगणहराणं तस्तीस-पसीसाण य॥

स्थविर-आर्यभद्रबाहुखामिसन्द्रब्धं खोपज्ञनिर्श्वकिसमेतं

बृहत् कल्पसूत्रम् ।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन लघुभाष्येण भूषितम्। तपाश्रीक्षेमकीर्त्त्याचार्यविहितया वृत्त्या समलङ्कतम्।

प्रथम उद्देशः।

[प्रलम्बप्रकृत-मासकल्पप्रकृतानन्तरवर्त्तर्यदाः ।]

——⇒व गडाप्रकृत मृ⇔

चंयाख्यातानि मासकल्पविषयाणि चत्वार्यपि सूत्राणि । सम्प्रत्यभेतनसूत्रमारभ्यते—>

से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा एगवगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-प्यवेसाए नो कप्पइ निग्गं-थाण य निग्गंथीण य एक्कतओ वत्थए १–१०॥

अथास्य सूत्रस्य कः सम्वन्धः ? इत्याह—

गाम-नगराइएसुं, तेसु उ खेत्तेसु कत्थ वसियव्वं । जत्थ न वसंति समगीमव्भासे निग्गमपहे वा ॥ २१२५ ॥ Б

श्राम-नगरादिषु 'तेषु' पूर्वसूत्रोक्तेषु क्षेत्रेषु कुत्र वस्तव्यम् १ इति चिन्तायामनेन सूत्रेण प्रति-पाद्यते—यत्र 'अभ्यासे' स्वप्रतिश्रयासन्ते 'निर्गमपथे वा' निर्गमद्वारे श्रमण्यो न वसन्ति तत्र वस्तव्यमिति ॥ २१२५ ॥ ⊲ अथ प्रकारान्तरेण सम्बन्धमाह—

> अहवा निग्गंथीओ, दहु ठिया तेसु गाममाईसु । मा पिछेही कोई, तेणिम सुत्तं सम्रुदियं तु ॥ २१२६ ॥

अथवा निर्श्रन्थीस्तेषु श्रामादिषु स्थिता दृष्ट्या मा 'कश्चिद्' आचार्यादिस्तत्रागत्य 'प्रेरयेत्' निष्काशयेदिति' एतेन कारणेनेद सूत्रं 'समुदितं' समायातम् ॥ २१२६ ॥ ⊳

१ < > एतचिह्यान्तर्गतपाठस्थाने भा॰ पुस्तके सूत्रम् इस्रोतावदेव वर्त्तते ॥ २ °णी अन्भा° ता॰ ॥

३ ॰ प्रतिचिह्नान्तर्गतमवतरणं गाथा तद्टीका च भा॰ पुस्तके न विद्यन्ते । चूर्णो चिशेपचूर्णाविष च नेयं गाथा व्याख्याता वरीवृत्यत इति । गाथैषा वृह्नद्वाख्ये वर्त्तते ॥

[.]४ पिह्नेजिहि को॰ ता॰ ॥ ५ °ति । अत इदं सूत्रं ता॰ मो॰ छे॰ ॥

Б

20

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याग्या—अथ श्रामे वा यावद् राजधान्यां वा र्य यावत्करणाद् नगरे वा खेटे वा इत्यादिपद्परिग्रहः । ৮ एकवगटाके एकद्वारके एकनिष्क्रमण-प्रवेशके च क्षेत्र नो करपते निर्श्वन्थाना च निर्शन्थीना च एकतो मिलितानां 'वस्तुम्' अवस्थातुमिति सूर्व-सङ्क्षेपार्थः ॥ विस्तरार्थं तु भाष्यक्रटाह—

> वगडा उ परिक्खेवी, पुन्युत्ती सी उ दृन्वमाईओ । दारं गामस्स मुई, सी चेव य निग्गम-पवेसी ॥ २१२७॥

'वगडा नार्म' श्रामादेः सम्बन्धी परिश्लेषः । 'स तु' स पुनः परिश्लेषः 'द्रव्यादिकः' द्रव्य-क्षेत्र-काल-मावमेदभिन्नः, यथा पूर्वम्—

न्य''पांसाणिहग-महिय-खोड-कडग-कंटिगा भवे दब्ने ।" (गा० ११२३)

10 इत्यादिना ▶ मासकलपप्रकृते उक्तस्त्रेथेवात्रापि द्रष्टच्यः । 'द्वारं नाम' प्रामस्य मुखम् , श्राम-प्रवेश इत्यर्थः । स एव च निर्गमेनोपलक्षितः प्रवेशो निर्गम-प्रवेशोऽभिषीयते ॥ २१२७ ॥ इत्यं सुत्रे व्याख्याते सति शिप्यः प्राह—

> दारस्स वा वि गहणं, कायव्वं अहव निग्गमपहस्स । जह एगट्टा दुन्नि वि, एगयरं वृहि मा दो वि ॥ २१२८ ॥

15 यदि तदेव द्वारं स एवं च निर्गम-प्रवेशस्ततो है आचार्य ! द्वारपदस्य वा प्रहणं कर्त्तव्यम् अथवा निर्गम-प्रवेशपथपदस्य, यदि नाम है अपि पदं अमृ एकार्थे ततः 'एकतरम्' एकद्वारप-दम् एकनिष्क्रमण-प्रवेशपदं वा सुत्रे 'त्रृहि' मणित्यर्थः, मा हे अपि ॥ २१२८ ॥

गवं शिष्येणोक्त सरिराह—

एनवनडेनदारा, एनमणेना अणेन एना य । चरिमो अणेनवनडा, अणेनदारा य भंगो उ ॥ २१२९ ॥

हैह वगडा-द्वारयोश्यत्वारो मङ्गा-, तद्यथा--एका वगडा एकं द्वारम्, यथा पर्वतादिपरिक्षिप्ते

१ ० १० एति चिहान्तर्गत पाटः भा॰ का॰ नात्ति ॥ २ °त्रसमुद्दायार्थः का॰ ॥ ३ °माईसु ता॰ ॥ ४ त० दे० कां॰ निनाऽन्यत्र— °म' चृत्यादिकः परि भा॰ । °म परि ता० मो॰ छे० ॥ ७ ० ० १० एतटन्तर्गतः पाटः भा॰ नात्ति ॥

६ एकतरं बृहि मा हे, तद्यथा—से गामंसि वा जाव रायहाणिसि वा एगवगडाए एगदुवाराए नो कप्पड निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वन्थए; अथवा—से गामंसि
वा जाव रायहाणिसि वा एगवगडाए एगनिक्खमण-प्यंसाए नो कप्पइ निग्गंथाण य
निग्गंथीण य एगयओ वत्थए; एवं च कृते स्वं छघुतरसुपजायते, अथाऽपि स एव
मवति॥ २१२८॥ इत्थं शिष्ये॰ मा॰।

"दारस्स॰ गाया। यदि तटेच द्वारं तटेच च निर्गम-प्रवेशः अतो द्वयोरप्येकार्थलाटेक्तरस्य श्रहणं कर्तव्यम् न द्वयोरिष, क्यं पुनः ?—से गामेषि वा णगरेषि वा [जाव रायहाणिति वा] एगवगडाए एगदुवाराए नो कप्पड तिरगंथीणं; श्रहवा—एगवगडाए एगितम्बमण-प्यवेसाए नो कप्पड निरगंथीणं; एवसुके लघु च सूत्रं भवित स एवार्यः ॥ एवसुके श्राचार्य श्राह—एगवगडे॰ गाहा ॥" इति चूर्णी विदेशपचुर्णी च ॥

७ अत्र चत्वारो महाः, तद्यथा—एकवगडा एकद्वारा १ एकवगडा अनेकद्वारा २

कचिद् श्रामादौ १ । एका वगडा अनेकानि द्वाराणि, यथा प्राकारादिपरिक्षिप्ते चतुर्द्वारनग-रादौ २ । अनेका वगडा एकं द्वारम्, यथा पद्मसरः प्रमृतिपरिक्षिप्ते वहुपाटके श्रामादौ ३ । अनेका वगडा अनेकानि द्वाराणि, यथा पुष्पावकीर्णगृहे श्रामादौ ४, एषः 'चरमः' चतुर्थो भद्गः ॥ २१२९ ॥ यदि नामैवं चत्वारो मङ्गास्ततः प्रस्तुते किमायातम् १ इत्याह—

> तइयं पडुच भंगं, पडमसराईहिं संपरिक्खिते । अन्नोन्नदुवाराण वि, हवेज एगं तु निक्खमणं ॥ २१३० ॥

अत्र भक्तचतुष्टये तृतीयं भक्तं प्रतीत्य एकद्वारग्रहणमेकनिष्क्रमण-प्रवेशग्रहण च सूत्रे कृतम् । कुतः १ इत्याह—पद्मसरसा आदिशब्दाद् गर्तया पर्वतेन वा सम्परिक्षिप्ते ग्रामादौ अन्यान्यद्वार-काणामपि पाटकानामेकमेव निष्क्रमणं भवेत् , तिसृपु दिश्च पद्मसरःप्रभृतिव्याघातसम्भवादेक-स्यामेव दिशि निष्क्रमण-प्रवेशौ भवत इति भावः ॥ २१३०॥ ततः किम् १ इत्याह—

तत्थ वि य होंति दोसा, वीयारगयाण अहव पंथम्मि । संकादीए दोसे, एगवियाराण वोच्छिहिई ॥ २१३१ ॥

'तंत्रापि च' तृतीयमङ्गे अ प्रैथक्पाउँकेषु स्थितानामि, कि पुनः प्रथमभङ्गे द्वितीयमङ्गे वा स्थितानामित्यपिशब्दार्थः, > 'विचारगतानां' सज्ञाम्मौ सम्प्राप्तानाम् अथवा तस्या एव 'पथि' मार्गे गच्छतां 'दोषाः' शङ्कादयो भवन्ति । तांश्च शङ्कादीन् दोषान् 'एकविचाराणाम्' 15 एकसज्ञाम्मीकानां निर्प्रन्थानां निर्प्रन्थीनां च सूरिः स्वयमेव निर्धुक्तिगाथाभिर्यथावसर- मुत्तरत्र (गाथा २१७४-७७) 'वक्ष्यति' भणिष्यति ॥ २१३१॥

तत्र प्रथमभद्गे तावद् दोषानुपदिदशियषुराह—

एगवगडं पडुचा, दोण्ह वि वग्गाण गरिहतो वासो । जइ वसइ जाणओ ऊ, तत्थ उ दोसा इमे होंति ॥ २१३२ ॥

एकवगडम् उपलक्षणत्वादेकद्वारं च क्षेत्रं प्रतीत्य 'द्वयोरिप वर्गयोः' सींधु-साध्वीलक्षणयोरे-कत्र वासः 'गिर्हितः' निन्दितः, न कल्पत इत्यर्थः । यदि सः 'ज्ञायकः' 'संयत्योऽत्र सन्ति' इति जानानस्तत्रागत्य वसति ततः 'इमे' वक्ष्यमाणा दोषा भवन्ति ॥ २१३२ ॥

इदमेव सविशेषमाह—

एगवगडेगदारे, एगयर ठियम्मि जो तिहं ठाइ।

गुरुगा जइ वि य दोसा, न होज पुद्धो तह वि सो उ ॥ २१३३ ॥

एकवगडे एकद्वारे च क्षेत्रे यत्र पूर्वमेकतरः—सयतवर्गः सयतीवर्गो वा खितो वर्तते तत्र

अनेकवगडा एकद्वारा ३ अनेकवगडा अनेकद्वारा ४। एपः 'चरमः' चतुर्थो भद्गः
॥ २१२९ ॥ मा॰ ॥

१ "तत्य वि य॰ गाधा कंठा । अतोऽर्थं च 'एगदुवाराए एगनिक्यमण-पवेसाए' कत सूत्रम् । यथा दोषा भवन्ति तथा निर्युक्तिगाथाभिर्वक्ष्यत्याचार्यः ॥" इति चूर्णो विदेषचूर्णो च ॥

२ <> > एतिचिद्धान्तर्गतः पाठ मा० नास्ति ॥ ३ °टकस्थि ° ता० मो० छे० ॥

४ संयत-संयतील° भा॰ ॥ ५ °तः, प्रतिक्रप्ट इत्यर्थः भा॰ ॥

६ यदि तत्र 'झायकः' जानानः सन् वसति मा०॥ ७ °वस्फुटतरमाह भा०॥

10

20

25

30

'यः' आचार्यादिः प्रवर्तिन्यादिर्वी पश्चादागत्य तिष्ठति तस्य चत्वारो गुरुकाः । यद्यपि च तत्र 'दोपाः' वक्ष्यमाणा न मवेयुः तथाप्यसौ मावतस्तैः स्प्रष्टो मन्तव्यः ॥ २१३३ ॥

तत्र पूर्विस्थितसंयतीवर्गं क्षेत्रमङ्गीकृत्य तावटाह-

सोऊण य समुदाणं, गच्छं आणितु देखले ठाइ। ठायंतगाण गुरुगा, तत्थ वि आणाइणो दोसा ॥ २१३४॥

श्रुत्वा चग्रव्दादवधार्य च 'समुदानं' मैक्षं सुलमप्रायोग्यद्रव्यम् , ततो गच्छमानीय देवकुले उपलक्षणत्वादपरिसन् वा समा-श्रून्यगृहादौ तिष्ठति । तत्र च तिष्ठतामाचार्यादीना चत्वारो गुरूकाः । तत्राप्याज्ञादयो दोपा द्रष्टव्याः ॥ २१३४ ॥ एंनामेव निर्मुक्तिगाथां व्याख्यानयति—

फडुगपइपेसविया, दुविहोवहि-कज्जनिग्गया वा वि । उवसंपिजजिकामा, अतिच्छमाणा व ते साह ॥ २१३५ ॥ संजइभावियखेत्ते, समुदाणेऊण बहुगुणं नचा । संपुत्रमासकप्पं, विंति गणि पुटुऽपुट्ठा वा ॥ २१३६ ॥

केनापि स्पर्छकपतिना स्वसाधवः क्षेत्रप्रख्पेक्षणार्थं प्रेपिताः, यद्वा द्विविधः—श्रीधिकापमिह-कमेटिमन्नो य उपिधस्तस्योत्पादनार्थं कार्येषु वा—कुछ-गण-सङ्घसम्यन्धिषु निर्गताः 'उपसम्पत्तु-15कामा वा' उपसम्पदं जिन्नक्षवः अध्वानं वा अतिकामन्तस्तत्र ते साधवः प्राप्ताः ॥ २१३५ ॥ एते स्पर्द्धकपतिप्रेपिताटयः सयतीभाविते क्षेत्रे 'समुदानिवत्वा' मैक्षं पर्यव्य प्रचुरप्रायोग्य-छामेन बहुगुणं तत् क्षेत्रं ज्ञात्वा गुरूणां समीपमायाताः सम्पूर्णमासकरुपं 'गणिनम्' आचार्यं

पृष्टा अपृष्टा वा ब्रुवते ॥ २१३६ ॥ कि तत् १ इत्याह— तुष्म वि पुण्णो कप्पो, न य खेत्तं पेहियं में जं जोग्गं । जं पि य रुहयं तृष्मं, न तं बहुगुणं जह इमं त ॥ २१३७ ।

जं पि य रुइ्यं तुर्न्भं, न तं वहुगुणं जइ इमं तु ॥ २१३७ ॥
'क्षमाश्रमणा'!' युप्माकमपि मासकल्प' पूर्णो वर्त्तते, न च तत् क्षेत्रं प्रत्युपेक्षितं यद् भवता
'योग्यम्' अनुकूलम्, यदपि च क्षेत्रं युप्माकं 'रुचितम्' अभिपेतं न तद् बहुगुणं यथेद्मसात्पत्युपेक्षितं क्षेत्रम् ॥ २१३७ ॥ परम्—

एगोऽत्थ नवरि दोसो, मं पइ सो वि य न वाहए किंचि। न य सो भावो विज्ञह, अदोसवं जो अनिययस्स ॥ २१३८॥

नवरमेक एवात्र टोपो विद्यते परं सोऽपि 'मा प्रति' मटीयेनाभिपायेण न किश्चिद् वाधते । न चासो 'भावः' पटार्थो जगित विद्यते य 'अनियतस्य' अनिश्चितस्यानुद्यमवनो वा पुरुपस्या-टोपवान् भवति, किन्तु सर्वोऽपि सटोप इति भावः ॥ २१३८ ॥

अहवण किं सिट्ठेणं, सिट्ठे काहिह न वा वि एयं ति । खुडुमुहा संति इहं, जे कीविजा जिणवई पि ॥ २१३९ ॥

अथवा किमसाकमनेनार्थेन 'शिष्टेन' कथितेन कार्यम् १ न किञ्चिदित्यर्थः, यतो यूयं शिष्टे

१ एतदेव व्या° ना॰ ॥ २ केचन खसाधवः केनापि स्पर्धकपतिना क्षेत्र° त० डे॰ का० ॥ ३ °क्यमकःपानला° मा॰ ॥

सित करिप्यथ वा न वा 'एनम्' असादिभिषेतमर्थमिति वयं न विद्यः । कुतः ? इत्याह— 'क्षौद्रमुखाः' मधुमुखा मधुरमापिण इत्यर्थः 'सन्ति' विचन्ते 'इह' असिन् गच्छे भवता वस्त्रमेश्वराः ये जिनवाचमपि 'कोपयेयुः' अन्यथा कुर्युः, आस्तां तावदसादादिवचनमित्यपि-शव्दार्थः ॥ २१३९ ॥

> इइ सपरिहास निर्व्यंधपुच्छिओ वेइ तत्थ समणीओ । वलियपरिग्गहियाओ, होह दढा तत्थ वचामो ॥ २१४० ॥

'इति' एवं सपरिहासं तेनोक्ते आचार्यैः स महता निर्वन्धेन पृष्टः—कथय भद्र ! कीद्दशस्तत्र दोषो विद्यते ? ततः स व्रवीति---तत्र श्रमण्यो विष्ठना-वरुवता आचार्यादिना परिगृहीता विद्यन्ते, परं तथापि यूयं 'दृढा भवत' मा कामपि शङ्कां कुरुध्वम्, अत्रार्थे सर्वमप्यहं भिल-प्यामि, अतस्तत्र त्रजामो वयम् ॥ २१४० ॥ एवं मणतः पायश्चित्तमाह---10

> भिक्ख साहइ सोउं, व भणइ जइ विचमो तहिं मासो। लहुगा गुरुगा वससे, गणिस्स एमेवुवेहाए ॥ २१४१ ॥

यदि मिक्षुरनन्तरोक्त वचनं कथयति श्रुत्वा वा यदि मिक्षुरेव भणति 'वाढम् , त्रजामस्तत्र वयम्' ततो मासल्घु प्रायश्चित्तम् । अथ 'बृषभः' उपाध्याय एवं व्रवीति प्रतिशृणोति वा ततस्तस्य चत्वारो लघवः । 'गणिनः' आचार्यस्येत्यं भणतः प्रतिशृण्वतो वा चत्वारो गुरवः । एवमेवोपे-15 क्षायामपि द्रष्टव्यम् । किमुक्तं भवति १--इत्थं तेनोक्ते 'त्रजामो वयम्' इति वा प्रतिश्चते यदि मिक्षुरुपेक्षां करोति तटा तस्य रुघुमासिकम् , वृपभस्योपेक्षमाणस्य चतुर्रुघु, आचार्यस्योपेक्षां कुर्वाणस्य चतुर्गुरु ॥ २१४१ ॥ अथवा—

> सामत्थण परिवच्छे, गहणे पयभेद पंथ सीमाए। गामे वसहिपवेसे, मासादी भिक्खुणो मूलं ॥ २१४२ ॥

20

भिक्षः 'तत्र गन्तव्यम् ? न वा ?' इति "सामत्थणं" देशीशब्दत्वात् पर्यालोचन करोति मासल्छ । ''परिवच्छि'' ति देशीशब्दोऽयं निर्णयार्थे वर्तते, ततो 'गन्तव्यमेव तत्र' इति निर्णयं करोति मासगुरु । "गहणे" ति निर्णीय यद्यपिषं गृह्णाति ततश्चतुर्रुष्ठ । पद्मेदं कुर्वतश्चतुर्गुरुकम् । पथि त्रजतः पड्छघुकम् । त्रामसीमाया प्राप्तस्य पङ्गरुकम् । (ग्रन्थाग्रम्—३५०० । सर्वग्रन्था-यम्-१५७२०) त्रामं प्राप्तस्य च्छेदः । वसतौ प्रवेश कुर्वतो मूलम् । एवं मिक्षोर्रुषुमासादा-²⁵ रभ्य मूलं यावत् प्रायश्चित्तमुक्तम् ॥ २१४२ ॥

गणि आयरिए सपदं, अहवा वि विसेसिया भवे गुरुगा। भिक्खमाइचउण्हं, जह प्रच्छिस तो सुणसु दोसे ॥ २१४३ ॥

'गणिनः' उपाध्यायस्य मासगुरुकादारभ्य खपदमनवस्थाप्यं यावत्, आचार्यस्य तु चतुर्रुष्ट्र-कादारभ्य स्वपदं पाराञ्चिकं यावत् प्रायिधंत ज्ञेयम् । अथवा भिक्षु-वृपमो-पाध्याया-ऽऽचार्याणां ३० चतुर्णामपि तपः-कालविशेषिताश्चतुर्गुरुकाः । तद्यथा—भिक्षोद्वीभ्यामपि लघवः तपसा कालेन च, वृपभस्य कालेन गुरवस्तपसा रुघवः, उपाध्यायस्य तपसा गुरवः कालेन रुघवः, आचार्यस्य

१ °स्य चतु° भा॰ ता॰ मो॰ छे॰ ॥ २ °तं मन्तव्यम् त॰ डे॰ का॰ ॥

15

नपसा कालेन च द्वाभ्यामपि गुरव' । अथ के पुनन्तत्र तिष्टतां दोगाः १ इति यदि प्रच्छिति तनः 'शृणु' निरासय दोषान् सयाऽभित्रीयमानान् ॥ २१४३ ॥ तानेवाभिषित्युराह—

अनतरस्य निकागा, सब्बेनि अणुष्पिएण वा ते तु । देउछ सम सुन्ने वा, निकायपग्रहे टिया गंतुं ॥ २१८४ ॥

'अन्यतरस्य' सिक्षु-बृषमादिनियोगान् 'सर्वेषां वा' माध्नाम् 'अनुप्रियेण' अनुमत्या 'त' आचा-यान्त्रत्र गत्वा देवक्के वा समायां वा शून्यगृहे वा नियोगन्य—शामस्य सुन्वे—प्रवेश एव स्थिताः ततो निर्श्वन्थानां निर्श्वन्थानां चौमयेषामित परस्यरदर्शनेन वहवा दौषा मवन्ति ॥ २१९९ ॥ अत्र चामिदृष्टान्तं सुर्यो वर्णयन्ति—

> दुविहाँ य होह अग्गी, दृष्यग्गी चेत्र तह य भात्रगी। दृष्यगिगम्मि अगारी, पुग्तिंग य यरं प्रतिवेतो ॥ २१४५॥

द्वित्रश्च मदन्यिमः, त्रध्या—द्रव्याभिश्चेत तया च मात्रामिः । द्रव्यामा चिन्त्यमाने 'अगारी' अतिरित्ति पुरुषो त्रा गृहं प्रदीपयन् यथा सर्वसं दृहति, एवं मार्च्या वा सावुर्वा सर्जावगृहं मदनैमात्रामिना प्रदीपयन् चारित्रमर्वन्वं दृहतीनि निर्मृक्तिगाथासङ्क्षेपार्थः ॥ २१७५ ॥ अथ विस्तरार्थमिनिल्रुर्द्वव्यामिमाह—

तत्य ग्रुण होइ दन्ये, डहणादीणेगलक्खणो अग्नी । नामोदयपचइयं, दिप्यइ देहं समासञ्ज ॥ २१४६ ॥

'तत्र' तयोईव्याग्नि-भात्राध्योर्भव्ये द्रव्याग्निः पुनर्यं मवति—यः तत्तु 'दह्नाधनेक्व्यन् णोऽग्निः' दहनं—मर्साकरणं तत्त्व्यणः, आदिश्वव्याद् पचन-प्रकाशनं गरिप्रहः, 'देहन्' इन्यनं काष्टादिकं 'समासाद्य' प्राप्य 'नामोदयप्रव्ययम' उप्णास्पर्शादिनामकर्मोदयाद् दीप्यते स द्रव्या-20 ग्निरुच्यने ॥ २१२६ ॥ किमर्थं पुनर्यं द्रव्याग्निः ? इति चेद् व्यत बाह—

द्व्याह्मनिकरिसा, उपानी ताणि चेव हहमाणी । द्व्यरिग ति पवृच्ह, व्यादिममाबाह्जुत्ती वि ॥ २१४७ ॥

द्रव्यम्-ऊर्ज्वायोज्यवस्थितं अरणिकाष्ट तस्य आदिश्रच्यात् पुरुपत्रयनादेश्च यः सन्निकर्षः— समायोगस्त्रमाद् उत्पन्नः 'तान्येव' काष्टादानि द्रच्याणि दहन् यद्यारि श्रादिनेन—आदियक-१४ छत्रणेन मावेन अधिनामकर्मेदियेनेत्यर्थः, आदिश्चच्यात् पारिणामिकादिमावेन च युक्तो वर्तते नथापि द्रव्याग्निः प्रोच्यतं, 'द्रच्यादुत्यन्ना द्रच्याणां वा दाहकोऽभिद्रच्याग्निः' इति व्युत्पित्तमा-श्रयणात् ॥ २११७ ॥ स पुनः कर्य दीष्यते है इत्याह—

मो पुण इंघणमासञ्ज दिप्पती सींदती य तदमावा। नाणत्तं पि य छमए, इंघण-परिमाणतो चेव ॥ २१४८॥

र ब्नबहिना मा॰ ॥ २ बित सङ्कर मा॰॥ ३ ता॰ मो॰ छे॰ विनादच्यत्र—ब्याप्ति तायद् विवृ-णीति द॰ टे॰ हां॰। ब्याप्ति व्याप्यानयित मा॰॥ ४ ब्नलक्षणस्त्र, दि॰ द॰ टे॰ हां॰॥ ५ "यद्यक्षंद्रिकेन भादेन हुक्तः स मुनग्तप्रसमक्षेतिस्यद् इव्यार्थमां शहरो मनति।" इत चूर्णा विद्यापचूर्णी च ॥ ६ स्यादिमाः-प्रथम सीद्यिकलक्ष्यणो यो सावस्तेन स्विति मा॰॥

20

'स पुनः' द्रव्यािः 'इन्धनं' तृण-काष्ठादिकमासाद्य दीप्यते 'सीदति च' विनश्यित 'तद-भावाद्' इन्धनाभावात् । 'नानात्वं' विशेषस्तदिष च लभते इन्धनतः परिमाणतश्च । तत्रेन्धनतो यथा—नृणािः तुषािः काष्ठािशिरत्यादि । परिमाणतो यथा—महति तृणादािवन्धने महान् भवति, अल्पे चेन्धने खल्प इति ॥ २१४८ ॥ उक्तो द्रव्यािः । अथ भावािं व्याचि

भाविम्म होइ वेदो, इत्तो तिविहो नपुंसगादीओ । जइ तासि तयं अत्थी, किं पुण तासि तयं नत्थी ॥ २१४९ ॥

'भावे' भावे। श्रिवेंदाख्य इत ऊर्ट्स वक्तव्यो भवति । स च वेदिखविधो नपुंसकादिको ज्ञातव्यः । अत्र परः प्राह—यदि 'तासां' संयतीनां 'तकत्' स्नीवेदादिरूपं मोहनीयं स्यात् तिह युष्मदुक्तोऽशिदृष्टान्तोऽपि सफलः स्यात् 'किं पुनः' परं तासां 'तकत्' मोहनीय नाित्त, अतः कुतस्तासां भावाशेः सम्भवो भवेत् १ इति भावः । एतदुत्तरत्र (गा० २१५४) भावयिष्यते 10 ॥ २१४९ ॥ अथानन्तरोक्तमेव भावाशिस्तरूपं स्पष्टयति—

उदयं पत्तो वेदो, भावग्गी होइ तदुवओगेणं। भावो चरित्तमादी, तं डहई तेण भावग्गी॥ २१५०॥

'वेदः' स्त्रीवेदादिरुद्यं प्राप्तः सैन् तस्य-स्त्रीवेदादेः सम्बन्धी य उपयोगः—पुरुषाभिलाषादिल-क्षणस्तेन हेतुमृतेन भावाधिर्भवति । कुतः ? इत्याह—भावश्चारित्रादिकः परिणामः 'त' भावं 15 येन कारणेन दहति तेन भावाधिरुच्यते, 'भावस्य दाहकोऽधिर्भावाधिः' इति व्युत्पत्तेः ॥ २१५०॥ कथ पुनर्दहति ? इति चेद् उच्यते—

> जह वा सहीणरयणे, भवणे कासइ पमार्यं-दप्पेणं। डज्झंति समादित्ते, अणिच्छमाणस्स वि वस्रणि ॥ २१५१॥ इय संदंसण-संभासणेहिं संदीविओ मयणवण्ही।

> वंभादीगुणरयणे, डहइ अणिच्छस्स वि पमाया ॥ २१५२ ॥

यथा वा 'साधीनरते' पद्मरागादिवहुरत्नकिते भवने प्रमादेन दर्पेण वा 'समादीप्ते' प्रज्वा-िलते सित 'कस्येचिद्' इभ्यादेरिनच्छतोऽपि 'वसूनि' रत्नानि दह्मन्ते, "इय" एवं सन्दर्शनम्— अवलोकनं सम्भाषणं—िमथः कथा ताभ्यां 'सन्दीपितः' प्रज्वालितो मटनविह्तरिनच्छतोऽपि साधु-साध्वीजनस्य 'ब्रह्मादिगुणरत्नानि' ब्रह्मचर्य-तपः-संयमप्रभृतयो ये गुणास्त एव दौर्गत्यदुःखाप- 25 हारितया रत्नानि तानि प्रमादाद् 'दहित' मससात् करोति ॥ २१५१ ॥ २१५२ ॥

अमुमेवार्थ द्रवयति-

सुर्विखधण-वाउवलाऽभिदीवितो दिप्पतेऽहियं वण्ही ।

१ °श्ंिं निर्युक्तिगाथया तावद् व्या° त॰ है॰ का॰ ॥ २ °वाशिरित ऊर्क्क वक्तव्यो भवति । स च भावाशिस्त्रिविधो नपुंसकादिको वेदो ज्ञा भा॰ ॥ ३ सन् तहुपयोगेन भावाशिर्भि वित, तस्य-स्त्रीवेदादेः सम्बन्धी य उपयोगः-पुरुपाभिलापादिलक्षणः तेन हेतुभूतेने- त्यर्थः । कुतः पुनर्यं भावाशिव्यपदेशं लभते १ इत्याह—भावश्चारि भा॰ ॥ ४ °यदोसेणं भा॰ ॥ ५ °स्याप्यनिच्छ भा॰ मो॰ हे॰ ॥ ६ ब्रह्माद्यः-ब्रह्म भा॰ ॥

30

दिद्धिंधण-रागानिलसमीरितो ईय मावन्गी ॥ २१५३ ॥

गुप्केन्यनेन वायुवलेन वाऽमिदीपितो यथा विहरिवकं दीप्यते "ईय" एवं दृष्टिरूपं यदिन्यनं यश्च रागरूपोऽनिरु:-वायुक्ताम्यां समीरितः-उद्दीपितो भृगं भावाञ्चरपि दीप्यते ॥ २१५३॥ अथ "किं पुण तासिं तयं नित्य" (गा० २१४९) ति पढं भावयन् शिप्येण प्रश्नं कारयित--

खुक्खमरसुण्हमनिकामभोइणं देहभृसविरयाणं । सञ्ज्ञाय-पेहमादिसु, वावारेसुं कुओ मोहो ॥ २१५४ ॥

रुझ-निःश्रेहम् "अरसोण्हं" इति नञ् प्रत्येकमिसम्बध्यते अरसं-हिंगादिभिरसंस्कृतम् अनुष्णं-शीतलम् अनिकामं-परिमितं मक्तं मोक्तुं शीलमेषां ते रुझा-ऽरसा-ऽनुष्णा-ऽनिकाममो-जिनस्तेषाम्, मकारावलाकाणिको, तथा देहम्पायाः-स्नानादिन्द्रपाया विरतानां-प्रतिनिवृत्तानाम्, 10साध्यायः-वाचनादिन्द्रपः प्रेक्षा-प्रस्तुपेक्षणा तयोः आदिशब्दाद् वैयावृत्त्यादिषु च व्यापारेषु व्याप्रतानां साधु-साध्वीजनानां कुतः 'मोहः' पुरुषवदाद्युद्यस्तपः सम्मवति ?॥ २१५४॥ अत्र प्रतिवचनमाह—

> नियणाइलुणणमहण, वावारे वहुविहे दिया काउं। मुक्त मुहिया वि रित्तं, किसीवला किं न मोहंति॥ २१५५॥

15 "नियणं" ति निदानं निह्णिणमित्यर्थः, आदिशस्त्र उत्तरत्र योक्ष्यते, स्वनं मर्दनं च प्रती-तम्, एवमादीन् बहुविधान् स्थापारान् दिवा कृत्वा 'शुष्काः' स्नानाद्यमावेन शीतोष्णादिमिश्च परिम्झानाः "मुद्दिआ" श्रान्ता एवंत्रिधा अपि कृषीवलाः 'किम्' इति परिप्रश्ने भवानेवात्र पृच्छ्यते कथय किं ते रात्रा 'न मुह्यन्ति' न मोहमुपगच्छन्ति ? मुह्यन्त्येवेति मावः ॥ २१५५॥

> जइ तात्र तेसि मोहो, उप्पञ्जइ पेसणेहिं सहियाणं । अव्यावारमुहीणं, न मविस्सइ किह णु विरयाणं ॥ २१५६ ॥

व्यावारसहाण, न मावस्सहाकहण विरयण ॥ २१५६॥ यदि तावत् 'तेषा' कृषीवळानां 'प्रेषणेः' ज्यापारः सहितानां मोह उत्पद्यते ततः 'विरताना' संयतानाम् 'अज्यापारसुखिनां' तथाविष्ज्यापाररहिततया सुखिनां सतां कथं नु नाम न मोहो-द्यो मविष्यति १॥ २१५६॥ ⊲ अथात्रव परामिपायमाशद्वय परिहरति—⊳

कोई तत्थ भणिजा, उप्पन्ने रंमिडं समत्थो ति । सो उ पभृ न वि होई, पुरिसो व घरं पहीवंतो ॥ २१५७ ॥

25 सा उ पमृ न वि हाइ, प्रारक्षा व वर पर्लावता ॥ २१९७ ॥ कश्चित् 'तत्र' अनन्तरोक्तऽर्थे तृयात्—यद्यपि मोह उत्पत्स्वते तथाप्यहसुरानेऽपि मोहे आत्मानं निरोद्धं समर्थ इति । गुरुराह—स पुनरेवं वक्ता ताहरोऽवसरे निरोद्धं 'प्रसु.' समर्थो न मवति, पुरुष इव गृहं प्रदाष्यम् ॥ २१५७ ॥ अधैनामेव निर्युक्तिगाथां व्याख्यानयति—

कामं अखीणवेदाण होइ उदओ वहा वदह तुन्मे । तं पुण विणाम् उदयं, मात्रण-तत्र-नाणवात्रारा ॥ २१५८ ॥ उप्यत्तिकारणाणं, सन्मात्रम्मि वि वहा कसायाणं ।

१ °प्यते 'इति' ए° भा॰ ॥ २ ४ ० एनधिदान्तर्गत. पाठः भा॰ नान्ति ॥ ३ °यन्निति ॥ २१५७ ॥ अस्या एव पूर्वाई व्या° मा॰ ॥

25

न हु निग्गहो न सेओ, एमेव इमं पि पासामो ॥ २१५९ ॥

शिष्यः प्राह—'कामम्' अवधारितमसाभिर्यथा यूयं वद्य अक्षीणवेदानां मोहस्योदयो भवति, परं 'तं पुनः' मोहोदयं जयामो वय 'भावना-तपो-ज्ञानव्यापारात्' भावना-स्त्रीकडेवरसत-त्त्वचिन्तनादिका तपः-चतुर्थादिकम् ज्ञानव्यापारः-सूत्रार्थचिन्तनात्मकः, अपि च---''चउहि ठाणेहि कोहुप्पत्ती सिया, तजहा-खेतं पडुच वत्यु पडुच सरीरं पडुच उवहि पडुच" इत्या-5 दिना स्थानाङ्गादौ (४ स्थाने पत्र १९३-१) प्रज्ञप्तानां कषायोत्पत्तिकारणाना क्षेत्र-वास्त्वा-दीनां सद्भावेऽपि यथा कपायाणां नियहो न न श्रेयान् अपि तु श्रेयानेव, एवमेव 'इदमपि' प्रस्तुतं पश्यामः, मोहोदयकारणानां सद्भावेऽपि तिच्चग्रहं करिष्याम इति भावः ॥ २१५८ ॥ ं२१५९ ॥ अत्र सूरिः परिहारमाह—

> पहरण-जाणसमग्गो, सावरणो वि हु छलिखई जोहो। वालेण य न छलिज्ञह, ओसहहत्थों वि किं गाहो ॥ २१६० ॥

प्रहरणं-खङ्गादि यानं-हस्त्यादि ताभ्यां समग्रः-सम्पूर्णः तथा 'सावरणः' सन्नाहसहितः अपिशन्दाद् युद्धकौशलादिगुणयुक्तोऽपि यथा योधः समरशिरसि प्रविष्टः प्रयतं कुर्वाणोऽपि योधान्तरेण 'छरुयते' छलं लञ्ध्वा हन्यते इत्यर्थः, यद्वा 'प्राहः' सर्पेप्राहको गारुडिकादिः औषधहस्तोऽपि कि 'व्यालेन' दुष्टसर्पेण न च्छल्यते ट छल्यत एवं, एवं यद्यपि भवान् 15 भावना-तपो-ज्ञानव्यापारयुक्तस्तथापि स्त्रीणां सन्दर्शनादि कुर्वन् मोहोदयेन च्छल्यत एवेति ॥ २१६०॥ अपि च—

उदगवडे वि करगए, किमोगमादीवितं न उजलइ। अइइद्धो वि न सकइ, विनिन्ववेउं कुडजलेणं ॥ २१६१ ॥

उदकघटे 'करगतेऽपि' हस्तस्थितेऽपि किम् 'ओकः' गृहम् 'आदीपित' प्रज्वालितं सद् 20 'नोज्ज्वलति' न दीप्यते ?, अथासी 'अतीद्धः' अतिदीप्तोऽग्निस्ततः कुटजलेन प्रक्षिप्तेनापि नासौ निर्वापयितुं शक्यते, एवं यद्यपि ज्ञानन्यापारादिक जलघटकल्पं स्वाधीन तथापि मोहोदयायिना मज्विलतं चारित्रगृहं कि न पदीप्यते ?, अतिपवलो वा मोहो यद्युदीयेत ततो घटजलकरपेन बहुनाऽपि ज्ञानव्यापारादिना नाऽसौ विध्यापयितु शक्य इति ॥ २१६१ ॥ किञ्च-

> रीढासंपत्ती वि हु, न खमा संदेहियम्मि अत्थिमा । नायकए पुण अत्थे, जा वि विवत्ती स निद्दोसा ॥ २१६२ ॥

संयतीक्षेत्रे गतानां मोहोद्यनिरोधादिको यः सन्देहितः-सगयासपदीभूतोऽर्थस्तसिन् रीढया-यदच्छया घुणाक्षरन्यायेन सम्पत्तिरपि 'न क्षमा' न श्रेयसी । यः पुनः साध्वीरहितक्षेत्रगमना-दिकोऽर्थः पूर्व ज्ञातः-निर्दोपत्वेन निर्णातरततः कृतः-कर्त्तुमारव्धः ज्ञातकृतस्तस्मिन् याऽपि कुतोऽपि वैगुण्यतो विपत्तिर्भवति सा अपि निर्दोपा मन्तन्या ॥ २१६२ ॥ अथ परः प्राह—30

. दूरेण संजईओ, अस्संजइआहि उवहिमाहारो । जइ मेलणाएँ दोसो, तम्हा रन्निम वसियव्वं ॥ २१६३ ॥

१ °वेति भावः, एवं मा॰॥ २ °न् संशयास्पदीभृतेऽधं ऋयमाणे रीढ° भा०॥ बु० ७९

संयत्यः 'दूरेण' पृथेग्वसत्यादे। वसन्त्यः परिहर्तुं शक्यन्ते, यास्तु 'असंयत्यः' अविरतिकात्ताः परिहर्तुमशक्याः, यतत्ताम्य उपविराहारश्च लम्यते, अतो यदि 'मील्नायाः' संसर्गत्य दोषः सयतीक्षेत्रे तिष्टतां मवति ततः साञ्चमिररण्ये गत्ता वत्तव्यम् ॥ २१६३ ॥ स्तिराह—

रने वि तिरिक्खीतो, परिन्न दोसा असंतर्ता यावि । लब्मीय क्लवालो, गुणमगुणं किं व सगडाली ॥ २१६४॥

अरण्येऽपि वसतां तरश्चित्रंथो हरिर्णाप्रमृतयो दोपानुपजनयन्ति । तथा 'परिज्ञा' मक्तप्रत्या-स्थानं तहोपाश्च भवन्ति । तथाहि—तत्राहागद्यभात्राद् मक्तप्रत्यास्थानं कर्षस्थम्, तज्ञ प्रथमत एव कर्तुं न युज्यते, विरतिसहितस्य जीवितस्य दुप्पापत्यात्; न च तदानी तत् कर्तु शक्यते, कुर्वतामप्याचिध्यानसम्भवात् कुदेवत्वगमन-प्रेत्यवाधिदुर्लभत्यादयो दोषाः। 'असन्ततिश्च' 10प्रत्राजनाद्यमावात्र ज्ञिष्य-प्रशिष्यादिमन्तान उपज्ञायते, यहा—''असंतर्द्रए'' जिं सर्वयेव स्नी-णामसत्तायां वनवासमङ्गीकृत्य यत् किल ब्रह्मवर्यं घायते तत्र बहुक्रलं मवति,

> कस्सइ विवित्तवासे, विराहणा दुन्नए अभेदो वा । जह सगडालि मणो वा, तह विद्धो किं न रुमिसु ॥ २१६५ ॥

कत्यचिद् 'विविक्तं' की पशु-पण्डकविरहितेऽपि वासे वसतः प्रवल्वेदोद्याद् विराधना ब्रह्मकर्यस्य मन्ति, कत्यापि पुनः 'दुनियं' क्यादिसंनक्तप्रतिश्रयवासेऽपि वेदमोहनीयक्षयोपशम-20प्रवल्त्वेन 'अनेदः' न ब्रह्मक्यविलोपो मन्नि । वाश्व्यः प्रकारान्तरचोतनार्थः । आह् यचेवं वर्हि कमोद्य-श्रय-अयोपश्चमादिरेव प्रमाणं न कीनसर्गादिः नवन् कर्मणानुदैय-क्षय-क्षयोपश-माद्योऽपि प्रायत्यणविषद्वन्न-क्षेत्रादिसहकारिकारणसाचित्र्यादेव तथा तथा समुपनायन्ते नान्यथा । यथा वा 'शाकटालिः' स्थूलमद्रस्तामी स्वकीयं मनः कीसंसर्गेऽपि निरुद्धवान् वथा 'द्वितीयः' सिंहगुहावासी किं न निरुद्धवान् विन खीनसर्गादिकमप्रमाणं गीयते ॥ २१६५॥

25 यत्रश्चेवमतः—

होज न ना नि पसुर्त्तं, दोसाययणेमु बहुमाणस्स । चृयफलदोसदरिसी, चृयच्छायं पि वजेइ ॥ २१६६ ॥

१ °यब्द्धेत्राद्रीं मा॰ त॰ दे॰ बां॰॥ २ 'स्त्रियो भवन्ति । तथा तवाहाराद्यमायात् 'परिद्वा' मकप्रत्याच्यानं कर्त्ते में॰ हे॰॥ ३ न्ति. अरण्ये हि वसतामाहाराद्यमावाद् मकमेव प्रत्याख्यातव्यम्. तच्च मा॰॥ ४ त्ति 'असत्तायां सवेथेव स्त्रीणामसद्भावे वन' मा॰॥ ५ ४ ० एतविहगत. पाठः मा॰ गाति॥ ६ °चनप्रामाण्येन सवेपत्वात् त० हे॰ क्षं॰॥ ७ इद्मेवाह मा॰॥ ८ °द्य-अयोपशमावेव प्र॰ मा॰॥ ९ °द्य-अयोपशमावेव प्र॰ मा॰॥ ९ °द्य-अयोपशमावेव प्र॰ मा॰॥ ९ °द्य-अयोपशमावेव प्र॰ मा॰॥

भवेद् वा न वा 'दोषायतनेषु' ब्रह्मविराधनादिदोषस्थानेषु वर्त्तमानस्य मनो निरोद्धं 'प्रभुत्वं' सामर्थ्यं तथापि दोषायतनानि दूरतः परिहरणीयानि ।

दृष्टान्तश्चात्र चृतफलदोपदर्शी चृतच्छायामपि वर्जयति---

जहा एगो रायपुत्तो अंवगिषओ । तस्स अंवगिहि अइखइएहिं वाही उट्टिओ । सो वेज्जेहि याप्याकृतः अंवगा य पिंडिसिद्धा । सो अन्नया पारिद्धं गओ अंवच्छायाए वीसमइ । अमचेण 5 पुण पिंडिसिद्धो तह वि न ठाइ । ताहे तेण वारिज्जंतेण वि तं फरुं गिह्यं । भणेइ अ—मए न खाइयवं, को दोसो गिहए १ ति । तेण पसगदोसेण खइय विणहो य । एस दिहंतो ।

अयमत्थोवणओ—जहा तस्स रायपुत्तस्स वेज्जेहि अंवगा अपत्थ त्ति काउ पिडिसिद्धा तहा भगवया वि साह्रणं अञ्बंभपिडिसेवा इह परत्थ य अपत्थ त्ति काउ पिडिसिद्धा, तप्पिरिहरणो-वाओ अ 'इत्थी-पिसु-पिडगससत्ताए वसहीए संजर्डिलेते य न ठायव' इचाई उवइद्दो । जो तेसु 10 ठाइ सो नियमा पसगदोसेण विगस्सइ चरित्तरज्जस्स य अणाभागी भवइ, जहा सो रायपुत्तो ।

अन्नो पसत्थो रायपुत्तो सो चूतफल्दोसदिरसी चूयच्छायं पि परिहरंतो इहलोइयाण काम-मोगाणं आभागी जातो, एवं जो साह्र तित्थयरपिडसिद्धइत्थिपिडसेवादोसदिरसी इत्थिससत्ताओं वसहीओ सर्जाईलेत्त च परिहरइ सो नियमा इह परत्थ य सबसुक्खाण आभागी भवइ ति ॥ २१६६ ॥ अथ "दूरेण सर्जाईओ" (गा० २१६३) इत्यादि यत् परेणाक्षिसं तदेतत् 15 परिजिहीर्भुराह—

> इत्थीणं परिवाडी, कायन्वा होइ आणुपुन्त्रीए । परिवाडीए गमणं, दोसा य सपवखग्रुप्पन्ना ॥ २१६७ ॥

'स्नीणाम्' एकखुरादीना 'परिपाटिः' पद्धतिरानुपूर्व्या कर्त्तव्या भवति, प्ररूपणीयेत्यर्थः । ततः 'परिपाट्या' यथा तासु गमन भवति तथा वाच्यम् । दोषाश्च स्वपक्षत उत्पन्ना भवन्तीति 20 वक्तव्यमिति ⊲ निर्युक्तिगाथा ⊳सह्लेपार्थः ॥ २१६७ ॥ अथैनामेव गाथां व्याख्यानयति—

एगखुर-दुखुर-गंडी-सणप्पइत्थीसु चेव परिवाडी । वद्धाण चरंतीणं, जत्थ भवे वग्गवग्गेसु ॥ २१६८ ॥ तत्थऽन्नतमो सुको, सजाइमेव परिधावई पुरिसो । पासगए वि विवक्खे, चरइ सपक्खं अवेदखंतो ॥ २१६९ ॥

पासगए वि विवस्खे, चरइ सपस्ख अवद्युता ॥ २१६५ ॥ 25 एकखुरा वहवादयः, द्विखुरा गो-मिह्ण्यादयः, गण्डीपदा हित्तिन्यादयः, सनस्वपदाः शुनी-प्रभृतयः, एतास्च पष्ठी-सप्तम्योर्थ प्रत्यमेदात् एतासा स्त्रीणां 'वर्गवर्गेषु' पृथकपृथक्सजातीयसम्-हरूपेषु वद्धानां वा चरन्तीना वा यत्र कापि कुटी-वाटकादौ परिपाटीभेवेत् तत्राऽश्व-गो-हित्ति-शुनकादीनामन्यतमः पुरुषो मुक्तः सन् दूरस्थितामि 'स्वजातिमेव' वहवादिकां परिधावति, 'विपक्षे तु' विजातीये गवादिपक्षे 'पार्श्वगतेऽपि' प्रत्यासन्नस्थितेऽपि स्वपक्षमपेक्षमाणश्चरति, न 30 पुनर्विपक्षमनुधावतीति भावः, एव श्रमणोऽपि स्वपक्ष इति कृत्वा विश्वस्तः सन् संयतीभिः सह सर्सर्ग करोति, न पुनर्विरतिकासु ॥ २१६८ ॥ २१६९ ॥ यतः—

१ ताहे णेण वा° भा० ॥ २ ॰ ० एतदन्तर्गत पाठ भा० नास्ति ॥ ३ नाविर° भा० ॥

आगंतुयद्व्यविभृतियं च ओराहियं सरीरं तु । असमंजमो उ तम्हाऽगारिन्यिनमागमो जङ्गो ॥ २१७० ॥

श्रीगन्तुकद्रञ्येः—बन्ना-ऽऽमग्णादिमिर्विमृषिनम्—अउड्गतं चग्रव्यादुद्वर्त्तन-स्नानादिपरिकर्म-युक्तं च यसादगारकीणामोदारिकं गरीरं तसाद् 'असमञ्जसः' विसद्दग्रसामिः सह 'यतः' 5सादोर्मेलीमसग्ररीरस्य मनागमन (समागमः—) मीलकः ॥ २१७० ॥ अपि च—

अविभृतिओ नवस्ती, निक्कामोऽकिंचणा मयसमाणो । इयऽगारीसुं समणे, लजा मय मंथवा न रहा ॥ २१७१ ॥

'अविस्पितः' विस्पारहित एषः, तथा 'तपर्क्षां तप श्रीणदेहः, 'निष्कामः' शुमरस-गन्धाद्यपमागरहितः, 'श्रिकञ्चनः' निष्परिष्रहः. ततः 'सृतममानः' शवकरम एषः, 'इति' एव-10मगारीणां श्रमणंऽवज्ञा सवति । श्रमणस्य पुनरगारीमिः सह विषक्षतया या लज्ञा यञ्चागारिस्यो सर्य तेन ताभिः सह न 'संस्तवः' परिचयः न वा 'रहः' एकान्त इति ॥ २१०१ ॥

सपके तु कथम् ? इत्याह—

निव्मयया य सिणहो, बीसत्यत्तं परोप्पर निरोहो । दाणकरणं पि जुजह, लग्गह तत्तं च तत्तं च ॥ २१७२ ॥

15 संयतस्य संयत्यां 'निर्मयना' न भयमुत्ययतं, केहश्रोमयोरिष मनति सपशस्तात्, 'निश्च-स्ततं' च विश्वासः परस्परगृह्यगोपनित्ययः प्रत्यय इन्यर्थः, 'परस्परन्' उभयोरिष 'निरोधः' वितिनप्रहात्मकः, तथा 'दानक्रणपि' वन्त्र-पात्रादिदानञ्ज्ञणं संयतीं मित तस्य 'युज्यते' सम्यवतीत्यर्थः, ततो यथा ततं च तमं च छोहं 'छगिति' नम्बच्यते तथा संयती-सयते द्वाविष निरोधसन्तते। रहो छ्ट्या छगत इति ॥ २१७२ ॥ आह दृष्यसात्रत्य द्वापाः, 20 परमते कुत्र नम्भवन्ति ! इति निरुष्यतान्, उच्यते—

> वीयार-भिक्याचरिया-विहार-जह-वेहवंदणादीसं । कंजेमुं मंपडिनाण होनि दोमा इमे दिस्म ॥ २१७३ ॥

ण्क्रवगडे एक्क्टारे च त्रामादे। विचारमृमि-भिक्षाचर्या-विहारमृमि-यतिचेन्यवन्द्रनादिषु कार्येषु प्रतिश्रयात्रिगीतानां रच्यादो 'सम्पतिनाना' मिलिनानामन्योऽन्यं हट्टा एते दोषा भवन्ति ॥२१७३॥

दृगम्मि दिद्धि लहुओं, अष्रुगी अष्रुगि नि चउछह होंति । किह्कम्मीम्म य गुरुगा, मिच्छन पसल्लणा ग्रेसे ॥ २१७४ ॥

यैदि दृरेऽपि भंयतः नंयत्या दृष्टः नंयती वा नयतर्न तदा लघुको मासः । प्रत्यासन्तपदेदो

२ द्यरिरमन्मारमसिय प्रतिभाति तस्मार् १० दे० सं० ॥ ३ दुरे संयतः संयत्मा संयती द्या संयतेन यदि रहो रहा चा नदा ल॰ मा० ॥ ४ °न यदि रहा तदा त० दे० सा० ॥

१ आगन्तुक्रद्रव्यानि-यन्त्रा-ऽऽमरणादीनि तेर्विम्पितम्-अस्तृतम् । चशन्तस्य व्यव-हितसस्यन्यत्याद् 'श्रीद्याग्कं च' उदारक्षं न्नात भावनादिपाग्नमणा चन्नातन्त्रपातिशय-मित्यर्थः । एवंतियमगारक्षाणां यतः भागरं तम्माद् 'असमञ्जमः' विनद्दशस्तामिः सह 'यतेः' सायोः समागमः ५ २६७० ॥ सार ॥

25

समायातं संयतं सम्यगुपरुक्ष्य संयती यद्यमुकोऽयं ज्येष्ठार्य इति त्रृते, सयतो वा सयतीमुपरुक्ष्य अमुका संयतीति त्रवीति तदा चत्वारो रुघवः । अथ सा 'कृतिकर्म' वन्दनं करोति तदा चत्वारो गुरुकाः। ये चाभिनवधर्माणस्ते तथा वन्दमानानुपरुभ्य वक्ष्यमाणनीत्या मिथ्यात्वं गच्छेयुः। 'रोषे' मोजिका-घाटिकादौ शङ्कां कुर्वाणे सति 'प्रसजना' प्रायिश्चत्तस्य वृद्धिर्द्रप्टव्या॥ २१७४॥

तामेवाह—

दिहे संका भोइय, घाडिय नाई य गाम वहिया य । चत्तारि छ च लहु गुरु, छेदो मूलं तह दुगं च ॥ २१७५ ॥

संयतस्य सयत्या कृतिकर्म कियमाण केनचिद् दृष्टम्, दृष्टे सित तस्य 'श्रद्धा' वक्ष्यमाणा सिक्षायते ततश्चत्वारो गुरवः । अथ 'भोजिकायाः' मार्यायाः कथयति ततश्चतुरुंघुकाः । घाटिकः— मित्रं तस्थायतः कथने चतुर्गुरवः । 'ज्ञातीनां' सजनानां कथने पड् रुघवः । अज्ञातीनां कथ-10 यति पड् गुरवः । यामस्य कथयति च्छेदः । यामविहिर्निर्गत्य कथयति मूरुम् । यामसीमायां कथनेऽनवस्थाप्यम् । सीमानमतिकम्य कथयति पाराश्चिकम् ॥ २१७५ ॥

कीहशी पुनः शङ्का भवति ? इत्याह---

क्रवियं चु पसादेती, आओ सीसेण जायए विरहं। आओ तलपत्रविया, पिडच्छई उत्तिमंगेणं ॥ २१७६॥ इइ संकाए गुरुगा, मूलं पुण होइ निन्विसंके तु। सोही वाऽसन्नतरे, लहुगतरी गुरुतरी इयरे॥ २१७७॥

'नुः' इति वितर्के, किमेपा सर्यती कुपित सन्तमेन सयतं प्रसादयति ² आहोश्चित् 'शीर्पेण' मस्तकेन 'विरहः' एकान्ते याचते ? उताहो अनेन साधुना तलेन—चप्पुटिकादिकरणेन प्रज्ञापिता सती प्रार्थनामुत्तमाङ्गेन प्रतीच्छति ² ॥ २१७६ ॥ 20

'इति' एवं शङ्कायां चत्वारो गुरुकाः । अथ निर्विशङ्कं—कुपित-प्रसादनाद्यर्थमेर्वं करोतीति मन्यते ततो द्वयोरिप मूलम् । भोजिकादिश्च यो यस्तस्य सम्बन्धेनासन्नतरस्तत्र तत्र शोधिर्लघु-कतरा । 'इतरस्मिन्' घाटिक-ज्ञात्यादौं दूरतरे गुरुकतरा ॥ २१७०॥

अथ किमिति ज्ञातीना प्रथमं न कथयति ^१ ईत्याह— विस्ससइ मोइ-मित्ताइएसु तो नायओ भवे पच्छा।

जह जह वहुजणनायं, करेड़ तह वहुए सोही ॥ २१७८॥

भोजिका-मित्रादिषु शरीरमात्रभिक्नेषु न किमिप गोपनीयमस्तीति कृत्वा यतोऽसो विश्वसिति ततः 'ज्ञातीन्' खजनान् पश्चाद् ज्ञापयति । यथा यथा चासो वहुजनज्ञातं करोति तथा तथा 'शोधिः' प्रायश्चित्तं वर्द्धते ॥ २१७८ ॥

अथाँसौ ज्ञाप्यमानो जनः प्रतिपेधयति ततः प्रायश्चित्तमप्युपरमते । तथा चाह—

१ °नां' भ्रात्रादीनां भा० ॥ २ °ती एवं वन्द्रमाना कु° त० डे० का० ॥ ३ °कान्तं या° भा० ॥ ४ °व वन्द्रनकं क° त० डे० का० ॥ ५ °दो सम्बन्धेन दूर° त० डे० का० ॥ ६ उच्यते भा० ॥ ७ ४ ▷ एतदन्तर्गत पाठ भा० नास्ति ॥

15

पडिसेहो जिम्म पदं, पायच्छितं तु ठाइ पुरिमपए । निस्मंकियम्मि मृलं, मिच्छत्त पसञ्जणा सेसे ॥ २१७९ ॥

तेन पुरुपेण मोनिकाया आग्यानम्—मया सयती संयतं शीर्षप्रणामेनावमापमाणा हैष्टा, ततः माप्रतिषययति—न भवत्येवम्, भवमसमञ्जसं वाच इतिः; ततः प्रायश्चित्तमप्युपरतम् । अथासा व्रत्या न प्रतिषिद्धस्ततः प्रायश्चित्त वर्द्धने । एवं घाटिकादिप्यपि वक्तव्यम् । ततो यसिन् मोनि-कादा पदं प्रतिषयस्ततः 'पूर्वपदं' यद्धादे। प्रायश्चित्तं तिष्टति, नोद्धं वर्द्धते । तथा 'कुपित-प्रसादनाध्यमेव करोति' इति निःशद्धितं मुलम् । एवं मिन्यात्वं 'शेपस्य च' मोनिकादिनिषय-प्रायश्चित्तस्य प्रमनना भवनीति ॥ २१७२ ॥ कथं पुनर्मानिकाद्यः प्रतिषेवयन्ति ? इत्याह—

किईकम्मं तीएँ कयं, मा संक असंकणिङचित्ताई। न वि भृयं न भविस्सद्द, एरिसगं संजमधरेमुं॥ २१८०॥

'कृतिकर्म' वन्द्रनक 'तया' सयत्या कृतन्, मा अशक्करीयचित्ते अमृ शक्किष्ठाः, नापि भृतम् अपिशव्दाद् न भवित न च भविष्यति ईदृशं भवत्यरिकल्पितं कुपित-प्रसादनादिकमसमझस-चेष्ठितं 'सयमधरेपु' माश्च-सार्थ्वाजनेषु ॥ २८८० ॥

एवं विचारम्मा गच्छतां ठोषा उक्ताः । अथ मिक्षाचर्यायां तानेवाह-

पदम-विद्यातुरो वा, सद्काल तवस्सि मुच्छ संतो वा । रच्छामुहाइ पविसं, नितो व लणण दीसिङ्का ॥ २१८१ ॥

"रच्छामुहाइ" ति तिसान् यामे रथ्यामुखे आदिश्रच्डाद्रस्यत्र वा तथाविथे स्थाने देवकुछं वा शून्यगृहं वा भवेत् तत्र प्रथमपरीपहातुरः प्रथमालिकार्थं द्वितीयपरीपहातुरश्च द्रवपानार्थं प्रवि-दोत्, यद्वा यावत्र 'मत्कारुः' मिक्षाया देशकाली भवति नावदेत्रेबोपविष्टत्तिष्टामि, अथवा

? हष्टा. यहा संयत्तायन्त्रने संयतेन यत् प्रतियन्त्रनं कृतं तद् हष्ट्वा त्र्यात—मया संयतः संयतीं शिरःप्रणामन याचमानां हष्ट इति । ततः सा प्रतिषेधयति—न भवस्येवम् , मा शह्नां कार्याः । एवं वादिकाववोऽपि यदि प्रतिषेधयन्ति ततः 'यस्तिन् पदे' वादिकावो प्रतिषेधस्ततः 'पृषे पदे' भोगिन्यादो प्रायश्चित्तमपि तिष्ठति, नोई वर्द्धते । निःशङ्किते सित मूलम् । एवं मिथ्यात्वं शेषस्य च प्रसजना भवति । २१७९॥ कथं पुनमांगिन्याद्यः सा ।

"पहिरोही कम्मि॰ गाहा । देण भोड्याए अञ्चार, जहा—में सबक्षो सजर सीसपणामकरणेण ओसा-सत्तो हिट्टो ॥ ताहै सा भोड्या से भण्ड—बटणये दीय कय॰ गाहा कण्या ॥" इति विदेशपचणी ।

"पहिसेहो॰ गाघा ॥ टांघ तेण मोट्याए कविन, जवा—मए सजत सजती सीसपणानेणे थोमासंती दिह्य ॥ तांचे ना मचा से भंगज्ञा—किनिडम्मं॰ गापा क्टा ।" इति सुणों ।

भा॰ प्रते दीय विदेशपस्तृपर्यतु गारणी, शेषप्रतिगनदीय पुन सृष्येतुसारणीति ॥

२ विशेषच्छिणिकृता—ग्रेट्णयं नीय ऋपं ३६ पाठ आह्नोडीन । इत्यना टिप्पणी १ ॥

३ ^९महितीयपरीपहातुरः प्रथमालिकाद्ययं प्रविशेत्, गा॰ ।

"पटम बिति॰ गाहा । हाबाइनी पटमाउँथं ब्हेंसि नि बितियपरीसहेण या आतुर-नृषित इस्तर्थं , अधवा जाव या नाव सितियांचे स्वति नाम यन्यांकि" इति सुर्वो।

"पदमविद्या॰ गाहा । तिम्म गाम जगरं वा रच्छामुहे देवरुँ ग्रुष्वघर वा तत्व 'पदम-विद्यातुरो' हुद्दानिओं पदमः जियं कर्गन ति जिजिओं वा पाग निवास ति, अहवा जाव न ताव सङ्कालो सबह ताव एत्य दविद्दों अच्छामि।" इति विद्योपच्यूणों ॥

Б

'तपस्ती' क्षपकः स विश्रामग्रहणार्थम्, यद्वाऽत्युष्णेन कस्यापि मूर्च्छा समुत्पन्ना तस्या अपनय-नार्थम्, यदि वा भिक्षाटनेन श्रान्तोऽहमतोऽत्र विश्राम गृह्णामि प्वमेभिः कारणेस्तत्र प्रविशेत्, स च प्रविशन् ततो निर्गच्छन् वा जनेन दृश्येतः, सयत्यपि तत्रैतैरेव कारणेः प्रविशेत् साऽपि प्रविशन्ती जनेन दृष्टा स्यात् ॥ २१८१ ॥ अत्र चतुर्भङ्गीमाह—

संजओं दिद्वो तह संजई य दोण्णि वि तहेव संपत्ती। रच्छामुहे व होजा, सुन्नवरे देउले वा वि॥ २१८२॥

संयतस्तत्र प्रविशैन् दृष्टो न सयती १ सयती दृष्टा न संयतः २ सयतः संयती च द्वाविष दृष्टो न दृष्टो वा ३-४ । "तहेव सपित" ति यैः कारणैः सयतः प्रविष्टस्तेरेव संयत्या अपि तत्र सम्प्राप्तिरभूत्, एवमनन्तरोक्तचतुर्भक्त्वा रथ्यामुखे वा शून्यगृहे वा देवकुले वा दर्शन स्यात् ॥ २१८२ ॥ ततः किम् १ इत्याह—

> वइणी पुन्वपविद्वा, जेणायं पविसते जई इत्थ । एमेव भवति संका, वहणि दहुण पविसंति ॥ २१८२ ॥

संयत तत्र प्रविशन्तं हर्ष्ट्वा शङ्का भवेत्—नृनं त्रेतिनी पूर्वप्रविष्टा वर्तते येनायं यतिरत्र प्रवि-शति । एवमेव त्रतिनीं प्रविशन्ती हष्ट्वा शङ्का भवति—नृनं सयतः प्रविष्टोऽस्ति येनेयं प्रवि-शति ॥ २१८३ ॥

> उभयं वा दुदुवारे, दहुं संगारउ त्ति मन्नंति । ते पुण जइ अन्नोन्नं, पासंता तत्थ न विसंता ॥ २१८४ ॥

द्विद्वारे वा देवकुले 'उमयं' संयतः संयती च प्रविशेत्, तत्रैकेन द्वारेण सयतः प्रविष्टो द्वितीयेन तु संयती, तो च दृष्टा 'सङ्गारः' सङ्कतोऽत्रानयोरिति गृहस्था मन्यन्ते । 'तो च' सयती-सयतौ यद्यन्योन्यमद्रक्ष्यतां ततस्तत्र 'नावेक्ष्यता' प्रवेशं नाकरिष्यताम् ॥ २१८४ ॥ 20

ई्रथं प्रवेशे चतुर्भङ्गी द्शिता । अथ निर्गमनेऽपि तामतिदि्गन्नाह—>

एमेव ततो णिंते, भंगा चत्तारि होंति नायव्या । चरिमो तुल्लो दोस्र वि, अदिद्वभावेण तो सत्त ॥ २१८५ ॥

'एवमेव' प्रवेशवत् 'तत ' शून्यगृहादेर्निर्गच्छतोरिष तयोश्चत्वारो भङ्गा भवन्ति ज्ञातन्याः । तद्यथा—सयतो निर्गच्छन् दृष्टो न सयती १ सयती निर्गच्छन्ती दृष्टा न सयतः २ सयतः २५ संयती द्वाविष दृष्टो ३ द्वाविष न दृष्टो ४ । अत्र च 'द्वयोरिष' प्रवेश-निर्गमयोः 'चरमः' चतुर्थो भङ्गस्तुल्यः । कुतः १ इत्याह—'अदृष्टभावेन' द्वयोरिष सयत-सयत्योरदृष्टत्वेन, ततश्च द्वाभ्यामप्येक एव गण्यते, एव सप्त भङ्गा भवन्ति ॥ २१८५ ॥ एतेषु दोषानाह—

१ °शन् जनेन द° त० डे० का० ॥ २ मो० छे० विनाऽन्यत्र—हर्षे ३ तथा द्वाचिप न हर्षे ४। "त° त० डे० का०। हर्षे ३ न संयतो न वा संयती हरेति ४। "त° मा० ॥ ३ °रणः प्रथम-द्वितीयादिपरीपहातुरतादिभिः संयतः डे० त०। "तहेव चपित ति जेहिं कारणेहिं चजको पविद्वो तेहिं कारणेहिं सजई वि" इति विशेषचूणों ॥ ४ °ष्ट्वा शाइते—नृनं त० डे० वा०॥ ५ च तथा द० त० डे०॥ ६ ४ ० एतन्मध्यगत पाठः मा० नास्ति॥

एक्किम्प य मंगे, दिहाईण य गहणमादीया । सत्तममंगे नामो, आडमयाई अ सविसेया ॥ २१८६ ॥

एकेक्सिन् महे 'हष्ट द्र्यः' हेष्ट मित इद्रा मोजिकाद्यो दोषः मबन्ति । तत्र इङ्का नाम कि विष्णामपार्यम् प्रविद्याति । उत्र मित्र विष्णामपार्यम् प्रविद्याति । उत्र मित्र मित्र विष्णामपार्यम् प्रविद्याति । उत्र मित्र मि

≺ वैष प्रवेद्यविष्येतु न्हकेतुँ उङ्गिरादेदैः प्रयक्षितननिष्यु प्रथम देद्यततावदाह—>

चरमे पहमे विद्युः तद्यु भंगे च होद्या साही।

मानो लहुको गुरुको, चउलहु-गुरुगा य निक्तुस्त ॥ २१८७ ॥

चन्नो नाम-यत्र हे कृति न दृष्टे १ प्रथमः-यत्र संयत् एव दृष्टः २ हितीयः-यत्र संयती दृष्टा ३ तृतीय--यत्र हे अपि दृष्टे ४, एते उ मोहा ययात्रमं निक्षीरियं स्नीविर्मन्तव्या ।

1धतप्रया—नासे रुदुकः, नासे रुत्कः, चरुर्वहुक्यः, चरुर्गुत्काः ॥ २१८७ ॥ वसमे य उवल्हाएः आयरिए एनटाणपरिवर्डा ।

मानगुरुं आरम्मा, नायव्या जाव छेदो छ ॥ २१८८ ॥

हुरमसोपाक्याय्यायांक्स च वयात्रममेत्रेत्रस्थानर्गारङ्गिः क्रत्या, तत्रश्च मासगुरकाता-रम्य क्लेतं वादत् प्रयक्षितस्थानानि हात्र्य्यानि । तद्यया—हुरमस्य चतुर्थे मोहे मामगुर, १८ प्रयमे चतुर्वहः हिर्ताये चतुर्गुरः, तृतीये षद्यहः, मृतद्वयाद्यस्य चतुर्वहकातार्थ्यं यद्गुरुके विद्यति, साम्ययस्य चतुर्गुरुक वार्थ्यं देवान्तं दृष्ट्यम् ॥ २१८८ ॥

एर एक आदेहर.। अब द्वितीय स्काने—

अहवा चित्ने छहुओं, चउगुरूनं सेनएस मंगेस ।

मिक्तुम्स दोहि वि लहु, काल नवे दोहि वी गुक्ता ॥ २१८९ ॥

श्र अयग करने नहे छहुको नासः, 'होपेंडु' विकास नहेतु उत्तेकं चतुर्गुतकम् । एतानि मार्गश्चित्ति निक्षोः 'हान्यानी' दासा कांक्रेन च छहुकानि, हामस्य काळ्युतकाणि, उपा-व्यायन्य दमेतुद्धीः, अवर्षको नयगुक्तीः ॥ २१८६ ॥

एर द्वितीय अवेद्दः । अय तृतीय उच्यते—

मानो विनेतिको वा, तद्यादेसिम होह मिक्खुस्स । गुरुगा लहुगा गुरुगा, विनेसिया सेसगाणं तु ॥ २१९० ॥

१ तत्र चोमयोरप्यदृष्टनाद् आत्मोनयादिनमुन्याः 'स्विशेनाः' नमधित्रा दोषाः। तत्रान्योन्यदृशेने व्योरेञ्जरस्य वा चित्तनेदः। मिस्नचित्तयोख्य तत्रैकान्ते म० ७ २ ८ ० एतविह्मच्यादःपरःम० नान्दि ॥ ३ त० दे० विष्यच्याच्याच्याचित्तमाद्द्योग्रे से ।

'वा' इति अथवा तृतीयादेशे चतुर्ष्विप भङ्गेषु लघुमासस्तपः-कालविशेषितो भिक्षोर्भवति । तद्यथा—चतुर्थे भङ्गे द्वाभ्यामपि तपः-कालभ्यां लघुकं लघुमासिकम्, प्रथमे तदेव तपसा लघुकं कालेन गुरुकम्, द्वितीये कालेन लघुकं तपसा गुरुकम्, तृतीये द्वाभ्यामपि तपः-कालभ्यां गुरुकम् । 'शेषाणां तु' वृषभोपाध्यायाचार्याणां यथाकमं गुरुको मासः चत्वारो लघुका-श्चत्वारो गुरुकाः चतुर्ष्विप भङ्गेष्वेवमेव तपः-कालविशेषिताः प्रायश्चित्तम् ॥ २१९०॥

प्ष तृतीय आदेशः । अथ चतुर्थमाह—>

अहवा चउगुरुग चिय, विसेसिया हुंति भिक्खुमाईणं। मासाइ जाव गुरुगा, अविसेसा हुंति सन्वेसिं॥ २१९१॥

ं अथवा चेतुर्गुरुका एव भिक्षुप्रमृतीना चतुर्णामि तपः-कालविशेषिता भवन्ति । तद्यथा— भिक्षोद्धीभ्यामि तपः-कालभ्यां लघवः, वृपभस्य तपोलघवः कालगुरवः, उपाध्यायस्य तपो-10 गुरुकाः काललघुकाः, आचार्यस्य द्वाभ्यामि तपः-कालभ्यां गुरवः । एप चतुर्थ आदेशैः । यद्वा मासादारभ्य चतुर्गुरुकं यावद् भिक्षु-वृषभादीनां प्रायश्चित्तानि । तद्यथा—भिक्षोर्मासलघु, वृषभस्य मासगुरु, उपाध्यायस्य चतुर्लघुकम्, आचार्यस्य चतुर्गुरुकम् । एतानि च प्रायश्चित्तानि सर्वेषां भद्गचतुष्टयेऽपि तपः-कालभ्यामिवशेषितानीति पञ्चम आदेशः ॥ २१९१ ॥

एवं तावत् प्रवेशप्रत्ययं शुद्धपदे प्रायश्चित्तमुक्तम् । अथ तत्र प्रविष्टानां ये दोपाः सम्भ-15 वन्ति तत्प्रत्यय प्रायश्चित्तमाह—

> दिद्वोभास पिंडस्सुय, संथार तुअङ्क चलणउक्खेवे । फंसण पिंडसेवणया, चउलहुगाई उ जा चरिमं ॥ २१९२ ॥

एवं प्रविष्टयोः सयत-सयत्योः परस्परं 'दृष्टें' दर्शने सञ्जाते सति चतुर्रुघवः । सयतः संयती वा यद्यवभाषते ततश्चत्वारो गुरवः । अवभाषिते सति यदि प्रतिशृणोति तदा पड् रूघवः । २० सस्तारके कृते पड् गुरवः । त्वग्वर्त्तने कृते च्छेदः । चलनः—पादस्तस्योत्क्षेपे मूलम् । स्पर्शनेऽन- वस्थाप्यम् । प्रतिसेवने पाराश्चिकम् ॥ २१९२ ॥

एवं प्रविष्टानां प्रायश्चित्तमुक्तम् । अथ निर्गमनविषयमाह—

पविसंते जा सोही, चउसु वि भंगेसु विनया एसा । निक्लममाणे स चिय, सविसेसा होइ भंगेसु ॥ २१९३ ॥

सयती-सयतयोः प्रविश्वतोर्या शोधिश्चतुर्विष भङ्गेषु 'एषा' अनन्तरमेव वर्णिता सैव शून्य-गृहादेर्निष्कामतोरिष सिवशेषा चतुर्ष्विष भङ्गेषु भवति ॥ २१९३ ॥ एव तावद् प्रामादेरन्त-विचारभूमो गच्छन्तीना भिक्षाचर्याया च दोषाः प्रतिपादिताः । अधुना प्रामादेर्वहिर्विचारभुवं

१ प्रान्मध्यगत पाठ भा० मो० छे० नास्ति ॥ २ चतुर्गुरवस्त एव मो० रे० ॥ ३ दाः । अथ पञ्चममाह—"मासाइ जाव" इत्यादि । यद्वा मासादारभ्य चतुर्गुरुकं यावद् 'अविशेषितानि' तपः-कालविशेषरिहतानि मिश्च त० डे० का० ॥ ४ °पामिष अविशेषितानि, न तपः-कालाभ्यां विशेषयितव्यानीति भावः ॥ २१९१ ॥ भा० ॥ ५ °पु पञ्चभिरादेशैः 'दपा' त० डे० ॥ ६ °मादीनां यहि° भा० ॥

गच्छन्तीनां दोषानुपद्रश्चितुमाह—

अंतो वियार असई, अचियत्त सगार दुज्जणत्रते वा । षाहिं तु वर्यतीणं, अपत्त-पत्ताणिमे दोसा ॥ २१९४ ॥

'अन्तः' ग्रामादेरम्यन्तरे विचारम्मेरमात्रे, अप्रीतिकं वा 'सागारिकः' राज्यातरस्तत्र व्युत्स-व्विने कुर्यात्, 'दुर्जनवृतं वा' दुःशांळजनपरिवृतं तन् पुरोहडं ततो श्रामादेविहित्रजन्तीनां स्विष्टिलमप्राप्तानां प्राप्तानां वा इमे दोषाः ॥ २१९४ ॥

> वीयारामिम्रहीओ, साहुं दृह्ण सिचयत्ताओ । लहुओ लहुया गुरुगा, छम्मासा छेद मृल दुर्ग ॥ २१९५ ॥

विचारमृगेरभिमुन्तं गच्छन्यः साधुं तत्र यान्तं दृष्ट्वा यदि सन्तिवर्तन्ते तदा रुष्ठको मासः । 10सनिवृत्ताः सत्यः संज्ञां घारयन्त्यो यद्यनागादं परिताप्यन्ते तदा चतुर्रववः । आगादपरितापनायां चतुर्गुरवः । महाद्यःते पद् रुघवः । मूर्च्छायां पद् गुरवः । कृच्छ्रपाणे च्छेदः । कृच्छ्रोच्छ्वासे मूलम् । समुद्धातेऽनदस्याप्यम् । कारुगमने पाराध्विकम् ॥ २१९५ ॥

एनामेर्ने निर्युक्तिगाथां व्याख्यानयति-

एसो वि तत्थ वचइ, नियत्तिमो आगयम्मि गच्छामो । लहुओ य होइ मासो, परिवावणमाइ जा चरिमं ॥ २१९६ ॥

'ण्पोऽपि' संयतः 'तत्र' स्वण्डिले त्रज्ञति अता निवर्चामहे वयम् 'आगत' प्रतिनिद्येच सित गमिप्याम इति इत्वा यदि संयत्यो निवर्चन्ते तदा छन्जमासः । अथ संज्ञानिरोधनावनागाद-परितापनादिकं मत्रति तत्वश्चतुर्रुक्षकादिकमनन्तरगायोक्तं 'चरमं' पाराश्चिकं यावत् प्रायश्चि-त्तम् ॥ २१९६ ॥

20 गड्डा इंडंग गहण, गिरिद्रि उजाण अपरिमोगे या । पविसंत य पविद्वे, निंते य इमा भन्ने सोही ॥ २१९७ ॥

अथ तान् सावृत् दृष्ट्वा यदि 'गर्तायां' प्रतीतायां 'कुडक्ने' वंग्रजालिकायां 'गहने' बहुवृक्ष-निकुक्ते 'गिरिदर्या' पर्वतकन्द्रायां 'उचाने वा' अपिरसोग्ये संयत्यः प्रविशेषुः ततः प्रविश-न्तीषु प्रविष्टासु निर्गच्छन्तीषु चेयं शोविः सावृना सवति ॥ २१९७ ॥

25 द्रिम्म दिहें लहुओ, अमुई अमुओ ति चउगुरू होंति । ते चेव सत्त मंगा, वीयारगए कुइंगम्मि ॥ २१९८ ॥

यदि दूरे संयत्या संयतः संयतन वा संयती दृष्टा ततो लबुको मासः । अथामुका संयती अमुको वा अयं ज्येष्टार्य दृति वृते तदा चतुर्गुर्यः । तत्र च कुडके यदि कोऽपि संयतः विचारार्थं गतः—पूर्वपविष्टो वर्तते तदा त एव सप्त महाः, तद्यथा—संयतः प्रविश्वन् दृष्टो उ०न संयती १ संयनी प्रविश्वन्ती दृष्टा न संयतः २ द्वावपि दृष्टा ३ द्वावपि न दृष्टो १, एवं निर्गमनेऽपि चतुर्मक्षी, नवरं चतुर्थो महः प्रवेश-निर्गमयोहमयोर्गि तुल्य दृति कृत्वा द्वाम्या-मध्यक एव गण्यत दृति सप्त महा मवन्ति । एनेषु च प्रायश्चित्तं प्राणिव दृष्टव्यम् ॥२१९८॥

१ °व गार्था मा॰ त॰ दे॰ ॥ २ जा सपर्व ना॰ ॥ ३ °वो भवन्ति । तत्र त॰ दे॰ कां॰ ॥

25

अथ तत्र प्रामे द्वारे स्थितेषु तेषु यस्तासां संयतीनां निरोधो भवति तदुत्थदोषदर्शनाय दृष्टान्तमाह—

आभीराणं गामो, गामदारे य देउलं रम्मं । आगमण भोइयस्स य, ठाइ पुणो भोइओ तहियं ॥ २१९९ ॥

आमीराणां कश्चिद् यामः, तस्य च यामस्य द्वारे देवकुलं रम्यम्, अन्यदा च 'भोगिकस्य' व यामस्वामिनस्तत्रागमनम्, ततः 'तत्र' देवकुले भोगिकस्तिष्ठति ॥ २१९९ ॥

महिलाजणो य दुहितो, निक्लमण पवेसणं च सिं दुक्खं। सामत्थणा य तेसिं, गो-माहिससिन्नरोधो य ॥ २२००॥

ततः 'तेषाम्' आभीराणां महिलाजनो दुःखितोऽभृत्, निष्क्रमणं प्रवेशनं च "सिं" तासां विचारादो गच्छन्तीना 'दुःखं' दुष्करमभवत्, ततस्तेषा "सामत्थण" ति पर्यालोचनमभृत्, 10 यथा—महिलाजनस्यातीवाबाधा वर्तते, अत एनं भोगिकमुपायेनान्यत्र स्थापयाम इति । तत-स्तैर्गो-माहिषस्य—गो-महिषीसमृहस्य स्वस्वत्सवियोजनस्य ग्रामाद् वहिनीत्या ग्रामद्वारवन्धनेन रात्रो सिन्नरोधः कृत इति ॥ २२०० ॥ इदमेव स्फुटतरमाह—

विगुरुन्वियवोंदीणं, खरकम्मीणं तु लज्जमाणीओ । भंजंति अणितीओ, गोवाड-पुरोहडे महिला ॥ २२०१ ॥ इति ते गोणीहिँ समं, धिइमलभंता उ वंधिउं दारं । गामस्स विवच्छाओ, वाहिं ठाविंसु गावीओ ॥ २२०२ ॥

विकुर्विता—वस्त्रादिभिरलङ्कृता वोन्दिः—शरीरं येपा ते विकुर्वितवोन्दयस्तेपामेवंविधानां भोगि-कसम्बन्धिना खरकर्मिकाणा ळज्जमानाः सत्यो महेला विहरिनर्गच्छन्त्यो गोवाटक-पुरोहडानि 'भञ्जन्ति' पुरीषव्युत्सर्गादिना विनाशयन्तीत्यर्थः ॥ २२०१ ॥

'इति' एवं विचार्य 'ते' आमीरा घृतिमलममाना गोभिरात्मना सार्द्ध सम्चारिताभिः सह बहि-निर्गत्य प्रामस्य द्वारं बद्धा 'विवत्साः' वत्सरिहताः केवला एव गाः उपलक्षणत्वाद् महिपीश्च प्रामस्य बहिः स्थापितवन्तः, ताश्च तत्र स्थिताः स्ववत्सिवयोजिता महता शब्देन सकलामपि रात्रिं विस्तरमारिटतवत्यः, वत्सका अपि प्रामान्तः स्थितास्तथैव शब्दायितवन्तः ॥ २२०२॥

ततः किममूत् ² इत्याह— वच्छग-गोणीसदेण असुवणं भोइए अहणि पुच्छा । सब्भावे परिकहिए, अन्नम्मि ठिओ निरुवरोहे ॥ २२०३ ॥

तेपां वत्सकानां गवां च यः शब्दः-विखरारटनलक्षणस्तेन भोगिकस्य 'अखपनं' निद्रा न समायातेत्यर्थः । ततः 'अहनि' दिवसे उद्गते सित तेन प्रच्छा कृता, यथा-किगेवं राश्रो गो-माहिषं विखरमारटत् !। तैरामीरैस्ततः सर्वोऽपि सङ्गावः परिकथितः । ततोऽसी गोगिकोऽ-१० न्यसिन् देवकुले 'निरुपरोधे' निर्व्याघाते गत्वा स्थित इति ॥ २२०३ ॥ अग्रोपन्यगातः---

एवं चिय निरविक्ला, वहणीण ठिया निओगपगुह्मित ।

१ °त्वा तद्वारय° मो॰ छै॰॥

जा तासि विराधणया, निरोधमादी तमावजे ॥ २२०४ ॥

'ण्वमव' मोगिकवत् किचिद् निर्पेक्षाः संयता त्रतिनीनां सम्वन्ती यो नियोगः-ग्रामः क्षेत्रमित्यर्थः तस्य प्रमुखे-निर्गम-प्रवेशद्वारे स्थिताः तयो तासां निरोघादिका विराधना आदिश-व्यादनागादर्पारतापनादिका तामापद्यन्ते, तिब्धपत्रं तेषां प्रायिश्चर्तं भवतीति माव ॥२२०४॥

अहत्रण थेरा पत्ता, दहुं निकारणहियं नं तु ।

भोइयनायं काउं, आउड्डि निसोहि निच्छुमणा ॥ २२०५ ॥

्र "अंह्वण" ति अल्ड मञ्ज्यपद्मध्वेत्यसार्थे । १० अथवा 'स्रविराः' कुल्स्यविरादय-स्तत्र क्षेत्र प्राप्तासमाचार्यादिकं प्रामहार एव स्तितं दृष्ट्वा प्रच्छन्ति—आर्थ ! किमत्र संवर्ताक्षेत्रे भवानीहरो प्रदेशे स्तितः ? इति । यदि निष्कारणिकस्ततो मोगिकत्रातननन्तरोक्तं कुर्वन्ति, 10यथा तेन महिलाननेन महान् क्षेत्रराशिरनुवम् वे, एवमेतामिरिप संवर्तामिमंवता अत्र स्थितेन महद् दुः समनुमवनीयन् । एवसुक्ते यदि 'आवृत्तः' प्रतिनिवृत्तत्ततो 'विशोधिं' प्रायश्चित्तं दत्त्वा ततः क्षेत्राविष्काश्चना कर्त्वत्या ॥ २२०५ ॥

> एवं ता दृष्येणं, पुद्धो व मणिज कारण ठिओ मि । तिह्यं तु इमा जयणा, किं कर्ज का य जयणाओ ॥ २२०६ ॥

15 एवं तादर् 'दर्पेण' आङ्कित्या स्थितानां दोषा उक्ताः । अथ कुछादिस्वित्रैः पृष्टो भणन्—कारण स्थितोऽस्यहम् । तत पुष्टकारणसद्भावं न प्रायिश्चित्तं न वा निष्काशना । तत्र तु कारणे स्थितानाम् 'इयं' वश्चमाणा यतना । श्चिप्यः प्राह—किं पुनः 'कार्ये' कारणम् ? का वा यतनाः १ ॥ २२०६ ॥ उच्यते—

अद्वाणनिग्नयाई, अग्गुङ्जाणे मने पनेसी य । पुन्नो छणो व मने, गमणं खमणं च सन्दासि ॥ २२०७ ॥

अञ्चनो ये निर्गता विसमं प्राप्तालेऽध्वनिर्गताः, आदिश्रव्दावशिवादिकारणेषु वर्तमानाः संयतीक्षेत्रे प्राप्ताः । तत्र चात्रोद्यांने स्थित्वा गीतार्थाः संयतीप्रतिश्रये प्रदेया । तश्च विधिना तत्र प्रवेद्यः कर्तव्यः । नंयतीनां च मायकल्यः पूर्ण ऊनो वा सवेन् । यदि पूर्णलतो गमनं कर्तव्यन् । अय न्यूनन्त्रतः सर्वासामपि क्षपणं मंवतीति नियुक्तिगायासमासार्थः ॥२२०॥

१ 🕁 ⊳ एउन्मच्यानः पाटः मा॰ नान्ति ॥ २ °ति । ततो निर्यचने प्रद्ते यदि नि° त॰ हे॰ ॥ ३ °त्या संयतीयतिस्रये प्रवेशः मा॰ ॥

थ मग्नीति समासार्थः । अय विस्तरार्थे उच्यते—ते सायगेऽव्यनिर्गताद्यः तत्र क्षेत्रे प्राप्ताः स्वयं संयनीतिः सहिता रहिता वा मृत्रेयुः । तत्र संयनीतिरहितानां विधिरिम-घीयने—यदि न तायद् मिझाया देशकालस्ततो न तत्र स्थातव्यम्, यः पुरोवर्त्ती प्राम्स्तत्र गत्या मैं अर्हातव्यम् ॥ २२०७॥ [अथ] तत्रामृनि कारणानि मनेयुः—उव्याया० गाथा २२०८। ते साथवः 'उद्याताः' अतीव परिधान्ताः, मा०।

[&]quot;खडाप॰ दारगावा ॥ ते साधू खडार्गानगराई तत्य पता बत्य चंबतीको छिते छिताको । ते पुण चंबतिसहिना वा संबतिरहिता वा । त्य चंबतिरहितार्ग ताव विवि मराति—बति ण ताव भिर्म्बावेल तो बोलेनकं, करगतो वो गामो तत्य भिरम्बं घतकं ॥ अह इमे कारणे ण बोलेबा—इम्बाया॰ गाहादं कंठ ।

अथ विस्तर्रार्थमाह—

उन्दाया वेला वा, द्रुहियमाइणी व परगामे । इय थेरऽज्ञासिजं, विसंतऽणावाहपुच्छा य ॥ २२०८ ॥

अध्वनिर्गतादयः साधवः सयतीक्षेत्रे प्राप्ताः सन्तो यदि न तावद् मिक्षाया देशकालस्ततो यः पुरोवर्ती यामस्तत्र गत्वा मैक्षं गृह्णन्तु । अथ ते 'उद्दीताः' अतीव परिश्रान्ताः, वेला वा व तदानीमतिकामति, परमामे वा दूरोत्थितादयो दोपाः—तत्र दूरे स मामो न तदानीं गन्तु शक्यते, उत्थितो वा-उद्वसीभूतोऽसौ, आदिशब्दात् श्रृष्ठको वा अभिनवावासितो वा भटा-क्रान्तो वा इत्यादिपरिग्रहः । 'इति' एवं विचिन्त्याग्रोद्याने स्थित्वा यः स्थविरो गीतार्थः स आत्मद्वितीयः सयतीप्रतिश्रये प्रेप्यते । स च तत्र गत्वा बहिरेकपार्श्वे स्थित्वा नैपेधिकीं करोति । यदि ताभिः श्रुतं ततः सुन्दरम् , अथ न श्रुतं ततः शय्यातरीणा निवेचते , ताभि-10 रार्थिकाणा निवेदिते यदि सर्वा अप्यार्थिका वृन्देन निर्गच्छन्ति ततश्चत्वारो गुरवः । ततः प्रवर्तिनी प्रौढाभ्यां वयःपरिणताभ्यामार्थिकाभ्या सहिता निर्गत्य 'अनुजानीत' इति भणति । ततस्तौ साधू 'आर्याशस्यां' साध्वीप्रतिश्रयं प्रविशतः । ततश्च तामिः कृतिकर्मणि विहिते स गीतार्थसाधुरघोमुखमवलोकमान आचार्यवचनेन तासामनावाधपुच्छा करोति-कचिदुत्सर्पन्ति सयमयोगा निरावार्ध भैवतीनाम् १ ग्लाना वा न काचिद् वर्चते था २२०८॥

एवं पृष्टी कि कुर्वन्ति ² इत्याह—

अमुगत्थ गमिस्सामो, पुट्ठाऽपुट्ठा व ईय वोत्तृणं। इह भिक्खं काहामी, ठवणाइघरे परिकहेह ॥ २२०९ ॥

स्थविरा गीतार्थी प्रष्टा अप्रुप्टा वा 'अमुकत्र वयं गमिष्यामः' इत्युक्तवा इदं भणन्ति— वयिमह मामे भिक्षा करिप्यामः, ततः स्थापनादिगृहाणि परिकथयत, आदिशब्दो मामाकादि-20 कुलसूचकः ॥ २२०९ ॥ ततस्तेषु कथितेषु यो विधिः कर्त्तन्यस्तमाह-

> सामायारिकडा खलु, होइ अवहा(हे) य एगसाहीय। सीउण्हं पढमादी, पुरतो समगं व जयणाए ॥ २२१० ॥

हे आर्याः ! कृतसामाचारीका यूयम् 2 उत न 2 इति तासा समीपे प्रष्टव्यम् । "अवह्ने" चि एकस्मिन् त्रामार्द्धे संयताः पर्यटन्ति द्वितीयस्मिन् सयत्य । "एगसाहीय" ति एकस्या साहि-25 काया-गृहपद्भद्यां साधवः पर्यटन्ति द्वितीयस्यां साध्न्य इति । यद्वा शीतमुप्णं वा यथायोगं गृह्णन्ति । तथा "पढमाइ" ति प्रथमालिकाम् आदिशब्दात् पानकस्य वा पान शून्यगृहादिस्था-नानि वर्जियत्वा कुर्वन्ति । सयतीना 'पुरत ' प्रथमं समकं वा यतनया पर्यटन्ति । एप निर्धु-क्तिगाथासमासार्थः ॥ २२१० ॥ अथ विस्तरार्थं प्रतिपदमाह-

ताहे अग्गुनाणे ठातुं जो थेरो गीतो सो अप्पवितिओ सजतिउयस्सयं अतीति, विधिणा णिसीधियादि,

एगपासे ठाति, अणाबाहादि पुच्छति । एस पवेगो ।" इति चूर्णो विशेषचूर्णो च ॥ १ व्याणा वे॰ मो॰ छे॰ ॥ २ ॰ द्वानाः अ॰ मो॰ छे॰ ॥ ३ दूरः-दूरवर्ता स ग्रा॰ मा॰ त॰ छे॰ कां॰ ॥ ४ °ते, ता आर्यिकाणां निवेदयन्ति, निवे॰ मा॰ त॰ छे॰ का॰ ॥ ५ मगव॰ कां ।। ६ °ष्ट्रा पुनर्राप स गीतार्थी भगति—अमु भा ।।

कडमकड चि य मेरा, कडमेरा मिचि विति वह प्रद्वा। ताहे मणंति येरा, साहह ऋह गिण्डिमो भिक्खं ॥ २२११ ॥

स्वितेरेलाः प्रष्ट्याः—आयीः ! युन्मामिः 'मर्गदा' सामाचारी 'कृता' शिक्षिता ? उत अकृता ? इति पृष्टा यदि जुवते—'कृतनयोदा वयं' कृतसामाचारीकाः, विधि जानीन इत्यर्थः । ठततः स्वित्रा मणन्ति—कथयत कथं निक्षां गृहीमो वयम् ? ॥ २२११ ॥

> ता वेंति अम्ह पुष्णो, मासो वज्ञाम् अहव खमणं णे । संपत्थियाउ अम्हे, पविसह वा जा वयं नीमो ॥ २२१२ ॥

ता आर्थिका बुवते—पूर्णेंडमार्क नासकस्यः, अतः स्त्रार्थिषेठस्यो कृत्वा बैजानी वयन्, साववो ययायुसं पर्यटन्तु । अयन न पूर्णेन्त्रयापि क्षपणमच "पे" अस्ताकं सर्गसामपि ततः 10पर्यटत यूयन् । अय न क्षपणं ततन्ता बृद्धः—मन्यस्थिता वयं मिक्काटनार्थम्, यूयं पश्चात् पर्यटन । अथवा—'प्रविद्यत' मिक्कास्वतरत यूयं यावद् वयं निर्गेच्छाम इति ॥ २२१२ ॥ यदा च तास्रं क्षपणं मवति तदा बृद्धः—

विच्छिन्नो य पुरोहर्हों, अंतो भूमी य णे वियारसः । सागारिओ व सन्नी, कुणह् अ सारक्खणं अम्हं ॥ २२१३ ॥

15 विलीण पुरोहढं वर्चते, गायायां प्राक्षवत्वात् पुंन्त्वनिर्देशः, "णे" अलाकम् 'अन्तः' प्रामनव्ये विचारमुमिरिलं, यश्चालाकं सागारिकः सः 'नंजी' श्रावक्रलतः संरक्ष्णमलाकं करोति, विहिविचारमुवं गन्तुं न ददातीत्वर्यः । एवं संयतीमिरुके नाषवत्तत्र यथामुक्तं पर्य-दित । अय नामिः पूर्वे अपणं न कृतं तनो यदि सुमिक्षं वर्चते प्रदुरं च प्राप्यते ततः संयतः क्षपणं कुत्रेन्तु । अपि च यद्यपि तासां साझुम्यो मक्त-पानं प्रदृत्तं न कर्यते तया- १० प्येवं कुत्रेन्तीमिलामिः प्रामुण्यं कृतं मवति । अय न शक्तुवन्ति क्षपणं कर्तुं ततः नंयतः प्रागेव पर्यटन्त्यो दोपालं गृहन्ति मंग्वा मिल्लाया देशकाले उपणं गृहन्ति । अय संयनीनां दोपालमकारकं ततः संयता दोपालमितराः पुनर्त्यां गृहन्ति ॥ २२१३ ॥

उमयस्सऽकारगम्मी, दोर्माण अहव तस्स असईए । संथरें मणंति तुम्हे, अडिएमु वर्ष अडीहामो ॥ २२१४ ॥

25 'उमयस' संवती-संवतर्गस दोषाँत अञारके अथवा 'तस' दोषात्रस 'असित' अमावे संस्तरो सित संवरंग मणन्ति—यूवं तावदरत वतो युमास अधितेष वयमदिप्यामः ॥ २२१४ ॥ अधैक एव तत्र देख-काळ्टतः क्रमेण पर्यटने वेळाया अतिक्रमो मदित ततः क्रिं कर्त्तव्यम् ! इत्यह—

तुन्मे निष्दह मिक्लं, इमिम पउरन्न-याण नामदे । वाडन सार्हाए वा, अम्हे सेसेमु घेच्छामो ॥ २२१५ ॥

१ 'त्रजामो चयम्' श्रामान्तरं त्रजिप्याम इति साघवो ना॰ ॥

२ 'लि, 'सागारिको वा' राज्यातरः 'संदी वा' आवकः स संरक्षणमसाकं करोति अतो यथासुखमत्र पर्यटन्तु भवन्त इति । अय तामिः ना॰ ॥

संयत्यो ब्रुवते — यूयं गृहीत मिक्षामिसन् प्रचुरान्नपानस्य ग्रामस्यार्द्धे, असिंस्तु ग्रामार्द्धे वयं श्रहीप्यामः; यद्वा — असिन् पाटकेऽस्यां वा साहिकायां यूयं गृहीत वयं शेषेषु गृहेषु ग्रही-प्याम इति ॥ २२१५ ॥

ओली निवेसणे चा, बजेत्त अडंति जत्थ व पविद्वा । न य वंदणं न नमणं, न य संभासो न वि य दिद्वी ॥ २२१६ ॥

"ओलि" ति श्रामगृहाणामेका पिद्धः, निवेशनं—एकनिष्क्रमण-प्रवेशानि द्यादीनि गृहाणि, ततो यस्यां पद्धौ निवेशने वा संयत्यः पर्यटिन्ति तां वर्जियत्वा अन्यस्यां पद्धावन्यस्मिन् वा निवेशने संयता मिक्षामटिन्त । अथ लघुतरोऽसौ श्रामस्ततः पद्ध्यादिविभागो न शक्यते कर्त्तुं ततो यत्र गृहादौ प्रविष्टा रथ्यायां वा गच्छन्त एकत्र मिलिन्त तत्र 'न च' नैव 'वन्दनं' कृति-कर्म न वा 'नमनं' शिरःप्रणाममात्रं न च 'सम्भापः' परस्परालापो नापि च 'दृष्टिः' सम्मुख्म-10 वलोकनम्, मा प्रापत् पूर्वोक्तशङ्कादिदोषप्रसङ्क इति ॥ २२१६ ॥

पुन्वभणिए य ठाणे, सुन्नोगादी चरंति वर्जेता । पढम-विद्यातुरा वा, जयणा आइन धुवकम्मी ॥ २२१७ ॥

'पूर्वभणितानि च' शङ्काविषयभूतानि शून्योकः -शून्यगृहं तदादीनि स्थानानि दूरेण वर्ज-यन्तश्चरन्ति, प्रथम-द्वितीयपरीषहातुरा वा यतनया जनाकीर्णे 'श्रुवकर्मिका वा' काष्टसूत्रधाराटयो 15 यत्र पश्यन्ति तत्र प्रथमालिकां द्रवपानं वा कुर्वन्ति ॥ २२१७॥ एवं सयतीक्षेत्रे साधूनामाग-तानां विधिरुक्तः । अथोभयेषु पूर्वस्थितेषूभयेपामेवागमने विधिमाह—

दोन्नि वि ससंजर्धया, एगग्गामिम कारणेण ठिया। तासिं च तुच्छयाए, असंखडं तित्थमा जयणा ॥ २२१८॥

'द्वयेऽपि' वास्तव्या आगन्तुकाश्च साधवो यदि ससयतीका एकस्मिन् त्रामे कारणेन खिताः, 20 'तासां च' सयतीनां तुच्छतया यद्यसङ्खडमुपजायते तत्र 'इयं' वक्ष्यमाणा यतना ॥ २२१८॥

आह तिष्ठतु तावद् यतना, कथं पुनस्तासामसङ्घडमुत्पन्नम् १ इति ◄ तीवद् वयं जिज्ञासा-महे, ▷ उच्यते—तामिर्वास्तव्यसंयतीमिरागन्तुकसयत्यः पृष्टाः—आयीः ! किं यूयं यहच्छया भक्त-पानं रुमध्वे न वा १ इति, ताः प्राहुः—

चुण्णाइ-विटलकए, गरहियसंथवकए य तुव्भाहि । ताइँ अजाणंतीओ, फर्व्वीहामी कहं अम्हे ॥ २२१९ ॥

25

चूर्ण-वशीकरणादिफलं द्रव्यसयोगरूपं तेन आदिशब्दाद् ज्योतिष-निमित्तादिना च विण्टलेन छते-भाविते, तथा गर्हितः-पूर्व-पश्चात्सम्बन्धरूपो य. संस्तवः-परिचयस्तेन वा छते-भाविते युष्माभिः क्षेत्रे 'तानि' चूर्णादीनि कर्त्तुमजानानाः कथ वयमत्र ''फब्बीहामो'' ति -्र देशीप-दत्ताद् ⊳ यहच्छया भक्त-पानं लभामहे ।। २२१९॥ वास्तव्यसयत्यः प्रतिवृवते— 30

सेणाणुमाणेण परं जणोऽयं, ठावेइ दोसेमु गुणेसु चेव । पावस्स लोगो पिंडहाइ पावो, कल्लाणकारिस्स य साहुकारी ॥ २२२० ॥

, 'स्नेन' न्वकीयेनानुमानेन 'परम्' अन्यम् आत्मव्यतिरिक्तम् 'अयं' प्रत्यक्षोपरुभ्यमानो जनो द्योपेषु गुणेषु च स्थापयति, अविद्यमानानामि तेषां तत्राव्यारोपं करोतीति मानः । एतदेव व्यक्तीकरोति—'पापस्य' पापकर्मकारिणो जनस्य लोकः सर्वोऽपि पापः प्रतिमाति, कल्याण-कारिणः पुनः सर्वोऽपि साधुकारी ॥ २२२० ॥ ततश्च—

नृणं न तं वहृद्द जं पुरा मे, इमिम्म खेत्ते जह्मावियम्मि । अवेयत्रज्ञाण जतो करेहा, अम्हाववायं अह्पंडियाओ ॥ २२२१ ॥

'नृतं' निश्चितं यत् कुण्टल-विण्टलं पुरा "मे" मवत्यः कृतवत्यस्तदत्र क्षेत्रे यतिमाविते न वर्तते कर्त्तुम् । कुत एनद् ज्ञायते यद् वयं कुण्टल-वेण्टलं कृतवत्यः ? इति चेद् अत आह—'अपेतवाच्यानां' वचनीयतारिहतानां यत एवं य्यम् 'अतिपण्डिताः' अतीव दुर्विदग्या 10 अस्माकम् 'अपवादृम्' असहोपोद्धोपणं कुरुष ॥ २२२१ ॥

इत्थमसङ्खें उत्पन्न किं कर्चव्यम् ? इत्याह—

तत्थेव अणुवसंते, गणिणीइ कहिंति तह वि हु अठंते । गणहारीण कहेंती, सगाण गंत्ण गणिणीओ ॥ २२२२ ॥

यदि तत्रेव परस्परमुपशान्तं तदसङ्गढं ततः युन्द्ररमेव । अथ नौपशान्तं ततः 'गणिन्याः' १८ त्रस्याः स्वस्याः प्रवर्तिन्याः कथयन्ति । यदि न कथयन्ति तत्रश्चतुर्गुरवः । ततः प्रवर्तिन्यौ मशुर्या गिरा प्रज्ञाप्योपशमयतः । तथापि 'अतिष्ठति' अनुपरते 'द्वे अपि' गणिन्यौ गत्वा स्वेषां स्वेषां गणधारिणां कथयतः । यदि न कथयतस्ततश्चत्वारो गुरुकाः ॥ २२२२ ॥

च तंतः प्रवर्तिन्या कथिते गणधरेण किं विधेयम् १ इत्यत आह—>
 उप्पन्ने अहिगरणे, गणहारिनिवेदणं तु कायव्यं ।

20 जह अप्यणा भणेजा, चाउम्मामा भवे गुरुगा ॥ २२२३ ॥

'अधिकरणे' असङ्घाडे उत्पन्ने सित प्रवर्तिनीमुखादाकर्ण्य तेन गणघरेण द्वितीयस्य गणघा-रिणो निवेदनं कर्तव्यम् । यदि स गणयर आत्मनव गत्वा द्वितीयगणघरसत्कां त्रतिनीं 'भणेत्' उपालम्मेत ततश्चनुर्मासा गुरुका मवेयुः ॥ २२२३ ॥ ४ ईंदमेव सविदोषमाह—⊳

> यतिणी वतिणि वतिणी, व परगुरुं परगुरू व जइ वइणि । जंपद तीमु वि गुरुगा, तम्हा सगुरूण साहेखा ॥ २२२४ ॥

यदि त्रतिनी त्रतिनी 'नरपति' उपालमते, त्रतिनी वा यदि 'परगुरुन्' अन्यसयतीगण-घरं नरपति, परगुर्खा यदि त्रतिनीं नरपति तत प्रतेषु त्रिप्तपि चतुर्गुरुकाः, तन्मात् सगुरुणां कथयेत्, उपलक्षणस्तात् स्त्रतिनीं चोपाल्यमेत ॥ २२२४ ॥

व्यथ परत्रतिनीमुपालम्ममानन्य को दोषः स्यान् ? इत्यत्रोच्यते—

20 - जाणामि दृमियं मे, अंगं अरुयम्मि जत्य अकंता । को वा एअं न गुणद, चारहिह कित्तिया वा वि ॥ २२२५ ॥

सा परत्रतिनी मण्यमाना त्रृयात्—जानाम्यहं यद् दृनं मत्रतामक्षरः, 'यत्र' यन्मिन् 'अरुपि'

१-२ 🗸 🗠 एतरम्नर्गतः पाटः भा॰ नाति ॥ 💈 ९त् अद्वे 'अ' भा॰ निना ॥

त्रैणे युष्मदीयसंयतीं प्रतिब्रुवाणया मया यूयमाकान्ताः, को वा एनमर्थं न जानाति ? कियतो वा ब्रुवतो निवारियप्यथ १ यद्यहं वारिता सती न जल्पिप्यामि तर्ह्यन्येऽपि जल्पिप्यन्तीति ॥२२२५॥ अपि च-

> निग्गंधं न वि वायइ, अलाहि किं वा वि तेण मणिएणं। छाएउं च पभायं, न वि सका पडसएणावि ॥ २२२६॥

नहि निर्गन्धं वायुर्वाति, किन्तु यादृशस्य वनखण्डादेर्मध्येन समायाति तादृगन्थसहित एव, एवं भवतामप्यस्या उपरि य ईदृशः पक्षपातः स न निःसम्बन्ध इति भावः । अथवा "अलाहि" चि अलमनेन वचनेनाभिहितेन, मर्मानुविधित्वात् । किं वा तेन भणितेन कार्यम् ? यतः प्रभातं सङ्गातं सद् न पटशतेनापि च्छादयितु शक्यर्स्। इत्थं तन्मुखाद् निर्गते असङ्गता-र्थेऽपि दूपणे जले पतिते इव तैलविन्दौ सर्वतः प्रसर्पति सूरीणां महान् छायाघातो जायते, स 10 च तत्त्वत आत्मकृत एवेति ॥ २२२६ ॥ अत्र दृष्टान्तमाह-

> मज्झत्थं अच्छंतं, सीहं गंतूण जो विवोहेइ। अप्पवहाए होई, वेयालो चेव दुज्जुत्तो ॥ २२२७ ॥

'मध्यस्थम्' उदासीनं तिष्ठन्त सिंहं गत्वा उपेत्य यः केश्चिद् 'विवोधयति' विशेषण-पार्षण-महारादिना बोधयति स विवोवितः सन् तस्यात्मवधाय भवति । वेताल इव वा दुप्पयुक्तो 15 यथा साधकमेवोपहन्ति, एवमियमप्याचार्येण प्रवोधिता सती तस्येव च्छायाघातसुपजनयति ॥ २२२७ ॥ यतश्चेवमतः—

> उपने अहिगरणे, गणहारि पत्रत्तिणि निवारेइ। अह तत्थ न वारेई, चाउम्मासा भने गुरुगा ॥ २२२८ ॥

उत्पन्नेऽधिकरणे गणधारी प्रवर्त्तिना निवारयति । अथ तत्र गणधारी न वारयति तत्रश्च- 20 द्यमीसा गुरुका भवेयुः । र्थतो गणधरौ द्वाविप मिलित्वा संयतीयतिश्रयं गत्वा यविर्तिनी पुरतः कृत्वा स्वस्वसयतीरुपशमयतः ॥ २२२८ ॥ तत्र वास्तव्यसयत्य इत्थमुपशाम्यन्ते---

> पाहुनं ताण कयं, असंखडं देह तो अलजाओ। पुन्वहिय इय अज्जा, उवालभंताऽणुसासंति ॥ २२२९ ॥

'प्राघुण्यम्' आतिथेयं 'तासाम्' आगन्तुकसंयतीना जोमन कृतम् यदेवंगरुजाः सत्योऽसङ्घड 25 'दत्थ' कुरुथ । पूर्वस्थिता आचार्याः सकीया आयी उपालममानाः 'इति' एवमनुशासते ॥२२२९॥

१ वर्णे यूयमाकान्ताः, युष्मदीयसंयतीं प्रतिव्ववाणायां मिय यद् यूयमहे वणप्रदेशे वा उपपीक्यमानेऽतीव दूना तद्दं सर्वमिष जानामीति भावः, को वा एन॰ भा॰ ॥

२ °रि खरतरः पक्ष° भा॰ ॥ ३ °म्? न किञ्चिदित्यर्थः, यतः भा॰ ॥ ४ °म्, किन्तु चलादेच तत् प्रकटीभवतीति । इत्यं महान् लाया° भा॰ ॥

५ कश्चिदात्मवेरिको 'वि° भा॰ ॥ ६ अतो गणधरेण क्रितीयगणधरं गृहीत्वा संयतीप्रति-थ्रयं गत्वा प्रवर्तिनीं पुरतः कृत्वा खखसंयतीनामुपशमनं कर्त्तव्यम् ॥ २२२८ ॥ गा॰ ॥

७ °वमज्ञाः सत्वो गा॰ ॥

आगन्तुक्संयतीनांसुप्रामनोपायः पुनर्यम्— एगं तासि खेर्चं, मलेह त्रिह्यं असंखडं देह । आगंत् इय दोसं, झर्वति तिक्खाइ-महुरोहं ॥ २२३० ॥

एकं तादत् 'तासां' वात्तव्यमंयतीनां सक्तं क्षेत्रं 'मल्यंश' विनाशयण, द्वितीयं पुनरसङ्घः 5 'दृत्य' कुल्य । आगन्तुका आचार्याः 'इति' एवं 'दोषम्' अविकृरणलक्षणं तीक्ष्ण-मष्टुरादिमि-वेचनेः ''झवंति'' ति विव्यापयन्ति, उपग्रनयन्तीति यावत् ॥ २२३० ॥ ततश्च-

अवराह तुलेलगं, पुञ्चवरढं च गणवरा मिलिया। बोहित्तमसागारिएं, दिंति विसोहिं समावेर्ड ॥ २२३१॥

हात्रिप गणवरें। सिक्टिजावपरावं 'तोल्यित्वा' यसा यावानपरावन्तं परस्परसंवादेन सन्यग् 16 निश्चित्य या पूर्वापराहा—पूर्वमपराहं यया सात्र्या तान् 'असागारिके' एकान्ते वोषयित्वा ततो हिनीयां तस्याः पर्श्वात् क्षमापयतः । अमापयित्य चोमयोरिप यथोचितां 'विद्योविं मायश्चितं प्रयच्छत इति ॥ २२३१ ॥ गतः प्रथमो मङः । अथ हितीयं मङ्गं विमावयिष्रराह—

अभिनिदुवार[ऽमि]निक्समणपवेसे एगवगढि ते चेव । सं इत्यं नाणत्तं, तमहं वोच्छं समासेणं ॥ २२३२ ॥

15 द्वितीयमङ्गो नाम यद् त्रामादिकच् अभिनिद्वारम्—अनेकद्वारम् अत एवामिनिष्क्रमण-अवेशं परनेकवगढं तत्र त एव दोग मवन्ति ये प्रथममङ्गे प्रोक्ताः । यन् पुनः 'अत्र' द्वितीयमङ्गे नानात्वं तद्हं वश्ये समासेन ॥ २२२२ ॥ प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—

नह चेव अन्नहा वा, वि आगया ठंति संजर्धेचे । मोह्यनाए मयणा, सेसं तं चेविमं चऽन्नं ॥ २२३३ ॥

20 'तथेद' 'सोट्या य समुद्राणं गच्छं झाणितु देखें छह ।" (गा० २१३४) इत्यादिना प्रथममङ्गोक्त्रकारेणेद अन्यथा दा संयतीक्षेत्र आगवाः सन्वतिष्ठन्वि । वत्र च सिवानां तेषां मोगिक्ज्ञाते मजना आर्था, यदि संयतीनां विचारचन्यादिमार्गे सिवात्ववो मदित मोगिक्जातम् अन्यथा तु न मद्यतिति मादः । 'दोषं' सदीमि प्रायक्षित्वादि 'तदेव' प्रथममङ्गोक्तं ज्ञातन्यन् । इदं च 'अन्यद्' अन्यव्कित्वारक्तर-दक्तमिवीयते ॥ २२३३ ॥

एना व होज साही, दाराणि व होज सपडिहुचाणि । पासे व मन्नजो वा, उचे नीए व घम्मकहा ॥ २२३४ ॥

तत्रानेक्द्वारे एकत्रगढे यानादे। साष्ट्र-सार्व्वाप्रतिश्रययोरका वा 'साहिका' गृहपिक्डिर्मवेत् । द्वाग्राणि वा परम्परं 'स्प्रतिस्त्वानि' अभिद्यन्तानि मनेष्टः । अथवा सार्व्वाप्रतिश्रयस्य पर्श्वतो वा मार्गतो वा रुचे वा नीचे वा साने स्थिता मनेष्टः । तत्र च स्थितानां वर्मकथां कोऽप्यश्चमेन अभावेन कुर्यादितिं निर्वृक्तिनाथाकैद्वेपार्थः ॥ २२३० ॥ अथ वित्तरार्थनाह—

(यन्यायन्- १००० । सन्यायम्- १६२२०)

१ 'चिक्रमित' ना॰ त॰ दे॰ छं॰ ॥ २ 'ति द्वारना भा॰ ट॰ दे॰ छं॰ ॥ ३ 'समा-सार्थः ॥ २२३४ ॥ अथ विस्तरार्थमिनिधित्सुराह ना॰ ॥

वइअंतरियाणं खळु, दोण्ह वि वग्गाण गरहिओ वासो । आलावे संलावे, चरित्तसंभेइणी विकहा ॥ २२३५ ॥

एकस्यां साहिकाया वृत्या अन्तरितयोः सयत-सयतीक्षपयोर्द्वयोरापि वर्गयोरेकत्र वासः 'गर्हितः' निन्दितः, तीर्थकरैः प्रतिकुष्ट इत्यर्थः' । यतस्तत्र संयत-सयत्योः कायिक्यादिन्युत्सर्जनार्थं निर्ग-तयोः परस्परम् 'आलापे' सक्चलपे 'संलापे' पुनः पुनः सम्भापणे सञ्जाते सति चारित्रसम्मे- इ दिनी विकथा वक्ष्यमाणरीत्या भवेत् ॥ २२३५ ॥ अथैकसाहिकायामेव दोपानाह---

उभयेगयरहाए, व निग्गया दहु एकमेकं तु । संका निरोहमादी, पवंध आतोभया वाऽऽसु ॥ २२३६ ॥

उभयं—संज्ञा-कायिकीरूपं तस्य एकतरस्य वा च्युत्सर्जनार्थं निर्गतयोः संयती-संयतयोरेकैकं दृष्ट्वा शक्का भवति । तथाहि—संयतः कायिक्यादिव्युत्सर्जनार्थं निर्गतः सयती दृष्ट्वा प्रतिनिवृत्तः, 10 पुनरिष कायिकी-संज्ञाभ्यामुद्धाध्यमानो निर्गतः, ततः संयती तं दृष्ट्वा शक्कां करोति—नृनमेष मां कामयते; एवं सयतस्यापि सयती प्रविश्वन्तीं निर्गच्छन्तीं च दृष्ट्वा शक्का भवति; अथवा लोकस्य शक्का भवति, यथा—एप एपा वा यदेवं पोनःपुन्येन प्रविश्वित निर्गच्छिति च तत्रृनमेनामेनं वा अभिलपतीति । निरोधो वा कायिकी-संज्ञ्योभवेत् । आदिशव्दादनागादपरितापनादिपरिग्रहः । कथायवन्धो वा वक्ष्यमाणलक्षणो भवेत् । तत्रश्चात्मसमुख्येन उभयसमुख्येन वा अ वाशव्दात् 15 परसमुख्येन वा अ दोषेण 'आशु' क्षिप्रं सयमविराधना भवेत् ॥ २२३६ ॥

कुमारप्रव्रजितस्य वा इत्थं कौतुकसुपजायते---

पैंस्सामि ताव छिदं, वन्न पमाणं व ताव से दच्छं। इति छिद्वेहि कुमारा, झायंती कोउहक्षेणं॥ २२३७॥

पश्यामि तावत् किमपि च्छिद्रम् येन 'वर्ण' गोरत्वादिक 'प्रमाणं वा' ञरीरोच्छ्यरूपं "से" 20 तस्याः—विवक्षितसयत्याः सत्कं तावदहं द्रक्ष्यामि इति कृत्वा च्छिद्रेः 'कुमाराः' अभुक्तमोगिनः कुतृहलेन 'ध्यायन्ति' अवलोकन्ते, ततस्तेषां प्रतिगमनावयो दोषाः ॥ २२३७ ॥

कथाप्रवन्धं व्याख्यानयति-

दुव्वलपुच्छेगयरे, खमणं किं तं ति मोहभेसज्जं । तह वि य वारियवामो, विलयतरं वाहए मोहो ॥ २२३८ ॥

'एकतरः' सयतः सयती वा दुर्वलो भवेत् । तत्र सयतं सयती प्रच्छति—किमेवं दुर्व-लोऽसि ?। स त्र्ते—क्षपणं करोमि । तत्र सयती पाह—'कि' किमर्थं 'तत्' क्षपणं ज्येष्ठा-र्येण कियते । सयतः प्राह—'मोहभैपज्य' मोहचिकित्सनार्थमोपधमिटमासेच्यते तथाप्यसो

१ °र्थः । कुतः ? इत्याह—तत्र संयतस्य कायिम्यादिच्युत्सर्जनार्थं निर्गतस्य संयत्या सह 'आलापे' सकृजन्पक्षे 'संलापे' पुनः पुनः सम्भाषणलक्षणे चारित्रसम्मेदिनी विकया भवेत् । एतदुत्तरत्र भाविषय्यते ॥ २२३५ ॥ अर्थकसाहिकाया दोषानुपद्र्शयति भा॰ ॥

२ °वति । कथम् ? इति चेद् उच्यते—सं भा•॥

३ ॰ प्तन्मध्यगत. पाठः भा॰ भो॰ हे॰ नास्ति ॥ ४ पेच्छामि ताव ता॰ चूर्णी न ॥

मोहो बारितः सन् वामः-प्रतिकृष्णे वारितवामः 'विकिकतरम्' अतिशयेन मां वावते ॥२२३८॥ मंयती प्रतिविक्ति--

> मृलतिगिच्छं न कृणह, न हु तण्हा छिजए विणा तीयं। अम्हे वि वेयणाञ्चा, खह्या एञा न वि पर्मती॥ २२३९॥

 म्लचिकित्सां युवं न कुरुण, निह तृष्णा 'नोयन्' उदकं विना छिद्यते, असामिरिपे 'एताः'
 ण्वंवियाः अपणप्रमृतिका वेदनाः 'न्वादिनाः' अमकृदानिविदाः परं तथाप्यसा मोहा न प्रशान्तः ॥ २२३९ ॥

> मोहिन्गआहुर्हानमाहि इंय वायाहि अहियवायाहि । घंतं पि विदसमत्या, चलंति किम्रु दुव्यलिव्हंया ॥ २२४० ॥

ग्रीहांग्नः 'आहुतिनियामिः' इतिष्यंत्रप्रक्षप्रक्रम्यामिः 'इति' एताहिमर्वाग्मिः अविक्रम्—अस्य-र्थम् अहिने वा—नरकादौ पादयर्नाति अविक्रपाटा अहितगता वा तामिः एवंवियामिः '' धंतं पि'' ति अतिरायेनापि ये छतिसमर्थान्तेऽपि 'चळिन्त' क्षुम्यन्ति, किं पुनः 'छतिदुर्वछाः' तथा-वियमानमावष्टनमविक्रकाः ? । एवं संयतीनि दुर्वछां प्रतात्येद्रमेव वक्तव्यम् ॥ २२४० ॥

गठमेका साहिकेति द्वाग्म् । अय स्प्रतिसुन्त्रानि द्वागर्गाति द्वारमाह—

15 सपडिदुत्रोरें उत्रस्तर्ष, निग्गंशीणं न कर्पाई वासी । दहुण एकमेकं, त्ररित्तमामुंडणा सक्ती ॥ २२४१ ॥

'सप्रतिद्वार' अभिनुत्तद्वारयुक्तं निर्धन्यानानुपाश्रयं दिचमाने मावृतां न करपेने वासः । यदि वमन्ति तत्तत्तत्रामिनुतद्वारयोत्त्याश्रययोः 'एककम्' अन्योऽन्यं दृङ्घा चीरित्रश्रया संयती-मंयत्रयोः 'सद्यः' तत्त्रणादेवोषज्ञायने ॥ २२४१ ॥ किञ्च—

घम्मस्मि पवायद्वा, निंता दहुं पराप्यरं दो वि ।

लजा विसंति निंति य, नंका य निरिक्खण अहियं ॥ २२४२ ॥

श्री-मकार्ड "घर्मिम" ति विसक्तिव्यत्ययाद् घर्मेणोद्दाध्यमानः संयतः प्रवानार्धं यहि-र्निर्गच्छति, संयत्यप्येवं निर्गच्छति । तनो हावित परस्तरं हङ्ग छज्ज्या सूयः प्रविद्यतः, तनः संयतः प्रविष्ट इति हत्ता संयत्ता स्योऽित निर्गच्छिति, एवं संयतोऽित । तन एवं हिर्नायं १५ तृनीयं वा वारं निर्गच्छतोः प्रविद्यतेश्व श्रद्धा मद्यति—नृत्तेष एषा व मामभिषार्यित । एकाष्रया च दृक्षा निरीक्षणेऽिषकं शृहा मदेन् ॥ २२७२ ॥

वीसत्यञ्चाउडञ्ज्ञीचरंनणे होह लज्जवेच्छेरो । ने चेव तत्य दोसा, आलाबुह्धावमादीया ॥ २२४३ ॥

अभिनुस्तहारप्रयुक्तयोर गश्रययोः विश्वर्षे। सन्ते। संयत्।-भंयते। कटाचिद्पादृते। भवतः । तत ४८एवमन्योन्यदर्शने छज्जाया व्यवच्छेदो मदति । ततश्च तत्राखदेगद्वायोद्यये। दोपास एव मन्दव्याः ॥

१ "वरित्तमाष्ट्रंडण ति चार्त्प्रबंबना नदो मन्ति ।" इते चूर्णी विशेषचूर्णी च ॥

२ "अहतं ति सनर्न" इति चूर्णा ॥ ३ °न्यं-परस्परं दर्श व ॰ डे॰ ड ॰ ॥

४ °प-चारित्रविरोधिकथाद्यो दो° त० ६० इा॰ ॥

गतं द्वाराणि वा सप्रतिमुखानीति द्वारम् । अथ पार्श्वतो वा मार्गतो वेति द्वारं भावयति— एमेव य एकतरे, ठियाण पासम्मि मग्गओ वा वि । वङ्अंतर एगनिवेसणे य दोसा उ पुन्युत्ता ॥ २२४४ ॥

एवमेव संयतीप्रतिश्रयस्थैकतरिसन् पार्श्वे 'मार्गतो वा' प्रष्ठतो वृत्यन्तरे एकसिन् निवेशने वा स्थितानां दोपाः 'पूर्वोक्ताः एव' आलाप-सलापादयो मन्तव्याः ॥ २२४४ ॥

अथोच-नीचद्वारं भावयति-

उचे नीए व ठिआ, दहुण परोप्परं दुवग्गा वि ।

संका व सईकर्णं, चरित्तभासंडणा चयई ॥ २२४५ ॥

उच्चे नीचें वा स्थाने स्थितो 'द्वाविष वर्गों' साधु-साध्वीलक्षणो भवेताम्, तैत्र साधुः साध्वी वा परस्परं दृष्ट्वा 'किमेप [एषा वा] मामिभधारयति ' इति शङ्कां वा कुर्यात्, स्मृतिकरणं 10 वा मुक्तभोगिनाम्, चारित्रस्य वा त्रंशना ब्रह्मव्रतिवराधनया भवेत्, "चयइ" ति सर्वथैव वा सयमं त्यजित, अवधावनं कुर्यादित्यर्थः ॥ २२४५ ॥ इदमेवोच्च-नीचपदद्वयं व्याच्छे—

माले सभावओ वा, उचम्मि ठिओ निरिक्खई हेट्टं । वेट्टो व निवको वा, तत्थ इमं होइ पच्छित्तं ॥ २२४६ ॥

कढाचित् ते सयताः 'माले' द्वितीयभूमिकादो स्वभावतो वा उच्चे देवकुलाटो स्थिता भवेष्ठः, 15 संयत्यस्तु तद्विपरीते नीचे, ततोऽसौ र्तंत्रोर्द्धस्थित उपविष्टो वा 'निपन्नो वा' त्वग्वितंत इत्यर्थः यदि सयतीमधस्ताद् निरीक्षते तत्रेदं प्रायश्चित्तं भवति ॥ २२४६ ॥

संतर निरंतरं वा, निरिक्खमाणे सई पकामं वा। काल-तवेहिं विसिद्धो, भिन्नो मासो तुयद्दम्मि॥ २२४७॥

'सान्तरं नाम' यद् विण्टिकया हस्तादिना वा उच्चो भृत्वा शिरः गरीरं वा उच्चेस्तरं कृत्वा 20 पश्यित । 'निरन्तरं नाम' विण्टिकादिक विना सभावस्य एव प्रेक्षते । तत्र त्वग्वर्तितः सन् निरन्तरं 'सक्चद्' एकवारं सव्यती पश्यित भिन्नमासो द्वाभ्यामि तपः-कालभ्या लघुः । त्वग्व- र्वित एव निरन्तरं 'प्रकामम्' असकृत् प्रेक्षते भिन्नो मासः कालगुरुस्तपोलघुः । अथ सभावस्यः प्रेक्षमाणस्ता न पश्यित ततः 'सान्तरं' विण्टिकामन्यद्वा किञ्चिद्वच्छीर्पके कृत्वा सकृत् पश्यिति भिन्नो मासस्तपोगुरुः काललघुः । सान्तरमेव प्रकामं प्रेक्षते भिन्नो मासो द्वाभ्यामि तपः-25 कालभ्यां गुरुकः । एवं त्वग्वर्त्तन कुर्वाणस्य भागितम् ॥ २२४७ ॥

एसेव गुरु निविद्वे, द्वियम्मि मासो लहु उ भिक्खुस्स ।

१ °ग्रतः स्थितानां चृत्यन्तरे एकसिन् वा 'निवेदाने' पाटके स्थिता ते दे कां ॥ २ अत्र मो वे के प्रत्यो प्रत्याग्रम् ५०० इति वर्तते ॥ ३ तत्र संयती-संयतौ पर भा ॥ ४ °यांताम्, स्मृ भा ॥ ५ °ना भवति, "चयद् ते संयमं वा सर्वधेव परित्यज्ञति, अवधावनं संयतः संयती वा कु भा ॥ ६ तत्र "िटओ" [ति] ऊर्म्स्यतः "त्रेट्टो य" ति उपविष्टः "निवन्नो व" ति निपन्नः—त्यग्व ते दे का ॥ ७ थर्तीं निरीक्षतं भिन्न ते दे का ॥

एकेक ठाण बुद्दी, चउगुरुअंतं च आयरिए ॥ २२४८ ॥

निविष्टो नाम—निपण्णस्तस्यापि प्रेक्षमाणस्य एप एव निरन्तर-सान्तरादिकोऽभिछापो वक्तव्यः, नवरं प्रायिश्वतं स एव भिन्नमासो गुरुकश्चतुर्ध्वेप स्थानेषु तपः-कालविशेषितस्त्रयेव कार्यः । स्थितो नाम-ऊर्द्धःसँग्लस्याप्येवमेवामिलापः, नवरं प्रायर्थितं रुवुमासखपः-कारुविदोपितः। 5 एवं भिक्षोः प्रायश्चित्तमुक्तम्, वृष्मोपाघ्यायाचार्याणां यथाकममेकेकस्थानवृद्धिः कर्त्तव्या याव-दाचार्यस्य चतुर्गुरुकम् । तद्यथा—र्हृपगस्य गुरुमिन्नमासादारव्यं गुरुमासे, उपाध्यायस्य मासल्घु-कादारव्यं चतुर्रुश्वेक, आचार्यस्य गुरुमासिकादारव्य चतुर्गुरुके निष्टामुपयातीति ॥ २२४८ ॥ एप प्रथम आदेशः । अथ हितीयमाह-

> दोहि वि रहिय सकामं, पकाम दोहिं पि पेक्खई जो उ। चडरो य अणुग्धाया, दोहि वि चरिमस्स दोहि गुरु ॥ २२४९ ॥

"टोहि वि" ति द्वाभ्यार्मिप नयनाभ्यां यिन्नरीक्षते तटरहितम्, रहितं तु यदेकेन छोच-नेन निरीक्षते । एतदुमयमपि प्रत्येकं द्विधा—सकामं प्रकामं च । तत्र सकाममेकद्यः प्रकाम-मनेकगः । ''दोहिं पि पेक्खई जो उ'' ति द्वाम्यामपि रहिता-ऽरहिताभ्यां सकाम-प्रका-माम्यां वा यः प्रक्षते तस्य चत्वारो मासा अनुद्धाताः 'द्वाभ्यामपि' तपः-कालाभ्यां विदोपिताः 15 प्रायश्चित्तम् । 'चरमन्य' चतुर्थमङ्गवर्तिनः 'द्वाम्यामपि' तपः-कालाम्या गुरुकाः कर्त्तव्याः । एपै निर्द्यक्तिगाथासमासार्थः ॥ २२४९ ॥ अथास्या एव भाष्यकृद् व्याग्यानमाह-

> पायिठओं दोहिं नयणिहि पिच्छई रहिय मोत्त एकेणं। तं पुण सई सकामं, निरंतरं होइ उ पकामं ॥ २२५० ॥

पाटाभ्यां सुवि स्थितो द्वाभ्यां नयनाभ्यां यत् प्रेक्षते तदरहितम्, यत् पुनरेकेन नयनेन 20'मुक्तवा' परित्यज्य निरीक्षतं तद् रहितम् । 'नत् पुनः' उभयमपि 'सक्नद्' एकवारं निरीक्षणं सकामम्, 'निरन्तरम्' अनेकशस्त्रदेव प्रकामं भवति ॥ २२५० ॥

> र्थहरूण समतलपादो, दोहिं वि रहिअं तु अग्गपाएहिं। इड्डालादी विरहं, एकेक सकामग पकामं ॥ २२५१ ॥

''अह्वण'' ति अथवा समतल्पानो यद् निरीक्षते तद् अरहितम्, यत् पुनरमपानाभ्या 25 द्वाभ्यामपि स्थिनो निरीक्षते नद् रहितम् । अथवा यदिङ्गल-लेप्टुकाद्यारूढः पश्यति तद् अरहि-तम्, तडपरं रहितम् । एतदरहितं रहितं च एकैकं सकामं प्रकामं च मन्तव्यम् ॥ २२५१ ॥

१ °स्थितस्तस्याप्येप एवामि मो॰ हे॰ निना ॥ २ °त्तं मासलघु तपः-कालविशेषितम् मा॰ ॥ ३ अभिषेकोपा° गा॰ ॥ ४ अभिषेकस्य गुरु गा॰ ॥ ५ °य उच्यते मा॰ ॥

६ °मपि पड़्यां स्थितो नयनइयेन यन्नि भा॰ । "टोहि नि ति पार्टेहिं दिनो णयणदुनेणं निरि-

क्यति" इति चूर्णा । "होहि पि ति पद्मा स्थितः नयनहयेनापि निरीक्षते" इति चिद्रोपचूर्णो ॥
७ °प पुरातनगा भाग तन हैन कांन् । "होहि विन् गावा पुरातना" इति चूर्णा विद्रोपचूर्णो च ॥
८ "शहवण समतलन्" गावा २२५१ "शहवण हचावेडन्" गावा २२५२ इति गायाह्रयं विद्रोपचूर्णो पूर्वापरकमविपर्ययेण व्याख्याताऽस्ति ॥

अहवण उचावेउं, कर-विंटय-पीढगादिसुं काउं। ताई वा वि पमोत्तं, रहियं विट्ठी पुण निसिक्तं।। २२५२।।

अथवा यदि सयता नीचै:प्रदेशे स्थिताः संयत्यस्तूचे ततः शिरः शरीरं वा 'उच्चियत्या' उच्चे:कृत्य यित्ररीक्षते, यद्वा करे—हस्ते विण्टिकायां पीठकादिपु वा शीर्षं कृत्वा यित्ररीक्षते तद् रहितम्; अथवा यत्यः उच्चे स्थिता यितन्यस्तु नीचे ततः करादिपु पूर्वन्यस्ते शिरिस अत्यु-ऽ चत्वादनवलोकमानो यत् 'तानि' कर-विण्टिकादीनि 'प्रमुच्य' उत्सार्य पश्यित तद् रहितम् । एतत् त्वग्वर्त्तनं कुर्वतो रहितमुक्तम् । ◄ ''विद्वो पुण निसिक्जं'' ति ▷ उपविष्टः पुनिनंपद्यां मुक्तवा यत् पश्यित तद् रहितम् । ◄ तद्विपरीतं त्रिष्विप स्थानेप्वरहितं द्रष्टव्यम् ▷ ॥२२५२॥

³दिहीसंबंधो वा, दोण्ह वि रहियं तु अन्नतरगत्ते । अप्पो दोसो रहिए, गुरुकतरो उनयसंबंधे ॥ २२५३ ॥

अप्पो दोसा रहिए, गुरुकतरा उमयसवर्थ ॥ २२५३ ॥ 10 अथवा 'द्वयोरपि' सयत-सयत्योर्यो दृष्टेः दृष्टेश्च सम्बन्धस्तदरहितम् । रहितं पुनरन्यतरगात्रे निरीक्षणम् । अत्र चारुपतरो दोपः 'रहिते' एकतरदृष्टिसम्बन्धे, अरहिते तृभयदृष्टिसम्बन्धे गुरुकतरो दोपः ॥ २२५३ ॥ अत्र प्रायश्चित्तमाह—

दोहिं वि अरहिय रहिए, एकेक सकामए पकामे य ।
गुरुगा दोहि वि लहुगा, लहु गुरुग तवेण दोहिं पि ॥ २२५४ ॥ 16

द्वाभ्यार्मेषि नयनाभ्या निरीक्षणिमत्यादिक यदनेकविधमरहितं भणितं (गा० २२४९ आदि) तत्र सकामे चत्वारो गुरवः 'द्वाभ्यामिष' तपः-कालाभ्या लघवः, तत्रेव प्रकामे चत्वारो गुरवः तपोलघुकाः । रहिते तु सकामे चतुर्गुरुकाः तपसा गुरवः, तत्रेव प्रकामे चतुर्गुरुवो द्वाभ्यामिष गुरवः। यन्तु दृष्टिसम्बन्धरूपमरहितम् अन्यतरगात्रनिरीक्षणरूपं तु रहितं व्याख्यातं तत्रेवं प्रायश्चित्तयोजना—रहिते सकामे चतुर्गुरु उभयलघुकम्, प्रकामे चतुर्गुरु कालगुरुकम्, अरहिते प्रकामे चतुर्गुरु उभयगुरुकम् ॥ २२५४॥

एकेकाउ पयाओ, साहीमाईसु ठायमाणाणं । निकारणष्ट्रियाणं, सन्वत्थ वि अविहिए दोसा ॥ २२५५ ॥

अरहित-रहित-सकाम-प्रकामिनरीक्षणानामेकैकसात् पदात् साहिकायाम् आदिगट्यात् स-प्रतिमुखद्वारेषु पुरतो वा मार्गतो वा उच्चे वा नीचे वा सर्वत्रापि निष्कारणे तिष्ठता कारणे वा 25 'अविधिना' अयतनया स्थितानाममी दोपा मवेयुः ॥ २२५५ ॥

१-२ ๗ ⊳ एतदन्तर्गत. पाट भा० नास्ति ॥

३ एतस्या गाथायाः प्राग् चिशेपचूर्णो—"दोहि वि शरहिय रहिए॰" इति २२५४ गायामगाना गाया धाधिका वर्तते । अत्र चिशेपचूर्णिरेयम्—"दोहि वि अरहिय॰ गाहा । टोर्ट् पाटेर्ट् भूगीए ठिएहिं सकामं णिरेक्टाइ ः दोहि वि लहुर्यं, भर पयाग निरिक्खइ ः कालग्रह नवलहु । टोर्ट्ट पाएटि भूगीरहिओ अग्गपदिहिं टाइकण वेटियाची वा विलग्गिकण सकामं पिरिक्टाइ ः तवगुरू वालग्रह, पनाम णिरेक्टाइ ः दोहि वि गुरुं।" इति ॥

ध °मपि यदरहितं तत्र गा॰॥ ५ °णे स्थिनानां कार° गा॰॥

दिद्वा अवाउडा हं, भयलजा थढ़ होज खित्ता वा । पडिगमणादी व करं, निच्छकाओ व आउमया ॥ २२५६ ॥

काचित् संयती विचारम्मा प्राप्ता सयतमागच्छन्तं दृष्ट्वा चिन्तवेत्—अहो ! अहं ज्येष्टा-यंणापावृता दृष्टा, ततः सा भयेन रूज्जया वा स्तव्धा क्षिप्तचित्ता वा भवेत् । यद्वां काश्चिदपा-ष्वृता दृष्टाः सत्यः 'कथममीयां पुरतः स्थास्यामः ?' इति कृत्वा प्रतिगमनादीनि कुर्युः । अथ-वा 'दृष्टं यद् दृष्ट्य्यम्' इत्यिममन्थाय 'निच्छकाः' निर्रुज्जाः काश्चिद् मवेष्टः । ततश्चारमसप्ट-त्थास्तदुमयसमुत्थाश्च दोषा मवन्ति ॥ २२५६ ॥ यदि वा—

> तासि कक्षंतर-गुन्झदेस-क्चच-उद्दै-ऊरुमादीए । निग्गहियदंदियस्स वि, द्हुं मोहो सम्रुजलित ॥ २२५७ ॥

10 'तासां' संयतीनां कक्षान्तर-गुद्यदेश-कुचोठरोक्ष्यमृतीन् अवयवान् दृष्ट्वा निगृहीतेन्द्रिय-स्यापि मोहः समुज्ज्ज्ञरुति ४ ^६किं पुनिरत्तरस्य १ इति № ॥ २२५० ॥

ततश्चामी द्या कामवेगा उत्पद्यन्ते-

चिंता य १ दहुमिच्छइ २, दीहं नीससइ ३ तह जरी ४ दाही ५ ।

भत्तअरोयग ६ मुच्छा ७, उम्मत्तों ८ न याणई ९ मरणं १० ॥ २२५८ ॥ १५ 'चिन्तीं नाम' घोचन्नास्ते १ द्रष्टुमिच्छति २ दीवं नि श्वसिति ३ तथा ज्वरो १ टाह. ५ भक्तस्यारोचकः—अरुचिः ६ मूर्च्छा ७ उन्मत्तः सञ्जायते ८ न जानाति किञ्चिदपि ९ मरण-मुपनायते १० ॥ २२५८ ॥ एनामेवं निर्मुक्तिगाथां विष्टुणोति—

पढमें सोयह वेगे, दहुं तं हच्छई विद्यवेगे । नीससह तद्यवेगे, आरुहद जरो चउत्थम्मि ॥ २२५९ ॥ डब्झद पंचमवेगे, छद्वे भत्तं न रोयए वेगे । सत्तमगम्मि य ग्रच्छा, अहुमए होइ उम्मत्तो ॥ २२६० ॥ नवेमें न याणद किंची, दसमें पाणेहिं मुचई मणूसो । एएसि पच्छित्तं, वोच्छामि अहाणुष्ट्यीए ॥ २२६१ ॥

प्रथमे शोचित वेगे—हा ! कथं तया सह सम्पत्तिर्भविष्यति ? इति विचिन्तयतीत्यर्थः १। 25 द्र्ष्टुं तां पूर्वेदृष्टां पुनर्रपाच्छिति द्वितीयवेगे २ । निःश्वसिति तृर्तायवेगे दीर्घावि श्वासान् मुच्चति २ । आरोहित ज्वरश्चतुर्थं ४ । दह्यतेऽद्गं पञ्चमवेगे ५ । पष्टे भक्तं न रोचते वेगे ६ । सप्तमे वेगे मूर्च्छा ७ । अष्टमे उन्मत्तो भवति ८ । नवमे न जानाति किञ्चिद्रि, निश्चेष्टो

१ ° द्वा 'द्दपा तायदहर्मेतरपावृता, यतः कथममीपां पुरतः स्थासामि ?' इति विचिन्त्य प्रतिगमनादीनि कुर्यात् । अथ भा । ''बहुवा एएहि बहु अपाटटा विद्वा किव एवेनि पुरक्षो टाइ-स्वामि ? पडिगमणाईगि करेंचा" इति विदेशपचुर्णो ॥

२ °का' निर्छज्ञा भवेत्। तत° मा॰ ॥ ३ °रएवमा° का॰ ॥ ४ ४ ० एतटन्तर्गतः पाटः मा॰ मो॰ छे॰ नान्ति ॥ ५ चिताइ १ द् ° त॰ छे॰ कां॰ ता॰ चूर्णो विशेषचूर्णो व । चितेइ १ द् ° मा॰ ॥ ६ चिन्तया शोच का॰ । चिन्तयित १ द्रष्ट ° मा॰ ॥ ७ °व गा॰ मो॰ छे॰ विना ॥

भवतीत्यर्थः ९ । दशमे वेगे प्राणैर्मुच्यते मनुष्यः १० । एतेषां दशानामिष वेगानां प्राय-श्चित्तं यथाऽऽनुपूर्व्या 'वक्ष्ये' अभिघास्ये ॥ २२५९ ॥ २२६० ॥ २२६१ ॥ तदेवाह—

मासो लहुओ गुरुओ, चडरो मासा हवंति लहु-गुरुगा। छम्मासा लहु-गुरुगा, छेदो मूलं तह दुगं च॥ २२६२॥

प्रथमे वेगे लघुको मासः । द्वितीये गुरुको मासः । तृतीये चत्वारो मासा लघुकाः । व चतुर्थे चत्वारो मासा गुरुकाः । पञ्चमे पण्मासा लघवः । पष्ठे पण्मासा गुरवः । सप्तमे च्छेदः । अप्टमे मूलम् । नवमेऽनवस्थाप्यम् । दशमे पाराञ्चिकम् ॥ २२६२ ॥

एकम्मि दोसु तीसु व, ओहावितेसु तत्थ आयरिओ । मूलं अणवहुप्पो, पावइ पारंचियं ठाणं ॥ २२६३ ॥

अथ मोहोदयेनैकः 'अवधावति' उत्प्रव्ञजित तत आचार्यो मूरुं प्राप्तोति, द्वयोरवधावतोरन-10 वस्थाप्यो भवति, त्रिष्ववधावमानेषु पाराञ्चिकं स्थानं प्राप्तोति ॥ २२६३ ॥

गतमुचनीचद्वारम्। अथ धर्मकथाद्वारमाह—

धम्मकहासुणणाए, अणुरागी भिक्खसंपयाणे य । संगारे पिडसुणणा, मोक्ख रहे चेव खंडीए ॥ २२६४ ॥

धर्मकथायाः श्रवणेन संयत्या अनुरागः सञ्जायते। ततः क्षिग्ध-मधुरभेक्षस्य सम्प्रदानं सयताय 16 कार्यित । ततः 'सङ्गारस्य' सङ्केतस्य प्रतिश्रवणं करोति । कः पुनः सङ्केतः ? इत्याह—
'मोक्ख रहे चेव'' ति अमुण्मिन् दिवसे रेथो हिण्डिप्यते तत्रास्माकं रक्ष्यमाणानां मोक्षो भविप्यति । "खंडीए" ति खण्डी—छिण्डिका तस्या वा द्वारमुद्धाटं रात्रो भविता, यद्वा दीर्घस्याद्यक्षिणिकत्वात् खण्डितं—श्रामण्यस्य खण्डना तयोः प्रतिसेवमानयोर्जायते । एपँ निर्युक्तिगाथासमासार्थः ॥ २२६४ ॥ अथैनामेव विवरीपुराह—

असुभेण अहाभावेण वा वि रित्तं निसंतपिंडसंते । वत्तेइ किन्नरो इव, कोई पुच्छा पभायम्मि ॥ २२६५ ॥

कोऽपि साधुरशुमेन वा भावेन यथाभावेन वा रात्रो 'निशान्तर्भितिश्रान्ते' अत्यन्तश्रमणादु-परते यद्वा निशान्तेषु-स्वेषु स्वेषु गृहेषु विश्रान्ते जने किन्नर इव मधुरया गिरा धर्मकथां काञ्चित् परिवर्त्तयति तद् आकर्ण्य संयत्यः प्रमाते प्रच्छन्ति ॥ २२६५ ॥ यथा— 25

कतरी सी जेण निर्सि, कन्ना णे पूरिया व अमयस्स । सी मि अहं अजाओ !, आसि पुरा सुस्सरी किं वा ॥ २२६६ ॥

"इदाणि धम्मकहि ति—तत्र पोरातना गाहा—धम्मकहा सुणणाए॰ गाहा।" इति विशेषचूणा ॥ ४ श्रितिशान्ते जने किन्नर इव धर्मकथां कुर्वन् मधुरया गिरा परिवर्त्तयति तद् आकर्ण्य संयत्या प्रभाते पृच्छा रुता ॥ २२६५ ॥ भा॰ ॥

१ °वणमनुदिनं करो॰ भा॰ ॥ २ 'रहः' एकान्तं भविष्यति तत्रासाकं रक्ष्यमाणानां मोक्षणं भविष्यति । ततश्च श्रामण्यस्य 'खण्डितं' सण्डनं जायते । गाथायां दीर्घत्वं प्रारु तत्वात् । एप संग्रहगाथासमासार्थः ॥२२६४॥ भा॰ ॥ ३ °प सह्वह्याा भा॰ त॰ उ॰ वा॰ । "स्वर्णि श्रमण्यति विकास प्रोमतना गाहा—धम्मकहा सण्णाए॰ गाहा ।" इति विशेषचर्णाः ॥

कतरोऽमी साबुर्येन 'निधि' गत्री कर्णाः "ण" यमाक्रमस्त्रस्य पृतिता इव इताः ? । स प्राह—सोऽहमिन आर्थाः ! 'पुन' पूर्वमहं सुन्तर और्य तद्येष्ट्या किं वा सीखर्यमिदानीं मम विद्यते ? ॥ २२६६ ॥ यतः—

> रुक्लासणेण मन्गो, कंठो मे उत्तसहपहत्रो य । संयुय कुटम्मि नेहं, दावेपि कए गुणो पुच्छा ॥ २२६७ ॥

क्लार्थनेनोच्यक्तेन एठतश्च में काठा मयनतो नेदानी तथा सुला इति । ततसदीयसी-ल्वेणानीवानुरिक्षतौ काठी पंथनी प्राह—'मंनुते' मानिते कुळे 'नहें' युतादिक्रमहं दाप-विन्यामि येन मवतां नरपाटबहुपनायने । ततस्त्रवाहने मिन 'पुनः' मुयोऽपि तं दुर्वछं हङ्गा प्रच्छा कृता, यथा—ज्येष्टार्थ ! क्रिनेवं दुर्वछो हङ्ग्में ! ॥ २१६७ ॥

10 एवं च कुर्वनेत्सयोः कि मक्ति ? इन्याह--

मंदंनणेण पीर्ट, पीर्ट्ड र्व्ट्ड वीमंभी । वीनंमाओ पणओ, पंचित्रहं बहुए पिम्मं ॥ २२६८ ॥

सन्दर्शनेनोमणेर्गा प्रथमनः प्रीतिस्त्रज्ञायने । नतः प्रीत्या 'गितः' चित्तविश्रान्तिः । रतेश्र 'विश्रन्मः' विश्वासः । विश्वासाच नियः क्रयादि हुर्वनोः 'प्रणयः' अशुमी रागी ज्ञयते । एवं 15'पञ्चविवं' पञ्जमिः प्रकारेः प्रम वर्द्धने ॥ २२६८॥ तत्रश्च म तया दुर्वस्य इति पृष्टो सूयान्—

वह वह क्रेंसि नेहं, नह नह नेही में वहह तुमिम ।

तेण निहित्रों मि बलियं, वं पुच्छिमि दुव्बलते नि ॥ २२६९ ॥ यया यथा 'करोषि' सन्यादयसि 'केई' वृत्रं तथा तथा मम स्विध केही बर्दते । 'तैन

च' केहेन 'निटतः' विडम्पितेऽम्पह्स् । यत् त्वं प्रच्छितः दुर्वछतः इति तदेतेन हेतुना २० दुर्वछोऽहस् ॥ २२६९ ॥ एत्सुके सा स्थात्—

> अमुगदिण मुक्त रहो, होहिह दारं व वीन्सिहिह रति । तह्या ण परिस्मह, उमयस्य वि इच्छियं एवं ॥ २२७० ॥

अनुमिन् दिने 'रथें:' रय्यात्रा मित्रता तसां मानु-सार्वाञ्जेषु गने वसाई रस्यमात्रानां मोक्षो मित्रचित्र, द्वारं वा छिन्डिकाया अनुक्यां रात्री 'वस्यते' ब्हमानकं मित्रचित तदा 25 'णे' आवयोहनयसारि ययेन्सिटमेटत् पृरिचतं ॥ २२७० ॥

एवं सङ्केतं प्रतिश्वस प्रतिसेवनां कृतंत्रोत्त्रयोः अपग्यस सण्डनं मवति, तनव 'मगन-तोऽहरु' इति कृता यद्यव्यवित ततः—

एराम्मि दोसु र्तासु व, औहार्वतेमु तत्य आयरिका । मूरुं अणवहुप्यो, पावइ पार्रचियं ठाणं ॥ २२७१ ॥

१ सम्, इदानीं तु न तथेति मावः १ २२६६ ॥ संयती बृते—किं वा कारणे येनेदानीं न तथा सुलरोऽसि ! संयतः शाह—सक्छा ना० ॥ २ शानेन सेहरहितमोजनेन दब त• दे० का० ॥ २ ता सती संय ना० ॥ ४ तिः आस्यावन्यनक्षा । रते ना० ॥ ५ रयो (रहो) रयं वा मविष्यति तदा असाकं ना० ॥ ६ हारं च रात्री ना० ॥

एकसिन्नवधावति मूलम्, द्वयोरनवस्थाप्यम्, त्रिप्वैवधावमानेषु पाराश्चिकमाचार्यः प्राप्तोति, कस्मात् तादृशे क्षेत्रे स्थितः ? इति कृत्वा । द्वितीयपदे एतेप्त्रिप स्थानेषु तिष्ठेत् ॥ २२७१ ॥ कथम् ? इत्याह—

> अद्भाणनिग्गयाई, तिक्खुचो मग्गिऊण पडिलोमं। गीयत्था जयणाए, वसंति तो अभिदुवाराए ॥ २२७२ ॥

अध्वनो निर्गताः आदिशब्दादशिवादिपु वर्तमानाः सहसैवैकवगडाकमैनेकद्वारं संयतीक्षेत्रं प्राप्ताः । ततस्तत्र 'त्रिकृत्वः' त्रीन् वारान् निरुपहतां वसतिं मार्गयित्वा यदि न प्राप्नवन्ति ततः 'प्रतिलोमं' प्रतीपक्रमेण गीतार्था यतनया 'अभिद्वारे' अनेकद्वारे संयतीक्षेत्रे वसन्ति । कः पुनः प्रतीपक्रमः ? इति चेद् उच्यते — यानि पूर्वमेकसाहिकादीनि धर्मकथापर्यन्तानि द्वाराण्युक्तानि तेषु प्रथमतो यस्यां धर्मकथाशब्दः साध्वीभिः श्रूयते तस्यां वसतौ वस्तव्यम् ॥ २२७२ ॥

तॅत्र चेयं यतना—

सिंगार वज वोले, अह एगो विजवाहऽणुर्च च। सहादीनिकांधे, कहिए वि न ते परिकर्हिति ॥ २२७३ ॥

धर्मकथां परिवर्त्तयन्तः शृङ्गाररसर्वेज 'वोलेन च' वृन्देन परिवर्त्तयन्ति यथैकस्य कस्यापि व्यक्तः स्वरो नोपलक्ष्यते । अथान्येन सह गुणयतस्तस्य न सञ्चरति तत एकोऽपि वैद्यपाठेन 15 गुणयति, खरवर्जितमिति भावः, तदिप 'अनुचं' नोचैस्तरेण शन्देन । अथ 'गुखरोऽयम्' इति ज्ञात्वा श्राद्धा आदिशव्दाद् यथाभद्रकादयो वा निर्वन्धं कुर्युः र्ततो यथाखरेण धर्म कथयति । ततः कथितेऽपि मधुरस्वरेण धर्मे प्रमाते सयतीनां प्रच्छन्तीनां न 'ते' साधवः परिकथयन्ति, यथा-अभुँकेनेत्थं धर्मः कथित इति । ईदृश्या वसतेरलामे उच्चे वा नीचे वा स्थातन्यम् ॥ २२७३ ॥ तत्रेयं यतना---20

कडओ व चिलिमिली वा, तत्तो थेरा य उच-नीए वा। पासे ततो नं उभयं, मत्तग जयणाऽऽउल ससद्दा ॥ २२७४ ॥ प्रैविशन्तो निर्गच्छन्तो वा यस्मिन् पार्श्वे परस्परं पश्यन्ति ततः कटकः वंशादिमयो घनो

१ त्रिपु पारा° मो॰ हे॰ विना ॥ २ °ध्वा-मार्गः ततो नि॰ मा॰ ॥ ३ °मिनहा° मा॰ ॥ ४ तत्र तिष्रतासियं यतना भा॰ ॥

५ °वर्जे परिवर्तयन्ति । तद्पि 'वोलेन' वृन्देन, न एकैकः परावर्त्तयतीत्यर्थः । अर्थेक पत्र कारणविशेषादसी भवेत् ततो वद्यपाठेन परिवर्त्तयति, सरवर्जित° गा॰ ॥ ६ ततो धर्मकथामपि मधुरया गिरा कुर्वीत, परं कथिते सति धर्म गा॰ ॥

७ °मुकेन धर्मकथां फुर्चता इत्यं मधुरखरेण परिवर्त्तितमिति ॥ २२७३ ॥ ईटइया षसतेरलामे यत्रोचे वा नीचे वा स्थातव्यं भवति तत्रेयं यतना गा॰ ॥

८ नो उ° भा॰ ता॰ विना॥

९ कटको चंशादिमयस्ततो घनो टीयते यथा प्रविशन्तो निर्गच्छन्तो वा परस्परं न परणन्त । अथ कटको भा॰। "कडतो ततो घणो दिनति जवा अतित जिता परोष्परं प पेन्छी।" इति चूर्णी विशेषचूर्णी च ॥

दीयते। अथ कटकोन प्राप्यते तदा चिलिमिली वस्त्रमयी दातच्या, स्विराश्च तनस्तिस्त पार्श्व तिष्टन्ति, संयतीनां तु शुक्तिकाः। एवमुच-नीचे यतना। अथोच-नीचमिष न लम्यते ततो येत्र पार्थतो वा मार्गनो या प्रतिश्रयस्त्रने तिष्टनां यनना—कायिक्यादिख्युत्मर्जनार्थं निर्गच्छन्तो यत्र परस्परं परयेयुः 'ततः' नसां दिशि 'नोमयं' न मज्ञां न वा कायिकी व्युत्स्जन्ति। वतादशस्य स्विष्डलस्याप्राप्तो मात्रकेषु यनन्ते, अथवा आकुलाः सर्गव्दा वा तत्र वजन्ति, तदमावे सप्रतिमुखहारे तिष्टन्ति ॥ २२७२॥ तत्र चेयं यनना—

पिद्दारकरण अभिमुह, चिलिमिलि वेला ससद् वहु निति । सिद्दार अनिद्दिसं, निती न य काद्यं नत्तो ॥ २२७५ ॥

यत्र द्वाराणि परस्परमिमुलानि तत्रान्यसां दिशि पृथग् द्वारं कुर्वन्ति । अथ न छम्यते10 इन्यसां दिशि द्वारं कर्तुं ततो द्वारं चिलिमिली नित्यबद्धा स्थापनीया करको वा अपान्तराले
दातव्यः, कायिक्याः संज्ञायाश्च वेलां परस्परं स्थापित्वा असद्दश्वेलायां निर्गच्छन्ति, 'सग्चव्याश्च' काशितादिशव्दं स्थापमनस्चकं कुर्यन्तो बह्दः 'निर्यन्ति' निर्गच्छन्ति । यत्रका साहिका
तत्रान्यसां दिशि यस्य द्वारं नत्र प्रतिश्चयं तिष्ठन्ति । यत्रक्ष संयत्तीनां प्रतिश्चयस्ततः कायिक्या
न निर्गच्छन्ति, नासां वा कायिकीमृमिं न व्यजन्ति । एवं सज्ञामृस्यामिष दृष्टव्यम् ॥२२०५॥

कियद्वाऽत्र मणित्यने ?——

जन्यऽप्यतरा दोमा, जर्र्य य जयणं तरंति काउं जे । तस्य वसंति जयंता, अणुलेमं कि पि पडिलोमं ॥ २२७६ ॥

यत्रोपाश्रयेऽह्यदराः पूर्वोक्ता दोषा भवन्ति, यत्र च 'यतनां' यशोक्तां कर्तुं 'तरन्ति' शक्नु-वन्ति, ''ने'' इति पादपूर्णे, तत्रानुळोमं वा प्रतिकोमं वा किर्मध्येकसाहिकादिकं स्थानं प्रतीत्य 20यथोक्तनीत्या यतमाना वसन्ति, नात्र कोऽषि प्रतिनियमः किन्तु गीतार्थेनाल्पवहुत्वविद्ना भवितन्यमिति भावः ॥ २२७६ ॥ कथं पुनरस्पतरा दोषा मवन्ति ? इति उच्यते—

> आय-समर्णाण नाउं, किहि कप्पईा समाणयं वज्रे । बहुपाडिवेमियजणं, च खमयरं एरिसे होह् ॥ २२७७ ॥

आत्मनः श्रमणीनां च समावं दृढ्धमत्त्रादिकं ज्ञात्वा तथा यतितव्यम् । "किदि कप्पट्टि" 25 चि स्वविरश्रमण्यः क्षुद्धकाश्चोमयपार्श्वनः कर्त्तव्याः, वयसा ममानां च संयतीं सन्दर्शनादो

१ यत्र संयतीयसतेः पा° त॰ रे॰ झं॰ ॥ २ ° ब स्थातव्यम् । तत्र च तिष्ठतां यतना— ''पासे ततो न उमयं'' ति कायि° त॰ रे॰ झं॰ ॥

[ं] ३.ºतनया ब्युत्स्त्जनित । अथ्ये त॰ दे॰ का॰ । "अमित मत्तर्यु जर्गति, अववा आङ्गा जीते ससदा य" इति चूर्णी विदोषचूर्णां च ॥ ४ व्हाश्च काविक्यादिसुवं अज्ञ त॰ दे॰ कां॰ ॥

५ कायिकीसृप्तिं न नि॰ मैं० छे० निना ॥ ६ ९२थ च त्त॰ ता० ॥ ७ वर्षेकसाहिकादा-चल्पतरा दोषा मा० ॥ ५ 'किञ्जिद् अनिर्वारितं क्रमं प्रतीत्य 'यतमानाः' यथोकां यतनां कुर्वाणा वस्त॰ मा० ॥ ९ "व्याः । समानवयसां च संयतीनां सन्दर्शन-सम्माप्रणादि दूरतः परिहरणीयम् । यद्य बहुमातिवैशिकतनं च दृंदशे मा० ॥

दूरतो वर्जयेत् । यच गृहं वहुपातिचेशिकजनमीदशे प्रतिश्रयेऽवस्थानं 'क्षमतरम्' अतिश्रयेन युक्तं भवति, विजने तु विश्वस्ततया वहवो दोषा भवेयुरिति ॥ २२७० ॥

गतो द्वितीयभङ्गः । अथ तृतीयभङ्गमाह—

पडमैंसर वियरगो वा, वाघातो तम्मि अभिनिवगडाए । तम्मि वि सो चेव गमो, नवरं पुण देउले मेलो ॥ २२७८ ॥

तृतीयभङ्गो नाम अनेकवगडाकमेकनिष्कमणप्रवेशं च यामादि, तत्र च 'अभिनिवगडाके' अनेकवगडे एकद्वारे च क्षेत्रे पद्मसरो वा 'विदरको वा' गर्चा 'व्याघातः' व्याघातकारणं भैवेद् येनानेके निष्कमण-प्रवेशा न भवन्ति तिस्त्रिण स एव 'गमः' प्रकारः सर्वोऽिष ज्ञातव्यः । 'नवरं' केवलं पुनर्देवकुले 'मीलकः' दृष्टादिभिः कारणैः साधु-साध्वीनां सङ्गमो भवेत् ॥२२७८॥

कथम् ? इत्यत आह—

10

अंतो वियार असई, अज्ञाण हविज तह्यभंगिमा । संकिट्टगवीयारे, व होज दोसा इमं नायं ॥ २२७९ ॥

अनेकवगडाके एकनिष्क्रमण-प्रवेशे च ग्रामादी स्थितेषु साधु-साध्वीजनेषु आर्यिकाणामन्तः 'तृतीयभङ्गे' आपातासंलोकाल्ये विचारमूमेरसत्ता भवेत् ततो वहिनिर्गच्छन्तीनां सिक्कष्टविचा-रंमूमेदोंपा भवेयुः । संक्षिष्टविचारमूमी नाम एकद्वारतया अन्या संज्ञामूमिनी विद्यते अतः 15 संयता अपि तत्रैवायान्ति, आसन्ने वा परस्परं सज्ञामूमी, ५ तंतश्च निर्गमने प्रवेशे वा देवकुले मेलको भवेत् । ▶ इदं चात्र 'ज्ञातं' दृष्टान्त उच्यते ॥ २२७९ ॥

वासस्स य आगमणं, महिला कुड णंतगे व रत्तही । देउलकोणे व तहासंपत्ती मेलणं होजा ॥ २२८० ॥

कस्याश्चिद् महेलायाः कुसुम्मरक्तवसयुगलनिवसनायाः प्रथमप्रावृपि घटं गृहीत्वा जलाहरणार्थं 20 निर्गतायाः 'वर्षस्य' वृष्टेरागमनम् । ततोऽसौ महेला 'रक्तार्थिनी' रखनं रक्तं कुसुम्भराग इत्यर्थः तदिर्थिनी 'मा वर्षोदकेन पतता कुसुम्भरागो विलीयताम्' इति कृत्वा 'कुटे' घटे 'णंतके' वस्ने द्वे अपि प्रक्षिप्य स्वयमपावृतीभ्य कापि देवकुले प्रविष्टा । तस्य च कोणके यावदसौ प्रविद्यति तांवत् तत्र कश्चिदगारः पूर्वप्रविष्ट आसीत् तेन सा अपावृता दृष्टा, जातश्च तस्य मोहोदयः, ततस्तेन सा युक्ता, दृष्टं च तदन्येः पुरुषेः । एवं तथासम्पत्त्या तथाविधवर्षपतनादिसमायोगेने- 25 कस्या एव विचारम्मेः प्रतिनिवृत्तयोः सयती-सयतयोरेकत्र देवकुलादो वर्पार्ववस्याणि परित्य-कंवतोर्मीलनं भवेदिति ॥ २२८० ॥ अथ तस्यागारस्य कि संवृत्तम् देवसाह—

गहिओ अ सो वराओ, वद्धो अवओडओ दवदवस्स । संपाविओं रायकुरुं, उप्पत्ती चेव कज़स्स ॥ २२८१ ॥

१ °सरो विरगो वा ता॰ ॥ २ भवेत्, तेन च व्यावातेनानेके भा॰ ॥

रे मो॰ हे॰ विनाडन्यत्र— ल्लको भवति ॥ २२७८ ॥ फथ^० त॰ छे॰ वा॰ । ^०लको भवति । पतदुत्तरत्र भाविषय्यते ॥ २२७८ ॥ अंतो भा॰ ॥

४ °धुपु आ° मो॰ हे॰ विना ॥ ५ ॰ ० एतन्मध्यगत पाठ भा॰ नालि ॥ ६ सा भुका भा॰ ॥

10

गृहीतश्च स वराको राजपुरुषः, बद्धश्च 'अवकोटकः' अवोर्नातक्वकाटिकः पश्चानसुर्त्तीकृत-वाहुगुग्छः, ''द्वद्वस्त'' ति कांत्रं सम्प्रापितश्च राजकुङमयम्, तत्र च प्रस्तुतकार्यस्योत्पत्तिः कारणिकः पृष्टा, तेन चागारण यथावस्थितं सर्वमिष तसुरतो विज्ञसम् ॥ २२८१ ॥ ततश्च—

> नार्णता वि य इत्थि, दोसवई तीऍ नाइवन्गस्स । पचयहेर्ड सन्यवा, करेंति आसण दिहेतं ॥ २२८२ ॥

'निह् महत्यिप बृष्टाद्युपद्रवे न्या निरावरणत्वं शिष्टानामनुमतन्' इति कृता न्यि दोपवर्तीं नानन्तोऽपि तस्याः सम्बन्धी यो ज्ञातिवर्गः—खजनसमुद्ययस्य मत्ययहेतोः 'सचिवाः' कारणिका अश्वेन दृष्टान्तं कुर्वन्ति ॥ २२८२ ॥ नमवाह—

वस्मिय कन्नह्य बलवा, अंगणमच्चे तहेव आसो य । बलवाऍ अवंगुणणं, कजस्स य छेट्णं भणियं ॥ २२८३ ॥

वर्म-छबुत्तनुत्राणिवरोषः, तद्याः सञ्जातिनिति वर्मिता, एव कविचताऽपि, नवरं कविच-महाँत्तनुत्राणिवरोषः, एवंविषा यथा काचिद् वडवा कत्यचिद् नृपत्यादेरहणमध्ये तिष्ठति, अश्वश्च त्रेथव, तत्त्तां दृष्ट्वा प्रयावितोऽपि वर्मित-कविचतां ता न प्रतिसेवितां शकोति । यदा तु तस्या वडवाया अपावरणं—वर्नादरपनयनं कियते तदा सुर्वेनव प्रतिसेवितामीष्टे । एविमयमपि 15 यद्यपादृता नामविष्यत् तत्तो नासा प्रत्यसेविष्यत इति । अत इयमेवापराविनीति तैः कारणिकैः 'कार्यस' व्यवहारस्य 'केदनं' परिच्छेदकारि वचो मणितमिति ॥ २२८३ ॥

> एवं ख़ु लोइयाणं, महिला अवराहि न पुण सो पुरिसो । इह पुण दोण्ह वि दोमो, सविसेसो संजए होइ ॥ २२८४ ॥

'एवम्' अनुना प्रकारेण 'ख़ः' अत्रवारण ठाँकिकानां महिला अपराधिनी संद्रता न पुन-20 रसी पुरुतः । 'इह पुनः' असार्क ठोकोत्तरे व्यवस्थितानां 'द्वयोरपि' संयती-संयतयोदाँपः, अपि च 'सविद्येषः' समिषको ठाँषः संयते मन्ति ॥ २२८४ ॥ ङ्वतः १ इति चेद् उच्यते—

ष्ठुरियुत्तरिओ वम्मो, ष्रुरिसे य विई ससत्तवा चेव । पेलव परव्झ इत्थी, फुंफुंग-पेसीऍ दिइंतो ॥ २२८५ ॥

'पुरुषात्तरः' पुरयप्रवाना यतः पारमेश्वरा धर्मः, पुरुषे च 'धृतिः' नानसलास्व्यरुष्ठणा 'स-25 सत्त्वता च' सत्त्वसन्यत्रता मदति, अतल्यस्य प्रतिसेवमानस्य सिवरोपो दोषः । स्री तु 'पेल्वा' निःमत्त्वा "परन्त्र" ति परवद्या च । अत्र च फुम्फुकंन पेत्र्या च दृष्टान्तः—यथा फुम्फुकः— कर्राषाग्निश्चालितः समृद्धियते एवं स्रावदोऽपि, यथा च पद्या सर्वस्वाप्यमिलपणाया एविमय-मिष । अतो न तस्याः समिवको दोष इति ॥ २२८५ ॥ आह् यदि संयतीनामन्तस्तृती-यमके विचारमृमिर्मन्त् ततः किं न वर्षते स्यातुन् ? उच्यते—

लह वि य होज वियारो, अंतो अज्ञाण तह्यसंगम्मि । तत्य वि विकिचणादीविनिग्गयाणं तु ते दोसा ॥ २२८६ ॥ यद्यार्थणणामन्तः 'तृर्तायमेहे' आपातानंत्येक्ट्युणे विचारो मवेत् तथापि विवेचना—

20

१ °फुस-पे° ता॰ ॥

टद्धरितमक्त-पानादिपरिष्ठापनिका तत्रमृतिषु कार्येषु विनिर्गतानां अ सौधु-साध्वीना परस्परिम-िलतानामेकद्वारे क्षेत्रे ⊳ 'त एव' पूर्वोक्ता दोषा मवेयुः, अतस्तत्रापि न वर्तते स्थातुम् ॥ २२८६ ॥ उपसंहरन्नाह—

एते तिनि वि भंगा, पढमे सुत्तिम जे समक्खाया। जो पुण चरिमो भंगो, सो विइए होइ सुत्तिम ॥ २२८७॥

एका बगडा एकं द्वारम् १ एका बगडा अनेकानि द्वाराणि २ अनेका वगडा एकं द्वारम् ३ एते त्रयोऽपि भङ्गा ये समाख्याताखे प्रथमे वगडाम्त्रे प्रत्येतव्याः । तच प्रागेव व्याख्यातम् । यः पुनः 'चरमो भङ्गः' अनेका वगडा अनेकानि द्वाराणीति लक्षणः स द्वितीये वगडास्त्रे द्रप्रव्यः ॥ २२८७ ॥ तचेदम्—

से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा अभिनिव्वगडाए अभिनिदुवाराए अभिनिक्खमण-प्यवेसाए कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए २—११॥

अथ प्रामे वा यावद् राजधान्यां वा 'अभिनिवगडाके' निपातानामनेकार्थत्वाद् अभि इति—अनेका नि इति—नियता वगडाः—परिक्षेपाः [यत्र, यद्वा] → 'अभि-नि'शब्दी पृथगर्थचीतकी द्रष्टव्यी, ततश्च पृथग्—अनेका वगडा > यत्र तदिभिनिवगडाकं तत्र । एवमिनिद्वारके-15 ऽभिनिष्कमण-प्रवेशके च कल्पते निर्श्रन्थानां निर्श्रन्थीनां च एकतो वस्तुमिति स्त्रार्थः ॥

अथ भाष्यम्---

एयदोसिवमुके, विच्छिन वियारथंडिलविसुद्धे । अभिनिन्वगड-दुवारे, वसंति जयणाऍ गीयत्था ॥ २२८८ ॥

एतै:—प्रथमसूत्रोक्तेदोंपैर्विमुक्ते विस्तीर्णे महाक्षेत्रे 'विचार-स्वण्डिलविद्युद्धे' यत्र भिक्षाचर्या 20 संज्ञामृमिश्च परस्परमपश्यतां भवति तत्रैवविधेऽभिनिवगडाकेऽभिनिद्वारे च सयतीक्षेत्रे यत-नया गीतार्था वसन्ति ॥ २२८८ ॥ ৺ कॅथम् ² इत्याह—>>

> पिहगोअर-उचारा, जे अन्भासे वि होति उ निओया । वीसुं वीसुं गुत्तो, वासो तत्थोभयस्सावि ॥ २२८९ ॥

ये 'अभ्यासे' मूलक्षेत्रप्रत्यासत्तो 'नियोगाः' यामा भवन्ति तेऽपि साधु-साध्वीनां पृथगगोत्तर-25 चर्याकाः पृथगुचारम्मिकाश्च परस्परं भवन्ति, आस्ता मूलप्राम इत्यपिशन्दार्थः। 'उभयस्यापि च' संयतानां संयतीनां च तत्र 'विष्वग् विष्वग्' पृथवपृथगुपाश्रये वासः प्रोक्त इति ॥ २२८९ ॥

अत्र नोदकः प्रेरयन्नाह—

तं नित्थ गाम-नगरं, जित्थयरीओ न संति इयरे वा । प्रणरिव भणामु रने, वस्सउ जह मेलण दोसा ॥ २२९० ॥

रै < > एतन्मध्यगतः पाठ भा॰ नाति ॥ २ °ट् 'श्रभिनि'शन्दः पृथगर्य, तनद्रा भा० ॥ रे < > एतम्बह्मगतः पाठ मो॰ हे॰ नान्ति ॥ ४ < ▷ एतन्मध्यगत पाठ नान्ति ॥

श्रामाश्च नगराणि चेति श्राम-नगरम्, तद् नान्ति श्राम-नगरं यत्र 'इतराः' पार्श्वसादिसं-यत्यः 'इतरे वा' पार्श्वस्थावयो न सन्ति, ततः पुनरिष वयं मणानः, यथा—अरण्ये 'उप्यतां' वासः क्रियतां यदि मीलनायामेवंविधा दोषाः ॥ २२९० ॥ सुरिराह—

दिइंतो प्रित्सपुरे, ग्रुरुंडद्तेण होह कायच्यो ।

🏮 🧪 जह तस्स ते असउणा, नह तम्सितरा मुणेयच्या ॥ २२९१ ॥

हष्टान्तोऽत्र पुरुषपुरे रक्तपटदर्शनाकीणं ग्रुरुण्डदृतेन भवति कर्तव्यः । यथा 'तस्य' ग्रुरुण्डदृतस्य 'ते' रक्तपटा अग्रक्तना न भवन्ति, तथा 'तस्य' साथोः 'इतराः' पार्थस्थ्यादयो ग्रुणितच्याः, ता दोषकारिण्यो न भवन्तीत्यर्थः ॥ २२९१ ॥ इत्मेव मावयति—

पाहिल प्रकंडदृने, पुरिसपुरं सचिवमेलणाऽऽवासी ।

10 भिक्ख असउण तहए, दिणस्मि रन्नो सचिवपुच्छा ॥ २२९२ ॥

पाटिलिपुत्रे नगरे मुरुण्डो नाम राजा । वदीयदूतस्य प्रुरुपपुरे नगरे गमनम् । तत्र सचि-वेन सह मीछनम् । तेन च तस्य आवासो दापितः । ततो राजानं द्रष्टुमागच्छतः 'मिझवः' रक्तपटा अग्रक्तना भवन्ति इति इत्या स दृनो न राजमवनं प्रविश्वति । ततस्तृतीय दिने राजः सचिवपार्थे प्रच्छा—किमिति दृतो नाद्यापि प्रविश्वति ? ॥ २२९२ ॥ तत्रश्च—

15 निग्गमणं च अमने, सच्मावाऽऽइक्तिवए मणइ दृयं । अंतो र्वाहं च रच्छा, नऽर्गहंनि इहं पवेसणया ॥ २२९३ ॥

अमात्यस्य राजमवनात्रिर्गमनम् । ततो दृतस्यावासे गत्वा सचिवो मिलितः । पृष्टश्च तेन दृतः—िर्क न प्रविद्यसि राजमवनम् । स प्राह—अहं प्रथमे दिवसे प्रस्थितः परं तद्यक्ति-कान् हृद्वा प्रतिनिद्यतः 'अपग्रङ्गा एते' इति कृत्वा, ततो द्वितीये तृतीयेऽपि दिवसे प्रस्थितः 20 तत्रापि तथेव प्रतिनिद्यतः । एवं सद्घावे 'आख्याते' कथिन सति दूतममात्यो भणति—एते इह रज्याया अन्त्रविद्यि नापग्रङ्गेनत्वमहीन्त । ततः प्रयेगना दृतस्य राजभवने कृता । एवम-साकमपि पार्थस्थादयम्तदीयसंयत्यश्च रज्यादा हृदयमाना न दोपकारिण्यो सवन्ति ॥ २२९३ ॥

अपि च— जह चेव अगारीणं, विवक्खबुद्धी जईमु पुट्युत्ता ।

तह चेव य इयर्राणं, विवक्तबद्धी सुविहिएसु ॥ २२९४ ॥

येथेव 'अगारीणार्मैं' अविरतिकानां पृत्तेम् ''आगंतुगदव्वविमृसियं'' (गा० २१७०) इत्यादिना यतिषु विपश्वुद्धिरुक्ता तथेव 'इनरासां' पार्श्वस्थादिसंयतीनां इस्त-पादघावनादिना विमृपितविग्रहाणां सुविहितेषु न्नानादिविमृपारहितेषु विपश्चबुद्धिर्मवतीति दृष्टव्यम्॥२२९४॥

॥वग डा प्रकृतं स सा प्र म्॥

[्] १ °जवचना° मो॰ छ॰ ॥ २ °क्कना गृहान्ते । ततः मा॰ ॥ ३ °म् चल्रा-ऽऽमरणादि-विभृषितानामविर° त॰ डे॰ कां॰ ॥

अ पा वृ त द्वा रो पा अ य प्र कृ त म्

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीणं आवणगिहंसि वा रच्छामु-हंसि वा सिंघाडगंसि वा चउकंसि वा चचरंसि वा अंतरावणंसि वा वत्थए १-१२॥

अथास्य सूत्रस्य सम्बन्धमाह-

पैयारिसखेत्तेसुं, निग्गंथीणं तु संवसंतीणं । केरिसयम्मि न कप्पइ, वसिऊण उवस्सए जोगो ॥ २२९५ ॥ एताहरोपु—पृथ्यवगडाकेषु पृथ्यद्वारेषु च क्षेत्रेषु निर्मन्थीना सवसन्तीना कीहरो उपाश्रये वस्तुं न कल्पते १ इति अनेन सूत्रेण चिन्त्यते, एषः 'योगः' सम्बन्धः ॥ २२९५ ॥

प्रकारान्तरेण सम्बन्धमाह—

10

5

दिद्वमुवस्सयगहणं, तत्थऽञ्जाणं न कप्पइ इमेहिं। बुत्ता सपक्खओ वा, दोसा परपिक्खया इणमो ॥ २२९६ ॥

दृष्टमनन्तरसूत्रे उपाश्रयग्रहणम् , तत्राऽऽर्याणामभीपु प्रतिश्रयेषु वस्तुं न कलपते इत्यनेन स्त्रेण प्रतिपाद्यते । उक्ता वा 'स्वपक्षतः' स्वपक्षमाश्रित्य सयतानां सयतीनां च परस्परं दोपाः, इटानी तु 'परपाक्षिकाः' गृहस्थास्त्रपरपक्षप्रभवा दोपा व्यावर्ण्यन्ते इति ॥ २२९६ ॥

[एवम्] अनेकेः सम्बन्धेरायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्यां—नो कल्पते 'निर्व्रन्थीनां' साध्वी-नामापणगृहे वा रथ्यामुखे वा शृङ्गाटके वा चतुष्के वा चत्वरे वा अन्तरापणे वा वस्तुमिति सूत्रसह्नेपार्थः ॥ अथ विस्तरार्थ प्रतिपदमभिधित्युः प्रायश्चित्तमाह—

आवणगिह रच्छाए, तिए चउकंतरावणे तिविहे ।
ठायंतिगाण गुरुगा, तत्थ वि आणाइणो दोसा ॥ २२९७ ॥
आपणगृहे रथ्यामुखे त्रिके चतुप्केऽन्तरापणे वा 'त्रिविधे' त्रिमकारे वध्यमाणसरूपे
◄ उँपरुक्षणत्वात् चत्वरे च ► तिष्ठन्तीनां सयतीना प्रत्येकं चत्वारो गुरुकाः प्रायिधतम् ।

जं आवणमञ्झम्मी, जं च गिहं आवणा य दुहओ वि। तं होइ आवणगिहं, रच्छामुह रच्छपासम्मि॥ २२९८॥

तत्राप्याज्ञादयो दोपा इष्टब्याः ॥ २२९७ ॥ आपणगृहादीना ब्याख्यानमार्हे-

23

१ गाधेयं चूर्णिसता विशेषचूर्णिसता च नान्ति व्यास्याता ॥ २ °रया—न फ° मो० ने० ॥ ३ ॰ ० ० एतन्मध्यमतः पाठः भा० त० डे० षा० नान्ति ॥ ४ एतदनन्तर चूर्णिसता "धावण रच्छिमोहे दा०" इति २३०२ गाया व्याव्यानाऽन्ति ॥ ५ जस्स च दुह्को वि आवणा सेति । तं भा० । एतदनुमारेण भा० टीका । स्राता पत्र ६५२ टिप्पणी १ ॥ б

10

15

यद् गृहम् 'आपणमञ्ये' समन्ताद्रापणेः परिक्षितम् अथवा मञ्यमागे यद् गृहं द्वाभ्यामपि च पार्थाभ्यां यस्त्रापणा मवन्ति तद् आपणगृहं भवति । रथ्यामुखं रथ्यायाः पार्थे मवति ॥२२९८॥ तच त्रिविधर्म्—

तं पुण रच्छम्रहं वा, वाहिम्रहं वा वि उमयतेंम्रहं वा । अहवा वक्तो पवहह, रच्छा रच्छाम्रहं तं तु ॥ २२९९ ॥

'तत् पुनः' गृहं रथ्यायाः पार्धे वर्चमानं रथ्याया अभिमुखं वा मवेद् 'विहर्मुखं वा' रथ्या तस्य पृष्ठतो वर्चते इत्यर्थः, 'टमयतोमुखं वा' यम्येकं द्वारं रथ्यायाः पराष्ट्रखमेकं तु रथ्याया अभिमुखमित्यर्थः, अथवा यतो गृहाद् रथ्या प्रवहति तद् रथ्यामुखमुच्यते ॥ २२९९॥

> सिंघाडगं तियं खलु, चडरच्छसमागमो चडकं तु । छण्हं रच्छाण जिहे, पबहा तं चचरं विती ॥ २२०० ॥

शृह्मादकं नाम यत् 'त्रिकं' रथ्यात्रयमीछनस्थानम् । कचित् त् सूत्रादर्शे ''तियंसि ना' इत्यपि पदं हस्यते, तत्रेनं व्याख्या—'शृह्मादकं' सिङ्घाटकाकारं त्रिकोणं स्थानम्, 'त्रिकं' रथ्यात्रयमीछकः । चतुष्कं तु चतम्यणां रथ्यानां समागमः । तथा यत्र पण्यां रथ्यानां 'प्रवहः' निर्गमस्तत् चत्वरं त्रुवते तीर्थकर-गणयराः ॥ २३०० ॥

अह अंतरावणो पुण, वीही सा एगओ व दुहओ वा । तत्य गिह अंतरावण, गिहं तु सयमावणो चेव ॥ २२०१ ॥

'अथ' इत्यानन्तर्ये । अन्तरापणो नाम 'वीर्या' हट्टमार्ग इत्यर्थः, सा 'एकतो वा' एक-पार्थन ''दुह्ओ व'' ति द्वान्यां वा पार्श्वाम्यां भवत् तत्र यद् गृहं तद् अन्तरापणगृहम् । र्यद् वा गृहं स्वयमेवापणस्तदन्तरापणः । किसकं भवति ?—यत्रेकेन द्वारण व्यवहियते द्वितीयेन 20तु गृहं तदन्तरापणगृहम् । एतेषु मितश्रयेषु संयतीनां न कस्यते स्थातुम् ॥ २२०१ ॥ अथैतेप्वेव तिष्टन्तीनी प्रायश्चित्तमाइ—

> आवण रच्छिगिहं वा, निगाइ सुर्वतरावणुजाणे । चउगुरुगा छछहुगा, छग्गुरुगा छेय म्लं च ॥ २३०२ ॥

थापणगृहं तिष्ठन्ति चतुर्गुरुकाः । रथ्यागृहं तिष्ठन्ति पड्लघवः । "तिगाइ" वि त्रिक-च-

र् नो॰ हे॰ विनाऽन्यत्र—'क्षितं तदापणगृहम्, यद् वा मध्ये गृहं "दुहतो वि' चि हाभ्यामिष च त॰ हे॰। 'क्षितं यहा यस गृहस्य डाभ्यामिष पार्श्वाभ्यामापणा भवन्ति तद् आप' मा॰॥ २ भ्म, तद्यथा—तं पुण त॰ हे॰॥

३ यस द्वारद्वयं रथ्यायाः पराद्युसमिमुकं चेत्यर्थः ना॰ ॥

४ तु "तियंति वा" इत्यपि पदं पठ्यते मा॰ ॥ ५ °णो जो तु मा॰ । शतित्तु °णो जो य इति पाग्रतुत्रारेण वर्तते, सम्प्रदां टिप्पर्णा ६ । चूर्णिकृताऽपि—°णो जो य इति पाट आस्ते।ऽति ॥

६ यहा "सयमावणो जो य" चि यद् गृहं स्वयमेवापणः । क्रिसु ना॰ ॥

७ °तुम् । अथ तिष्टन्ति नदा प्रागुक्तमेव चतुर्गुरुकार्यं प्रायश्चित्तं प्राप्नवन्ति ॥२३०१॥ अथात्रेव प्रकारान्तरेण प्राय^० त॰ दं॰ कां॰ ॥ ८ °नां प्रकारान्तरेण प्रा[°] भा॰ ॥

तुष्क-चत्वरेषु तिष्ठन्तीनां पद् गुरवः । "सुन्न" ति अपरिगृहीते शून्यगृहे अन्तरापणे वा च्छेदः। उद्याने तिष्ठन्तीना मूलम् । एवं भिक्षणीविषयमुक्तम् । गणावच्छेदिन्याः पड्लघुकादारव्यं नवमे तिष्ठति । प्रवर्त्तिन्याः पड्गुरुकादारव्धं प्रायश्चितं दशमे पर्यवस्यति । एतचापत्तिमङ्गीकृत्योक्तम् , अन्यथा सर्वासामपि मूलमेव सवति, परतः संयतीनां मायश्चित्तस्येवाभावात् ॥ २३०२ ॥

सन्वेसु वि चउगुरुगा, भिक्खुणिमाईण वा इमा सोही। चउगुरुविसेसिया खलु, गुरुगादि व छेदनिद्ववणा ॥ २३०३ ॥

 अथवा. 'सर्वेष्विप' आपणगृहादिपु > स्थानेपु चतुर्गुरुका अविशेषितं प्रायिश्चतम् । अयं च प्रकारः प्रागुक्तोऽपि सङ्ग्रहार्थमिह भ्योऽप्युक्त इति न पुनरुक्तता । № यदि वा भिक्ष-णीयभृतीनामियं शोधिर्द्रप्टन्या, ⊲ तँद्यथा—चतुर्गुरुकारतपः-कालाभ्यां विशेषिताः । तत्र ⊳ भिक्षुण्याश्चतुर्गुरुकमुभयलघु, अभिपेकायास्तदेव तपसा लघु कालेन गुरुकम्, गणावच्छेदिन्याः 10 कालेन लघु तपसा गुरु, प्रवर्त्तिन्यारतपसा कालेन च गुरुकम्। यदि वा वतुर्गुरुकादारभ्य च्छेदे निष्ठापना कर्चच्या, तद्यथा-भिक्षुण्याः सर्वेप्विप स्थानेषु चतुर्गुरुकम्, अभिपेकायाः पट्लघु-कम् , गणावच्छेदिन्याः पङ्गुरुकम् , प्रवर्त्तिन्याइछेदः ॥ २३०३ ॥

अथात्रेव दोपानुपदरीयितुं द्वारगाथामाह-

तरुणे वेसित्थि विवाह रायमादीसु होइ सइकरणं। इच्छमणिच्छे तरुणा, तेणा उवहिं व ताओ वा ॥ २३०४ ॥

 अंपणगृहादिपु खितानां साध्वीनां > तरुणान् वेश्यास्त्रीः विवाहं च दृष्टा राजाटीनां च दर्शने भुक्तभोगानां स्मृतिकरण भवति, इतरासां कौतुकम् । तरुणाँश्च प्रार्थयमानान् यदीच्छन्ति ततः सयमविराधना, अथ नेच्छन्ति तत उड्डाहादिकं कुर्युः । स्तेनाश्च तत्रोपिषं वा 'ता वा' आर्थिका अपहरेयुरिति द्वारगाथासमासार्थः ॥ २३०४ ॥ अथ विग्तरार्थ प्रतिपदमाह-

> चउहालंकारविजन्विए तहिं दिसस सललिए तरुणे। लडहपयंपिय-पहसिय-विलासगइ-णेगविहिकेट्टे ॥ २३०५ ॥

चतुर्दी—वहा-पुप्प-गन्धा-ऽऽभरणमेटात् चतुर्विधो योऽलद्धारस्तेन विकृवितान् अलहुतान् तरुणान् 'तत्र' आपणगृहादिषु दृष्ट्वा मोहोदयो भवतीति वाक्यशेषः । कथम्भृतान् ' 'सलिट-तान्' रुलितं नाम-हस्त-पादाङ्गविन्यासविशेपः, उक्तश्च--25

हस्त-पाटाङ्गविन्यासो, अ-नेत्रोष्टपयोजितः ।

सुकुमारो विधानेन, ललितं तत् प्रकीर्त्ततम् ॥ (नाट्य० अ० २२ १४)० २२) तेन सहितान् । तथा रुडगं-मनोजं प्रजल्पितं-प्रकृष्टवचन प्रहिततं-हारयं विरासध-स्वाना-SSसन-गमनाना, हम्त-भृ-नेत्रकर्मणा चेव ।

उत्पद्यते विशेषो, यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात् ॥ (नाट्य० ञ० २२ श्लो० १५) ३० इत्येवंलक्षणः गतिश्च-मुललितपदन्यामरूपा अनेकविधाश्च-गृता-ऽऽन्दोलनादिकाः क्रीडा येपां

१-२-३ • ० एतिबहमध्यनतः पाठः भा॰ नानि ॥

४ यहा भा॰॥

५ 🕫 🥍 एतन्मध्यमत पाठः भाव नानि ॥

ते तयावियात्तान्॥ २३०५॥ अथ वैद्याकीद्वारमाह—

दहुं विडिन्नियाओं, कुउडा घुत्तिहैं मंपरिगुडाओं।

विच्वाय-पहसियाका, आलिंगणमाह्या मोहो ॥ २२०६ ॥

'विक्षृत्रिताः' अङङ्कताः 'कुट्यः' नैर्राएयः वेस्यालिय इत्यर्थः 'वृत्तेः' पितेः 'सन्परिष्टताः' इ.सम्तर्जा विष्टिताः 'विञ्वोक्त्यद्वसिताः' विञ्वोको नाम—

द्षानामयीनां, यानाविसनानगवेसन्स्तः।

र्काणाननादरकृतो, विज्योक्षो नान विज्ञेयः ॥ (नाठ्य० थ० २२ स्टो० २१)

प्रहृपितं नाम-हासामियाना नसविद्येषः, अस च व्यकामितम्-

हासो हास्प्रकृतिः, हासे विकृताङ्ग-वेष-वेष्टान्यः।

ग्रेत विश्वेत परसाम्यः स च, मृहा की-तीच-बाङ्गातः ॥ (२० का० छ० थ० १५ छो० ११) ण्रेत विश्वेत प्रदेशित विश्वेत यामां ता विश्वेतक-प्रदक्षितवस्यः । गाधायां प्राकृतत्वाद् मतु-प्रस्वयंग्रेषः । एवंविवाः प्रगाहना दृश्च तासां चाछिक्रनादिकाश्रेष्टाः कियनाणा निरीक्ष्य मोहः महुद्दीप्यते ॥ २३०६ ॥ अय विवादहारनाह—

तत्थ चडरंतमादी, इव्मविवाहेमु वित्यरा रह्या ।

¹⁵ भृतियसयणसमागम, रह-आमादीय निच्चहणा ॥ २२०७ ॥

'तत्र' आरणपुँदादी सिटानां संग्तीनानिम्यित्रग्रेषु ये चतुरन्ताद्यो विस्तरा रिचताः, चतुरन्ते नाम चतुरिका, आदिसञ्जाद विन्तर-कल्या-तारणादिविवाद्यविन्तरपरिषदः, तथा यस्त्र स्पितानां—कादिमिरलङ्कृतानां सद्यानां समागनः, यच र्येन वार्ञ्यन वा आदिसञ्जात् सिवि-क्या वा 'निर्वद्यां' वजाः सर्वेद्यां असुरगृहे नयनं तद्वर्शने सुक्तमोगिनीनां स्मृतिकरणमसु20 क्रमोगिनीनां तु कौतुकसुण्दायते, ततः प्रतिगमनाद्यो दोषाः ॥ २३०७॥ अय राजद्वारमाह—

वलसम्रद्येण मह्या, छत्तसिया वियणि-मंगलपुरागा । दीमंति रायमादी, तन्य अतिना य निता य ॥ २२०८ ॥

महता बल्यस्ट्रियेन 'श्रतियन्तः' प्रतिश्चन्तः 'निर्यन्तो वा' निर्गच्छन्तः 'राज्ञादयः' राज्ञेश्वर-तच्यरम्हत्यन्तत्र दृश्यन्ते । क्रथ्यमृताः ! ''छत्तिययं' ति प्राष्ट्रने पूर्वापरिनपातस्मात्वस्तात् १८ मितं—श्चेतं छत्रं येषां ते सितच्छत्राः, तथा ''वियणि'' नि वार्ख्याजनिका महलानि—द्र्पण-पत्राक्षादीनि एतानि पुरोगाणि—पुरतागामीनि येषां राज्ञादीनां ते तथा ॥ २३०८ ॥

हारगाथायां ''रायनाद्यंसु'' (गा० २२०७) ति यद् आदिप्रह्मं कृतं तत्रुव्यनर्थनाह— ने निक्ति-चालि-मुह्वासि-जीविणो दिस्स अद्वियाऽणद्वी । होसुं में एरिसगा, न य पत्ता एरिसा इत्री ॥ २२०९ ॥

20 तान् पुन्यान् नैनि-त्राङि-द्यत्तत्रासि-त्रङ्घिनो दृष्टा मुक्तमोगिन्योऽमृतन् "पे" अलाक्तमर्पा-दृशाः पत्रय दृति म्यृतिम् 'दृतगम्तु' अञ्चक्तमोगिन्यो नान्नामिर्गदृशाः पृत्रे याता दृत्येत्रं कीतुकं

१ "बर्स्टओ रेर्ट बर्ट्योर्ग ईस्ड, तस्त्वारि पोनेहि सोमा क्रेस्ड" इति विद्यापसूर्णी ॥ २ वस्त्र मो॰ दे॰ ॥ ३ निखेयमृतिविद्यापाविद्याम् रुष्ट्रा मा॰ ॥

20

कुर्युः । तत्र नखाः-करजाः स्तिग्धा-ऽऽताम्रोत्तुङ्गतादिगुणोपेता येपा ते नखिनः, प्रशंसायामत्र मत्व-र्थीयः, यथा रूपवती कन्येत्यादिषु । एवं वालाः—केशास्ते स्यामल-निचित-कुञ्चितादिगुणोपेता येषा ते वालिनः । मुखवासैः—कर्पूरादिभिर्मुखस्य सौरभ्यापादनं तदस्ति येषां ते मुखवासिनः । जिह्ननः-वर्तुल-स्थूलजङ्घायुगलकलिताः। एते 'अर्थिनः' मैथुनामिलापिणः 'अनर्थिनो वा' यथामा-वेन समागच्छेयुः, तॉश्च दृष्ट्वा सुक्ता-ऽसुक्तसमुत्था दोषा भवन्ति ॥ २३०९ ॥

तानेव दर्शयति-

एयारिसए मोत्तं, एरिसयविवाहिता य सइ भुत्ते। इयरीण कोउहलं, निदाण-गमणादयो सर्ज ॥ २३१० ॥

एतादृशान् मुत्तवाऽसाभिर्दीक्षा गृहीता ईदशैर्वी सह विवाहिता वयमपि पूर्वमिति स्मृति-करणं भुक्तभोगिनीनाम्, 'इतरासाम्' अभुक्तभोगिनीनां पुनः 'कौतृह्रुं' कौतुकं भवेत्, तत्रधो-10 भयीपामि सद्यो निदान-गमनादयो दोपाः । निढानम्-'अस्य तपो-नियमादेः प्रभावाद् भवान्तरे ईंद्रशमेव पुरुषं रुभेय' इति रुक्षणम् , गमनं—खगृहं प्रति भूयः प्रत्यावर्त्तनम् ॥ २३१० ॥ अपि च-

> आयाणनिरुद्धाओ, अकम्मसुकुमालविग्गहधरीओ । तेसिं पि होइ दड्डं, वइणीओं समुन्भवी मोहे ॥ २३११ ॥

आदानानि-इन्द्रियाणि निरुद्धानि यासा ता निरुद्धादानाः, गाथाया व्यत्यासेन पूर्वापरनि-पातः प्राक्कतत्वात् । अकर्मणा-कर्मकरणाभावेन सुकुमारं-कोमलं वित्रहं-शरीरं धारयन्तीत्वक-र्मसुकुमारविग्रह्धराः । एवम्भूता त्रतिनीर्द्यद्वा 'तेपामपि' निख-वालिप्रभृतीना मोहस्य समुद्रवो भवति ॥ २३११ ॥ अथ "इच्छमणिच्छे तरुण" (गा० २३०४) ति पदं विवृणोति-

संजमविराहणा खलु, इच्छाऍ अणिच्छयं व वहि गिण्हे । तेणोवहिनिप्फन्ना, सोही मूलाइ जा चरिमं ॥ २३१२ ॥

यदि तत्रापणगृहादो तरुणान् अवभाषमाणान् इच्छति ततः सयमविराधना । अथ नेच्छति ततोऽनिच्छती वलादपि सयतीं वहिर्गृहीयुः । "तेणा उवहि व ताओ वा" (गा० २३०४) इति पदं व्याख्यायते—"तेणोवहिनिष्फन्ना" इत्यादि । शून्यगृहादिषु स्थिताना साध्वीनां न्नेना यशुपिमपहरेयुः तत उपिनिप्पन्ना शोधिः । तद्यथा—जघन्यमुपिमपहरन्ति पञ्चकम्, १५ मध्यममपहरन्ति मासिकम् , उत्कृष्टमपहरन्ति चतुर्रुषु । सयतीहरणे मूलदिकं चरम यादत् प्राय-श्चित्तमाचार्यस्य मन्तन्यम्, तद्यथा—एका संयतीमपहरन्ति मृलम्, द्वे अपहरन्त्यनवस्याप्यम्, तिस्रोऽपहरन्ति पाराध्विकम् ॥ २३१२ ॥

अथात्रेव प्रकारान्तरेण दोपान् दिवर्शयिषुराह निर्युक्तिकारः—

१ °जा विचन्ते येपां ते निसनः, सर्वेपामपि च ननाः सन्तीति विशेपणान्यधानुपपत्या सिन्धाताम्रोत्तुहतादिगुणोपेता विशिष्टा एव नना येपां ते न॰ दे॰ हा॰ ॥

२ °सः-पञ्चसीगन्धिकताम्बृलादिना मुगस्य भा॰ ॥ ३ °व भावयति भा॰ त॰ े॰ ॥ ४ °म् ॥ २३१२ ॥ विषे च—ओभावणा भा॰ ग॰ र॰ ।।

ओमावणा इंडवरं, ठाणं वेसित्यि-खंडरक्खाणं । टहुंसणा पवयणे. चरित्तमासुंडणा सख्तो ॥ २३१३ ॥

तत्र स्टितांनामण्डासना 'ङ्लगृहे' ङ्लगृहस्य मन्ति । वेद्याकीनां सन्दर्धानां स-आरहिङ्गाणां स्मानं तद्यपनगृहादि सवेद् । उद्यग्ना च प्रवचने । तथः सद्यक्षारित्राद् परिष्टं-व्यना चोपनायते ॥ २३१३॥ तत्र ङ्वनगृहस्याण्डासना साव्यते—आपनगृहादो स्थितासा हृद्य क्रिश्चद् तद्ययदातीनामन्तिके गस्ता दृष्यार्वे—

> ससिपाया वि मसंका, जामि गायाणि मित्रमेविस । इस्कुंसणीउ ना मे, दोनि वि पक्खे विश्वमिति ॥ २२१४ ॥

र्वैसं युमद्रीयपुत्र-लुगद्रोनां प्रयोश संस्थानामां गात्राप्ति 'स्रियाण स्रित' बन्द्रनरी-10वरोऽपि 'सर्रहाः' बन्द्रिता इव सन्तिपेतितन्तः, ताबेदानीनेवनापाण्याद्रादा वनन्त्यः "मे" सर्वतं 'कुल्स्यित्यः' कुल्मासिन्यव्यारिष्यः 'हावपि पक्षे' पेतृक-अग्रुर्द्धकव्यपो 'विवर्गयन्ति' विवासयन्त्रीत्यर्थः । एतं कुल्मुह्स्याकाद्यन स्वति ॥ २३१० ॥

क्षण "सानं वेस्थाई।-तण्डरमायाद" (गा० २३१३) इंति परं विद्ययोति— स्थिताइवाहिराणं, तं ठागं जत्य ता परिवसंति ।

15 इय सोउं दहुण व, सर्य तु ता गेहमाणिति ॥ २३१५ ॥

यत्र 'तः' अन्यः परिवसेनित तत्त विकादिवाद्यानां स्थानन् विकासः-विकासः आदि-श्रव्यान् वेद्यान्त प्रदार-विद-वृत्तवाद्यये ये बाह्यः-विशिष्टवत्यद्विर्वितः तेयां स्थाने यदि तिष्ठनित दक्तद्रायाः संदादकाः 'इति' एवं इतान्तं श्रुत्य दक्ष वा 'ताः' सन्वन्त्रिमंग्याः स्वकं गृहसानगन्ति, वटनत्या प्रवच्या यत्रेवंविष्ठे स्थाने वासे विकासने ॥ २३१५ ॥

९० अय ' उद्दर्शना प्रवचने'' (गा० २३१३) इति ' एउं व्यास्यानि—

र में है है हिन्द्रमार हों 'इलगुहें' पष्टीसम्योर्ख प्रसमेदात् इलगृहसारम्बातमा मनति। वेद्या दे है है । दे हमां यन स्थानं तनापात्रये वहनो होपाः। स्दर्भमा प्रव-चनसा तथा न । दे में है है हिन्द्रमार हो। एप हारमायासक्षेत्रार्थः ॥ २२१३॥ सर्थ-नामन निवृद्योति सक्तिपा न । 'ते। एपा हारमाया ॥ २२१३॥ सर्थयमेव स्थाल्या-यते ह इल दे है । ४ दि। किम् १ इति सत साह सक्ति दे है । ॥ ५ 'सेने इं ट ॥ ॥

६ शिश्रपादा अपि 'सराद्धाः' चित्रता यासां गात्राति 'संशयवन्तः' सेवां इतवन्त इस्रयेः । इयमत्र मावना—इंदरोन महता प्रयक्षेत पूर्वमगारवासे संरत्यमाणा आसन् यथा चन्द्रमर्श्वचयोऽपि तद्देशु न निःशद्धं लगन्ति स । ताखेदानीसेवमापणगृहाद्दी संवसन्तः 'इल्स्ट्रिस्यः' इल्मालिन्यत्रारिण्यः 'द्वाविष पस्तां पेनुक-श्वशुरणस्लस्णां 'विष्यप्यन्ति' विनाशयन्तीलयः । २३१४॥ गतम् 'वपन्नाजना इलगृहस्य' इति द्वारम् । सर्य 'सानं वेदयास्त्री-खण्डरस्राणाम्' इति द्वारमाह—ना०॥

७ 'ति डारमाह म॰ द॰ हे॰ ॥

८ है। नाम-चेऽगन्यगमनाद्यपराघकारिन्देन च्छित्रहत्त-याद्नालाद्यः कृताः. व्यद्धि-राष्ट्राद् यृतकाराद्यो ना० ॥ ९ ति हारमाह—ना० द० है० ॥

25

पेच्छह गरिहयवासा, वहणीउ तवीवणं किर सियाओ । किं मने एरिसओ, धम्मोऽयं सत्थगरिहा य ॥ २३१६ ॥ साहृणं पि य गरिहा, तप्पक्खीणं च दुजजो हसइ । अभिम्रहपुणरावत्ती, वचंति कुलप्पस्याओ ॥ २३१७ ॥

तास्तत्रापणगृहे दृष्ट्वा कश्चिद् त्र्यात्—पश्यत भो छोकाः । यदेवं 'गर्हितवासाः' गिष्टजन-5 जुगुप्सिते स्थाने स्थिता त्रतिन्यस्तपोवनं किल 'श्रिताः' आश्रितवत्यः, कि मन्ये एतत्तीर्थकृता ईह्जोऽयं धर्मो दृष्टः ! इत्येवं शास्तुः—तीर्थकरस्य गृही भवति ॥ २३१६ ॥

साधूनामि च गर्हा जायते—अहो ! सदाचारविहर्मुखा अमी ये स्वकीयाः सयतीरित्यम-स्थाने स्थापयन्ति । तथा तत्पक्षिकाः—साधुपक्षवहुमानिनो ये श्रावकास्तेषा च पुरतः 'दुर्जनः' मिथ्यादृष्टिलोकः 'हसति' उपहास करोति । याश्च प्रवज्यायामिममुखास्तासा पुनरावृत्तिभवति, 10 प्रवज्यापरिणामान्तिवर्तनमित्यर्थः । तथा कुलपस्तिश्च याः प्रवजितास्ताः तादृशस्थानावस्थानेना-भाविताः सत्यो भ्यः स्वगृहाणि वजन्ति ॥ २३१७ ॥ अथ चारित्रश्रशनापद विवृणोति—

तरुणादीए दहुं, सइकरणसमुद्रभवेहिं दोसेहिं। पिडगमणादी व सिया, चरित्तभासुंडणा वा वि ॥ २३१८॥

आपणे तरुणादीन् दृष्टा स्मृतिकरणसमुद्भवैः उपलक्षणत्वात् कौतुकसमुद्भवैश्च दोपेः 'प्रतिग-15 मनं' गृहवासगमनं तदादीनि वा पदानि 'स्युः' भवेयुः, आदिशव्दादन्यतीर्थिकगमनादिपरि-महः, खिलेक्के वा स्थिताना तरुणादिभिः प्रतिसेवनायां चारित्रम्रश्चना भवेत् ॥ २३१८ ॥ एते आपणगृहे तिप्टन्तीनां दोपा द्रष्टव्याः । अथ रथ्यामुखादिपु तानतिदिशनाह—

एए चेव य दोसा, सविसेसतरा हवंति सेसेसु ।

रच्छामुहमादीसं, थिरा-थिरेहिं थिरे अहिया ॥ २३१९ ॥

'एत एर्व' अनन्तरोक्ता दोपाः 'शेपेपु' रथ्यामुख-शृद्धाटक-त्रिकादिप्विप भवन्ति । नवरं सिवशेषतरा उत्तरोत्तरेषु द्रष्टव्याः यावदुद्यानम् । ते च तरुणादयो द्विधा—क्षिरा अक्षिराध्य । स्थिरा नाम—येपां तत्रैव गृहाणि, अस्थिराः—येपामन्यत्र गृहाणि । अत्र च स्थिरेप्वधिकतरा दोपाः प्रतिपत्तव्याः । द्वितीयपदे तिष्ठेयुरिष ॥ २३१९ ॥ कथम् १ इत्याह—

अद्धाणनिग्गयादी, तिक्खुत्ती मिग्गऊण असईए । रच्छामुहे चउके, आवण अंतो दुहिं वाहिं ॥ २३२० ॥

अध्यनिर्गतादयः 'त्रिकृत्वः' त्रीन् वारान् निर्दोषां वसतिं मार्गीयत्वा 'असत्याम्' जरुम्यमा-नायां विविक्तवसतो वृषमाः प्रथमतो रथ्यामुखे सयतीः स्थापयन्ति. तत्रापि प्रथमन् 'अन्त-

१ 'पुनरावृत्तिः' विपरिणामो भवति । तथा फु॰ त॰ ऐ॰ ॥

२ 'ता अपि च प्रमितता अभावितत्वात् पुनरिप सगृ' गा॰ ॥

३ °नाहारमाह—भा॰ त॰ टे॰ ॥ ४ °ऋषैदाँपैः प्रतिगमादीनि या 'स्युः' गा॰ ॥

५ °मनादीनि चा पटानि नासां 'रयु.' त॰ दे॰॥

६ °व' तरणादयो दो भा॰ त॰ टे॰ ॥

20

र्श्वे यस पृष्ठतो रंथ्या वर्तते इत्यथः, तसापाष्ठा "दुहिं" ति 'द्वियामुखे' उभयद्वारे इत्यर्थः, तसाप्यमान "नाहिं" ति 'नहिर्मुखे' रथ्याभिमुखद्वारे इत्यर्थः । "चडके आवण" ति उपल्कालतात् श्रुह्माटकादीनामपि अद्गणम्, तनोऽयमर्थः—रथ्यामुखस्यामाने आपणगृहेऽपि संयत्तिमिः स्यातव्यम्, नद्रपाष्ठा श्रुह्माटकादीनामपि अद्गणम्, तत्तिक वा, तस्याप्यसत्त्वे चतुष्के, तस्याष्टामे चलरे, कतद्रपाष्ठा अन्तरापणेऽपि स्यातव्यमिति ॥ २३२०॥

अय "अंतो दुहिं वाहिं" ति पत्रत्रयं व्याचेष्ट—

अंतोग्रहस्य असर्ड, उभयग्रहे तस्स वाहिरं पिहए । तस्सऽसड् वाहिरग्रहे, सड् ठड्ए थेरिया वाहिं ॥ २३२१ ॥

पृत्रेम् 'अन्तर्मुखे' रथ्यामुखगृह स्थातव्यम् । अन्तर्मुखस्यासस्यमयमुखे । तस्य च यद् वहि10द्वीरं रथ्यामिमुखं तन् 'पिद्यति' कटादिना स्थगयन्ति ॐ द्वितीयेन द्वारण निर्गम-प्रवेशो
कृषिन्ति । № 'तस्य' उमयमुखस्यामावे 'बिहर्मुखे' रथ्यामिमुखद्वारं तिष्टन्ति, तत्र च द्वारं सदा
स्थिगनेमेव कृषिन्ति, स्थितरसाय्व्यश्च तत्र "बाहिं" ति 'बहिः' द्वारप्रत्यासचे तिष्टन्ति ॥२३२१॥
र्थयात्रव विधिमाह—

जन्यऽप्ययरा दांसा, जन्य य जयणं तरंति काउं जे । निचमवि जंतियाणं, जंतियवासी तहिं युत्तो ॥ २२२२ ॥

यत्रास्तिगः पूर्वोक्ता दोषाः, तेषां च दोषाणां परिहरण यत्र यत्तनां कर्त्तं श्रुह्वन्ति 'तत्र' आपणगृह्ं हो नित्यं यित्रतानामित्र यित्रत्वानः योक्त इति । किसुक्तं मविते ?—यद्यपि सय-र्ताप्रायोग्योपकरण-प्रावरणादिना नाः सर्वदेव सुयित्रतास्त्रयापि तत्रापणगृह्। वे विशेषतो यथो-क्त्यतनया यत्रणा कर्त्तव्या ॥ २३२२ ॥ का पुनर्यतना ? इति चेद् उच्यते—

बोलेण झायकरणं, ठाणं वत्युं व पप्य मह्यं तु । वंदेण इंति निति व, अविणीयनिहोडणा चेव ॥ २३२३ ॥

'बोब्रेन' समुद्ययग्रव्हेन साच्यायकग्णं येन पूर्वोक्ताः (गा० २२६४) दोषा न भवन्ति । स्मानं वा वस्नु वा प्राप्य 'साज्यं' साच्यायकरणं न कर्त्तव्यमपीत्यर्थः । बुन्टेन च कायिकी-संज्ञात्युत्सर्जनार्थमितयन्ति निर्यन्ति वा । अविनीतानां च—दुःश्रीब्यनां तरुणाटीनां निहेटना १०कर्तव्या, न तत्र प्रवेष्टुं दातव्यमिति सावः ॥ २३२३ ॥

> एएसिं असईए, सुन्ने वहि रिक्तवाड वसहेहिं। तेमऽमती गिहिनीसा, बहमाइसु मीइए नायं॥ २३२४॥

^{2 &#}x27;खे, यस्यां च दिशि रथ्या तां करकादिना स्वगयन्ति, तस्या' मा॰ । "असह दुहको-सुहे, तस्य नथां रच्छा तं रण्ति" इति विशेषचूणां ॥ २ 'त्यर्थः । तद्रहामे "च° त॰ ट॰ ॥ ३ ति स्चनात् स्वमिति छन्या श्रद्धा" मा॰ ॥ ४ 'टकें, तस्याभावे विके, तस्या' मा॰ ॥ ५ < ४ एटन्मव्यगतः पाटः मा॰ नाति ॥ ६ मो॰ ठे॰ विनाऽच्यत्र—अथ सामान्यत आपण-गृहादिविधिमाह द० दे० । अथ आपणगृहादिषु तिष्ठन्तीनां विधिमाह मा॰ ॥ ७ 'हादी तिष्ठन्तीत्याद्ययः । तत्र च स्थितानां तासां नित्यं त० दे० ॥

20

'एतेपाम्' आपणगृहाटीनामसति अध्वपतिपन्नादयो व्रतिन्यः 'वृपमः' समर्थमाधुमिः 'वहिः' समन्ततो रक्षिताः सत्यः शून्येऽप्युपाश्रये वसेयुः । अश्र वृपमा न भवन्ति ततन्तेपाममावे गृहि-णाम्-अगारिणां निश्रया वृत्यादिभिः सुगुप्ते शून्येऽपि प्रतिश्रये वसन्ति । कथम् ^१ इत्याह— 'मोजिकस्य' शामस्वामिनः 'जातं' त्रिदिनं कृत्वा, यथा—वयमत्र भवदीयवाहुच्छायापरिगृहीता स्थिताः सः, अतो भवता असाकं सारा करणीयेति ॥ २३२४ ॥ सूत्रम्—

कप्पइ निग्गंथाणं आवणगिहंसि वा जाव अंत-रावणंसि वा वस्थए १३॥

ॳंस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ ▷ अँथ भाष्यम्—

एसेव कमी नियमा, निग्गंथाणं पि नवरि चडलहगा। मुत्तनिवातो अंतोमुहम्मि तह चेव जयणाए ॥ २३२५ ॥

एँप एव कमो नियमादृ निर्शन्थानामपि भवति, तेपामप्यापणगृहादिषु वयनां पूर्वोक्ता ढोपा भवन्तीति भावः । नवरं चतुर्रुषुकाः प्रायश्चित्तम् । आह यद्येवं तर्हि सूत्रं निरर्थकम्, तत्र साधूनामापणगृहादिषु वस्तुमनुज्ञातत्वात् नेवम्, कारणिकं मृत्रम्, यद्यन्य उपाश्रयो न प्राप्यते ततोऽन्तर्मुखे रथ्यागृहे स्थातव्यम्, अत्र 'मृत्रनिपार्नः' प्रकृतमृत्रमवतर्गाति भावः । त्तस्याभावे दोपेप्वपि तिष्ठना तंथव यतना द्रष्टच्या ॥ २३२५ ॥ मृत्रम्— 15

नो कष्पइ निग्गंथीणं अवंग्रयदुवारिए उवस्सए वत्थए । एगं पत्थारं अंतो किचा एगं पत्थारं वाहिं किचा ओहाडियचिलिमिलियागंसि एवं णं कप्पइ वत्थए १४॥

अस्य सृत्रस्य सम्बन्धमाह-

पिंसिद्धविवक्सेसुं, उवस्सएहिं उ संवसंतीणं। वंभवयगुत्ति पगए, वाग्तिऽन्नेसु वि अगुत्ति ॥ २३२६ ॥

पुर्वेगवे प्रतिपिद्धानाम्-आपणगृह्यदीना विपक्षा ये उपाश्रयाः कन्यनीया इत्यर्थः, तेषु सवसन्तीनां त्रतिनीनां त्रणचर्यगुप्तिः प्रकृता, तद्रथै तेषु ताभिर्वम्नस्यमिति भाव । अनम्नस्याः प्रकृते प्रकृमे 'अन्येष्यपि' अप्रतिपिद्धेषु प्रतिश्रयेष्यपावृतहारतारूपामगुप्ति वारयन्ति भगवन्तो ३३ भद्रवाहृस्वामिन इति ॥ २३२६ ॥

१ प्रान्मप्यगत पाट भा•त॰ दे॰ नानि ॥ २ अत्र भा° भा॰ न॰ २०॥

विधिना यतनया स्थातव्यम् ॥ २३२५ ॥ सूत्रम्—१० ३० ॥ ५ °नां साधीनां प्राप्त मा॰ ॥

^{3 &#}x27;वर एव क्रमः' पूर्वोकटोपयकव्यनापरिपाटिरूपो निर्मन्यानामप्यापणगृहारिषु चसतां भवति । नवां चतुर्लेघुकाः प्रायध्यत्तम् । अथान्यो निर्धारः प्रतिथयो न प्राप्यते ततः कारणे स्थातव्यम् । तत्र च स्थानिपानः 'अन्तसुरो' र्थ्यामुख्यते । नन्यामाय ग॰ ॥ ४ °तः' स्थमयतरित । नन्यामाये आपणगृहादिषु द्याप्यापं तिष्टद्धिः 'तथ्य' तेश्य

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य त्र्यास्या---

नो कल्पते 'निर्मर्न्थानी' त्रतिनीनाम् 'अपावतद्वारके' उद्घाटद्वारे उपाश्रये वस्तुम् । सकपा-टोपाश्रयास्त्रमे तु तत्रापि वसन्तीभिरित्यं त्रिधिर्वियेयः—एकं 'मस्तारं' कटम् 'अन्तः' मित-श्रयाभ्यन्तरे कृत्वा एकं मस्तारं विहः कृत्वा ततः 'अवघाटितिचिलिमिलिकाके' अवघाटिता— कवद्या चिलिमिलिका यत्र स तथा ईदशे उपाश्रये 'एवम्' अनन्तरोक्तेन विधिना "णं" इति चाक्यास्क्रारे कल्पते वस्तुमिति सुत्रसङ्क्षेपार्थः ॥ विस्तरार्थं तु भाष्यकृदाह—

> दारे अवंगुयम्मी, निग्गंथीणं न कप्पए वासो । चउगुरु आयरियाई, तत्थ वि आणाइणो दोसा ॥ २३२७ ॥

'अपादृते' उद्घाटिते द्वारे < उद्घाटद्वारे उपाश्रये इत्यर्थः > निर्श्रन्थीनां न कल्पते वासः । 10 अत्र चैतत् स्त्रमाचार्यः प्रवर्त्तिन्या न कथयति चतुर्गुरु, प्रवर्तिनी सयतीनां न कथयति चतुर्गुरु, आर्थिका यदि न प्रतिशृण्वन्ति (ग्रन्थायम् – ४५०० । सर्वेत्रन्थायम् – १६७२० ।) तदा तासां मामरुष्ठु । 'तर्त्तापि' अकथनेऽश्रवणे चाजादयो दोपा द्रष्टव्याः ॥ २३२७ ॥

दारे अवंगुयम्मी, भिक्खुणिमादीण संवसंतीणं । गुरुगा दोहि विसिद्वा, चउगुरुगादी व छेदंना ॥ २३२८ ॥

15 ﴿ उंपाश्रयसम्बन्धिति ▷ द्वारेऽपाइते ﴿ मिंति ▷ मिक्षण्यादीनां संवसन्तीना 'द्वाभ्यां' तपः-कालम्यां विविधाश्चतुर्गुरुकाः ﴿ प्रायंश्चित्तम् ▷ । तद्यथा—मिक्षण्याश्चतुर्गुरुकं तपसा कालेन च लघु, अमिपकायास्तदेव कालगुरु तपोलघु, गणावच्छेदिन्यास्तपोगुरु काललघु, प्रविच्या द्वाभ्यामपि गुरुकम् । चतुर्गुरुकादयो वा छेदान्ताः ﴿ प्रायंश्चित्तविशेषा ▷ भवन्ति, तद्यथा—मिक्षण्या अपाइतद्वारे वसन्त्याश्चतुर्गुरुकम्, अमिषकायाः पड्लघुकम्, गणावच्छे20 दिन्याः पङ्गुरुकम्, प्रवर्तिन्याच्छेट इति ॥ २२२८ ॥ अत्र दोषानाह—

तरुण वेसित्थीओ, विवाहमादीस होइ सइकरण । इच्छमणिच्छे तरुणा, नेणा ताओ व उद्यहिं वा ॥ २३२९ ॥

अस्या व्याख्या अनन्तरसृत्रवदृ (गा० २३०४) द्रष्टव्यी ॥ २३२९ ॥

१ °नां' सार्घ्यानाम् त॰ टे॰ ॥ २ °मे च त॰ त॰ टे॰ ॥ ३ °यः, तद्यथा—एकं त॰ हे॰ ॥ ४ मो॰ टे॰ विनाऽन्यत्र—कृत्वा तति खिलिमिलिकया अवघाटिते-पिहिते सित द्वारे, स्वे च अवघाटितशब्द्य पूर्वेनिपानः प्राकृतत्वात्, 'एचम्' अनन्त॰ मा॰ त॰ हे॰ ॥

५ ४ ▷ एतन्मध्यातः पाठ भा॰ त॰ दे॰ नास्ति ॥ ६ °त्राप्याञ्चा° भा॰ ॥ ७-८-९-६० ४ ▷ एतच्चिहमध्यगतः पाठ भा॰ त॰ दे॰ नास्ति ॥

११ °व्या । तत्र गमनिकामात्रं त्च्यते—नत्रापात्रतद्वारे उपाश्रये तिष्ठन्तीनां संयतीनां तरुणान् वेदयाख्रियो वा दृष्ट्वा विवाह-नृपतिश्रवेद्यादिषु वा दृष्टेषु स्मृतिकरणम् उप- छक्षणत्वात् कोतुकं निदानगमनं वा मवेत् । तरुणान् वाऽवभाषमाणान् यदि सा प्रति- सेत्रिवृत्तिमच्छति ततो वत्रविदायना, अय नेच्छति ततो वलादिष ते संयतीर्पृण्हीयुः । तथा सेतना वा संयतीरपहरेयुः उपिश्र वा नामामपहरेयुरिति ॥ २३२९ ॥ किञ्च—त० दे० ॥

अचे वि होंति दोसा, सावय तेणे य मेहुणद्वी य । वहणीसु अगारीसु य, दोचं संछोभणादीया ॥ २३३० ॥

अन्येऽप्यम्यधिका अत्र होपा भवन्ति । तत्रापाद्यनद्वारे उपाश्रये श्वापदो वा स्तेनो वा चगव्दात् श्वानो वा प्रविद्येयुः, तश्च यद्विराधनां प्राप्तवन्ति तित्रप्पत्नं प्रायश्चित्तम् । 'मेथु-नार्थी वा' उद्धामकः प्रविद्येत् स वलादप्युदारगरीरा संयतीं गृहीयात् । व्रतिनीयु वा गध्ये ठ काचिद् व्रतिनी मोहोद्भवेन कस्यापि गृहिणो गृही वा तस्याः सयत्याः प्रयुप्तायु द्येपमाध्वीयु रात्रो काञ्चिदगारी प्रप्य देत्यं कारापयेत् । अगारीयु वा मध्ये काचित् सछोभणं—परावर्त्त कुर्यात्, संयतीसंखारके सा अगारी सयतीसत्कानि वस्त्राणि प्रावृत्य गर्यात सयती तु तदीयानि वस्त्राणि प्रावृत्यागारस्य सकागं गच्छेदित्यर्थः । यसादेवमादयो दोपाद्यसादपावृतद्वारे प्रतिश्रये साध्वी-मिर्न स्थातव्यम् ॥ २३३० ॥ द्वितीयपदे तिष्ठता (तिष्ठन्तीना) विधिमाह—

पत्थारो अंतो वहि, अंतो वंधाहिं चिलिमिलिं उवरिं। पिंडहारि दारमूले, मत्तग सुवर्णं च जयणाए ॥ २३३१ ॥

मस्तीर्यत इति मैस्तारः, स च द्विधा—अन्तर्वहिश्च । 'अन्तः' अभ्यन्तरमस्तारे ''वयाहि''न्ति 'वधान' नियन्नय चिलिमिलीमुपॅरिष्टात् । ततः मितहारी द्वारमुले तिष्टति । 'मात्रकं' मोकत्यु- स्तर्जनं स्यपनं च यत्तनया कर्त्तव्यमिति निर्युक्तिगाथासमायार्थः ॥ २३१ ॥ 15

अथ विस्तरार्थमाह---

असई य कवाडस्सा, विदलकडादी अ दो कडा उभओ। फरमुद्वियस्स सरिसो, वाहिरकडयम्मि वंथो उ ॥ २३३२॥

यदि द्वारं कपाटसिहतं भवति ततः सुन्दरमेव । अथ कपाटं नास्ति ततः कपाटस्यामित

१ गो॰ छे॰ तिनाऽन्यत्र—गृहिणः पाश्वं दृतीं प्रक्षेपयेत, गृही या फक्षित् नस्याः त॰ छे॰ ।
गृहिणो दृतीं प्रेपयेत्, 'अगारिषु वा' गृहस्थेषु क्रियत् प्रसुप्तासु द्रोपसाध्यीषु गर्नो कस्याक्षिद् प्रतिन्या देश्तं कारापयेत्, दृतीं प्रेपयेदिस्यर्थः । "संद्रोभण" ति परावर्तः, स चायम्—संयतीसंस्तारके अन्या काचिद्रविरतिका संयतीसकानि वग्याणि प्रामृत्य द्रायेत् (द्रायीत) संयती तु तदीयानि वर्ताणि प्रामृत्य द्रायेत् स्वर्यतीसकान्यमान्छेत् ॥ २३३०॥ यसादेवमादयो दोपास्तसान् किं कर्त्तव्यम्? द्रसाह—पत्थारो गाथा गा॰ ।

''सजती बाइ मोहुक्सवेण निहिणो वृत्ती पेसेका, धागारी या रात पानुनामु द्याः पेसेकाः। 'मछोभ' वि सजतिस्थारए असा निहर्ता सजतिन्याति पत्याति पाउतिया नाथ निपरंत्या मजति गरिका, अगारी ता संजतिसमाम एता । जम्हा एते दोसा तम्हा ''एय पत्यार अन्तो कृत्य' अवसुष्यरिकानम् ॥ पत्यारी जाते गाहा'' दति च्यूणो विदेषच्यूणो च ॥

२ °छतां किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह्—न॰ दे॰ ॥ ३ मा॰ विनाऽन्या—'मन्नारः' कटः । स च छयोः स्थानयोर्विधातव्यः, नप्रया—जन्तं त॰ दे॰ ॥ ४ मो॰ दे॰ विनाऽन्या—धितः भा॰ । धिरिना कायिकी ब्युत्मर्जनीया । प्रति त॰ दे॰ ॥ ५ धिन छारमायाः मा॰ ॥

ñ

15

यत्तारः कियते । प्रतारः—कटः, स च 'हिटलकटादिः' हिटलं—वंग्रटलं तन्मयः कटो हिद-लकटः, आदिग्रट्यात् ग्ररकटः पिगृह्यते । ईह्गो हो कटी हाग्स्योमयतः कियेते, एकोऽभ्य-न्तरं हितीयो विहिरित्यर्थः । ततः स्कन्कन्य या मुष्टिः—ग्रहणस्थानं तस्य सहयो वन्यो बाद्य-कटेऽभ्यन्तरतो दात्रव्यः ॥ २३३२ ॥ स च वन्यः किम्पयः कर्तव्यः १ इत्याह—

मुत्ताहरज्जुवंघो, दृष्टिइ अन्मितरिष्टकडयम्मि । हेट्टा मञ्च उवरिं, तिमि व दो वा भन्ने वंघा ॥ २३३३ ॥

स्त्रस्य आदिश्वाह् वक्कस्य वा कर्णाया वा या रज्ञः—उवरकः परिस्थ्रां हृदश्च तस्य वन्यां वाद्यकटे स्करमुष्टिकसहशो दातव्यः, अभ्यन्तरकटे च हु छिद्रे कर्तव्ये । कथम् १ इति अत आह—''हें हुा मज्जे दर्वारं' ति 'मध्ये' स्करकमुष्टरनुष्ठेण्यामेवायसादुपरि च च्छिद्रह्यं १० कर्तव्यम्, ततो वाह्यकटस्य स्कर्कमुष्टा द्वरको हृदं प्रवृद्य पश्चादम्यन्तरकटस्य हृयोरिप च्छिद्रयोः प्रक्षिप्य ततोऽस्यन्तरेण निकाव्य निविद्यं वन्यनीयः, इंहशा ह्रां वा त्रयो वा वन्या वव्यन्ते । अभ्यन्तरप्रसारस्य चोपरि चिछिपिछी वच्यते, सा च तान् वन्यान् गोपयति । तथा च त वन्या वव्यन्ते यथा प्रतिहारीं मुक्तवा अन्या काचित्र जानाति ॥ २३३३ ॥

आइ सा प्रतिहारी कीहरगुणान्त्रिता सापनीया? इति उच्यते—

काएण उत्रचिया खुळ, पिंडहारी संजर्ड्ण गीयत्था । परिणय भुत्त कुर्छाणा, अमीरु वायामियसरीरा ॥ २३३४ ॥

कायेनोपचिता न क्रुग्रग्ररारा, 'गीतार्या' सम्यगिष्ठगतस्त्रार्था, परिणता वयसा बुद्धा च, "सुर्यं' चि सुक्तमोगिनी, 'कुर्छाना' विशुद्धकुर्छोत्पन्ना, 'अमीरुः' न कुतिश्चद्रिप स्तेनोज्जामका-देविविधां विमीपिकां दर्शयतोऽपि विमेति, "वायामियसरीर" चि व्यायामः—खेदस्तत्सहंग्रगरा 20समर्थदेहा इत्यर्थः, ईहर्शा चळु संयतीना प्रतिहारी स्थापियतव्या ॥ २३३० ॥

सा च किं करोति ? इत्याह—

आवासगं करित्ता, पडिहारी दंडहत्य दारिम्म । तिन्नि उ अप्पडिचरिउं, कालं घेत्तृण य पवेए ॥ २३३५ ॥

'आवस्यकं' मितकमणं कृत्वा मितिहारी दण्डकहर्सा अग्रहारे तिष्टति । ततश्च "तिन्नि उ'' ²⁵ ितिन्नः संयत्यः काटमत्युपेक्षणार्थं निर्गच्छन्ति । "अप्पडिचरियं" ति मादोषिकं कार्टं यथा साधवः मितिनागरितं गृहन्ति तास्त्रथा न इति गृहीत्वा च कार्ट ततः मर्वात्तंन्या निवेदयन्ति । निवेद्य च साध्याये मस्यापिते सर्वा अपि साध्यायं कुर्वन्ति ॥ २३३५ ॥ कथम् १ इत्याह—

१ °स्तारो नाम 'हिद्छकटादिकः कटः' हिद्छं गा॰ ॥

२ °न्योऽभ्यन्तरकटे दात° गा॰ ॥ ३ °यः कथं वा कर्चव्यः ? इत्युच्यते भा॰ ॥

[्]थ सीत्रः-स्त्रमयः परिस्यूरा द्रढीयांश्च या रञ्जः-द्वरक श्रादिशब्दाद् वरकछमय श्राणिको चा तस्य वन्यः स्फर° मा॰ ॥ ५ °न्धा दातव्या भवन्ति । अभ्य° मा॰ ॥

६ 'ति । सा च प्रतिहारी द्वारमृष्टे संस्तारयति ॥ २३३३ ॥ आह मा॰ । "सा य पिंडहार्ग टारमृष्टे सुवर्ताति वामवर्षपः" टीन चूर्णा । "पिंडहार्ग टारमृष्टे टाइ" डीन विदेशपचूर्णो ॥

ओहाडियदाराओ, पोरिसि काऊण पढमए जामे । पंडिहारि अग्गदारे, गणिणी उ उवस्सयग्रहम्मि ॥ २३३६ ॥

अवघाटितं—चिलिमिलिकया पिहितं द्वारम्—अम्रद्वारं यासां ता अवघाटितद्वाराः सर्वा अपि प्रथमे यामे सूत्रपौरुपी कृत्वा ततो मध्ये प्रविद्यन्तीति वाक्यशेषः । पौरुपी कुर्वाणानां च प्रति-हारी अम्रद्वारे तिष्ठति, 'गणिनी तु' प्रवित्तेनी उपाश्रयस्य मुखे—मूलद्वारे स्थिता स्वाध्यायं करोति ॥ २३३६ ॥

उभयविसुद्धा इयरी, पविसंतीओ पवित्तणी छिवइ । सीसे गंडे वच्छे, पुच्छइ नामं च का सि ति ॥ २३३७ ॥

उभयं—संज्ञा कायिकी च तद् विशुद्धं व्युत्सष्टं याभिस्ता उभयविशुद्धा , आहितास्यादेरा-कृतिगणत्वात् पूर्वापरिनिपातव्यत्ययः, 'इतराः' सयत्यो यदा प्रविशन्ति तदा प्रविशन्तीरेव ताः 10 प्रवर्तिनी 'किमेपा सयती ? उत न ?' इति परिज्ञानार्थं 'शीपें' शिरसि 'गण्डे' कपोले 'वधिस' हृदये एवं त्रिषु स्थानेषु परिस्पृशति नाम च प्रच्छिति—'का ?' कि नामासि त्वम् ' इति ॥२३३०॥

च तत्र प्रवेशसमये विरुम्बते या वा सुप्तानामप्रखावे निर्गच्छित सा वक्तव्या—

किं तुज्झ इकियाए, घम्मो दारं न होइ इत्तो उ । न य निटुरं पि भन्नइ, मा जियगदत्तर्णं हुजा ॥ २३३८ ॥

किं तविकस्या एव घर्मो येनैवं निर्गच्छित विरुम्बसे वा दारिमतो न भवति, एवमन्य-व्यपदेशेन मधुरवचनैः सा वक्तव्या । न च "निद्धुरं" कठोरं स्फुटमेव भण्यते, "मा जियग-इ्चणं" ति 'जितरुज्जत्वं' निर्रुज्जता मा भृदिति हेतोः ॥ २३३८ ॥ ततश्च—⊳

सन्वासु पविद्वासुं, पिहहारि पविस्स वंधए दारं। मज्झे य ठाइ गणिणी, सेसाओ चकवालेणं॥ २३३९॥

सर्वासु संयतीषु प्रविष्टासु प्रतिहारी प्रविश्य द्वारं पूर्वोक्तविधिना बन्नाति । 'गध्ये च' मध्यभागे 'गणिनी' प्रवर्षिनी 'तिष्ठति' संस्तारक प्रस्तृणातीत्यर्थः, शेपान्तु सयत्यः 'चक्रवालेन' मण्डलिकया प्रवर्षिनी परिवार्य सस्तृणन्ति यथा परस्परं सुप्तानां न सद्वहो भवति ॥ २३३९॥

आह किमर्थ न सहुट्टः क्रियते र उच्यते—

सड्करण कीउहल्ला, फासे कलही य तेण तं मुत्तं। 53 किंडि तरुणी किंडि तरुणी, अभिक्ख छिवणा य जयणाए॥ २३४०॥

'स्पर्से' अन्योऽन्य सहाइने भुक्ता-ऽभुक्ताना स्पृतिकरण-केत्तृतले भवतः । 'कल्क्यः' प्रय-इद्धं च परस्परं भवति, यथा—अहं त्वया हन्तेन वा पादेन वा सहादिना । तेन रेनुना 'नं' स्पर्शं मुक्तवा 'किहीं' स्वविरा सा प्रथमतः सस्तारकं करोति. तननदन्तरिना नरुणी, पुन स्विरा, पुनस्तरुणी इत्यवं संस्तारकप्रसरणविधिः । 'यतनया च' यथा तामां म्यृतिकरणादि उर

१ °तं-प्रदत्तचिलिमिलीकं द्वारं यासां भा॰ ॥

नोपजायते तथा 'अमीक्ष्णं' पुनः पुनः स्पर्शना प्रवर्तिन्या कैर्चिव्या । अ वैतिहारी च द्वारम्हे संस्तारयति № ॥ २३४० ॥ कथम् १ इति अत आह—

> तणुनिहा पिंडहारी, गोविय घेतुं च मुबह तं दारं । जन्मंति वारएण व, नाउं आमोस-दुस्सीले ॥ २३४१ ॥

तन्त्री—स्तोका निद्रा यस्याः सा तथा एवंविधा प्रतिहारी तद् द्वारं वद्धा तथा प्रन्थि गोप-यित्वा स्विपिति यथा अन्याः संयत्यो न जानन्त्युद्धाटियतुम् । हस्तेन वा तद् व्वरकप्रान्तं गृहीत्वा स्विपिति । अथ तत्र आमोपाः—स्तेना दुःशीला वा अभिपनिन्त ततस्तान् ज्ञात्वा वार-केण रात्रा जाप्रति ॥ २३४१ ॥ अथ मात्रकयननामाह—

> कुडग्रुह डगलेमु व काउ मत्तर्ग इड्डगाइडुरुहाओ । लाल सराव पलालं, व छोड़ मोयं त मा सहो ॥ २३४२ ॥

'कुटमुखं' घटकण्ठके टगलेषु वा मात्रक 'कृत्वा' स्थापियत्वा तस्य मात्रकस्थोपिर 'शरावं' महकं स्थाप्यते, तस्य च बुग्ने च्छिदं कियते, तत्र च्छिदे वस्त्रमयी 'लाला' लम्बमाना चीरिका पलालं वा प्रक्षिप्यते, 'मा मोक व्युत्सृजन्तीना शक्दो भवतु' इति कृत्वा । तत उभयपार्श्वत इष्टकाः कियन्ते, आदिशक्तात् पीठकादिपरिग्रहः, तल्लारूदाः सत्यो रात्रो मात्रके मोकं

15 ज़ुत्सुजन्ति ॥ २३४२ ॥ अथ स्वपनयतनामाह— सोऊण दोन्नि जामे, चरिमे उज्झेतु मोयमत्तं तु । कालपडिलेह झातो, ओहाडियचिलिमिली तम्मि ॥ २३४३ ॥

गुस्ता हो। 'यामा' प्रहरा चरमे यामे उत्थाय मोकमात्रकम् 'उज्झित्वा' परिष्ठाप्य ततः कार्छ—वैरात्रिकं प्रामातिकं चै प्रत्युपेक्ष्य साध्यायो यतनया क्रियते । 'र्तसिंध' चरमे यामे 20 'अवघाटितचिलिमिलीकं' चिलिमिलिकॉपिहितं द्वारं भवति, रोपं तु कटद्वयमपनीयत इति भावः ॥ २३४३ ॥ ताध्य कार्ल गृहीत्वा न प्रतिजायति, कुतः ? इत्याह—

संकापदं तह भयं, दुविहा तेणा य मेहुणड्डी य । देह-चिह्दुच्वलाओ, कालमओ ता न जग्गंति ॥ २३४४ ॥

यदि ताः मतिश्रयद्वारे खित्वा काल मितजागृयुः ततः सागारिकस्यान्यस्य वा मङ्कापढं 25 मवति—िक मन्ये एपा कश्चिदुद्धामकं मर्ताअतं यदेवमत्रोपविष्टा जागितं १ इति । 'तथा' 🗠 ईति कारणान्तरसमुचये, 🗠 भयं च तासामल्पसत्त्वतयोपजायते । 'द्विविषाश्च स्तेनाः' भरीर-

[्]र कर्तव्या ॥ २३८० ॥ या च तत्राप्रस्तावे निर्गच्छति या वा प्रथमतः प्रवेशसमये विस्र-स्वते सा वक्तव्या भा॰ । एनटनन्तरं "कि तुज्य एक्ष्याए॰" २३३८ इति गाया तक्षेत्रा च वर्तते । टीक्ष-समनन्तरं च "तप्रतिहा॰" गाया वर्तते ॥

२ र > एनन्मध्यगतः पाठ॰ मा॰ पुस्तके २३३३ गायान्तः वर्त्तते । दृज्यतां पत्र ६६२ टिप्पणी ६ ॥

³ एतटनन्तरं मो॰ ले॰ प्रदो अन्थात्रम्-१००० इति वर्तते ॥

थ तस्मिश्च यामे चिलिमिलिका अववाटिना-प्रदत्ता भवति मा॰ ॥

५ °कया अवग्राटितं-पिहि° त॰ दे॰ ॥ ६ र् > एतन्मध्यगत. पाठ मा॰ त॰ दं॰ नाम्ति ॥

स्तेनोपधिस्तेनभेदास्तत्रागच्छेयुः, ते संयतीमुपधि वा अपहर्युः, मेथुनार्थिनो वा संयतीमुपसर्ग-येयुः । देहेन-शरीरेण धृत्या च-मानसावष्टम्भेन दुर्वलास्ता अतः संयत्यः कालं 'न जाप्रति' न प्रतिचरन्तीति ॥ २३४४ ॥

> कम्मेहिं मोहियाणं, अभिद्वंताण को ति जा भणह । संकापदं च होजा, सागारिअ तेणए वा वि ॥ २३४५ ॥

यदि रात्रो 'कर्मभिर्मोहिताः' घनकर्मकर्कशतया समुदीर्णमोहाः केचैन पापीयांसः सयतीः शीलात् च्यावयितुमभिद्रवेयुस्ततः को विधिः ^१ इति अत आह—तेपामभिद्रवतां या सयती 'कोऽयम् '' इति वृते तस्याश्चतुर्गुरुकाः प्रायश्चित्तम्, आज्ञादयश्च दोषाः, शद्घापदं वा सागा-रिकस्य स्तेनकस्य वा, अपिशव्दाद् मेथुनार्थिनो वा भवेत् ॥ २३४५ ॥ इटमेव भावयति—

अनो वि न्णमभिषडइ इत्थ वीसत्थया तद्ष्टीणं।

सागारि सेन्झगा वा, सइत्थिगाओ व संकेञा ॥ २३४६ ॥

तद्रिनो नाम तद्-विविक्षतं सेन्यं मेथुनं वा सेवितुं ये समायाताखेषां सयतीग्रसान् 'कः " इति चचनं श्रुत्वा शद्धापदसुपजायते - नृनमन्योऽपि कश्चिवत्रोद्धामकः स्तेनो वाऽभि-पति येनेवमेपा 'कः " इति प्रश्नयति । ततश्च तेपां तत्र प्रविद्यता विश्वस्तता भवति-न भयमुखद्यते । यस्तु 'सागारिकः' यय्यातरः ''सेज्झगा वा'' प्रातिवेदिगकाग्ने एकका वा 15 सम्बीका वा शद्कां कुर्युः — कि मन्ये एतासा सयतीनां उत्तरादेतः कोऽप्युद्धामकोऽत्रा-याति ।। २३४६॥

> तेणियरं व सगारी, गिण्हे मारेज सी व मागरियं। पडिसेहँ छोम झामण, काहिंति पदोयतो जं च ॥ २३४७ ॥

अथवा 'कः ?' टति वचन श्रुत्वा सागारिक उत्थाय स्तेनम् 'इतरं वा' मेथुनार्थिन गृमी-२० याद मारयेद्वा, 'स वा' रतेनो मधुनार्था वा सागारिक मारयेत् । सागारिक च गारिते नित तदीयाः सज्ञातकाः 'प्रतिपेध' तद्दव्या-ऽन्यद्रव्यव्यवच्छेदं कुँग्वैः । म्नेनादय वन्यानरेण गृतीना सन्तः संयतीनां ''छोभ'' ति अभ्यास्यान दयुः—अस्मक भाटिरेताभिर्गृरीना आसीत्। "झामण" ति प्रद्विष्टा वा सन्तः शच्यातरगृहं सथतीनां वा प्रतिश्रयं प्रदीपयेयु । प्रहेपनी वा यदस्यदिष ते करिप्यन्ति तिकप्पनमापयते । य तैसात् 'क⁺ ?' इति न वक्तद्रयग ⊳ ॥२३४७॥ ॐ

कथं प्रचन्तर्हि वक्तव्यम् १ इत्याह—

संकियमसंकियं वा, उभयद्विं नच वेंनि अहिर्लिनं ।

छु ति हिंड ति अणाहा!, नित्थ ते माया पिया वा वि ॥ २३४८ ॥ उभयं—रैनेन्य मेथुन च तद्यर्थिन ब्रह्मितमञ्ज्ञितं या 'जात्या' अवगम्य 'व्यगिर्यागमण' आयान्तमेव मुवत-"छु वि हडि वि" अनुकरणशब्दावेती, छुपुरिति वा हडिरिति पा १० वक्तव्यमित्यर्थः । यद्वा 'हे अनाथ!' निःस्तामिक! कि ते नास्ति माता वा पिता वा यदेव-मस्यां वेलायां पर्यटिस ? इति ॥ २३४८ ॥

> भंजंतुवस्सयं णे, छिन्नाल जरग्गगा सगोरहगा । नित्य इहं तुह चारी, नस्ससु किं खाहिसि अहन्ना! ॥ २३४९ ॥

5 'मर्झन्ति' विष्वंसन्ते ''णे'' 'असाकमुपाश्रयं 'छिन्नालाः' तथाविधा दुष्टजातीयाः 'जरद्भवा ' जीर्णवलीवदीः 'सगोरथकाः' कल्होडकयुक्ताः, अतो नास्त्यत्र त्वधोग्या चारि , 'नश्य' पलायस्त, किमत्र खादिप्यसि 'अधन्य!' हे निर्माग्य! त्वम् । प्राकृतत्वाद् गाथायां दीर्धत्वम् । एतेना-न्यव्यपदेशमद्भया तस्य प्रविशतः प्रतिषेधः कृतो भवति ॥ २३४९ ॥ द्वितीयपदमाह—

अद्वाणनिग्गयादी, तिक्खुत्तो मन्गिऊण असईए ।

10 दन्यस्स व असईए, ताओ च अपच्छिमा पिंडी ॥ २३५० ॥

अध्वनिर्गतादयः संयत्यः 'त्रिकृत्वः' त्रीन् वारान् वसति मार्गयित्वा 'असति' अलम्यमाने गुप्तद्वारे उपाश्रयेऽपावृतद्वारेऽपि वसन्ति । तत्र यदि कपाटमवाप्यते ततः सुन्दरमेव, अध न प्राप्यते ततः 'द्रैव्यस्य' कपाटस्यासति कण्टिकादिकमप्यानीय द्वारं पियातव्यम् । यावद् 'अप-श्रिमा' सर्वन्तिमा यतनौ "ताञ्चो व पिंडि" ति ता सर्वा अपि पिण्डीम्य परम्परं करवन्धं 15 कृत्वा दण्डकव्ययदस्वास्तिष्ठन्तीति ॥ २२५० ॥ एनामेव निर्मुक्तिगाथां व्याचष्टे—

अन्नचो न कवाडं, कंटिय दंड चिलिमिलि वहिं किटिया। पिंडीमनंति सभए, काऊणऽन्नोन्नकरवंधं ॥ २३५१॥

कपाटयुक्तस्य द्वारस्याभावेऽन्यतोऽपि कपाटं याचित्वा द्वारं पिघातव्यम् । अथ याच्यमा-नमपि तन्न रुव्यं ततो वंशकटो याचितव्यः । तस्यारुमे 'कण्टिकाः' कण्टकशासाः । तासा-20मपाप्तो दण्डकस्तिरश्चीनश्चिलिमिलिका क्रियते । तावतां दण्डकानाममावे वस्नचिलिमिलिका वध्यते । विद्विद्वारमुले 'किटिकाः' स्विवराः क्रियन्ते । अथ कोऽपि तत्र तासामिमद्वणं करोति ततस्तादृशे 'समये' सोपसर्गे सत्यन्योन्यं करवन्यं कृत्वा पिण्डीमवन्ति ॥ २३५१ ॥

कथं पुनः ? इत्यत आह-

25

अंवो हवंति तरुणी, सदं दंडेहि ते पतालिति ।

अह तत्य होंति वसभा, वारिति गिही व ते होउं ॥ २३५२ ॥

'अन्तः' मध्ये तरुण्यो गृहीतद्ण्डकह्सास्तिष्टन्ति, वहिस्तु स्विताः, ताश्चोमच्योऽपि 'शब्दं' वृहद्भिनिना बोलं कुर्वन्ति येन स्याँहोको मिलति, ताश्च स्तेन-मेथुनार्थिन उपद्रवतो दण्डकैः प्रताडयन्ति । अथ तत्र वृषमाः सन्निहिता मवन्ति ततस्त गृहिणो भ्त्वा तान् निवार-यन्ति ॥ २३५२ ॥

१ किं काहिसि ता॰ विना ॥ २ "टबं ति क्वाढं" इति चूर्णी विशेषचूर्णी व ॥ २ °ना ताः सर्वा अपि "पिंडि" ति पिण्डीमृय तिष्ठन्ति येन ताः कोऽप्यमिद्रोतुं न शक्ष्यादिति निर्युक्तिगाथासमासार्थः ॥२२५०॥ अयैनामेव व्याचष्टे का॰ । °ना ताः सर्वा अपि "पिंडि" ति स्वकत्वात् स्वस्य पिण्डीमवन्ति ॥ २२५०॥ एतदेव व्याचष्टे मा॰ ॥

सूत्रम्—

कप्पइ निगांथाणं अवंग्रयदुवारिए उवस्सए वत्थए १५॥

कल्पते निर्भन्थानामपावृतद्वारे उपाश्रये वस्तुमिति स्त्रार्थः ॥ अथ भाप्यविस्तरः—

ि निग्गंथदारिपहणे, लहुओ मासो उ दोस आणादी। अइगमणे निग्गमणे, संघट्टणमाइ पिलमंथी॥ २३५३॥

निर्मन्था यदि द्वारिषधानं कुर्वन्ति ततो रुघुको मासः प्रायिधित्तम्, आज्ञादयश्च दोषाः । विराधना त्वियम्—कोऽिष साधुः 'अतिगमनं प्रवेशं करोति, अन्येन च साधुना द्वारिष-धानाय कपाटं पेरितम्, तेन च तस्य शिरसोऽभिधाते परितापादिका ग्लानारोपणा । एवं निर्गमनेऽिष केनचिद् विहःस्थितेन पश्चान्मुखं कपाटे पेरिते शीर्ष भिषेत । तथा त्रसजन्तूनां सङ्घटनम्, आदिशब्दात् परितापनमपद्रावणं वा द्वारे पिधीयमानेऽपावियमाणे वा भवेत् । 10 'परिमन्थश्च' स्त्रार्थव्याधातो भ्योभ्यः पिदधतामपावृण्वतां च भवति ॥ २३५३ ॥

एँनामेव निर्युक्तिगाथां व्याख्यानयति-

घरकोइलिया सप्पे, संचाराई य होंति हिहुवरिं। हिंकत वंगुरिते, अभिघातो निंत-ईताणं॥ २३५४॥

द्वारस्याधस्तादुपरि वा गृहकोकिला वा सर्पो वा 'सञ्चारिमा वा' कीटिका-कुन्धुँ-कंसारि-15 कादयो जीवा भवेयुः, आदिशब्दात् कोकिलाव्यो वा सम्पातिमसत्त्वाः, ततो द्वारं ढक्षयताम् 'अपाष्टुण्वतां च' उद्घाटयतां ''निंत-इंताणं'' ति निर्गच्छतां प्रविशतां वा गृहकोकिलादिपाण्य-भिषातो भवेत्, सर्प-वृश्चिकादिभिर्वा साधूनामेवाभिषातो भवेत् । द्वितीयपदे द्वारं पिद-ध्यादिप ॥ २३५४ ॥ कथम् व इत्याह—

सिय कारणे पिहिजा, जिण जाणग गच्छि इच्छिमो नाउं। आगाढकारणम्मि उ, कप्पइ जयणाइ उ ठएउं॥ २३५५॥

'स्यात्' कदाचित् 'कारणे' पुष्टालम्बने पिदध्यादिष द्वारम् । ० कि पुनसत् कारणम् ! इत्याह— > 'जिनाः' जिनकल्पिकाः 'ज्ञायकाः' तस्य कारणस्य सँग्यम् वेजारः परं द्वारं न पिदधित । शिष्यः प्राह—'गच्छे' गच्छवासिनामिच्छामो वयं विधि ज्ञातुन् । स्रिराह—आगाढं—प्रत्यनीक-स्तेनादिरूपं यत् कारणं तत्र 'यतनया' वध्यमाणल्क्षणया गच्छवासिनां द्वारं 25 स्यगयितुं कल्पते । एप निर्युक्तिगाथासमासार्थः ॥ २३५५ ॥ अथैनागेव विष्टणोति—

जाणंति जिणा कर्ज, पंत्ते वि उ तं न ते निसेवंति । थेरा वि उ जाणंती, अणागयं केइ पत्तं तु ॥ २३५६ ॥

१ °मनं फुर्यतोऽपि केन° गं ।। २ पतदेव व्याख्या भा ।।

३ १न्धु मत्कोटकाद° मा॰ ॥ ४ प १० एतिबहनपावणी पाठ गो॰ पुनाक एव पर्ति ॥

५ सम्यम् वेदिनः परं ते हारपिधानं नासेयन्ते । "गच्छ" सि यो गण्ड्यासी स फारणे यतनया द्वारं पिदधाति । शिष्यः प्राह—रच्छामो वयं फारणं ज्ञातुम् । स्टिराह—आगादं-प्रत्यनीक-स्तेनादिरूपं यत् कारणं तत्र यतनया स्थगिवतुं करपने । एप संप्रद-गाथासमासाधः भा॰॥ ६ पत्तं पि उ त्य॰॥

'जिनाः' जिनकल्पिकास्तत् कार्यमनागतमेव जानन्ति येन द्वारं पिषीयते, तच मत्यनीक-स्तेनादिकं वृक्ष्यमाणल्क्षणम्, तसिँख प्राप्तेऽपि 'तद्' द्वारिपयानं ते' मगवन्तो न निषेवन्ते, निरपवादानुष्टानपरत्वात् । 'स्विता अपि च' स्वविरकल्पिकाः सातिश्यश्चतज्ञानाद्युपयोगवलेन केचिदनागतमेव जानन्ति, 'केचित् तु' निरतिशयाः प्राप्तमेव तत् कार्यं जानते, ज्ञात्वा च ध्यतनया तत् परिहरन्ति ॥ २३५६ ॥

अहवा जिणप्यमाणा, कारणसेवी अदोसर्व होह । थेरा वि जाणग चिय, कारण जयणाए सेवंता ॥ २३५७ ॥

अथवा "जिण जाणग" चिँ (गा० २३५५) निर्धुक्तिगाधापदमन्यथा व्याख्यायते— जिनः—तीर्थकग्त्तस्य प्रामाण्यात् कारणे द्वारिपधानसेवी अदोपतान् मविति"। जिनानां हि मग-10वतामियमाज्ञा—कारणे यतनया द्वारिपधानं सेवमानाः स्थिवरकल्पिका अपि 'ज्ञायका एव' सम्यत्विधिज्ञा एव ॥ २३५७॥ आह किं तत् कारणं येन द्वारं पिवीयते ? उच्यते—

> पहिणीय तेण सात्रय, उच्मामग गोण साणऽणप्यज्ये । सीयं च दुरिययासं, दीहा पक्खी व सागरिए ॥ २३५८ ॥

उद्घाटिते द्वारे प्रत्यनीकः प्रविद्याहननमपद्मावणं वा कुर्यात् । 'खेनाः' शरीरखेना उप-15 थिस्तेना वा प्रविशेष्ठः । एवं 'श्वापदाः' सिंह-च्याबादयः 'उद्घामकाः' पारटारिकाः 'गोः' वळी-वदः 'श्वानः' प्रतीताः, एते वा प्रविशेष्ठः । ''अणप्पज्ञे'' ति 'अनात्मवशः' क्षिप्तिचादिः स द्वारेऽपिहिते सित निर्गच्छेत् । श्रीतं वा दुरिवसहं हिमकणानुपक्तं निपतेत् । 'दीर्घा वा' सर्पाः 'पक्षिणो वा' काक-कपोतप्रसृतयः प्रविशेष्ठः । सागारिको वा कश्चित् प्रतिश्रयसुद्धाटद्वारं दृष्ठा तत्र प्रविश्य अयीत वा विश्रामं वा गृहीयात् ॥ २३५८ ॥

> एकेक्सिम उ ठाणे, चउरो मासा हवंति उग्वाया । आणाहणो य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽयाए ॥ २३५९ ॥

र्द्धारमस्यगयतामनन्तरोक्ते 'एकैकसिन्' मत्यनीकप्रवेशादी स्थाने चत्वारी मासाः 'उद्धाताः' रुघवः प्रायिश्चर्तं मवति, आज्ञाद्यश्चात्र दोषाः, विराधना च संयमा-ऽऽत्मविषया मावनीया ॥ २३५९ ॥ यदुक्तम् ''चत्वारो मासा उद्धाताः" इति तदेतद् बाहुस्यमङ्गीकृत्य द्रष्टव्यम्, 20 अतोऽपवद्वाह—

अहि-सावय-पचित्यमु, गुरुगा सेसेसु होंति चउलहुगा । तेणे गुरुगा लहुगा, आणाह विराहणा दुविहा ॥ २२६० ॥

१ °का अधीतसातिशयश्रुतास्तत् कं ।। २ त० दे० कं ० विनाऽन्यत्र—ति' जिनकविपक्त न निपेयन्ते, निरपवादानुष्टानपरन्यात् तेषां भगवताम् । 'ख्यविरा मा० ॥ ३ चि
पद् भो० दे० विना ॥ ४ °ति । कृतः ! इत्याद्द — "थेरा वि" इत्यादि । जिनानां का० ॥
५ पत्र ॥२३५७॥ अत्र शिष्यः पृच्छति—इच्छामो वयं तत् कारणं ब्रातुं येन द्वारिपधानमासेत्र्यते, उच्यते मा० ॥
६ थनन्तरोक्ते एकंकस्मिन् खानेऽकारणे यदि द्वारं न खगयन्ति तदा चत्यारो कं ०॥

अहिषु श्वापदेषु पत्यथिषु च-प्रत्यनीकेषु द्वीरेऽपिहिते सत्युपाश्रयं प्रविशत्नु प्रत्येकं चत्वारो गुरुकाः । 'शेषेषु' उद्भामकादिषु सागारिकान्तेषु चतुर्रुषुकाः । स्तेनेषु गुरुका रुषुकाश्च भवन्ति । तत्र गरीरस्तेनेषु चतुर्गुरुकाः, उपिष्तेनेषु चतुर्रुषुकाः । आज्ञादयश्च दोपाः । विराधना च द्विविधा—संयमविराधना आत्मविराधना च । तत्र संयमविराधना स्तेनैरुपधाव-पहृते तृणम्हणमिसेवनं वा कुर्वन्ति, सागारिकाटयो वा तप्तायोगोलकल्पाः प्रविष्टाः सन्तो ह निपदन-शयनादि कुर्वाणा बहूनां प्राणजातीयानामुपमर्दं कुर्युः । आत्मविराधना तु प्रत्यनी-कादिषु परिस्फुटैवेति ॥ २३६०॥ आह् ज्ञातमसामिद्वीरिपधानकारणं परं काऽत्र यतना ? इति ·d नौद्यापि वयं जानीमः, ⊳ उच्यते—

उवओगं हेड्डवरिं, काऊण ठविंतऽबंगुरंते अ।

पेहा जत्य न सुज्झइ, पमिलेडं तत्य सारिति ॥ २३६१ ॥

श्रोत्रादिभिरिन्द्रियेरधस्तादुपरि चोपयोगं कृत्वा द्वारं स्वगयन्ति वा अपावृण्यन्ति वा । यत्र चान्धकारे 'प्रेक्षा' चक्षुपा निरीक्षणं न शुध्यति तत्र रजोहरणेन दारुडण्डकेन वा रजन्यां प्रमृज्य 'सारयन्ति' द्वारं स्यगयन्तीत्यर्थः, उपरुक्षणत्वादुद्धाटयन्तीत्यपि द्रष्टन्यम् ॥ २३६१ ॥

॥ अपावृतद्वारोपाश्रयप्रकृतं समाप्तम् ॥

घटी मात्र कत्र कृत म्

15

10

सूत्रम्---

कप्पइ निगांथीणं अंतो हित्तं घडिमत्तयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा १६॥

अस्य सूत्रस्य सम्बन्धमाह---

ओहाडियनिलिमिलिए, दुक्खं बहुसो अइंति निंति वि य। आरंभो घडिमत्ते, निसिं व बुत्तं इमं तु दिवा ॥ २३६२ ॥

20

चिलिमिलिकया उपलक्षणत्वात् कट्टयेन च 'अवपाटिते' पिनंदे सित हारे रजन्यां गाउ-कमन्तरेण बहिः कायिक्यादिन्युत्सर्जनार्थं बहुशो निर्गम-प्रवेदोषु दुःसमार्थिका निर्गच्छन्नि भविशन्ति च, अतोऽय घटीमात्रकसूत्रस्यारमः । यहा 'निमायां' रात्री मात्रके यथा कायिकी व्युत्सञ्यते तथा जनन्तरम्त्रेऽर्धतः मोक्तम्, इदं तु स्य दिवा मात्रकविधिमधिर यो-23 च्यत इति ॥ २३६२ ॥

१ द्वारमस्यगयतां प्रत्ये^{त हा} ।। २ -: p- एम्म्सप्यान पाट मा॰ मान्यि॥

३ °क्षणमप्रकादात्याम शुभ्यति तत्र रजोद्दरजेन टाकदण्डकेन या प्रसृत्य भार ॥

४ जवधारिता-वता चिलिमिटी यत्र तद् अवधारितिनितिनितीकी नत्र मात्र मान । ५ पिहिने सति वो । ॥ ६ 'प्रवेदााः फर्जव्याः, ततो दुःरामार्थिका अतियान्ति निर्ग वि ।

ű

अनेन सम्बन्धनायात्रसास्य व्याख्या—कस्यते 'निर्धन्यानां' व्यतिनानामन्द्रविद्यं 'वर्धाना-त्रकं' घर्धायसाने सन्त्रयभाजनविद्येषं धारियतुं वा परिद्र्तुं वा । 'घारियतुं नाम' सम्राप्या स्थापियतुम । 'परिद्रुते' परिमोक्तुन् । एष नृत्रार्थः ॥ अय नियुक्तिः—

यडियत्तंतो लित्तं, निग्गंथाणं अनिण्हमाणीणं ।

चउगुस्ताऽऽयरियादि, नन्य वि आणाइणी दोसा ॥ २३६३ ॥

'अन्तः' मध्ये 'लिमं' लेपेनोपदिन्यं घटामात्रकं निर्यन्थानामगृहतीनां चतुर्गुरकाः । "आयरियाहं" ति आचार्य एतत् सुत्रं प्रवर्तिन्या न कथयिन चतुर्गुरु, प्रवर्तिनीं आर्थिकाणीं न कथयिन चतुर्गुरु, आर्थिका न प्रतिशृष्यन्ति मासस्त्रु । 'तत्रापि' घटामात्रकसाप्रहणे < तेहि-विप्रतिपादकस्य च प्रस्तुतस्त्रस्य > अकथनेऽप्रतिश्रवण चाज्ञादयो दोषाः ॥ २३६३ ॥

10 बाह स घडीमात्रकः कीहरों। भवति ? इत्याह—

अपरिस्साई मसिणो, पगासवदणो स मिम्मको छहुको । - सुइ-सिय-इंट्रपिहणो, चिहुइ अरहम्मि वसर्हाए ॥ २३६४ ॥

'सः' इति घर्डामात्रकः पानकेनान्यन्तमावितस्वाद्वस्यं न परिश्ववर्तात्यपरिश्वावी, 'मन्नणः' मुक्तमारः, प्रकारं-प्रकटं वदनं-मुस्तमस्येति प्रकाशवदनः, 'मृन्मयः' मृत्तिकानिप्यत्रः, 'खन्नकः' १६स्तर्यमारः, शुचि-पवित्रं चौक्षमित्यर्थः सिनं-श्वेतं न क्रुप्णवर्णाशुपेतं ददेरियणनं-वस्त्रमयं वन्यनं वस्य स शुचि-सित-दर्दरियानः। एवंविषः 'खरहिमे' प्रकाशपदेशे वसत्यां तिष्ठति ॥२२६४॥ स्त्रम्—

नो कप्पइ निग्गंथाणं अंतो लित्तं घडिमत्तयं धारित्तष् वा परिहरित्तष् वा १७॥

20 अस व्यास्य पान्दत् ॥ कैत्र निर्युक्तिः—

साह् गिण्हर् छहुगा, आणार् विराहणा अणुविह चि । विद्यं गिलाणकारण, साहण वि मोअवीर्दासु ॥ २३६५ ॥

यदि साधुर्वर्शमात्रकं गृहाति तदा चत्नारो ल्बुकाः, आज्ञादयश्च दोषाः, विरावना च मंयमा-ऽज्ञमविषया । तत्र "श्रणुवहि" ति माघृनामयनुपविन मनति । किनुक्तं भवति ?— थ्ययद् किल साघृनामुपकारे न व्याप्रियते तद् नोपकरणं किन्त्विषकरणम्,

> नं जुज्जर् उनयार, उनगरणं तं सि होर उनगरणं। अर्रेग अहिगरणं, (ओवनिर्युक्ति गा० ७२१)

इति वचनाद्, यचाविकरणं तत्रं परिस्कृटेव संयमविरावना । आत्मविरावना त्वतिरिक्तो-पविमारवहनादनागादपरिनापनादिकाँ । "विद्यं" ति हितीयपदमत्र सवति । कि पुनः तत् ?

१ अय माध्यम् मा॰ कां॰ ॥ २ ४ १० एतन्मध्यातः पातः मा॰ त॰ हे॰ कां॰ नाति ॥ ३ अत्र माध्यम् मा॰ कां॰ ॥ ४ का । अत्र द्वितीयपदं मचति—ग्लानकारणे साधूनां जीवनादिषु वा सागारिकेषु घटामात्रकप्रहणं मवति । एतदुत्तरत्र का॰ मा॰ ॥

इत्याह—ग्लानकारणे समुत्पन्ने साधृनामपि घटीमात्रकग्रहणं भैवेत्, अथवा शोचवादिपुँ शिप्येपु देशविशेषेषु वा । एतदुत्तरत्र भावयिष्यते ॥ २३६५ ॥

अथ किमर्थमत्र चतुर्रुषु पायश्चित्तमुक्तम् व अत्रोच्यते---

दुविहपमाणतिरेगे, सुत्तादेसेण तेण लहुगा उ।

मिन्हिमगं पुण उर्वाहं, पडुच मासी भवे लहुओ ॥ २३६६ ॥

द्विविधं-द्विपकारं गणना-प्रमाणमेटाद् यत् प्रमाणं ततोऽतिरिक्ते उपधे स्त्रादेशेन चतुर्रु-घुका भवन्ति । यत उक्तं निशीथसूत्रे-

जे भिक्खू गणणाइरित्तं वा पमाणाइरित्तं वा उविह धरेड से आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं उग्वाइयं (उ० १६ सू० ३९) इति ।

अतः सूत्रादेशेन चतुर्रुधुकम् । यदा तूपिधिनिप्पत्रं चिन्त्यते तदा अयं घटीमात्रको मध्य-10 मोपिभेदेष्ववतरतीति कृत्वा मध्यमं पुनरुपिधं प्रतीत्य लघुको मासो भवति ॥ २३६६ ॥ अथ ''धारियतुं वा परिहर्तुं वा'' इति पदद्वयव्याख्यानमाह-

धारणया उ अभोगो, परिहरणा तस्स होइ परिभोगो। द्विहेण वि सो कप्पइ, परिहारेणं तु परिभोत्तं ॥ २३६७ ॥

इह द्विधा परिहारः, तद्यथा—धारणा परिहरणा च । तत्र धारणा 'अमोगः' अन्यापारणम् , 15 संयमोपबृंहणार्थं स्वसत्तायां स्थापनमित्यर्थः । परिहरणा नाम 'तस्य' घटीमात्रकादेरुपकरणस्य 'परिभोगः' व्यापारणम् । एतेन द्विविघेनापि परिहारेण स घटीमात्रको निर्मन्यीनां परिगोक्तं कल्पते । ⊲ सै च दिवस यावत् पानकपूर्णस्तिष्ठति ॥ २३६७ ॥

अथ किमर्थमयं गृह्यते १ इत्याह—⊳

उड़ाहो वोसिरणे, गिलाणआरोवणा य धरणम्मि ।

विइयपयं असईए, भिनोऽवह अद्वित्तो वा ॥ २३६८ ॥

सयतीभिरुत्सर्गतो द्रव्यप्रतिबद्धायां वसतो स्गातव्यम् । तत्र घटीमात्रॅकामहणे सागारिकाणा पश्यता बहिः कायिकीन्युत्सर्जने 'उद्घाहः' प्रवचनलाघवमुपजायते । अथ कायिक्या वेगं धार-यन्ति ततो धरणे 'ग्लानारोपणा' च पॅरिताप-महादुःखादिका भवति । № गत एवमतो प्रदी-तच्यो घटीमात्रकः संयतीभिः । द्वितीयपटमत्र— 'असित' अनिसमाने पर्टामात्रके यदि या १० विचते घटीगात्रक. परं 'भिन्न ' भगं अर्द्धितो वा अत एव 'अवत्.' अन्याप्रियमाणः तती वहिर्गत्वा कायिकी यतनया न्युत्सर्जनीया । निर्मन्थाः पुनम्मतिवद्दोपाधये निष्टन्ति अतन्ने पर्टा-मात्रकं न गृहन्ति, कारणे तु गृहन्त्यपि ॥ २३६८ ॥ यत आह---

१ भवेद्पि, शीचे त॰ दे०॥ २ हे० विनाडमात्र— पु शैक्षेषु मी०॥ ३ एक्सम्बन्धत पाट मा० नान्य॥ ४ व्यक्तं न मुक्कित तदा सामा है ।।।

५ 🔊 🗠 एतदस्तर्गत पाठ धी॰ पुरुष एवं वर्गते ॥ ६ अन्त्रभ्यमाने भा॰ ॥

७ 'म' 'भवहो चा' अन्याप्रियमाणः 'नार्रानिसो घा' नाचापि परिपूर्वी निमानतो परि गैरवा कायिकी यतनया स्युत्सर्जनीया ॥ २३६८ ॥ प्रथ साधृना क्रितीयपदमाह के का

लाउय असइ सिणेहो, ठाइ तृहिं पुन्वमाविय कडाहो। सेहे व सोयवायी, धरंति देसिं व ते पप्प॥ २३६९॥

विष्यान करणान कानार्थं च सेहे महीतव्ये पूर्वभावितं कटाहकं घटीमात्रकं वा मही-तव्यम् । यतस्तत्र गृहीतः 'सेहः' घृतं 'तिष्ठति' न परिश्रवति । शैक्षो वा कश्चित् साघूनां उमध्येऽत्यन्तं शौचवादी स शौचार्थं घटीमात्रकं गृहीयात् । 'देशीं वा' देशविशेषं शौचवादि-बहुछं प्राप्य घटीमात्रकं घारयन्ति, यथा गोछिविषये ॥ २३६९॥ अथास्यैव महणे विधिमाह—

गहणं तु अहागडए, तस्सऽसई होइ अप्पपरिकम्मे । तस्सऽसइ कुंडिगादी, घेतुं नाला विडअंति ॥ २३७० ॥

प्रथमतो यथाकृतस्य घटीमात्रकस्य ग्रहणं कर्तव्यम् । तस्यासत्यरूपपरिकर्मणि ग्रहणं भवति । 10 व्यथारूपपरिकर्मापि न प्राप्यते ततः 'कुण्डिकां' कमण्डलुम् आदिशव्दादपरमपि तथाविषं बहु-परिकर्मयोग्यं गृहीत्वा नालानि वियोज्यन्ते ॥ २३७० ॥

॥ घटीमात्रकप्रकृतं समाप्तम् ॥

चि लि मि लि का प्र कुत म्

सूत्रम्---

15

कृपड़ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चेलचिलिमि-लियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा १८॥

अस्य सम्बन्धमाह---

सागारिपचयद्वा, जह घड़िमत्तो तहा चिलिमिली वि । रुत्ति व हेट्टऽणंतर, इमा उ जयणा उभयकाले ॥ २३७१ ॥

20 सागारिकः—गृहस्यस्य प्रत्ययार्थं यथा घटीमात्रकस्तथा चिलिमिलिकाऽपि घारियतव्या । यद्वा यद्घस्तात् सूत्रं ततः 'अनन्तरसिन्' अपाष्ट्रतद्वारोपाश्रयसूत्रे रात्रौ चिलिमिलिकादिप्र-दान्त्रक्षणा यतना मणिता, 'इयं तु' प्रस्तुतसूत्रोपाता यतना असिन् 'उमयकाले' रात्रौ दिवा च कर्त्तव्या इति ॥ २३७१ ॥ अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्या—

करपते निर्मन्थाना निर्मन्थीनां वा चेलचिलिमिलिकां धारियतुं वा परिहर्त्तुं वा। एप सूत्रा-25 क्षरार्थः ॥ अथ माप्यविस्तरः—

१ देसं व मा॰ ता॰॥

२ अलाबुमात्रकमन्यद्तिरिकं नास्ति ग्लानिमित्तं च सेहो प्रहीतव्यस्ततोऽलाबुकस्या-भावे यत् पूर्वमावितं कटाहकं तत्र घृतं प्रहीतव्यम् । यतस्तत्र गृहीतं सत् तद् घृतं तिष्ठति न परिश्रवति । शेक्षो चा कश्चित् साधूनां मध्येऽत्यन्तं शौचवादी घटीमात्रकं धारयेत् देशं चा शौचवादिनं प्राप्य घटीमात्रकं धारयित यथा गोल्लविषये ॥ २३६९ ॥ गहणं मा० ॥ ३ °रस्ते यतना भणि° मा० ॥

४ 'घारियतुं' ससत्तायां स्थापयितुं 'परिहर्त्तुं' परिमोक्तं वा। एप कां॰ ॥

25

धारणया उ अभोगो, परिहरणा तस्त होइ परिभोगो। चेलं तु पहाणयरं, तो गहणं तस्त नऽमासि ॥ २३७२ ॥

धारणता नाम 'अमोगः' अन्यापारणम् , परिहरणा तु 'तस्य' चिलिमिलिकार्न्यस्योपकरणस्य 'परिभोगः' न्यापारणमुच्यते । आह वन्त-रज्जु-कट-चल्क-दण्डमेदात् पञ्चविधा चिलिमिलिका वक्ष्यते तत् कथं स्त्रे चेलचिलिमिलिकाया एव ग्रहणम् ' इत्याह—'चेलं तु' वसं रज्जादीनाः मध्ये बहुतरोपयोगित्वात् प्रधानतरं ततस्तस्यव स्त्रे ग्रहणं कृतम् , न 'अन्यासां' रज्जुचिलिमिलिकाया एव मेदादिस्रक्षपनिरूपणाय द्वारगायामाह—

मेदो य परूवणया, दुविहपमाणं च चिलिमिलीणं तु । उवभोगो उ दुपक्ले, अगहणऽधरणे य लहु दोसा ॥ २३७३ ॥

प्रथमतिश्विलिमिलीनां मेदो वक्तव्यः । ततस्तासामेव प्ररूपणा कर्चव्या । ततो द्विविधम-10 माणं गणना-प्रमाणमेदात् चिलिमिलिकानामिधातव्यम् । ततिश्विलिमिलिकाविषय उपभोगः 'द्विपक्षे' संयत-संयतीपक्षद्वयस्य वक्तव्यः । चिलिमिलिकाया व्यव्यत्ये च चतुर्लेषुकाः प्रायश्चित्तम्, दोपाश्चाज्ञावयो भवन्ति । एप द्वारगाधासद्वेपार्थः ॥ २२०२ ॥

अथैनामेव प्रतिद्वारं विवरीपुराह—

सुत्तमई रज़ुमई, वैगिमई दंड-कडगमयई य । पंचित्तह चिलिमिली पुण, उवग्गहकरी भवे गच्छे ॥ २३७४ ॥ स्त्रमयी रज्जुमयी वल्कमयी दण्डकमयी कटकगयी चेति पद्यविधा चिलिमिली । एषा पुनः 'गच्छे' गच्छवासिनामुपम्रहकरी भवति ॥ २३७४ ॥

उक्तो मेदः । अथ प्रह्मणा कियते—सृत्रस्य विकारः सृत्रमयी, सा च दल्यमयी वा फम्य-लमयी वा प्रतिपत्तव्या । रज्जोर्विकारो रज्जुमयी, कर्णादिमयो दवरक इत्यर्थः । वल्कं नाम-20 शणादिवृक्षत्वप्र्पम्, तेन निर्वृत्ता वल्कमयी । दण्डकः—वंदा-वेत्रादिमयी यष्टिमोर्निर्वृत्ता रण्ड-कमयी । कटः—वंशकटादिः, तिन्नप्तना कटकमयी ॥ गता प्रवृत्तपा । न्व अर्थारयाः पद्मवि-धाया अपि चिलिमिलिकाया यथाकमं गाथात्रयेण > द्विविधप्रमाणमाद—

हत्यपणगं तु दीहा, तिहत्य रुंदोन्निया असइ सोमा । एत प्यमाण गणणकमेक गच्छं व जा वेटे ॥ २३७५ ॥

इह प्रमाण-गणनामेदाद् द्विविधं प्रमाणम् । तत्र प्रमाणप्रमाणमाश्रित्य स्तानयी निलिमि-लिका हस्तप्रमकं दीर्घा त्रीन् हस्तान् 'रूटा' विन्नीणां भवति । एषा चोत्नर्गतनायदीर्णिकी । जीर्णिक्याः 'असित' अलाभे क्षीमिकी प्रहीतत्या । यल्कचिलिमिटिकाया अप्येनदेव प्रमाणम् । गणनाप्रमाणं पुनर्षिकृत्यकेकस्य सागोरेकका, यावत्यो वा गच्छं वेष्टयन्ति नायत्यो भविना ।

१ 'स्यस्पीपप्रदिकोपक' भार ॥ - २ कडगमई याग-इंग्रममई य १७० म

३ प्राप्त पर भार मिला । अध्यासामेत्र पञ्चानामपि यथाकमं श्रांत । प्राप्त पात्र प्राप्त । प्राप्त पात्र प्राप्त । प्राप्त पात्र प्राप्त । प्त । प्राप्त । प्त । प्राप्त । प्त । प्राप्त । प्राप्त । प्राप्त । प्राप्त । प्राप्त । प्राप्त । प

यद्वा या प्रातिहारिकी गच्छं सकलमपि वेष्टयति सा गणनयेका, प्रमाणेन त्वनियता ॥२३७५॥ असतोण्णि खोमिरज्जू, एकपमाणेण जा उ वेढेह् । कडहुवागादीहिं, पोत्तऽसह भए व वागमई ॥ २३७६ ॥

रंज्जुचिलिमिलिका पूर्वमीर्णिकटवरकरूपा। तस्या अभावे क्षीमिकदवरकारमकाऽपि कर्चव्या। इसा च ४ सेंवेपामपि साधूनां प्रत्येकं № गणनयेकेका, प्रमाणेन तु हस्तपञ्चकदीर्घा भवति; गणा-बच्छेदिकहस्ते वा एक एव टवरको भवति यः सकलमपि गच्छं ४ शीतादिरक्षाये № वेष्ट-यति। कडहूर्नाम—बृक्षविद्योपः, तस्य यद् वल्कम् आदिशव्दात् पलाश-शणादिसम्बन्धीनि बक्कानि, तेर्निर्भृता वल्कमयी, सा च 'पोत्तऽसह'' ति वस्त्रचिलिमिलिकाया अभावे 'मये वा' स्तेनादिसमुत्ये गृह्यते॥ २३७६॥

> देहऽहिओ गणणेको, दुवारगुत्ती भये व दंडमई । संचारिमा य चलरो, भय माणे कडमसंचारी ॥ २३७७ ॥

देहं-गरीरं तस्य प्रमाणादिषको यो दण्डकः स देहाधिकः, स च समयपरिमापर्या देहात् चतुरङ्गुलिषिकप्रमाणा नालिका मण्यते, एतावता प्रमाणप्रमाणमुक्तं द्रष्टव्यम् । स च देहाधिको दण्डको गणनयैकैकस्य साधोरेकैको मवति । तैश्च दण्डकेः श्वापदादिमये 'द्वारग्रुप्तिः' द्वारस्य 15 स्थानं क्रियते । एपा दडमयी द्रष्टव्या । एताश्चादिमाश्चतस्रश्चिलिमिलिका वसतेर्वसितं क्षेत्रात् क्षेत्रं सम्बरन्तीति सम्बारिमा उच्यन्ते । कटकमयी तु असम्बारिमा । 'माने च' प्रमाणे द्विविधेऽपि तां कटकमयीं चिलिमिलीं 'मज' विकल्पय, अनियतप्रमाणित्यर्थः । तत्र प्रमाणमङ्गीकृत्य यावता वस्यमाणं कार्य पूर्यते तावत्रमाणा कटकचिलिमिली, गणनया तु यधेकः कटः कार्य न प्रतिपूर्यति ततो द्विज्यादयोऽपि तावत्सङ्ग्याकाः कटा महीतव्या यावद्विस्तत् कार्य पूर्यते 20॥ २३७७ ॥ गतं द्विविधप्रमाणम् । अथ 'उपमोगो द्विपक्षे' इति पदं विवृणोति—

सागारिय सज्झाए, पाणद्य गिलाण सावयभए वा । अद्धाण-मरण-वासासु चेव सा कप्पए गच्छे ॥ २३७८ ॥

साँगारिके पश्यित साध्याये विधातस्ये प्राणद्यायां विधेयायां ग्लानार्थं श्वापदमये वा उत्प-नेऽध्विन मरणे वर्षायु चैव 'सा' चिलिमिलिका कल्पते 'गच्छे' गच्छवासिनां साधूनां परिमो-25 क्तुम् । एपं नियुक्तिगाथासमासार्थः ॥ २३७८ ॥ अथैनामेव प्रतिपदं विवृणोति—

पिंडलेहोभयमंडलि, इत्थी-सागारियद्व सागरिए। घाणा-ऽऽलोग ज्झाए, मच्छियं-डोलाइपाणेसु॥ २३७९॥

र °गादीहि च, पो° मा॰ कां॰ ता॰ ॥ २-३ ॳ ▷ एतन्मव्यगत पाठः मा॰ कां॰ नात्ति ॥

४ °या नालिका भण्यते । एतत् प्रमाणप्रमाणमुक्तम् । गणनाप्रमाणेन त्वेकैकस्य साघो-रेकैको नालिकादण्डको मनति । तैश्च दण्डकैः श्वापदादिमये वाश्च्याद् अन्यस्मिन् वा तथाविघे कार्ये 'द्वार' कां॰ ॥ ५ तावान् कटो ब्रहीतच्यः, गणं का॰ ॥

६ सागारिके साध्याये प्राणद्यायां ग्लानार्थे श्वापद्भये वाऽध्वित मा॰ ॥ ७ °य सङ्ग्रह्माथा° मा॰ कां॰ ॥ ८ °य-टोला° ता॰ ॥

प्रतिलेखनां कुर्वन्तो द्वारे चिलिमिलिकां कुर्वते, मा सागारिका उत्कृष्टोपिवं द्राह्यः मा वा उद्ध्रकान् कार्युरिति कृत्वा, "उमयमंडिल" ति समुद्देशनमण्डल्यां त्वाध्यायमण्डल्यां नोजुह-रसणार्थम्, "इत्यीसागारियद्व" ति सीरूपप्रतिबद्धायां च वसते। 'मीनागारिकाणामालोको मा मृत्' इत्येतद्र्थं चिलिमिली दीयते, "सागारिए" ति सागारिकद्वारे चिन्त्यमाने एनत् कारणजातं चिलिमिलिकाश्रहणे द्रष्टव्यम् । "घाणाऽऽलोग ज्ञाए" ति साध्यायद्वारे यत्र मृत्र- इप्रीपादेरशुभा ब्राणिरागच्छिति, शोणित-चिक्काणां वा यत्रालोकः, चेटलपाणि वा यत्र कुतृहले-नालोकन्ते तत्र चिलिमिलीं दत्त्वा साध्यायः क्रियते । मिक्का-ढोलाद्यो वा प्राणिनो यत्र बहवः प्रविशन्ति, डोलाः—तिङ्का उच्यन्ते, तत्र प्राणदयार्थमेतासामेव चिलिमिलिकानामु-पभोगः कर्त्तव्य इति ॥ २३७९ ॥

उभओसहकजे वा, देसी वीसत्यमाइ गेलने । अद्धाणे छन्नासइ, भओवही सावए तेणे ॥ २२८० ॥

उभयं—संज्ञा-कायिकीलक्षणं चिलिमिलिकया आद्यतो ग्लानः मुख न्युल्मजित, 'ओपध-कार्ये वा' ओपधं वा तस्य प्रच्छन्ने दातन्यम्, 'मा मृगां अवलोकन्ताम्' इति कृत्वा, अतिश्चि-लिमिलिका दातन्या। एवं ''देसि'' ति यत्र देशे ग्राकिन्या उपद्वंः सम्भवति तत्र ग्लान प्रच्छन्ने धारियतन्यः। विश्वस्तो वा ग्लानः प्रच्छन्ने सुखमपाद्यतित्वष्ठति। आदिशव्याद् दुग्धा-15 दिकं ग्लानार्थमेव गीतार्थेन स्थापितम्, तच्च दृष्टा ग्लानो यदा तदा वा अभ्यवहरेदिति कृत्वा तत्रान्तरे चिलिमिलिका दीयते यथाऽसो तन्न पर्यति। एवमादिको ग्लानत्ये चिलिमिलिकाना-सुपमोगः। अध्विन प्रच्छन्नस्थानस्थामावे चिलिमिलिका दत्त्वा समुद्दिश्वान्ति वा सारोपिं वा मसुपेक्षन्ते। श्वापदेभ्यो वा यत्र भयं स्तेनेभ्यो वा यत्रोपपेरपद्रणयद्भा तत्र दण्डकचिलिमिलिकस्था वा दृदं द्वारं पिधाय स्थीयते॥ २३८०॥

छन्न-वहणट्ट मरणे, वासे उज्झक्खणी य कडओ य । उझ्निह विरिष्टिति व, अंतो विह कसिण इनरं वा ॥ २३८१ ॥

'गरणे' मरणद्वारे यावद् मृतकं न परिष्ठाप्यते तावन् प्रच्छते चिलिमिलिक्या जागृनं ध्रियते । तथा दण्डकचिलिमिलिक्या मृतकमुल्तिप्य वहनं कर्षच्यम् । तथा वर्षान् जीमृने वर्षति यसा दिशः सकाशान् "उज्यक्षणीय" ति पत्रनेप्रिना उदक्कणिका नगागच्येतु अत्यां करकचिलिमिली कर्षच्या, वर्षामु वा भिक्षानयीत्री गनाना गृष्टिकायेनार्टीहनमुर्पाः रज्जनिलिमिलिकायां 'विराह्यन्ति' विन्तारयन्तीत्यर्थ । तत्र यः कृत्यः—गारोपिननम् 'जन्न ' मध्ये विन्तारयन्ति, इतरः—अकृत्यः स्वरम् च चपिनां पत्रिकारयन्ति । एतं पराविषां चिलिमिलिकागगृहतोऽधारयत्वत्रतुर्देषुक्षाः, या च नामिर्धना गयमा-ऽङ्गिकिमागग् निर्णयन्त्रम् । २३८१ ॥ नंया—

त्रंभच्वयस्य गुत्ती, दुहत्थसंघाडिए मुहं भोगो । वीसत्थचिद्वणादी, दुरहिगमा दुविह रक्खा य ॥ २३८२ ॥

टपाश्रये वर्तमाना आर्यिकाश्चिलिमिलिकया नित्यकृतया तिष्टन्ति, यतो त्रसत्रतत्य गुप्तिरेवं कृता भवति । हिहत्तवित्तराया अपि सङ्घाटिकायाः सुन्तं मोगो मवति । किसुक्तं भवति ?— 5प्रतिश्रये हि तिष्टन्त्यता द्विहत्त्ववित्तरामेव सङ्घाटिकां प्राष्ट्रप्यते न त्रिहत्तां न वा चतुर्हत्तान् । तत्तिश्चिलिमिलिकायां वहिर्वद्वायां तयाऽपि प्राष्ट्रतया विश्वताः—नि श्रद्धाः सत्यः सुन्तं स्थान-निपदन-त्वन्वर्तनादिकाः क्रिया कुर्वन्ति । 'दुरिषगमाश्च' दुःश्रीलानामगन्या मवन्ति । द्विविधा च रक्षा कृता मवति, संयम आत्मा च रिक्षतो मवतीति मावः ॥ २३८२ ॥

॥ चिलिमिलिकापकृतं समाप्तम् ॥

द क ती र प्र कुत म्

10

15

20

स्त्रम्---

नो कष्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा द्गतीरंसि चिट्टित्तए वा निसीइत्तए वा तुयद्दित्तए वा निहाइ-त्तए वा पयलाइत्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए, उच्चारं वा पासवणं वा खेलं वा सिंघाणं वा परिट्ठवित्तए, सज्झायं वा करि-त्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए, काउस्तगं वा ठाणं ठाइत्तए १९॥

अयास सुत्रस कः सन्दन्दः ? इलाह—

मा मं कोई दच्छिइ, दच्छं व अहं ति चिलिमिली तेणं। दगर्तारे वि न चिद्रह, तदालया मा हु संकेजा॥ २३८३॥

मा मां 'कोऽनि' सागारिको द्रक्ष्यति, अहं वा तं सागारिकं मा द्राक्षमिति कृत्वा चिलि-मिली क्रियते । अत्रापि दक्तीरेऽनेनेव कारणेन न तिष्टति यत् 'तदाल्याः' दक्तीराश्रिता चन्तवो मा ग्राह्मन्तामिति ॥ २३८३ ॥ अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्या—

25 नो करणते निर्मन्यानां वा निर्मन्यानां वा 'दकतीरे' उदकीपकण्ठे 'सातुं वा' उर्द्वसित-स्यासितुं 'निषतुं वा' उपविष्ठस सातुं 'रम्वर्चिण्तुं वा' दार्व कायं प्रसारियतुं 'निद्रायितुं वा' सुक्षपतिवोषावस्थया निद्रया श्रायितुं 'भवश्यितुं वा' सितस्य स्वप्तुन्, अशनं वा पानं वा लादिनं

१ वा निपन्नस्य स्थातुं 'नि° मा॰ । वा तिर्वक्पतितस्य वा स्थातुं 'नि° बं॰ ॥ २ वा' रोत्यतस्य निद्रासितुम्, अशनं मा॰ ॥

वा सादिमं वाऽऽहारियतुम्, उचारं वा प्रश्रवणं वा खेलं वा सिद्धानं वा परिष्ठापितृन्, 'साध्यायं वा' वाचनादिकं कर्तुम्, 'धर्मजागरिका वा' ४ धर्मध्यानरुझणां → 'जागरितु' ॐ कर्तुम् धातृना-मनेकार्थत्वात्, अत्र पाठान्तरम्—''झाणं वा झाटचए'' धर्मध्यानमनुम्मर्तुमिति. > 'कायोत्मर्भे वा' ४ चेष्टा-ऽभिभवमेटाद् द्विविधकायोत्सर्गरुझणं > स्थानं 'सातु' कर्तुमित्यर्थ । एय स्त्रार्थः ॥ अथ निर्मुक्तिविस्तरः—

दगतीर चिद्वणादी, ज्यग आयावणा य वोधव्वा । रुहुओ रुहुया रुहुया, तत्थ वि आणाइणो दोमा ॥ २३८४ ॥

दकतीरे स्थानादीनि कुर्चतः प्रत्येकं रुघुको मासः । 'यृपके' वध्यमागरुक्षणे वनितं गृहाति चतुरुंघुकाः । 'आतापनें।' प्रतीतामपि दकतीरे कुर्चतश्चतुरुंघुकाः प्रायिश्चत वोद्गन्याः । तत्रापि प्रत्येकमाज्ञादयो दोपाः ॥ २३८४ ॥

अत्र दकतीरस्य प्रमाणे वहच आदेशाः सन्ति तानेव दर्शयति--

नयणे पूरे दिहे, तिंड सिंचण वीहमेव पुट्टे य । अच्छंते आरण्णा, गाम पसु-मणुस्य-इत्थीओ ॥ २३८५ ॥

नोढकः प्राह—''नयणि'' ति उटकाकराद् यत्रोटकं नीयते तद् दकतीरम्. यदि वा यावन्मात्र नदीपूरेणाकम्यते तद् दकतीरम्, यदा यत्र स्थितंज्ञं द्वयते तद् दकतीरम्, गं अथवा यावन्तवास्तटी भवति, यदि वा यत्र स्थितो जलस्तितेन शृहकादिना निच्यते. अथवा यावन्त भूभागं वीचयः सृष्टान्ति, यदि वा यावान् प्रदेशो जलेन म्ष्ट्रण् एतद् दक्तीरम् । मृरि-राह—यानि त्यया दकतीरलक्षणानि प्रतिपादिनानि तानि न भवन्ति, किन्त्वारण्यक्त प्रामेयका वा पश्चो मनुष्याः नियो वा जलार्थन जागच्छन्तः साधुं यत्र स्थित दृष्टा तिष्टन्ति निवर्णन्ते या तद् दक्तीरमुन्यते ॥ २३८५ ॥ एतदेव सिवेशेपमार—

सिंचण-चीई-पुद्धा, दगतीरं होइ न पुण तम्मचं। ओतरिउत्तरिउम्णा, जिह दहु नसंनि नं नीरं॥ २३८६॥

नयन-पूरमभृतीना सप्तानागादेशानां मध्याधारमाणि शीणि भिराम-गिष्टि शणीनि दक्तीरं भवन्ति, न पुनन्नायन्मात्रनेय, किन्त्यारण्यका प्रानेयमा या तियेश-मनुत्या अन्यागापधं-गयतरीतुमनसः पीत्वा या उत्तरीतुमनसो जलकरा या यत सिन मार्नु एष्ट्रा 'नम्यन्ति' विभ्यति अत्तरित्व या तदस्यभिचारि दकतीरमुच्यते ॥ २३८६ ॥

तत्र न स्थान-निपदनादिक्स्पे डोपान् दर्शवति— अहिगरणमंतराए, छेदण उत्मान अणहिवाने अ । आह्णण मिंच जलचर-खहै-थरुपाणाण वित्तामो ॥ २३८७ ॥

दर्कतीर तिष्ठतः सावोः 'अविकरणं' वस्यमाणस्त्रणं वहुनां च प्राणिनामन्तरायं मवति । तथा मावोः मम्बन्धिनीनां पाउरेण्नां 'छेदनकाः' सुक्नावयवत्रपा उड्डीय पानीये निपतेष्ठः, यहा 'छेदनं नाम' ते प्राणिनः साबुं हृष्ट्रा प्रतिनिष्ट्रसाः मन्त्रो हारतादिन्छेद्रनं कुर्वन्त्रो त्रजन्ति । ठ"स्सासे''ति उच्छ्वामविस्ताः पुरत्य जले निपतिन नतो अप्कायविरावना, वृदि वा तेनां प्राणिनां तृपाचीनाम् 'उच्छ्वासः' च्यवनं सवेत् मरणिनत्यर्थः । "अणिह्यासे य" ति 'अनिव-सहाः' तृप्राममिहप्यवन्तेऽनीर्थेन ज्यमवत्रेर्थः, मावृणं कश्चिद् 'अनिवस्हः' तृप्रार्तः पानीयं विवत् । दुष्टगवा-अधादिना वा तस्यहननं भवेत् । दक्तारिस्थनं वा अनुक्रस्या प्रत्यनीक्तया वा कश्चिद् हृष्ट्वा सिखनं कुर्यात् । जलवर-क्चर-सरक्चरप्राणिनां च वित्रासो मवेत् ॥२३८७॥ तज्यिकरणं व्याचिष्याद्वगह—

दहुण वा नियत्तण, अभिहणणं वा वि अन्ननृहेणं । गामा-ऽऽरत्नपर्यणं, जा जहि आरोजणा मणिया ॥ २३८८ ॥

साबुं दृद्वाऽऽर्ण्यकादियाणिनां निवर्तनं भवति, अभिहननं वा परस्परं तेषां भवेत् , ''अन्न-तृद्देणं'' ति अन्यतीर्थेन वा ते जरूनवनरेखः, तेषां चयामा-ऽऽर्ण्यपद्यूनां निवर्तनादाः « पैद्का-15योपनर्दनम्मवात् ''छक्वाय चञ्छ लहुगा'' (गा० १६१ गा० ८७९ च) इत्यादिना > या यत्रारोपणा मणिता सा तत्र दृष्टव्या । एषं नियुक्तिगाधासनासार्थः ॥ २३८८ ॥

वयेनामेव विवृणोति-

पडिपहनियत्तमाणिन्म अंतरार्य च तिमरणे चरिमं । मिन्वगहतिनिर्मनं, अमिघातो काय-आयाए ॥ २३८९ ॥

23 आरण्यकाः निर्यञ्चः निर्धिक्तव्यो वा 'पानीयं निश्वनः' इत्यावया तीर्यामिन्द्रत्वमाणन्तः सार्वुं दक्तीरस्थितं द्वया प्रतिरयेने निश्वर्जन्ते, निर्वर्जमाने च तत्रारम्यक्रमाणिगेमे सामोर्गिकरणं मश्ति । तेषां च तृपार्जानामन्तराणं चछव्यात् परितापना च इता भवति । तत्रेकसिन् परितापिते च्छेदः, ह्योस्तु म्लन्, त्रिंवनवस्थाप्यम्, < चंतुर्षु परितापितेषु पराश्चिकम्, > एनेनाम्त-रायपदं व्यास्णातम् । "तिमरणे चरिनं" ति य्षेक्सन्तृपार्जो त्रियते तत्रो म्लम्, ह्योत्रियमा25 णयोरनवस्थाप्यम्, त्रिषु त्रियमाणेषु सामोः पाराश्चिकम्, एतेनोच्छासंपदं विद्वतम् । तथा तं

र 'खहन्तरपाणाण ता॰ विना ॥ २ 'नियना चित्रतोत्सेपेण यहुद्धतं रज्ञलस 'छद् ° ना॰ ॥ ३ यहा ''ऊसासें''ति स्वकत्वात् स्वस्य 'उच्छासः' च्यवनं प्राणव्यपगमत्तेपां प्राणिनां तृपार्त्तानां भवतीत्यर्थः । ''अणिह्यासे य'' ति कश्चिद्सहिष्णुस्तृपितो घृतिहु-येटः पानीये ना॰ ॥ ४ 'सात् च्य' ना॰ विना ॥ ५ ४ भ एउदन्तर्णटः पाठः ना॰ व्यं॰ नाति ॥

६ °प सङ्गहना° ना॰ कं॰ ॥ ७ °न-यतः पथ आगताः तेनेत्र पथ नित्र° कं॰ ॥

८ व्हें ततो तेपामन्तरायं ना॰ ॥ ६ त्रिष्ठ परितापितेषु अनवस्थाप्यम् । एतेनान्तराय-द्वारं त्या॰ ना॰ ॥ १० चूर्णो त्रिदेषचूर्णां च ४ ४ एतिब्रह्मस्वर्थयंस्वरः पाञे न वर्तते ॥ ११ अद्वारं ति॰ ना॰ ॥

साधुं दृष्ट्वा ते तिर्यञ्चो मीताः शीव्रगत्या पलायमाना अन्योऽन्यं वा अगिषानरेतु . पर्पायाना वा तिनिमित्तं शीव्रं धायमाना अभिषात विद्य्युः, तत्र "छवाय चडमु लहुगा" (गा० ४६१ गा० ८७९ च) इत्यादिकं कायविराधनानिष्पत्रं प्रायधित्तम् । दृष्टा वा तिर्यग्रानसेव साधी-राहननादिनाऽऽत्मविराधना कुर्युः । अनेनाहननपद ज्यास्यातम् ॥ २३८९ ॥

"अणहियासे (गा० २३८७) अन्नतृद्देणं (गा० २३८८)" ति पद्रहयं भारयति—६

अतड-पवाती सो चेव य मन्गो अपरिश्वत्त हरियाई। । ओवग ऋडे मगरा, जई घुंटें तसे य दुहनो वि ॥ २३९० ॥

अयँ तृपामसहिष्णवस्ते गवादयो अतदेन वा—अतिर्थेन अन्यतीर्थेन वाऽवतरेयुः दिउद्दे वा प्रपातं द्रयुः ततः परितापनाग्रुत्था सवारोपणा । अथवा 'ग एव' अभिनयो गार्गः प्रग्रंते तत्र चापरिसुक्तेनावकागेन गच्छन्तो हरितादीनां छेदनं छुर्यु तत्र तकिष्पतं प्रायधिषम् । 10 एतेन च्छेदनपदं व्याप्त्यातम् । "ओवग" ति गर्ता तन्यां य वा अतीर्थेनावतीर्णाः सन्तः । ते प्रपतेयुः, अतीर्थे वा केनचित्रुव्धकेन कूटं स्थापितं भवेत् तेन कृटेन यदा विनाशमध्यने. अतीर्थेन वा जलमवतीर्णां मकंरादिभिः कवलीकियन्ते, तथा "जद्र षुटे" पि अन्यतीर्थेनानतीर्थेन वा साधुनिमित्तमवतीर्णान्यमित्रहितेऽष्काये यावतो प्रण्टान् कुर्वन्ति तायन्ति चतुर्वन्त्रम् मृति । "तसे य" ति अचित्रेऽष्काये यदि हीन्द्रियमधाति ततः पद्त्यपुक्तम्, जीन्द्रिये पर्नु- । क्कम्, चतुरिन्द्रिये च्छेदः, पद्रोन्द्रिये एकम्मिन् मृत् हयोरनवस्थाप्य निषु पद्रोन्द्रियेषु पाग- विकम् । "दुह्ओ वि" ति यत्राष्कायोऽपि सचितः हीन्द्रियादयधान्य निषु पद्रमृ जीन्द्रियेषु पाग- अष्काय-त्रसिवराधनाभ्या निष्पन्नं प्रायध्वितम् । सर्थवापि च हीन्द्रियेषु पद्रमृ जीन्द्रियेषु पर्मु चतुरिन्द्रियेषु चतुर्पु पत्रीन्द्रियेषु त्रिषु पाराधिकम् ॥ २३९० ॥ एते ताबरार्ण्यकितिर्ययस्था द्राथा दोषा उक्ताः । अय प्रामेयकितिर्यक्सतुर्यान् दोषानुपदर्श्यति —

गामेय कुन्छियाऽकुन्छिया य एकेल दुद्घऽदुद्वा य । दुद्वा जह आरम्णा, दुर्गुछियऽदुर्गुछिया नेया ॥ २३९१ ॥

ते मागेयकालियंजो हिविधाः—'कृत्मिनाः' जुगुप्यिना 'अकृत्मिनाः' अजुगुप्यिना । जुगुप्यिता गर्रभादयः, अजुगुप्यिना गवादयः । पुनर्रको हिनिधा — दुए। अरुएध । सर

१ कुर्युः तत्र परितापमहादुःगाडिका ग्लानारोपणा ॥ २३८९ ॥ गथ "शसन्हेपं" नि पर्दे भाव° गा॰ । Б

15

20

ये जुगुप्सिता अजुगुप्सिता वा दुष्टाने द्वयेऽपि यथा आरण्यकान्त्र्येव दोषानाश्रित्य ज्ञेयाः । ये अजुगुप्सिता अदुष्टानेष्वपि यथासम्भवं दोषा उपयुज्य वक्तव्याः ॥ २३९१ ॥ ये पुनर्जुगुप्सिता अदुष्टानेषु दोषानाह—

भ्रुत्तियरदोस कुच्छिय, पडिणीय च्छोम निष्हणादीया । आरण्णमणुय-थीमु वि, ने चेत्र नियत्तणाईया ॥ २३९२ ॥

येन साधुना महाशिव्यकाया जुगुप्सिता निरश्ची गृहस्यकाले मुक्ता तस्य तां तत्र दृद्वा स्मृतिः, इतरस्य काँतुकस्, एनं मुक्ता-ऽमुक्तसमुत्या दोषा मनन्ति । अथना ताँमु जुगुप्सितामु तिरश्चीयु पार्श्वर्तिनीयु प्रत्यनीकः कोऽपि "लोम" ति अभ्यास्यानं द्यात्—मयेष श्रमणको महाशिव्यकां प्रतिसेवमाना दृष्ट इति, तत्र ग्रहणा-ऽऽकर्षणप्रमृतयो दोषाः । एवं ग्रामेयका10ऽऽर्ण्यकेषु तिर्यक्षु दोषा लपद्रशिताः । अथ मनुष्यप्विनिर्वायन्ते—"आर्प्ण" इत्यादि, मनुष्या द्विनिषाः—आरण्यका ग्रामेयकाश्च । तत्रार्ण्यकेषु पुरुषेषु त एव दोषाः, लीन्वप्यारण्यकामु त एव निवर्तना-ऽन्तरायाद्यो दोषा ये तिर्यक्ष मणिताः ॥ २३९२ ॥

एते चान्येऽम्यविकाः---

पायं अवाउडाओ, सवराईओ तहेव नित्यका । आरियपुरिस कुनृह्रुल, आउमयपुर्लिद आमुवहो ॥ २३९३ ॥

'प्रायः' बाहुल्येन श्रवरीपमृतय आरण्यका अनार्यक्तियः 'अपाइनाः' बक्रविरहिताः ''नित्यका'' इति निर्केञाश्च मवन्ति, ततः साद्यं दृश आर्योऽयं पुरुष इति कृत्वा कोतृह्लेन तत्रागच्छेयुः, ताश्च दृश सावोरात्नोमयसमुत्या दोषा मवयुः, तर्वायपुलिन्दश्च तां साष्टुसनीपायातां विलोक्य ईप्योमरेण मेरितः सायोः पुलिन्या उमयस्य वा आश्च-श्रीत्रं वयं कुर्यात् ॥२३९३॥

थी-पुरिसञ्जायारं, खोमो सागारियं ति वा पहणे । गामिन्थी-पुरिसेहि वि, ने चिय दोसा इमे असे ॥ २३९४ ॥

अथवास पुलिन्द्रः पुलिन्द्रा सहानाचारमाचरेत् ततः स्तीपुरुपानाचारे हप्टे चित्रक्षोमो मनेत्, श्रुमिते च चित्ते प्रतिगमनाद्या दोषाः । यद्वा स पुलिन्द्रस्तां प्रतिसेवितुकामः 'सागारिकं' वस्यमाणल्यणमिति कृत्वा तं सावुं प्रहण्यात् । एते आर्ण्यकेषु स्री-पुरुषेषु दोषा उक्ताः । 25 शामेयकस्त्री-पुरुषप्विष त एव दोषाः । एते चान्येऽविका मवन्ति ॥ २३९० ॥

> चंक्रमणं निष्ठेत्रण, चिट्ठिचा तम्मि चेत्रँ त्हम्मि । अच्छते संकापद, मञ्जण दड्डं सतीकरणं ॥ २३९५ ॥

चङ्गमणं निर्लेयनं वा तत्र गृहर्सः कर्तुकामोऽपि साबुं दृद्वा कश्चिद्गन्यत्र गत्वा करोति, कश्चिच तत्रेव तीर्थे साबुसमीपे गत्वा करोति । तथा "चिट्टिच" चि कश्चिद् गृहस्यः साबुना 30सह गोष्टीनिमिचं सित्वा पश्चाद्गन्यत्र गच्छेति । एवमविक्रणं मवेत् । तथा दकतीरे तिष्ठति

१ °सु कुत्सिता° नो॰ हे॰ ॥ २ °ण्यकानां पुरुषाणां स्त्रीणां च त एव मा॰ ॥ ३ °कमजु॰ ध्यस्त्रि° सा॰ ॥ ४ °ण्यकानां दो° मा॰ ॥ ५ °व कुहर्रास्म ता॰ ॥ ६ °स्यः कृत्वा गन्तुकान्मोऽपि सार्चु दृष्ट्वा तत्रव तीर्ये साधुसमीपे स्थित्वा पंखा ना॰ कं॰ ॥ ७ °ति। तत्र च

सार्थो 'शङ्कापदं' वश्यनाणलक्षणमगारिणा जायते । मजनं च विषीयमानं हृद्रा म्यृतिरुग्नं भुक्तमोगिनाम् , उपलक्षणत्वाद्भुक्तमोगिनां च कांतुक्रमुपजायते ॥ २३९५ ॥ अथनामर्थे निर्युक्तिगाथां विष्युणोति—

अन्तन्य व चंकमती, आयमणऽण्णन्य वा वि वोमिरह । कोनाली चंकमणे, परकृलाओ वि तन्येह ॥ २३९६ ॥

कश्चिद् 'दक्तीरे चद्रमणं करिष्यामि' इत्यभिप्रायेणायानः साधुं दृष्टा ततः स्तानादन्यत्र चद्रम्यते, वाशव्दात् कश्चिदन्यत्र चद्रम्यमाणः साधु विलोषय तत्रागत्य चद्रम्येन । एउम् 'आचमनं' निर्छेपनं तन् कर्नुकामः सज्ञां वा व्युत्त्रपृक्तामः साधुं दृष्ट्रा अन्यत्र गत्वा अन्यते। वा तत्रागत्य निर्छेपयति व्युत्स्वति वा । तथा कश्चिदगारो गन्तुकामः परकृत्रे चद्रम्यमाणं साधुं निरीक्ष्य ''कोनालि'' ति गोष्टी तां साधुना सह करिष्यामीति नत्वा तदर्थं चर्रमणं कर्नु परकृ-10 हाँदिप तत्रागच्छति। सर्वत्र साधुनिमित्तमागच्छत्रागनिष्टिंध पद् कायान् विराधयेत्॥२३९६॥

"अच्छंते संकापय" चि पदं व्याख्यानयति—

दग-मेहुणसंकाए, लहुगा गुरुगा उ मृल निस्संक । दगतूर कोंचवीरग, पर्यम कैमाटलंकारे ॥ २३९७ ॥

माधुं दक्तीरे तिष्टन्तं दृष्ट्वा किध्वितारः शक्षा कुर्यात्—िक्रमेष उद्यक्तपानार्थे तिष्टति । इत मेथुने दक्तमेक्ष्तां काञ्चिदागच्छन्ती प्रतीक्षते । तत्रोदक्षपानशक्षाया चतुर्नेषु, निःशक्षिते नतुर्गुरु; मेथुनशक्षायां चतुर्गुरु, निःशक्षिते मृलम् । "मृलग दृष्टु गर्छकरणं" ति (गा० २३९५) पदं व्याप्यायते—कोऽषि मृलनं कुर्यन् तथा कथित्रद् जलगारक्षलयित यथा 'दरन्-र्थम्' उदके सुन्वादित्याणा शब्दो भवति । यहा कोऽषि क्रोज्यभिरकेण जलगारिण्डते । कोञ्चिरको नाम पेटामदृशो जलयानिवद्योगः । "प्यम" ति कात्वा पट्यामादिनिः न्यग्रति कोऽपि श्रप्यति । यहा "केमादृलकारे" चि केश-यम्ब-मान्या-ऽऽभरगा-ऽलक्षीरम्यानमञ्जरोति । एतेषु मृलनादिकं दृश्चा सुक्ता-ऽस्क्रमगुल्या स्मृत्यादयो द्योगा ॥ २३९७ ॥

एवं पुरुषेषु भणितम् । अथ सीषु दोषान् दर्शयनि---

मजणवहणद्वाणेमु अच्छने इत्यिणं नि गहणार्दा । एमेव कुच्छिनेतर, इत्थि सविसेन मिहणेमु ॥ २३९८ ॥ ज्ञातिवर्गश्चिन्तयर्ति — अम्मदीयस्त्रीणां मज्जनादिग्साने एप अमणः परिमवेन कामयमानो वा तिष्टति, ततो दृष्ट्यांच इति कृत्वा ग्रहणा-ऽऽकर्पणाटीनि कुर्यात् । याः पुनरपरिमहन्त्रियन्ताः 'कुत्तिताः' रजक्याद्यः 'इतराः' अकुत्मिता त्राह्मण्याद्यः तास्वप्येवमेवात्मपरोमयसमुत्याद्यो दोषाः । 'मिश्चनेषु' स्त्री-पुरुषयुग्मेषु मेश्चनकीह्या रममाणेषु सविद्येषतरा दोषा भवन्ति, ये च व्वक्कमणाद्यो दोषाः पूर्वमुक्तास्तेऽप्यत्र तथेव द्रष्ट्याः । यत एते दोषा अतो दक्तिरिऽमृनि स्त्रोक्तानि पदानि न कुर्यात् ॥ २३९८ ॥

चिडुँण निसीयण या, तुयङ्ग निद्दा य पयल सज्झाए। झाणाऽऽहार वियारे, काउस्सम्मे य मासलहू॥ २३९९॥

स्थाने १ निपदने २ त्वावर्षने ३ निद्रायां ४ प्रचलायां ५ स्वाच्याये ६ घ्याने ७ आहारे ८ 10 विचारे ९ कायोत्सर्गे १० चेति दशसु पदेषु दक्तीरे विधीयमानेषु प्रत्येकं मासल्खु, असामाचारीनिप्पन्नमिति मावः ॥ २३९९ ॥ अथ निद्रा-प्रचल्योः स्वरूपमाह—

मुहपडिवोहो निहा, दुहपडिवोहो उ निह्निहा य । पयला होह ठियस्सा, पयलापयला य चंक्रमओ ॥ २४०० ॥

युखेन-नयच्छोटिकामात्रणापि मितवोधो यसिन् स मुखमितवोधः, एवंत्रियः खापितिशेषो 16 निदेखुंच्यते । यत्र तु दुःखेन-महता मयनेन मितवोधः स निद्रानिद्रा । तथा स्थितो नाम-टपित्रष्ट कर्द्धस्थितो या तस्य या खापावस्था सा मचला । या तु 'चङ्कमतः' गतिपरिणतस्य निद्रा सा मचलामचला । अत्र च निद्रा-मचलयोरिषकारे यित्रद्रानिद्रा-मचलमचल्योर्ज्यात्यानं तदनयोरप्यत्रेवान्तर्मावो द्रष्टव्य इति ज्ञापनार्थम् ॥ २८०० ॥

अर्थ विन्तरतः प्रायश्चित्तं वर्णयितुकाम आह—

20 संपाइमें असंपाइमे व दिन्ने तहेव अदिहे ।

पणगं लहु गुरु लहुगा, गुरुग अहालंद पोरुसी अहिया ॥ २४०१॥

दक्तीरे 'सम्पातिमेऽसम्पातिमे वा' उमयस्मिन्निप बङ्यमाणस्त्रणे दृष्टोऽदृष्टो वा तिष्ठति । कियन्तं पुनः कालम् १ इत्याह—यथालन्दं पीरुगीमिनिकं वा पीरुपीम् । तर्त्र यथालन्दं त्रिया— जयन्यं मध्यममुद्धृष्टं च । तर्त्र स्त्रिया आर्दः करो यावता कालेन शुप्यति तद् जयन्यम्, उद्धृष्टं १८ पृत्रकोटिप्रमाणम्, तयोरपान्तराले सर्वमिप मध्यमम् । अत्र जयन्येन यथालन्देनाधिकारः । एवं यथालन्दादिमेदात् त्रित्रियं कालं दक्तिरे तिष्ठतः पञ्चकं लघुको गुरुको मासः छवुका गुरुका- श्रद्धारो मासाः प्रायश्चित्तम् । एतदुपरिष्ठाद् (गा० २४०३) व्यक्तीकरिष्यते ॥ २४०१ ॥

१ °ति—यत्रास्माकं क्रियो मलनादि कुर्वन्ति तत्रैंप थ्र भा०॥ २ °पाः। "इत्थी सिवसेसिमिहणेसु" ति ये सस्तिकाः पुरुपास्तेषु में शु भा०॥ ३ चिट्टित्तु निसीहत्ता तुयह ता०॥ ४ °थ विभागतः प्रा भा०॥ ५ °मे वा हप्रोऽ भा०॥ ६ मो० छ० निनाऽन्यत्र— प्र सन्दिमिति कास उच्यते। स च निधा—जधन्यो मध्यम उत्हृप्थ । तरणिस्रया उद्कार्द्रः करो यावता कास्तेन शुष्यति म जधन्यः, उत्कृप्टः पूर्वकोटियमाणः, तयोरपान्त-रासे सर्वोऽपि मध्यमः। भा०। व्य तरणिस्रया उद्कार्द्रः क त० ह० ह० ॥

1%

अथ सम्पातिमा-ऽसम्पातिमपदे व्यास्याति--

जलजा उ असंपानी, संपानिम सेममा उ पंचिदी । अहवा मुत्त विहंगे, होनि अमंपानिमा सेमा ॥ २४०२ ॥

ये 'जलजाः' मत्स-मण्ड्कादयम्नेऽमन्मातिमाः. नर्युक्त द्रवनीर्मप्यमन्मित्तम् । द्रोताः 'पश्चेन्द्रियाः' स्वलचराः रतेचरा वा ये म्यानान्नगदामस्य मन्यनिन ते मन्यानिमानेगद् गुक्त तर् सम्पातिमम् । अथवा 'विह्जाः' पश्चिणम्न यत्रागत्य मन्यनिन नन् मन्यतिमम् । तान् गुक्ताः 'शेषाः' स्वलचरा जलचरा वा सर्वेऽप्यमन्यातिमा । तज्ञक दक्तीरमयन्यातिमन् ॥ २००२ ॥

अथ प्रोंकं प्रायधितं व्यक्तीकृरीतात्—

असंपाइ अहालंदे, अदिहे पंच दिहि मागो उ ।

पोरिसि अदिहि दिहे. लहु गुरु अहि गुरुओ लहुआ छ ॥ २४०३ ॥ १० असम्पातिमे दक्तिरे जयन्य यथालन्दमहप्रनिष्ठति पत्र गिनिट्यानि. हप्रनिष्ठति गाम- लघु, असम्पातिमे पौरुपीमहप्रनिष्ठति गामलघु, हप्रनिष्ठति मासगुरु, अधिता पौरुपीमहप्रनिष्ठति गामलघु, हप्रनिष्ठति मासगुरु, अधिता पौरुपीमप्र- स्तिष्ठति मासगुरु, हप्रनिष्ठति चतुर्लघु । एवगनम्पातिमे दक्तिरे गणिनप् ॥ २४०३ ॥

संपाइमे वि एवं, मामादी नवरि ठाइ चउगुरूए। भिक्छ-वनभा-ऽज्यरिए, तव-कालविसेनिया अहवा॥ २४०४॥

अहग पंचष्हं संजईण ममणाण चेत्र पंचष्हं । पणगादी आग्हं- णेयव्यं जात्र चित्रपदं ॥ २४०६ ॥

अथवा क्षुहिकादिसेदान् पञ्चानां संयनीनां अमगानां चैव पञ्चानां पञ्चऋदेगग्वयं प्रायक्षित्तं तादद् नेनव्यं यादत् 'चग्मपदं' पागिञ्चकम् ॥ २४०६ ॥ एनदेव सविदोयसाह—

मंजइ मंजय नह मंपञ्मंप अहलंद पारिनी अहिया। चिट्ठाई अहिंह, दिंह पणगाइ का चरिमं॥ २४०७॥

मंग्नाः क्षुवित्रां स्वित्रां मिह्यां अभिष्का प्रगिर्दनां चेति पत्रविष्याः मंग्ना अपि क्षुष्ठ-क्र-स्वित्नमिह्युको-पाद्याया-ऽऽचार्यमेदात् पद्यायाः ' मंपडम्यः' ति सुचक्रतात् मृत्रस्य सम्पाति-ममसम्पातिमं वा दर्क्तारमः । ययान्यदः पार्ट्यां-अधिक गैर्द्यान्यक्ष्यां कालत्रयम् । स्वान-निषदनादानि 10च दश्च प्रानि, अद्देष्ट देष्टे चेति पद्रव्यम् । एतेषु पदेषु पद्वज्ञादिकं चरमं धायिश्वतं यावद् नेतव्यम् ॥ २४०७ ॥ क्रियन्ति पुनः धायिश्वतस्वानानि मन्नति १ इति दर्शयति—

पण दस पनग्म वीसा, पणवीमा माम चउर छ बेव । लहु गुन्ना मध्वेने, छेटी मृलं दुगं चेव ॥ २४०८ ॥

पञ्चरित्रित्वान देशगित्रित्वाने पञ्चवश्यगित्रित्वाने विश्वनिगित्रित्वाने पञ्चविश्व18 तिरात्रिन्दिवानि नानिकं ब्लागे मामा प्यनामाश्च, एवानि सर्वाणि छड्डाने गुरकाणि व,
वह्या—स्तुपञ्चगित्रित्वानि गुरपञ्चगित्रित्वानि इत्यदि, एवानि पोद्देश मञ्चावानि, छेदो
मूस्तं 'द्विकं वेड' अनवस्याप्य-पाराज्ञिक्युगम्, एवं विश्वतिः प्रायश्चितस्यानीन मकन्ति ॥२४०८॥
अथानीगमेव पश्चा चारणिकां कुळेकाह—

पणगाइ अमंपाइम, मंपाइमऽदिइमेव दिहे य । चडगुरुऍ ठाइ खुईा, मेमार्ण हेड्डि एकेई ॥ २४०९ ॥

अस्मातिमे व्यव्यक्ति श्रुष्टिन निष्ठति ल्वुम्बन्म्, द्द्या निष्ठति गुरम्बन्म्, पेर्स्यामद्द्या निष्ठनि गुरम्बन्म्, द्द्या तिष्ठनि ल्वुद्यन्म्, अवित्रं पेर्स्यमद्द्या तिष्ठनि ल्वुद्यन्म्, द्द्याणं गुल्द्यन्म् । सम्यतिमे व्यक्तिम्द्द्या निष्ठनि गुरम्बन्म्, द्द्या निष्ठति ल्वुद्यन्म्, पेर्क्यमद्द्या निष्ठनि ल्वुद्यन्म्, पेर्क्यमद्द्या निष्ठनि ल्वुद्यन्म्, पेर्क्यमद्द्या निष्ठन्य गुल्द्यन्म्, द्द्याणं ल्वुस्बद्यन्म् । एवम्ब्र्स्यानमान्नित्योक्तम् । निर्णद्रन्यम् गुल्द्यन्यित्वेष्टः प्रस्के गुरम्बद्द्यन्यः प्रस्क्रम् । एवम्ब्र्स्यानमान्नित्योक्तम् । निर्णद्रन्यम् गुल्प्बर्णित्वेष्टः प्रस्के गुरम्बद्धः प्रस्कृतेष्टः प्रक्रियम् । प्रस्कृतिवाद्यन्ति ल्वुद्यन्यः प्रस्कृतेष्टः ल्वुद्यन्यः प्रस्कृतेष्टः ल्वुद्यन्यः प्रस्कृतेष्टः ल्वुद्यन्यः । निर्णवाद्यन्ति । स्वर्यन्यः मानगुरके, व्यव्यक्ति । निर्णया काम्लाव्यक्ति । व्यव्यक्ति । व्यव्य

१ बहुतेकेकं मा॰ डॉ॰ टा॰ ॥ २ धारिकायां चतु॰ मा॰ ॥ २ द॰ दे॰ मो॰ टे॰ विराध्यव—दसर्गे चतु॰ मा॰ । स्सर्गेप तिष्ठन्याश्चतु॰ डॉ॰ ॥

दृहृण व सङ्करणं, ओभासण विरहिए य आङ्यणं । परितावण चउगुरुगा, अकप्प पिंडसेव मृल दुगं ॥ २४१४ ॥

ग्लानस्य तद्दुदकं दृद्वा 'स्मृतिकरणम्' ई्दृशं स्मृतिरूत्पचते — पिवाम्यहमुदकम् । ततोऽसा-ववभापणं करोति, यदि दीयते ततः सयमविराधना, अथ न दीयते ततो ग्लानः परित्यक्तः । किरिहिते च कारणतः साधुभिः प्रतिश्रये उदकस्य ''आइयणं'' ति पानं कुर्यात्, यदि स्रलिक्तिनापिवति ततश्चतुर्रुष्ठकुकम् । अंथ ''दुगं'' ति गृहिलिङ्गमन्यतीर्थिकलिङ्गं च तेन 'अकल्पम्' अप्कायं प्रतिसेवत ततो मूलम्, तेन चाप्य्येनानागादपरितापनादयो दोपाः, तिन्नपन्नमाचा-र्यस्य प्रायश्चित्तम् । अथवा ''अकप्प पांडसेव मृल दुग'' ति अकल्पं प्रतिसेव्य भग्नवतोऽह्-मिति कृत्वा यद्येको ग्लानोऽवधावते तत आचार्यस्य मूलम्, द्वयोरनवस्थाप्यम्, त्रिषु पारा-10 श्चिकम् ॥ २११॥ ॥

आउक्काए छहुगा, प्यरगादीतसेस जा चरिमं । जे गेलने दोमा, धिइदुव्यलें सेहें ते चेव ॥ २४१५ ॥

अप्काये प्रतिसेविते चतुर्रुषुकाः । प्तरकादित्रसेषु 'चरम' पाराञ्चिकं यावन्नेतन्यम् । तत्र प्तरकादिषु द्वीन्द्रियेषु पङ्रुष्ठकम्, त्रीन्द्रियेषु पङ्ककम्, चतुरिन्द्रियेषु च्छेदः, पञ्चे15 न्द्रिये मत्सादो - वदंदकेन सह गिलिते > एकसिन् म्लम्, द्वयोरनवस्थाप्यम्, त्रिषु
पाराञ्चिकम् । ये च ग्लान्ये ग्लानस्य स्मृतिकरणा-प्कायपानादयो दोषा उक्ताः 'द्वतिदुर्वले'
मन्दश्रद्धे शैक्षे त एव द्रष्टन्याः ॥ २४१५ ॥

गतं यूपकद्वारम् । अथातापनाद्वारमाह य निर्युक्तिकारः ⊳— आयावण तह चेर्वं उ, नवरि इमं तत्थ होइ नाणत्तं । मञ्जण सिंचण परिणाम वित्ति तह देवया पंता ॥ २४१६ ॥

ये दकतीरेऽधिकरणा-ऽन्तरायादयो दोषा दक्तासे यथासम्भवं दकतीरे यूपके वा आतापनां कुर्वतस्त्रथेव भणितच्याः, नवरिमदं 'नानात्वं' विद्योपो भवति—तत्रातापयतो मज्जनं वा सिञ्चनं वा किश्चत् कुर्यात्, परिणामो वा तस्य मानादिविषयो भवेत्, 'वृत्तिर्वा' आजीविका मरुकाणा व्यवच्छिचेत, प्रान्ता वा देवता छोकनापुज्यमाना साधोरुपसम कुर्यात् ॥ २४१६ ॥

25 तत्र मज्जन-सिञ्चन-परिणामद्वाराणि व्याख्यानयति-

मजंति व सिंचंति व, पिंडणीयऽणुकंपया व णं केई। तण्हुण्हपरिगयस्स व, परिणामो ण्हाण-पियणेसु ॥ २४१७॥

"णं" इति तमातापकं प्रत्यनीकतया अनुकम्पया वा केचिद् 'मज्जयन्ति वा' स्नप्यन्ति 'सिम्बन्ति वा' शृक्षच्छटादिःभिरख्नसीभिया निर्वापयन्ति । यद्वा तस्यातापकस्य 'तृपितोऽहम्'

१ अथ "अकष्प पडिसेच मृल हुगं" ति गृहिलिङ्गमन्यतीर्थिकलिङ्गं च तिह्नकं तेन का॰ ॥ २ °थ्येन सेविनेन ग्लानस्थानागाढपरितापनादयो दोपाः, तिल्लपसं चतुर्गुरुकादिकं प्रायं का॰ ॥ ३ एनट्ये का॰ पुन्तके उटकपान एच स्विदोपं प्रायिश्चित्तमाह इस्रवतरणं वर्तते ॥ ४-५ ৺ ० एतिवह्नाः पाटः भा० का॰ नात्ति ॥ ६ चेवं, न॰ ता० ॥

इत्येवं तृष्णापरिगतस्य 'धर्माभिभ्तगात्रोऽत्य्' उत्येवसुष्णपरिगतम्य घा नान-पानयोः परिणामः सञ्जायते ॥ २४१७ ॥ वृत्तिहारं प्रान्नदेवताहार चाह---

> आउद्द जणे मरुगाण अदाणे खरि-तिरिक्यिछोभादी । पनक्यादंवपूराण, रारियाऽऽवरणं व सिनाई ॥ २४१८ ॥

तस्यानापनया आयूर्नः-आयार्जनो जनो मरुकाणा दानं न दटाति, तत्तनेपामटाने खरी-5 द्यन्नरिका तिरश्ची-गराञ्चित्र नामभृतिका तहिषय छोगम्-अभ्यास्यानं तदादयो दोषा भवेयुः । तथा 'प्रन्यक्षदेवनाऽयम्' इति कृत्वा नस्य माघोः पूजनं देवतायाश्चापूजनम्, ततः "सरियाऽऽवरणं" ति नयतवपगावृत्य तन्प्रतिरूपं कृत्वा द्यधरिका प्रतिसेवमानं देवता दर्शयेत . क्षिप्तचित्तादिकं वा त श्रमण सा देवना छ्योदिति ॥ २४१८ ॥

अर्थनामेव निर्वृत्तिनायां म्पष्टयति—

10

आयावण साहुम्सा, अणुकंषं तस्स कुणइ गामी उ । मनयाणं च पञ्जोसो, पडिणीयाणं च संद्रा य ॥ २४१९ ॥

तम्य मायोर्टरनीरे आनापना कुर्वनो प्रानजनः मर्वोऽत्यारृतः, ततश्चानुकम्पा तस्य करोति, पारणकदिवसे भक्तादिकं नविशेष ददातीत्वर्थः, 'अय प्रत्यक्षदेवः, किमसाकगन्येषां मरुकाटीनां टचेन र एतस्य टचं बहुफल भवतिर टित कृत्वा । ततो मरुकाणामदीयमाने प्रदेशः 15 सञ्जातः, ततरेत यक्षरिका-महागठिङकादिविषयमयगः प्रदयुः, यथा---एप सर्वतोऽसामि-र्धाक्षरिका महाशब्दिका वा प्रतिसेवमानो दृष्ट इति । तत्र ये प्रत्यनीकान्तेपा शद्धा भवति तत्र चतुर्गुरु, निःगद्भिते मृत्म : अथवा ये प्रत्यनीकान्ते गद्धन्ते—कसादेप तीर्थसाने आता-पयति ? कि न्तेन्यार्थी ? उत मधुनार्थी ? इति ॥ २४१९ ॥

गत वृत्तिद्वारम् । अय ''पचम्खदेव'' इत्यादि पश्चार्द्धं भाव्यते—यत्रासावातापयति तत्र 20 प्रत्यासन्ना देवता वर्तने तन्या छोकः सर्वोऽपि पूर्व पृजापर आसीत् । तं च साधु तन्नाताप-यन्तं दृष्ट्वा अय प्रत्यक्षंद्रयतमिति इत्वा छोकग्तं पृजयितु लगः । ततः सा देवता अपूज्य-माना प्रद्विष्टा सती व्यक्षरिकायभ्यास्यानं दचात् । अथवा साधुरूपमावृत्य तत्प्रतिरूपं व्यक्ष-रिकां तिरश्चा वा प्रतिसेवमानं टर्शयंत्, क्षिप्तचित्त वा कुर्यात्, अपरा वा अकल्पप्रतिसेव-नादिकामिकयां दर्शयेत् । यसादियन्तो दोषान्तसाद् दकतीरे यूपके वा न स्थानादीनि पदानि 25 कुर्यात्, द्वितीयपटे कुर्यादपि । कथम् १ इत्याह-

पढमे गिलाणकारण, वीए वसहीएँ असहए वसह । रायणियकज्जकारण, तहए विद्यपय जयणाए ॥ २४२० ॥

प्रथमं-न्द्रकतीरं तत्र ग्लानकारणात् तिष्टेत् । द्वितीयं-यपकं तत्र निर्दोपाया वसतेः 'असति' अभावे 'वसति' तिष्ठति । 'तृतीयम्' आतापनापदं तत्र रानिकः-राजा सदायत्तं यत् 30

१ °त्तो यो जनस्तसाद् मरुकाणामदाने 'ख° भा० ॥ २ °कायाः परिभोगं देव° भा० का० ॥ ३ अर्थेतदेव स्प° मा० का० ॥ ४ उ ता० ॥ ५ °तः, तेन च द्व्य° भा० ॥

६ °यतो मया इत्र° भा॰ ॥ ७ व्याख्यायते भा॰ ॥

15

कुरु-गण-सङ्घकार्यं तत्कारींगे तिष्ठेत् । एवं त्रिप्वपि टकतीरादिषु 'यतनया' वक्ष्यमाणलक्षणया 'द्वितीयपदं' तत्रावस्थानलक्षणं सेवेत ॥ २४२० ॥ अधैनामेव निर्मक्तिगाथां मावयति—

विज-द्वियद्वयाए, निजंतों गिलाणों असति वसहीए। जीग्गाए वा असती, चिट्ठे दगतीरऽणीयारे ॥ २४२१ ॥

ग्लानो वैद्यस्य समीप नीयमानो द्रव्यम्-औपघं तद्र्भ चाऽन्यत्र नीयमानोऽन्यत्र वसतेरमावे दकतीरेऽपि तिष्ठेत् । अथवा विचते वसतिः परं न ग्लानयोग्या ततो योग्याया वसतेरसति तत्र वसेत् । अथवा विश्रामणार्थ दकतीरे मुहुर्चमात्र ग्लानस्तिष्टत् । तमपि मनुप्य-तिरश्चाम् 'अनवतारे' अप्रवेशमार्गेऽवतारयेत् ॥ २४२१ ॥ तत्र च स्थितानामियं यतना-

> उद्गंतेण चिलिमिणी, पडियरए मोत्तु सेस अन्नत्थ । पंडियर पंडिसंलीणा, करिज्ञ सन्त्राणि वि पयाणि ॥ २४२२ ॥

उदकं येनान्तेन-पार्थेन भवति ततिश्रिलिमिली कटको वा दीयते, ये च ग्लानस प्रतिच-रकाखान सत्तवा द्रोपाः सर्वेऽप्यन्यत्र तिष्टन्ति । प्रतिचरका अपि प्रतिसर्हीनाखया तिष्टन्ति यथा सम्पातिमा-ऽसम्पातिमसत्त्वानां सन्नासो न भवति । एव सर्वाण्यपि स्थान-निपदनादीनि पदानि क्रयोत् ॥ २४२२ ॥ गता दकतीरयतना । अथ यूपकयतनामाह-

> अद्वाणनिग्गयादी, संकम अप्पावहुं असुन्नं च । गेलन-सेहभावो, संसहुसिणं व निच्चविछं ॥ २४२३ ॥

अष्वनिर्गताद्यः साधवोऽन्यस्या वसतेरभावे यूपके तिष्ठन्ति । तत्रारुपवहुत्वं ज्ञात्वा य एकाङ्गिकोऽचलो अपरिवाटी निप्प्रत्यपायश्च सङ्गमस्तेन गन्तन्यम् । दिवा च रात्रो च वसति-मशून्यां कुर्वन्ति । तत्र स्थितानां ग्छानस्य वा शैक्षस्य वा यदि 'पानीयं पिवामः' इत्यशुमो 20 मात्र उत्पद्यते ततस्ता प्रज्ञाप्येते । तथाप्यस्थिते भावे तयोः संस्पृष्टपानकसुप्गोद्कं वा 'निर्वाप्य' सुशीतलं कृत्वा वातव्यम् ॥ २९२३ ॥ अधातापनायतनामाह —

> ओलोयण निग्गमण, ससहाओ दगसमीर्वे आयावे। उभयदहो भोगलहे, कज्जे आउड्ड पुच्छणया ॥ २४२४ ॥

चैत्यविनाग-तहव्यविनागादिविषयं किमपि कार्य राजावीनं ततो राज्ञ आवर्जनार्थं दकस--25 मीपे आतापयेत् । तच दकतीरं राज्ञोऽनळोकनपथे निर्गमनपथे वा भवेत् । तत्र चातापयन् 'ससहाय.' नेकाकी 'उमयहदः' घृत्या संहननेन च वल्वान् ''भोगजढे'' ति श्रामेयका-ssर-ण्यकानां तिर्यद्-मनुप्याणामवतर्णमार्गं मनुजाना च स्नानादिसोगस्थानं वर्जयित्वा अपिरसोरये प्रदेशे आतापयति । ततः स राजा तं महातपोयुक्तमातापयन्तं दृष्ट्वा आवृत्तः सन् कार्य पुच्छेत्—भगवन् ! किमेवमातापयसि ? आज्ञापय, करोम्यहं युप्मदमिपेतं कार्यम्, मोगान् 86 वा मगवतां प्रयच्छामि । मुनिराह—महाराज ! न मे कार्य मोगादिभिवरिः, इदं सङ्घकार्य

१ °रणेन यतनया हितीयपदं सेवेत ॥ २४२० ॥ अथैतदेव भा° मा॰ मां॰ ॥ २ चैत्यविनाशस्तद्रव्यविनाशो चा संयतीचतुर्थ[व्रत]मङ्गो चा अन्यद्वा किमपि श्रद्ध-नादितं कार्य राजाधीनं तस्यावर्त्तनाथं दक° मा॰ ॥

20

चैत्यविनागनिवर्त्तनादिकं विद्यातु महाराज इति ॥ २४२४ ॥

अथ तस्य कीह्यः सहायो दीयते ! इत्याह-

भाविय करणो तरुणो, उत्तर-सिंचणपहे य मुतूणं। मजणमाइनियारण, न य हिंडइ पुष्फ वारेइ॥ २४२५॥

'भावितो नाम' परिणतजिनवचन. तस्य गण्कायपाने परिणामो न भवति, "कर्णु" ति ६ इपुट्यासे संयमे वा कृतकरणः, 'तरुणः' समेर्थः, ईह्यः सहायसस्य नातिवृरे वृक्षच्छायायामुप-विष्टितिष्ठति । स चातापकित्तिर्यद्-मनुष्याणामुत्तरणपथ सिम्चनपथं च मुत्तवा आतापयति । तथा-प्यातापयन्तं यदि कोऽपि मज्जयति वा सिन्चयति वा ततस्तं सहायो निवारयति । स चाताप-कर्त्तसिन् प्रामे नगरे वा भिक्षा न हिण्डते, 'मा मरुकाद्यः प्रद्विष्टा अभ्याख्यानं विप-गरादि वा दयुः' इति कृत्वा । यश्चातापकरम पुष्पादीन्यारुगयति तमप्यसो सहायो वारयति ॥२४२५॥ 10

॥ दकतीरमकृतं समाप्तम् ॥

चित्र कर्म प्रकृत म्

सृत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सचित्त-कम्मे उवस्सए वत्थए २०॥ कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अचित्तकम्मे उवस्सए वत्थए २१॥

अस्य सृत्रस्य सम्बन्धमाह-

पढम-चउत्थवयाणं, अतिचारो होज दगसमीवम्मि । इह वि य हुज चउत्थे, सचित्तकम्मेस संवंधो ॥ २४२६ ॥

प्रथम-चतुर्थव्रतयोरप्कायपान-कीपग्रुससर्गादिभिरतिचारो दकसमीपे तिष्ठतां भवेदिति कृत्वा तत्र न तिष्ठतीत्युक्तम् । इहापि च सचित्रकर्मणि प्रतिश्रये तिष्ठतां चतुर्थव्रतस्यातिचारो भवेदिति कृत्वा तत्र न तिष्ठतीत्यनेन प्रतिपायते । एप सम्बन्धः ॥ २४२६ ॥

प्रकारान्तरेण तमेवाह--

नो कप्पइ जागरिया, चिद्वणमाई पया य दगतीरे । 25 चित्तगयमाणसाणं, जागरि-झाया कुतो अहवा ॥ २४२७ ॥ अनन्तरसूत्रे नो कल्पते 'जागरिका' धर्मध्यान स्थानादीनि च पदानि दकतीरे कर्तुमिख-

१ °र्थः स्वसमय-परसमयगृहीतार्थतया वोत्तरप्रदाने प्रगल्भः। आत्मनाऽपि च आता-पक ईंदशो भवति। स च सिञ्चनपर्थं मुक्तवा आ° भा॰॥

25

क्तम् । इह तु चित्रगतमानसानां कृतो जागरिका-साच्याये। सम्मवतः १ इत्ययम् 'अथवा' द्वितीयः सम्बन्धः ॥ २४२७ ॥

थनेन सम्बन्धद्वयेनायातस्यास्य व्याख्या-नो कल्पते निर्धन्यानां वा निर्धन्यानां वा 'सचित्रकर्मणि' चित्रकर्मणा संयुक्त उपाश्रये वस्तुम् ॥

करपत निर्यन्थानां वा निर्यन्थाना वा अचित्रकर्मणि उपाश्रये वस्तुमिति स्त्रार्थः ॥ **अथ भाष्यविन्तरैः**—

> निद्दोन सदोसे वा, निचत्तकम्मे उ दोन आणादी । मद्करणं विकहा वा, विद्यं असर्नाएँ वसदीए ॥ २४२८ ॥

निर्देषि वा सडोप वा मचित्रकर्मणि प्रतिश्रवे तिष्ठनामाज्ञाद्यो दोषाः । ये च ताहरी 10 चित्रकर्मग्रचिते वेञ्मनि पूर्वं मोगान् बुमुजिरं नेपां स्मृतिकरणम्, उपन्यक्षणत्मदितरेपां काँतु-कसुपजायते, विकथा वा तत्र वध्यमाणल्याणा मंत्रत् । द्वितीयपदं चात्र—वसतावसत्यां तत्रापि वसेत् ॥ २१२८ ॥ अयेनामव निर्मुक्तिगार्था च्याख्याति-

तरु गिरि नर्दा ममुद्दो, भवणा वर्छा लयावियाणा य । निद्दोस चित्तकम्मं, पुत्रकलय-मान्यियाई य ॥ २४२९ ॥

तरवः-सहकारावयः, गिरयः-हिमववादयः, नदाः-गङ्गा-सिन्युप्रमृतयः, ममुद्रः-लवणो-दादिकः, सबनानि-चतुःशालादीनि गृहाणि, बल्धयः-नागबल्याद्यः, लताः-माधर्वा-चम्पकलः ताद्यः तासां वितानं – तिकुरुम्यम् . नथा पृणेकच्या स्विन्तिकाद्यश्च ये माङ्गलिकाः पटार्थाः, पतेषां रूपाणि यत्रालिखितानि तिचत्रकर्म निर्दोपं ज्ञातव्यम् ॥ २३२९ ॥ अथ सदोपमाह---

> तिरिय-मणुय-दंबीणं, जत्य उ दंहा भवंति भित्तिकया । सविकार निष्त्रिकारा, सदोस चिनं हवइ एयं ॥ २४३० ॥

'तिर्यङ्-मनुज-डेवीनाम्' इति तिरश्चीनां मानुपीणां देवीनां चेत्यर्थः, एतासां देहाः सवि-कारा निर्विकाग वा यत्र मिर्चा कृता:-आलिखिता मयन्ति एत् चित्रकर्म सदोपं भवति ॥ २९३० ॥ अथात्रेव तिष्टता प्रायश्चित्तमाह-

लहु गुरु चउण्ह मासो, विसेसितो गुरुगों आदि छ्छहुगा ।

चउँछहुगार्दा छग्गुरु, उमयस्य वि दुविहचित्तमि ॥ २४३१ ॥ निर्देषि चित्रकर्मणि तिष्टतां चतुर्णामपि तपः-काळविशेषितो छत्रुमासः । तद्यथा—आचा-र्यस्य द्वाम्यामपि तरः-काळाम्यां गुरुकः, उपाच्यायस्य तपोगुरुकः काळरुषुकः, दृषमस्य काळ-गुरुक्त पोछबुकः, भिक्षोर्द्धामपि छबुकः। निर्धन्थानामपि निर्दोपचित्रकर्मणि तिष्टन्तीनां प्रवर्त्तिनी-गणावच्छेदिनी-अभिषेका-मिश्रुणीनामेवमेव तप'-कालविदोषितो गुरुको मासः 30 निर्मन्याः सदोपचित्रकर्मणि यदि तिष्टन्ति तदा गुरुको मास आदौ कियते, पड्टचुकाश्च

१ °रमाह् त॰ दे॰ ॥ २ तत्र निर्देषं चित्रकमं तायदाह ना॰ ॥ ३ °यादीया ता॰ ॥ ४ °तं मास्गुरुकम् । निर्प्रन्थाः सदोपचित्रकमेणि यदि तिष्टन्ति तदा चतुर्णामपि मासगुरकमादों ऋत्वा पद्छद्यकान्तं द्रष्टव्यम् । तत्र मिझो॰ मा॰ ॥

पर्यन्ते । तद्यथा—भिञ्जोर्मासगुरुकम्, वृपगम्य चतुर्रुषुकम्, जपाध्यायस्य चतुर्गुरुकम्, आचा-र्थस्य पद्रुषुकम् । निर्मन्थीनां तु सटोपे चित्रकर्मणि तिष्ठन्तीनां चतुर्रुषुकमादो कृत्या पतु-रुकान्तं प्रायश्चित्तम् । तद्यथा—भिञ्जण्याश्चतुर्रुषुकम्, अभिषेकायाश्चतुर्गुरुकम्, गणावच्छे-दिन्याः पद्रुषुकम्, प्रवार्तन्याः पद्गुरुकम् । एवम् 'डभयस्यापि' निर्मन्य-निर्मन्यीवर्गस्य द्विविधे चित्रकर्मणि प्रायश्चित्तं ज्ञानन्यम् ॥ २४३१ ॥ अथ विकथापदं न्यास्त्रानयति— ।

दिइं अन्नत्थ मए, चित्तं तं सोमणं न एअं ति । इति विकहा पिलमेंथो, सज्झायादीण कलहो य ॥ २४३२॥

तत्र चित्रकर्म दृष्ट्वा कथित् साधुर्म्यात्—मया पूर्वमन्यत्र चित्रकर्म दृष्टं तच 'शोभनं' वर्णक-रेखादिशुच्या रमणीयं न पुनः 'एतत्" प्रत्यक्षोपलम्यमानम् । तदाकर्ण्य द्वितीयः साधुर्वू-यात्—मुग्धबुद्धे । किं जानीपे त्वम् ! इटमेव रमणीयमिति । एवं निकथा सङ्घायते । तत्रश्चारा साध्यते । तत्रश्चारा साध्यते । यतः एते दोपास्त-सात्र स्थातव्यम् ॥ २४३२ ॥ द्वितीयपदं वसनावसत्यामिति द्वारं भावयति—

अद्वाणनिग्गयाई, तिपरिरया असइ अन्नवसहीए। तरुणा करिति दृरे, निचावरिए य ते रूवे ॥ २४३३॥

अध्वनिर्गतादयंसीन् परिरयान्-परिश्रनणानि कृत्वा यद्यन्या निरुपहता वसितर्ने प्राप्यते ततः 15 सचित्रकर्मकेऽप्युपाश्रये तिष्ठन्ति । तत्र च प्रथमं निर्देषे पश्चात् सदोपेऽपि । ये च तरुणासान् चित्रकर्मणो दूरतः कुर्वन्ति । तानि च रूपाणि 'नित्यावृतानि' सदैव चिलिमिलिकया प्रच्छा-दितानि कुर्वन्ति, नापावृतानि स्थापयन्तीत्यर्थः ॥ २४३३ ॥

॥ चित्रकर्मप्रकृतं समाप्तम् ॥

सा गारिक निशा शकत म्

20

25

सृत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीणं सागारियअनिस्साए वत्थए २२ ॥ कप्पइ निग्गंथीणं सागारियनिस्साए वत्थए २३ ॥

अस्य सूत्रस्य सम्वत्थमाह---

एरिसदोमविमुक्मिम आलए संजईण नीसाए। कापह जईण भइओ, वासो अह सुत्तसंबंधो ॥ २४३४॥

ईहरोः-अनन्तरोक्तेदोंपेर्विमुक्तो य आलयः-उपाश्रयस्तसिन् संयतीनां सागारिकनिश्रया

पैरिगृहीतानां ⊳ वासः कल्पते । यतीनां तु 'भक्तः' विकल्पितः, निश्रया वा अनिश्रया वा

१ °ति निर्युक्तिगाथापदं भाव° का० ॥ २ °यः त्रयः परिरयाः-परिस्रमणानि समाहता-स्त्रिपरिरयम्, त्रीन् वारान् पर्यटनं कृत्वा य° भा० ॥ ३ ४ १० एतन्मध्यगतः पादः मा० नास्ति ॥ १० ८८

तेषां वासः करूपत इत्यर्थः । एतेन हितीयस्त्रस्यापि वस्यमाणस्य सम्बन्यः प्रतिपादितः । 'क्यं' एष सूत्रसम्बन्य इति ॥ २९३९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्थास्य व्याख्या—नो करूपते निर्घन्यानां 'सागारिकानिश्रया' श्रय्या-तरेणापरिगृहीतानां वस्तुन् ॥

८ कल्पते निर्मर्न्थानां 'सागारिकनिश्रया' श्राच्यातरेण परिगृहीतानां वस्तुम् । एप स्त्र-सद्वेपार्थः ॥ अथ माप्यकारो विस्तरार्थं विमणिषुराह—

सागारियं अनीसा, निगांथीणं न कप्पए वासो । चउगुरु आयरियादी, दोसा ने चेव तरुणादी ॥ २४३५ ॥

सागारिकः-शब्यातरत्वम् 'अनिश्राय' निश्रामकृत्वा । किमुक्तं मत्रति ?—शब्यानरत्य या १० निश्रा—'मया युप्माकं चिन्ता करणीया, न भत्रतिभिः कुतोऽपि मेतव्यम्' इत्यम्युपगमः, तामन्तरेण निर्श्नन्यानां न कत्र्यते वासः । अत एवतत् सृत्रमाचार्यो यदि प्रवर्षिन्या न कथ्यति ततश्चत्वारो गुरुकाः । सा न प्रतिश्रणोति चत्वारो गुरुकाः । आचार्यमुखादाकर्ण्यं सा संयतीनां न कथ्यति तदापि चतुर्गुरुकाः । यदि ता न प्रतिश्रणवन्ति तदा तासां लघुको मासः । तत्र चापरिगृहीते लपाश्रये वसन्तीनां त एव 'तरुणाद्यः' "तरुणा वसित्य विवाह" (गा० २३०४)

15 इत्यादयो दोषाः ये आपणगृहादे तिष्टन्तीनामुक्ताः ॥ २८३५ ॥

सागारियं अनिस्सा, मिक्खुणिमादीण संवसंतीणं । गुरुगा दोहिं विसिद्धा, चटगुरुगाई व छेदंता ॥ २४३६ ॥

सागारिकम् 'अनिश्राय' निश्रामकृत्वा मिझुण्यादीनां संवसन्तीनां 'द्वाम्यां' तपः-कालाम्यां विशिधाश्चतुर्गुरुकाः । तत्र मिझुण्यात्तपसा कालेन च ल्ड्रुकाः, अभिषेकायाः कालेन गुरुकाः, 20 गणावच्छेदिन्यान्तपसा गुरुकाः, प्रवर्तिन्यात्तपसा कालेन च गुरुकाः । अथवा चतुर्गुरुकादीनि च्छेदान्तानि प्रायश्चित्तानि । तद्यथा—मिझुण्याश्चतुर्गुरुकम्, अभिषकायाः पड्ल्डुकम्, गणा-वच्छेदिन्याः पङ्गुरुकम्, प्रवर्तिन्याश्छेद इति । आज्ञादयश्च दोषाः ॥ २१३६ ॥ अपि च—

कंपइ वाएण लया, अणिस्सिया निस्सिया उ अक्खोमा । इय समणी अक्खोमा, मगारिनिस्सेयरा मह्या ॥ २४३७ ॥

25 'स्ता' वहीं 'स्रिनिश्रिता' बृझाद्यास्म्वनरहिता वातेन भेषेमाणा सती कम्पते, 'निश्रिता तु' सास्म्वना 'स्रक्षाम्या' वातेन चारुशितुमग्रक्या । "इय" एवं श्रमणी सागारिकनिश्रिता सती स्रक्षोम्या, 'इतरा' स्रितिश्रिता 'मक्ता' विकस्पिता, यदि सा स्वयं घृति-वस्युक्ता तदा '-तरुणादीनामसोम्या घृतिदुर्वसा तु क्षोमणीयेति मावः ॥ २१३७॥

आह श्रमणी न खल्वाचार्य-प्रवर्त्तर्नानिश्राविरिहता कदापि मवति, अतः किं कार्यं तस्याः 30सागारिकनिश्रया ? इत्यच्यते—

दोहि वि पक्खेर्हि सुसंबुयाण तह वि गिहिनीसमिन्छंति । बहुसंगहिया अजा, होह् थिरा हंदलड्डी वा ॥ २४३८ ॥

१ सुसंगहाण वा॰ ॥

'द्वाभ्यामि' आचार्य-प्रवर्त्तिनीरुक्षणाभ्यां पक्षाभ्यां यद्यप्यार्थाः युसंवृता वर्तन्ते तथापि तासां गृहिणः—सागारिकस्य निश्रामिच्छन्ति भगवन्तः । कुतः श इत्याह—'वहुसङ्गृहीताः' वहुिमः—आचार्यादिभिश्चिन्तकेः परिगृहीता आर्या स्थिरा भवित इन्द्रयष्टिरिव । यथा सिवन्द्रयिर्वि- हीिभः इन्द्रकुमारिकाभिर्वद्धा सती निष्कम्पा भवित एविमयमि ॥ २४३८ ॥ किञ्च—

परिथतो वि य संकइ, परियंजंतो वि संकती विलणो। सेणा वहू य सोभइ, वलवङ्गुत्ता तहऽज्ञा वि ॥ २४३९॥

प्रार्थयन्नप्यार्थो समर्थसागारिकनिश्चितां तरुणादिजनः 'शङ्कते' विभेतीत्यर्थः । तथा प्रार्थ्य-मानोऽपि संयतीजनः 'विलनः' समर्थस्य शय्यातरस्य ग्रद्धते । अपि च यथा सेना वरुपितना— सेनानायकेन यथा वा वधूर्वरुवता श्वशुरपक्षेण पितृपक्षेण च गुप्ता—रक्षिता शोभते तथा आर्थाऽपि वरुवता शय्यातरेण परिगृहीता सती विराजते ॥ २४३९ ॥

अमुमेवार्थं व्यतिरेकभक्षया य दें प्रान्तेन ⊳ द्रदयति—

सुना पसुसंघाया, दुव्यलगोवा य कस्स न वितका। इय दुव्यलनिस्साऽनिस्सिया व अज्ञा वितकाओ ॥ २४४० ॥

'शून्याः' रक्षपालिवरिहताः 'दुर्बलगोपा वा' असमर्थरक्षपालपरिगृहीताः 'पशुसङ्घाताः' गवादिपशुवर्गाः कस्य न 'वितर्क्याः' अभिलपणीया भवन्ति । 'इति' अमुना प्रकारेण दुर्वल-15 शय्यातरिनिश्रताः सर्वथेवानिश्रिता वा आर्थाः सर्वस्यापि 'वितर्क्याः' प्रार्थनीया भवन्ति ॥ २४४०॥ ๗ अत्रेवार्थे दृष्टान्तान्तराणि दर्शयति— ⊳

अइया कुलपुत्तगभोइया उ पक्कमेव सुन्नम्मि । इच्छमणिच्छे तरुणा, तेणा उवहिं व ताओ वा ॥ २४४१ ॥

'अजिका' छगिलका, कुलपुत्रकाणा च भोजिका—महिला, 'पकान्नं' मोदका-ऽशोकवर्त्त्यादि, 20 यथैतानि शून्ये वर्त्तमानानि सर्वस्यापि स्पृहणीयानि भवन्ति एवं श्रमण्योऽपि । तथा "इच्छ-मणिच्छे तरुण" ति तरुणान् प्रार्थयमानान् यदि ता इच्छन्ति ततो ब्रह्मव्रतभद्गः, अथ नेच्छन्ति ततस्ते वलादपि तासां ब्रह्णं कुर्युः । स्तेना उपिं वा 'ता वा' सयतीरपहरेयुः ॥ २४४१ ॥

उच्छुय-घय-गुल-गोरस-एलाङुग-माउलिंगफलमादी । पुष्फविही गंधविही, आभरणविही य वत्थविही ॥ २४४२ ॥

इक्षु-घृत-गुड-गोरसाः प्रतीताः, 'एलाङ्घकानि' चिभेटानि, 'मातुलिङ्गफलानि' चीजपूराणि, आदिशब्दादाम्रादिपरिम्रहः, तथा 'पुष्पविधिः' चम्पकादिका पुष्पजातिः, गन्धाः—कोष्ठपुटपाका-दयस्तेषां विधिः—प्रकारो गन्धविधिः, एवमामरणविधिर्वस्नविधिश्च । एते इश्चुप्रभृतयः शून्या दुर्वलपरिगृहीता वा यथा सर्वस्यापि स्पृहणीयास्तथा संयत्योऽप्यनिश्रिता दुर्वलसागारिकनिश्रिता वा तरुणादीनां स्पृहणीयाः । अतोऽनिश्रया दुर्वलनिश्रया वा न स्थातव्यम् । भवेत् कारणं 30 येनानिश्रयाऽपि तिष्ठेयुः ॥ २४४२ ॥ कथम् १ इति चेद् उच्यते—

अद्भाणनिग्गयादी, तिक्खुत्तो मग्गिऊण असईए।

१ °ज्ञंता वि ता॰ ॥ २-३ ⁴ > एतिचहमतः पाठः भा०त० डे॰ नास्ति ॥

सैंबरणं चसभा चा, ताओ च अपच्छिमा पिंडी ॥ २४४३ ॥

अध्यतो निर्मता आदिअव्हाद्व्यिन वहमानका अध्यक्षीपं प्राप्ता वा त्रिक्कतः परिगृहीतां वस्ति मानियता यदि न प्राप्यते ततः सागारिकस्मानिश्रयाऽति तिष्टेष्टः । तत्र च 'नंवरणं' कृपाटं तदः व्यत्यते मानियता दातः त्रम् । अय कृपाटं न प्राप्यते नतो वृष्मा गृहीभ्य यः कृष्टित् तरुणादिः संयदीरुपद्वति तं प्रहरणादिमिनियास्यन्ति । अय वृषमा न मन्ति नतस्य एव नयस्यो दण्डक्त्यप्रह्ताः पिण्डाम्य तिष्टन्ति, यस्त्रोपद्वं विकीर्पति तं दण्डकस्ययम् निवास्यन्ति, वोलं च महता ग्रज्देन कृष्टित । एषा अपश्चिमा यननेति ॥२४४३॥ अथवा—

मोइय-महत्त्राई, समागवं वा गणित गामं तु । निवगुचाणं वसही, दिखंड दोसा उ में उत्ररि ॥ २४४४ ॥

10 तत्र प्रामाडो यो मोगिको महत्तरो वा आदिश्रद्धान्यो वा प्रमाणमृतन्तम् अथवा प्राममेकत्र समाडो 'समागतं' मिलितं हृष्ट्या साधवो मणन्ति—नृपः—राजा नेन गुप्ताः—रिश्वताः सन्तो वयं सत्रताचारं परिपालयानः, अतो नृपगुप्तानामसाकं वसतिर्धायताम्, अन्यया य शृत्य प्रतिश्रये तिष्ठन्तानां नंयनीनां तरुण-स्त्रनाशुपद्धवदेशा मवेशुः ते सर्वेऽपि "मे" युप्पा-क्रमुप्तर मिनिप्यन्ति । एवमुके ने योगिकादयः संयतीप्रयोग्यां परिगृहीतां वसतिं द्यापयन्ति । इसयं वा प्रयच्छिन्त ॥ २२४२॥

अथ ये द्वा विहः पहरणादिन्यप्रहत्तातिष्टन्ति ते ईदृशाः कर्तत्र्या इति दर्शयति— कयकरणा थिरसत्ता, गीया संविधिणो थिरसरीरा । जियनिर्दिदिय दक्ता, तन्धृमा परिणयवया य ॥ २४४५ ॥

'कृतकरणाः' चनुर्वेदे कृताम्याताः, 'स्थिरसंस्ताः' निश्चलमानसावष्टमाः, 'गीताः' स्त्रार्थ-20चेदिनः, 'सम्बन्धिनः' वासामेव सयनीनां नाल्यद्धा स्रात्रादिसम्बन्धयुक्ता इत्यर्थः, 'स्थिरशरीराः' शारीरवरोपेवाः, जिवाः—वर्शकृता निद्रा इन्द्रियाणि च येते जितनिद्रेन्द्रिया , 'दसाः' कुशलाः, 'वद्गीमाः' वस्त्रामेव भूमी मवास्त्रद्धमिवात्त्रस्यरोक्तपरिचिता इत्यर्थः, 'परिणववयसस्य' अति-कान्त्रयोवना मध्यमवयःप्राष्ठाः, एवविषा व्रयमस्त्रत्र स्थापियतन्त्रा इति ॥ २४४५ ॥

स्त्रम्---

25

कप्पड़ निग्गंथाणं सागारियानिस्साए वा अनिस्साए वा वस्थए २४॥

कर्पने निर्मन्यानां सागारिकं निष्ठाय चा व्यनिष्ठाय चा चस्तुमिति ॥ वत्र माप्यम्— साह् निस्सर्गनिस्सा, काराणि निस्सा अकाराणि अनिस्सा । निकारणिन्म लहुगा, काराणें गुरुगा अनिस्साए ॥ २४४६ ॥

30 साधनः सागारिकत्य निश्रया अनिश्रया चा वसन्ति । तत्र कारणे निश्रया अकारणे

१ °मा वहिःस्थिताः सन्तो यः क° मा॰ ॥

त्वनिश्रया चस्त्रव्यम् । यदि निष्कारणे सागारिकनिश्रया वसन्ति दसधत्यारो रुचुकाः । अथ कारणेऽनिश्रया चसन्ति ततश्चत्वारो गुरुकाः ॥ २४४६ ॥

अय निष्कारणे सागारिऋनिश्रया तिष्टता दोपानाह—

उद्वेत निवेरिते, भीजण-पेहास सारि मोए अ । मज्जाय वंभगुत्ती, असंगता तिन्यऽवण्णो य ॥ २४४७ ॥

कोऽपि साधुरुतिष्टन् या निविश्यमानो या अपाष्ट्रनीभवेत् तं दृष्ट्वा पुरुषाः क्रियो वा हसन्ति उद्ध्वकान् या कुर्वन्ति । भोजनं—समुद्देशन तत्र मण्डल्या तुम्बकेषु या समुद्दिशतो दृष्ट्वा प्रवीरन्—अहो ! जमी अशुचय दृति । प्रेक्षा—प्रत्युपेक्षणा नस्यां विश्वायमानाया "सारि" ति ते सागारिका उद्धवकान् कुर्युः । "मोए" ति निश्चि मोकेनाचमने कायिकीव्युत्सर्जने वोद्धाहं कुर्युः । 'साध्यायम्' अधीयमानं परावर्त्त्यमानं वा श्रुत्वा कर्णाहृतेनागमयन्ति । सीणा चाह्वमत्यक्रादो 10 विलोक्यमाने त्रणाचर्यस्यागुप्तिः । तथा लोकोऽपि त्र्यात्—"जसंगय" ति येः किलासङ्गता प्रतिपत्ना तेः सीरिहिते प्रतिश्रये स्वातत्र्यमित्येतद्यते न जानन्ति । वीर्यस्य चावणों भवति, सर्वेऽप्येते एतादृशा दृति । यत एते दोपा अत उत्सर्गतः सागारिकस्यानिश्रया चलव्यम् । कारणे तु निश्रयाऽपि करपते वस्तुम् ॥ २४४७ ॥ तचेदम्—

तेणा सावय मसगा, कारण निकारणे च अहिगरणं । एएहिं कारणेहिं, वसंति नीसा अनीया चा ॥ २४४८॥

भेनाः श्वापदा वा यत्रोपद्रवन्ति तत्र ये गृह्स्थाः परित्राणं कुर्वते तत्र तिन्नश्रया वस्तन्यम् । मन्नका वाऽन्यत्राभिद्रवन्ति ततो निश्रयाऽपि वन्तव्यम् । निष्कारणे तु निश्रया वसतामण्काययद्ववाह-नादिकमिकरणं भवेत् । एतैः कारणिर्निश्रया वा अनिश्रया वा यथायोगं वसन्तीति ॥१४४४।

॥ सागारिकनिश्राप्रकृतं समाप्तम् ॥

20

15

सागारिको पाश्रय प्रकृत म्

सूत्रम्--

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारिए उवस्सए चत्थए २५ ॥

अस्य सम्बन्धमाह-

25

निस्स ति अइपसंगेण मा हु सागारियम्मि उ वासिजा । ते चेव निस्सदोसा, सागारिएँ निवसती मा हु ॥ २४४९ ॥ 'निर्मन्थीनां सागारिकनिश्रयेव निर्मन्थानामपि कारणे निश्रया वस्तुं कल्पते' इखुक्तेऽतिमसङ्ग-

30

होषेण मा सागारिकेऽपि प्रतिश्रये वसेयुः । कृतः ? इत्याह—मागारिकोषाश्रये निवसते मा 'त एव' इत्यान-निवेद्यनादिविषया निश्रादोषा मवेयुः, अतः सागारिकपृत्रं प्रारम्यत इति॥२४४९॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—नो कत्यने निर्धन्याना वा निर्धन्याना वा 'सागा-रिके' सीगारिकं—द्रव्यतो यावनश्च वक्ष्यमाणळ्यणं नदत्रात्ति इति खुलचेः अन्नादित्वाद् ऽअप्रत्येषे सागारिकः, ईहदो उपाश्रये वस्तुमिति मृत्रसङ्क्षेत्रपर्थः ॥ अथ निर्धृक्तिवित्तरः—

सागारियनिक्खेत्रो, चडिव्बहो होह आणुर्फ्वाए । नामं ठत्रणा द्विए, मात्रे य चडिव्बहो मेदो ॥ २४५० ॥

सागारिकपदस्य निश्नेपश्चर्तार्वय खातुर्ग्जो मवति, तद्यया—नाम्नि स्वापनायां द्रव्ये भावे चेति । एप चर्तार्वयो मेदः ॥ २४५०॥ तत्र नाम-स्वापने गतार्थे, द्रव्यतो नोजागमतो 10ज्ञगरीर-भज्यगरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसागारिकमाह—

> ह्वं आमरणविद्दी, बत्यालंकार मीयणे गंघे । आउल नट्ट नाडग, गीए सयणे य द्व्यम्मि ॥ २४५१ ॥

रूपमाभरणविधिवैस्नालङ्कारो मोजनं गन्या आतीर्यं नृतं नाटकं गीतं शयनीयं च, एतद् द्रव्यसागारिकेस् ॥ २१५१ ॥ तत्र रूपपदं व्याख्याति—

> र्जं कहुक्तम्ममाइसु, रुवं सहाणें तं भवे दृत्यं । जं वा जीवविमुकं, विसरिसरुवं तु भाविम्म ॥ २४५२ ॥

यत् 'काष्टकमीदिपु' काष्टकमीण वा चित्रकमीण वा लेप्यक्रमीण वा पुरुषहर्ष कीरूपं वा निर्मितं तत् सस्याने द्रव्यसागारिकं मजेन् । सस्यानं नाम—निर्प्रन्थानां पुरुषहर्ष निर्प्रन्थानां तु कीरूपम् । यत् विसद्यन्हर्षं तद् भावसागारिकम् , निर्प्रन्थानां क्षीरूपं निर्धन्थानां तु पुरुष-20 रूपं मात्रमागारिकमित्यर्थः । यद् वा जीवविष्ठमुक्तं पुरुष्यग्ररीरं क्षीग्ररीरं वा नदिप सस्याने द्रव्यसागारिकं परस्थाने तु भावसागारिकमिति ॥ २८५२ ॥

अय "आमरणिवही" इत्यादि व्याख्यायते —आमरणं —ऋटजादि तस विधिः —मैदा आमरणिविधिः । वक्रमेवाल्हारो वस्त्राल्हारः; यद्वा वस्त्राणि चीनां गुकार्दानि, अल्हारो द्विया केशाल्ह्वार-माल्याल्ह्वारमेदात् । मोजनमद्यन-पान-लाय-लायमदाचतुर्विषम् । गन्यः —कोष्ठ-25 पुरुषाकादिः । आतोर्यं चतुर्वियम् —ततं विततं वनं शुषिरं च । तत्र—

> ततं वीणापमृतिकं, विततं सुरवादिकम् । वनं तु कांस्यवाद्यदि, वंद्यादि शुपिरं मतम् ॥

गृतमपि चतुर्विषम्, तद्यथा—अश्चिनं रिमितम् आरमडं मसोलम्, एते चत्नारोऽि मेटा नाट्यशासुमसिद्धाः । नाटकम्-अमिनयविशेषः । अथवा—

> नई होह अगीर्यं, गीयज्ञयं नाहयं तु नायव्यं । आमरणादी पुरिसोवमोग दृव्यं तु सङ्घाणे ॥ २४५३ ॥

१ सागारिकयुक्ते स्पाश्रये यस्तु^० मा॰ हा॰ ॥

२ °क्रमिति निर्युक्तिगाथासमासार्यः॥२४५१॥ अधैनामेव विवरीष्टःप्रथमतो कप° हां० ग

25

इह 'अगीतं' गीतविरहितं नृतं भवति । यत् पुनर्गीतयुक्तं तद् नाटकं ज्ञातन्यम् । गीतं पुनश्चतुद्धी-तन्नीसमं १ तालसम २ महसमं ३ लयसमं ४ चेति । 'शयनं' पल्यद्वादि । एत-दाभरणादिकं यत् पुरुषोपभोगयोग्यं तत् खस्थाने 'द्रन्यं' द्रन्यसागारिकं निर्मन्थानामिति भावः । अत्र च भोजन-गन्धा-ऽऽतोद्य-गयनानि द्वयोरिष स्त्री-पुरुपपश्चयोः साधारणत्वाद् द्रव्यसागारिक-मेव, रोपाणि तु साधु-साध्वीना स्वस्थानयोग्यानि द्रव्यसागारिकं परस्थानयोग्यानि तु भावसागा-5 रिकम् ॥ २४५३ ॥ एतेषु प्रायश्चित्तमाह-

एकिकम्मि य ठाणे, भोअणवज्जे य चउलह हुंति। चउगुरुग भोअणर्मिंग, तत्थ वि आणाइणो दोसा ॥ २४५४ ॥ 'एकेकस्मिन्' रूपां-ऽऽभरणाटें। 'स्थाने' द्रव्यसागारिके भोजनवर्जे तिष्ठतां चतुर्रुघवः, भोज-नसागारिके चतुर्गुरयः । केपाञ्चिन्मतेनाभरण-वस्तयोरिष चतुर्गुरवः । तत्राप्याज्ञादयो दोपाः, 10 -d तैत्रिप्पन्नं पृथक् **प्रायश्चित्तमिति भावः** № || २४५४ || तथा—

> को जाणइ को किरिसो, कस्स व माहप्पया समत्थत्ते । धिइदुव्यला उ केई, डेविंति तओ अगारिजणं ॥ २४५५ ॥

को जानाति नानादेशीयानां साधूना मध्ये कः 'कीदृशः' कीदृक्परिणामः १, कस्य वा कीहशी 'महात्मता' महाप्रभावता 'समर्थत्वे' सामर्थ्ये लोमनिग्रहं ब्रह्मवतपरिपालनं वा प्रतीत्य 16 विद्यते १, परचेतोवृत्तीनां निरतिशयैरनुपलक्ष्यत्वात् । ततो ये केचिद् धृतिदुर्वलाते तत्र रूपा-SSभरणादिभिराक्षिप्तचित्ताः परित्यक्तसंयमधुरा अगारीजनं 'डेविंति' गच्छन्ति, परिसुझते इत्यर्थः ॥ २४५५ ॥ तथा—

> केइत्थ भ्रत्तभोगी, अभ्रत्तभोगी य केइ निक्खंता। रमणिज लोइयं ति य, अम्हं पेतारिसा आसी ॥ २४५६ ॥

केचिद् 'अत्र' गच्छमध्ये भुक्तमोगिनो निष्कान्ताः केचित्त्वभुक्तमोगिनः, तेपां चोभये-पामप्येवं भावः समुत्पद्यते—रमणीयमिदं लोकिकं चरितं यत्रैवं वस्ना-ऽऽभरणानि परिधीयन्ते, विविधखाद्यकादीनि यथेच्छं भुज्यन्ते, असाकमपि गृहाश्रमे स्थितानामेतादृशा भोगा आसीरन् ॥ २४५६ ॥ इदमेव व्यनक्ति-

एरिसओ उवभोगो, अम्ह वि आसि ण्ह इण्हि उजला I

दुकर करेमु भुत्ते, कोउगिमयरस्य दहूणं ॥ २४५७ ॥ ईटगेव गन्ध-माल्य-ताम्ब्लाद्युपमोगः पूर्वमसाकमप्यासीत्, "ण्ह" इति निपातः पादपूरणे, इदानीं तु वयं 'उजाहाः' उत्—प्रावल्येन मिलनशरीरा अलव्ययुखाखादाध्य 'दुष्करं' केश-रमश्रुलुखन-मूमिशयनादि कुर्महे । इत्यं मुक्तमोगी चिन्तयति । इतरः—अमुक्तमोगी तस्य रूपा-ऽऽभरणादिकं दृष्ट्वा कौतुकं भवेत् ॥ २४५७ ॥ ० तर्तैः को दोषः १ इत्यत आह—≫ 30 सति-कोउगेण दुण्णि वि, परिहिज लइज वा वि आभरणं।

. १ ॳ ▷ एतचित्स्थः पाठः कां ॰ पुस्तक एव ॥ २ °नामी हशं खादन-पानादिकमासीत् ॥२४५६॥ किञ्च भा ॰ ॥ ३ ॳ ▷ एतन्मध्यगतः पाठः भा ॰ नास्ति ॥ ४ °तः किम् १ इत्याह कां ॰ ॥

50

अनिमि उनमोर्ग, करिज नाएज बुड़ाहो ॥ २४५८ ॥

म्हित्र्य कोतुकं चिति हम्हेक्त्रहान , तेन स्मृति-कोतुकेन हानि सुका-ऽसुक्तमोगिनी वकाणि व परिदर्शयातान् , आनर्णं वा स्वयुरिर लग्येतान् . 'अन्येषां वा' गन्त्र-व्यक्तिया-ऽऽमनादीनातुषमोगं क्वयीतान् , अतोयं वा वात्र्यतान् । असंयतो वा संवत्नकङ्कृतिन्षितं हवा कलेकमञ्ये उद्वाहं क्वयीत् ॥ २४५८ ॥ क्रिब—

तिच्चा तल्लेसा, निक्ला-सञ्ज्ञायमुक्रतचीया । विक्जा-विमुच्चियमणा, गमणुस्सुय उस्सुयन्म्या ॥ २४५९ ॥

तदेव-क्षांक्षपदिचिन्द्रनात्मकं वित्तं येषां ते तिविचाः। केव्या नाम-प्रदक्षपरिमोगाव्यवसायः, सेव केव्या येगां ते तव्हेव्याः। सिक्षा-काव्यायर्थार्धका तिष्ठः-व्यापारो येथे निक्षा-काव्याय-16 कुक्ततिकाः। तथा मयनागवनीया वाम्योगप्रवृत्तिः ना व्या, तृत्विग्रह्णम्ता विक्रया, विश्रोतः सिक्षा नाम-कांक्षपदिन्तरणक्रिना चित्तविद्वतिः, तथ्येभेनो येगां ते विक्रया-विश्रोतिका-ननसः। एवंविवानो केचित्र गमने-अववावने च्लुकीमवन्ति, केचित्र 'उल्कुकीम्ताः' च्लाव्यावित इत्यर्थः॥ २८५९॥ तत्र विक्रया वर्षे स्वति १ ज्याह—

सुड्ड क्रयं आमर्त्यं, विणानियं न वि य नाणिन तुमं पि । सुडुडाहो गंत्रे, विस्तिया गीयसंह्सु ॥ २४६० ॥

एक चार्ब्यविति—'प्रुषु' छोमनं क्रवित्यसम्बन्धः हितीयः शह—विनाशितमेवत्, क्ष्म-बिन्दोषहो न जानामि । एवप्परस्यस्तिकां हुपैतोस्त्रसेत्सङ्ग्रहसमायते, मृच्छी वा वत्र रसते। कोऽपि हुपीत्, तया जामा सर्गरयहो मनति । "उड्डाहो गंवे" कि चन्द्रनादिना गन्येनालानं यदि कोऽपि विलिम्पति प्रयामादिनिर्दा नास्यति तत उड्डाहो मनति, < नृतं ११ कानिनोऽसी अन्यया क्रयमित्यालानं नण्डयन्ति १ इति । > बानोद्य-गीत्यव्येषु च श्रूयमा- ऐसु विश्रोतिका जायते। < बँनेन विश्रोतिस्त्रापद्मपि व्यास्थानम् > ॥२१६०॥ वसि च—

निवं पि दन्तकरणं, अवहियहिययस्य गीयसदेहिं। पडिलेहण सन्झाए, आवासन ग्रंज वेरती ॥ २४६१ ॥

'नित्यमित' सर्वकार्ल गीडादिसक्तेरपहत्तहरुग्स प्रस्तेत्रणायां साध्याये आकृत्यके मोजने थः देरात्रिके उनल्यगत्त्रात् प्रामादिकादिकान्येतु च द्रत्यक्र्यणमेत्र मदति म सन्वकरणम् .

स्पर्राहेम्म र कार्ण कुगड़ बयार् मान्ड् नं च । एमंतु मानकर्णं, माग्रहितं दबकरणंतु॥ (आव० नि० गा० १४८६)

इति वचनाक् ॥ २४२१ ॥

ने सीदितुमारहा, संजमजोगेसु वसिंद्दोसेपं । गल्द जतुं नर्पतं, एव चरित्तं मुलेयक्वं ॥ २४६२ ॥

१,५% एउटन्डमंदः पाठः मा० इं॰ निकाः २,५ % एउट्याः पाठः इं॰ पुस्क एव बर्देते ॥ ३ भाम् । इत्यक्तरावे नाम चेतःश्रुत्या बाङ्माययोः प्रवृत्तिः । तदुक्तमावस्यके— मणसहिएपा० नामा इति ॥ २४६१ ॥ ततः त्रिम्? इत्याह—ते सीवितुः इं॰ ॥

'ते' साधव एवंविधेन वसतिदोेपेण 'संयमयोगेषु' आवश्यकव्यापारेषु सीदिंहुंमारव्याः । ततश्च 'जतु' लाक्षा यथा तद्यिना तप्यमानं गलति एवं रागामिना तप्यमानं चारित्रमेषि परि-गलतीति ज्ञातव्यम् ॥ २४६२ ॥

उत्रिक्खंता केई, पुणो वि सम्मेलणाएँ दोसेणं। वर्चति संभरंता, भंतूण चरित्तपागारं ॥ २४६३ ॥

Б

16

तस्यां वसतो स्त्रीरूपादिसम्मेलनाया दोषेण 'केचिदृ' मन्दभाग्याः 'उन्निप्नान्ताः' उत्पन्न-जिताः, ततश्चारित्रमेव प्राकारः-जीवनगररक्षाक्षमत्वाचारित्रप्राकारस्तं भइक्ता तान्येवः स्रीरूपादीनि ससरन्तः पुनरपि गृहवासं वजन्ति ॥ २४६३ ॥ ततः किमभूत् ? इत्याह —

> एगिम दोसं तीस व, ओहावितेस तत्थ आयरिओ। मूलं अणवद्वप्पो, पावइ पारंचियं ठाणं ॥ २४६४ ॥

ययेक उन्निष्कामति ततो मूलम्, द्वयोरवधावतोरनवस्थाप्यम्, त्रिष्ववधावमानेषु तत्राचार्यः पाराश्चिकं स्थानं प्रामोति, यस्य वा वरोन तत्र स्थितास्तस्येदं प्रायश्चित्तमिति ॥ २४६४ ॥ गतं द्रव्यसागारिकम् । अथ भावसागारिकमाह-

> अद्वारसविहऽवंभं, भावज औरालियं च दिव्वं च । मण-वयस-कायगच्छण, भावम्मि य रूव संजुत्तं ॥ २४६५ ॥

अष्टादशिवधमत्रस भवति । तस्य चौदारिक-दिव्यलक्षणौ ह्रो मूलमेदो । तत्रीदारिकं नव-विधम्--- औदारिकान् कामभोगान् मनसा गच्छति मनसा गमयति गच्छन्तमन्यं मनसैवानुजा-नीते, एवं वाचाऽपि त्रयो मेदाः प्राप्यन्ते, कायेनापि त्रयः, एतेंस्त्रिभिक्तिकैर्नव मेदा भवन्ति । एवं दिन्येऽप्यव्रह्मणि नव भेदा रुभ्यन्ते । एवमेत्द्रप्रादशविधमव्रह्म भावसागारिकं भवति । अथवा रूपं वा 'संयुक्तं वा' रूपसहगतं यदब्रह्मभावोत्पत्तिकारणं तदेपि भावसागारिकाम् ॥२४६५॥ ३०

एतदेव स्पष्टयति-

अहव अवंभं जत्ती, भावी रूवाउ सहगयाओ वा । भूसण-जीवजुर्य वा, सहगय तन्त्रज्ञियं रूवं ॥ २४६६ ॥

अथवा यतो रूपाद्वा रूपसहगताद्वा अत्रसरूपो भाव उत्पंचते तदिप कारणे कार्योपचाराद् भावसागारिकम्, यथा ''नडुलोदकं पाँदरोगः'' इति । तत्र यत् स्त्रीशरीरं भूपणसंयुक्तमसूपितं 25 वा यद् जीवयुक्तं तद् रूपसहगतं मन्तन्यम् । यत् पुनः स्त्रीशरीरमेव 'तद्वजितं' भूषणविरहितं जीववियुक्तं वा तद् रूपमुच्यते ॥ २४६६ ॥

तं पुण रूवं तिविहं, दिन्वं माणुस्तयं तिरिक्खं च । पायावच-क्रुडंविय-दंडियपारिग्गहं चेव ॥ २४६७ ॥

'तत् पुनः' अनन्तरोक्तं रूपं त्रिविधम्—दिव्यं मानुप्यं तैरश्चं च । पुनरेंकेकं त्रिधा—ें 30 प्राजापत्यपरिगृहीतं कौटुम्बिकपरिगृहीतं दण्डिकपरिगृहीतं चेति । प्राजापत्याः प्राकृतँछोका

१°ित । अथ किमिदं रूपं रूपसहगतं वा? इत्यत आह—"भूसणं" इत्यादि, तत्र कां॰॥

25

उच्यन्ते । एतत् त्रिविधमपि प्रत्येकं त्रिया नयन्यमध्यमोत्कृष्टमेदात् ॥ २४६७ ॥

. तत्र दिव्यस्य नघन्यादिमेदत्रयमाह-

वाणंतरिय जहनं, भवणवर्द जोहसं च मिन्समगं। वेमाणिय उक्कोसं, पगयं पुण ताण पहिमासु ॥ २४६८ ॥

 दिन्त्रेषु यद् वानमन्तिर्कं रूपं तद् जवन्यम्, भवनपति-ज्योतिष्कयोर्मव्यमम्, वैमानिक-रूपमुत्कृष्टम् । अत्र च 'तेषां' वानमन्तरादीनां याः मृतिमान्तामिः 'प्रकृतम्' अधिकारः, सागा-रिकोपाश्रयस्य प्रस्तुतत्वान् , तत्र च मितिमानामेव सङ्घावार्त् ॥ २१६८ ॥

प्रकारान्तरेण दिव्यपतिमानां जघन्यादिमेदानाह-

कहे पुत्थे चित्ते, जहन्नयं मिन्समं च दंतिमा । संलम्मि य उक्कोसं, जं वा स्वाउ निष्कन्नं ॥ २४६९ ॥

या दिज्यप्रतिमा काष्टकर्मणि वा पुग्नकर्मणि वा चित्रकर्मणि वा कियते तद् जधन्यं दिव्यस्तम् । या तु हिन्दन्ते क्रियते तद् मव्यमम् । या पुनः शैले चश्रव्दाद् मणिप्रमृतिषु-च कियते तदुत्कृष्टम् । यद्वा रूपाद् निप्पन्नं जधन्यादिकं द्रष्टव्यम्—या दिन्यमतिमा विरूपा नद् जघन्यं दिव्यरूपम्, या तु मय्यमरूपा तन्मय्यमम्, या पुनः सुरूपा तदुत्कृष्टम् । अत्र १६ नै। घतः प्रतिमायुते उपाश्रये तिष्टनश्चत्वारो लघुकाः प्रायश्चित्तम् ॥ २४६९ ॥

. अर्थावविमागतः प्रायश्चित्तमाह—

टाण-पडिसेनणाए, तिनिहें वी दुविहमेन पच्छित्तं। लहुगा तिन्नि निसिद्दा, अपरिगहे ठायमाणस्स ॥ २४७० ॥

'त्रिवियेऽपि' जयन्यमध्यमात्कृष्टमेद्रिमेने दिन्ये प्रतिमायुने तिष्टतो द्विविधं प्रायश्चित्तम्— 20स्माननिप्पन्नं प्रतिसेवनानिप्पन्नं च । तत्र स्माननिप्पन्नमिवम्—दिव्ये प्रतिमायुतेऽपरिगृहीते तिष्टतस्रयश्चतुर्ङेषुकास्तपः-काल्विद्यिष्टाः, तद्यथा—नवन्ये चत्वारो लघुकास्तपसा कालेन च लघुकाः, मध्यमे त एव कालगुरुकाः, लक्क्षेट न एव तपोगुरुकाः ॥ २१७० ॥

अय परिगृहीते प्रायश्चित्तमाह-

चत्तारि य उन्याया, पहमे विद्यम्मि ते अणुन्वाया । छम्मासा उग्घाया, उक्कोसे ठायमाणस्स ॥ २४७१ ॥ पायावचपरिगाहें, दोहि वि लहु होति एतें पच्छिता। कालगुरू कोईवे, दंडियपारिगाहे तवसा ॥ २४७२ ॥

मधमं-जबन्यं तत्र तिष्टतश्रत्वारः 'ভद्वातिमाः' लववो मासाः । हितीयं-मध्यमं तत्र 'त ण्न' चत्वारें। मामाः 'अनुद्धाताः' गुरुका इत्यर्थः । उत्कृष्ट तु तिष्ठतः पण्मासा उद्धाताः, पड्-३८ उपव इत्यर्थः ॥ २ १७५ ॥

एतानि च प्रायश्चित्तानि प्राजापत्यपरिगृहीते 'द्वाम्यामपि' तपः-कालम्यां प्रवुकानि द्रष्ट-

१ द् । गाथायां "पहिमासु" चि वृतीयार्थे सप्तमी ॥ २४६८॥ हा॰ २ अथात्रव विभा[°] मा॰ कां॰ निना ॥ ३ °हे दुविहं तु होति पच्छितं ता॰ ॥

व्यानि । कोटुम्बिकपरिगृहीते एतान्येव कालगुरुकाणि । दण्डिकपरिगृहीते एतान्येव तपसा भुरुकाणि ॥ २४७२ ॥

इदं च यसाज्ञघन्यादिविभागेन निर्दिष्टं सिनिहिता-ऽसिनिहितभेदेन न विशेषितं तसा-देतदोघविभागप्रायश्चित्तमभिधीयते । अथ विभागप्रायश्चितं निरूपियतव्यम्, तत्र चैतान्येव जघन्यमध्यमोत्कृष्टानि सिनिहिता-सिनिहितभेदाभ्यां विशेष्यमाणानि पट् स्थानानि भवन्ति, ऽ एतेषु प्रायश्चित्तमाह—

> चत्तारि य उग्धाता, पढमे विइयम्मि ते अणुग्धाया । तइयम्मि अणुग्धाया, चउत्थ छम्मास उग्धाता ॥ २४०३ ॥ पंचमगम्मि वि एवं, छट्ठे छम्मास होंतऽणुग्धाया । असनिहिए सनिहिए, एस विही ठायमाणस्स ॥ २४७४ ॥

प्रथमं नाम—जघन्यमसिन्निहितं द्वितीयं—जघन्यं सिन्निहितं तृतीयं—मध्यममसिन्निहितं चतुर्थं—
मध्यमं सिन्निहितं पञ्चमम्—उत्कृष्टमसिन्निहितं पष्ठम्—उत्कृष्टं सिन्निहितम् । अत्रायमुचारणिनिधिः—
जघन्यकेऽसिन्निहिते प्राजापत्यपरिगृहीते तिष्ठति चत्वार उद्धाता मासाः, सिन्निहिते तिष्ठति 'त एव' चत्वारो मासा अनुद्धाताः, मध्यमकेऽसिन्निहिते चत्वारो मासा अनुद्धाताः, सिन्निहिते पण्मासा उद्धाताः, सिन्निहिते पण्मासा अनुद्धाताः। १५ १५ १ ॥ २४७४ ॥ एपोऽसिन्निहिते सिन्निहिते च तिष्ठतः प्रायश्चित्तिविधिरुक्तः । अथ भाजापत्यादिविशेषत एनमेव विशेषयतिः—

पढिमिङ्डगम्मि ठाणे, दोहि वि लहुगा तवेण कालेणं। विइयम्मि अ कालगुरू, तवगुरुगा होति तइयम्मि ॥ २४७५॥

'प्रथमे स्थाने' प्राजापत्यपरिगृहीते एतानि प्रायश्चित्तानि द्वाभ्यामपि लघुकानि, तद्यथा—20 तपसा कालेन च । 'द्वितीये' कौटुम्बिकपरिगृहीते तान्येव कालगुरुकाणि । 'तृतीये' दण्डिक-परिगृहीते एतान्येव तपोगुरुकाणि ॥ २४७५ ॥ स्थानप्रायश्चित्तमेव प्रकारान्तरेणाह—

अहवा भिक्खुस्सेयं, जहन्नगाइम्मि ठाणपञ्छितं । गणिणो उवरिं छेदो, मूलायरिए पदं हसति ॥ २४७६ ॥

अथवा यदेतद् जघन्यादी चतुर्रुघुकादारभ्य पङ्गरुकावसानं स्थानप्रायश्चित्तमुक्त तद् भिक्षो-25 रेव द्रष्टव्यम् । गणी—उपाध्यायस्तस्य पङ्गरुकादुपरि च्छेदाख्यं प्रायश्चित्तपदं वर्द्धते, एकं पदं चतुर्रुघुकाख्यमघो हसति, चतुर्गुरुकादारभ्य च्छेदे तिष्ठतीत्यर्थः । आचार्यस्य पड्रुघुकादारभ्यं मूलं यावत् प्रायश्चित्तम्, अत्राप्येकं पदमुपरि वर्द्धते अधस्तादेकं पदं हसतीति ॥ २४७६ ॥

्गतं स्थानपायश्चित्तम् । अथ प्रतिसेवनापायश्चित्तमाह---

चत्तारि छ च लहु गुरु, छम्मासितों छेदों लहुग गुरुगो य । मूलं जहन्नगम्मि, सेवंति पसज्जणं मोत्तुं ॥ २४७७ ॥ प्राजापत्यपरिगृहीते जघन्येऽसन्निहितेऽहष्टे प्रतिसेवमाने चत्वारो लघवः, हष्टे चत्वारो

१ अथामून्येव प्रायश्चित्तानि तपः-कालाभ्यां विशेपयन्नाह का॰ ॥

गुरवः, सिनिहितेऽहरे चतुर्गुरवः, हरे पह्नवयः । काँदुम्बिकपरिगृहीते वधन्येऽसिनिहितेऽहरे प्रतिसेविते पह्लघवः, हरे पहुरवः, सिनिहितेऽहरे पहुरवः, हरे लघुपाण्मासिकच्छेदः । दिण्डिकपरिगृहीत वधन्यकममनिहितमहर्थं प्रतिसेवितं लघुपाण्मासिकच्छेदः, हरे गुरुपाण्मासिकच्छेदः, सिनिहितंऽहरे गुरुपाण्मासिकच्छेदः, हरे मृत्म् । एतद् वधन्यं दिन्यपतिमारुपं के सेवमानस्य प्रायक्षित्तं भणितम् । प्रमवना नाम—हरे सित शहा-मोनिका-पादिकादीनां प्रहणा-ऽऽकपणप्रमृतीनां वा दोपाणां परम्पर्या प्रमङ्गः, तां मुक्तवा एतद् प्रायक्षित्तं दृष्टव्यम्, तिनिप्पन्नं तु पृथगापद्यत इत्यर्थः ॥ २४७७ ॥ अथ मध्यमे प्रायक्षित्तमाह—

चउगुरुग छ च लहु गुरु, छम्मासिओं छेदों लहुओं गुरुगो य । मृहं अणबहुप्यो, मन्सिम्एं पसुज्जणं मोत्तुं ॥ २४७८ ॥

10 मञ्चमे प्रानापत्यपरिगृहीतंऽसिन्नहितंऽहिष्ट प्रतिसेनिते चतुर्गुरनः, हिष्ट पह्लघनः, सिन-हितेऽहिष्ट पद्लघनः, हिष्ट पहुरनः । काँदुम्निकपरिगृहीतेऽसिन्नहितेऽहिष्ट पहुरनः, हिष्ट लघु-पाण्मासिकच्छेदः, सिन्नहितेऽहिष्ट लघुपाण्मासिकच्छेदः, हिष्ट गुरुपाण्मासिकच्छेदः । दिण्डक-परिगृहीतेऽसिन्नहितंऽहिष्ट गुरुपाण्मासिकच्छेदः, हिष्ट मूलम् , सिन्नहितेऽहिष्ट मूलम् , हिष्टऽन्त्रसा-प्यम् । एतद् मध्यमके प्रसन्ननां मुक्त्वा प्रायिश्च हिष्टव्यम् ॥ २४७८ ॥ उत्कृष्टिनपयमाह—

तव छेदो छहु गुरुगो, छम्मासितों मृल सेवमाणस्स । अणवेहप्यो पारंचि, उक्कांसे पसज्जणं मोत्तुं ॥ २४७९ ॥

उक्त प्राकृतपिरगृहीतेऽसिन्नहितेऽहि प्रतिसेनिते छनुपाण्मासिकं तपः, हृषे गुरुपाण्मासिकं तपः, सिन्नहितेऽहि गुरुपाण्मासिकं तपः, हृषे राष्ट्रपाण्मासिकं तपः, सिन्नहितेऽहिष्टे गुरुपाण्मासिकं तपः, सिन्नहितेऽहिष्टे गुरुपाण्मासिकं विद्याः, सिन्नहितेऽहिष्टे गुरुपाण्मासिकं विद्याः, सिन्नहितेऽहिष्टे गुरुपाण्मासिकं विद्याः, हृष्टे मुरुप्, हृष्टे मुरुप्, सिन्नहितेऽहितेऽसिन्नहितेऽहिष्टे मुरुप्, हृष्टेऽनवस्थाप्यम्, सिन्नहितेऽहिष्टे प्रस्पति प्रसन्नां मुक्ता प्रायश्चित्तं मनसात्रस्यम्, हृष्टेऽनवस्थाप्यम्, हृष्टे पाराश्चिकम् । एवमुक्तृष्टे दिन्नप्रतिमाक्त्ये प्रसन्नां मुक्ता प्रायश्चित्तं मनसात्रस्यम् ॥२४७९॥ अथ यथा चारणिकाया अभिलापः कर्त्तस्रास्त्रेष्टं माप्यकृदुपदर्शयिति—

पायावचपरिन्गहें, जहन्न सन्निहियए असन्निहिए। दिद्वाऽदिहे सेवह, एसाऽऽलावो उ सच्चत्य॥ २४८०॥

25 याजापत्यपरिगृहीते नयन्येऽसिन्निहिते सिन्निहितेऽदृष्टे दृष्टे च सेवते, गाथायामसिन्निहि-ता-ऽदृष्टपत्रयोर्धन्यानुरुोम्यात् पश्चान्निर्देग्नः, 'एषः' ईदृद्धाः 'खारुापः' उच्चारणविधिः 'सर्वत्र' कोद्धिकपरिगृहीनानां मध्यमानां च कर्त्तव्यः ॥ २४८० ॥ अत्र नोदकः प्राह—

लम्हा पर्मे मृलं, विरूए अणवहों तर्षे पारंची । तम्हा ठायंतस्सा, मृलं अणवृह्ड पारंची ॥ २४८१ ॥

असात् 'प्रथमे' नयन्ये प्रतिसेत्रमानस चतुर्रुष्ट्रकादार्व्यं मूळं यात् प्रायिश्वतं भवति, 'द्वितीये' मध्यमे चतुर्गुरुकमावी कृत्वा अनत्रसाप्यम्, 'तृतीये' उद्घेष्टे पड्ळ्युकादारव्यं पारा-ब्रिकं यात्रद् भवति, तस्मात् तिष्टत एव स्थाननिष्यज्ञानि नयन्यमध्यमोद्धाष्टेषु यथाकमं

र °बहा पार्स्ची, उ° ता॰ ॥ द्र °था दर्श मा॰ ॥

मूला-ऽनवस्थाप्य-पाराञ्चिकानि भवन्तु ॥ २४८१ ॥ सृरिराह----

पडिसेवणाएँ एवं, पसज्जणा तत्थ होह एकेके । चरिमपदे चरिमपदं, तं पि य आणाइनिष्कन्नं ॥ २४८२ ॥

जघन्यादिप्रतिसेवनायाम् 'एवं' मूला-ऽनवस्थाप्य-पाराश्चिकानि दीयन्ते । यदि पुनः स्थितः सन् नैव प्रतिसेवते ततः कथं तानि भवन्तु । अथ प्रसन्नमिच्छति तत एकेकिसान् प्राय- उ श्चित्तस्थाने 'तत्र' अनन्तरोक्ते प्रराजना भवति' । तथाहि — तं साधुं तत्र स्थितं हृष्ट्वा कश्चिद-विरतिकः गद्धां कुर्यात्, नृनं प्रतिसेवनानिमित्तमत्रेप स्थित इति, ततो भोजिका-घाटिकादिदोप-प्रसङ्ग इति । तथा चरमपैद नाम-अदृष्टपदाद् दृष्टपद तत्र 'चरमपदं' पाराश्चिकं यावद् भवति । यचाज्ञादिदोपनिप्पन्नं चतुर्गुरुकादि तद्पि द्रष्टव्यमिति सद्गृहगाथासमासार्थः ॥ २४८२ ॥

अथेनामेव विवरीपुराह—

10

25

जह पूण सन्दो वि ठितो, सेविजा होज चरिमपन्छित्तं। तम्हा पसंगरिहयं, जं सेवह तं न सेसाई ॥ २४८३ ॥

पुनःशब्दा विशेषणे । कि विशिनष्टि ? यद्येप नियमो भवेद् यखिष्ठति स सर्वोऽपि स्थितः सन् प्रतिसेवते तनो नोदक । भवेत् तिष्ठत एव त्वदुक्तं चरमप्रायश्चित्तम् , तच्च नास्ति, सर्वस्याप स्थितस्य प्रतिसेवकत्वाभावात् । तसात् प्रसद्गरहितं यत् स्थानं सेवते तन्निप्पलमेव प्रायध्यतं 1६ भवति, न 'शेपाणि' मूलादीनि ॥२४८३॥ अथ "चरमपदे चरमपद"मिति पदं भादयति-

अहिट्ठाओ दिट्टं, चरिमं तहि संकमाइ जा चरिमं।

अहवण चरिमाऽऽरीवण, ततो वि पुण पावए चरिमं ॥ २४८४ ॥

अदृष्टपदादु दृष्टपदं चरमम् , तत्र चरमपदे गद्धा-भोजिका-घाटिकादिकमेण चरमपदं पाराञ्चिकं यावत् प्राप्तोति । आह यदि दृष्टं ततः कथं शङ्का ननु निःगङ्कितमेव ? उच्यते—दूरेण 20 गच्छतो दृष्टेऽपि पदार्थं सम्यगविभाविते शक्का भवति । अथवा या यत्र 'चरमाऽऽरोपणा' यथा जघन्ये चरमं मूळं मध्यमे चरममनवस्थाप्यं उत्कृष्टे चरमं पाराश्चिकं तत् तत्र चरमपदम् । 'ततोऽपि' चरमपदात् शङ्कादिभिः पदैः 'चरमं' पाराश्चिकं पुनः प्राम्नोति ॥ २४८४ ॥

> अहवा आणाइविराहणाउ एकिकियाउ चरिमपदं । पावह तेण उ नियमो, पच्छित्तिहरा अइएसंगो ॥ २४८५ ॥

अथवा आज्ञा-ऽनवस्था-मिथ्यात्व-विराधनापदानां मध्ये यद् विराधनापदं तचरमम् । सा च विराधना द्विधा-आत्मिन सयमे च । तस्या एकैकस्याः सकाशात् 'चरमपदं' पाराञ्चिकं मामोति । तत्र मतिमाया यः सामी तेन दृष्टा मतापितस्यात्मविराधनायां परितापनादिकमेण पाराञ्चिकम् । संयमविराधनायां तु तस्याः प्रतिमाया हस्ताचवयवे भग्ने भूयः संस्थाप्यमाने सित "छक्षाय चडसु रुहुगा" (गा० ४६१) इत्यादिक्रमेण पाराश्चिकम् । यत एवं पसक्रतो ३०

१ °ति । कथम् १ इति चेत् उच्यते—तं साधुं भा॰ ॥ २ °पदं-दृष्टं तत्र 'चरमपदं पाराञ्चिकं यावद् भवति । तत्रापि च प्रायश्चित्तमाहादि-दोपनिष्पन्नं पृथम् द्रुष्ट्यमिति सङ्ग° मा॰ ॥ ३ °ति निर्युक्तिगाथा° का॰ ॥

बहुविधं प्रायश्चित्तं तेनायं नियमः—तिष्टनः स्थानपायश्चित्तमेव न प्रतिसेवनापायश्चितम्, इत-रया अतिप्रसङ्गो भवति ॥ २९८५ ॥ ऋथम् ² इति चेद् उच्यते —

नित्य रातु अपच्छित्ती, एवं न य दाणि कोइ मुचिजा। कारि-अकारीसमया, एवं सह राग-दोसा य ॥ २४८६ ॥

यद्यशतिसेवमानस्यापि मृह्यद्ांनि भवन्ति तत एवं नान्ति कोऽप्यप्रायश्चित्ती, न चेदानीं 5 कश्चित् कमेवन्यान्सुच्येत, य प्रतिसेवैते तस्य कारिणोऽकारिणश्च समता भवति, एवं च प्रायश्चित्वाने सति राग-द्वेषा प्रामुत इति ॥ २४८६ ॥ तद्रिष चाज्ञादिनिप्पन्नमिति (प्रन्था-त्रम्-'५५०० । सर्वेत्रन्थात्रम्-१७७२०) पदं व्यास्त्रानयति-

ग्रुंरियादी आणाए, अणवत्थ परंपराएँ थिरिकरणं।

मिच्छत्ते संकादी, पसज्जणा जाव चरिमपढं ॥ २४८७ ॥ 10

अपराघपद वर्चमान खीर्थ कृतामाज्ञा महं करोति तत्र चतुर्गुरु । अत्र च मे विं: -मगूरपोप-क्रवंशोद्भवः आदिशच्दादपरश्चाज्ञासार राजिमद्देष्टान्तः । तस्थि कालेऽसावनवसौया वर्तते तत्र चतुरुंषु । अनवस्थातश्च परम्परया 'स्थिरीकरणं' तदेवापराधपदमन्योऽपि करोतीत्यर्थः, तदा चासी देशतो मिय्यालमासेवते तत्र चतुर्रुषु । अपरायपदे वर्त्तमानो त्रिरायनायां साक्षादेव 16 वर्चते, परस्य च शङ्कादिकं जनयति—यथैतद् मृषा तथाऽन्यद्रि सर्वेममीषां मृषद । प्रसजना चात्र मोजिका-घाटिकादिक्षपा । तत्र चरमं-पाराख्रिकं यावत् पायश्चितं भवति ॥ २४८७ ॥ थय नोदकः प्राह—

> अवराहे लहुगयरो, किं णु हु आणाएँ गुरुतरो दंडो । आणाए चिय चरणं, तब्मंगे किं न भग्गं तु ॥ २४८८ ॥

20 परः माह— नघन्यकेऽपरिगृहीते परिगृहीते वा तिष्ठति याजापत्यपरिगृहीतं वा नघन्यम-सनिहितमदृष्टं मतिसवते उभयत्रापि चतुर्ल्यु, एवं स्थानतः मतिसेवनतश्चापरावे लघुतरो दण्ड दक्तः, आज्ञामदे चतुर्गुरुकमिति, अतः 'किम्' इति पॅरिपश्चे, 'नु.' इति वितर्के, 'हु.' इति गुर्वामम्रणे, किमेवं मगवन्! आज्ञायां भग्नायां गुरुतरा दण्डो दीयते ? । स्रिराह—आज्ञयेव चरणं व्यवस्थितम्, तस्या भन्ने कृते मति किं न मझं चरणस्य श सर्वमिप मझमेवेति भावः, 25 अपि च लैंकिका अप्याज्ञाया मंद्रे गुरुतरं दण्डं प्रवर्त्तयन्ति ॥ २४८८ ॥

तथा चात्र पूर्वीहिष्टं मायिष्ट्यान्तमाह-

भत्तमदाणमर्डने, आणद्ववर्णव छेतु वैसवती । गविसण पत्त दरिसए, पुरिसवइ सवालडहणं च ॥ २४८९ ॥

पाडिलिपुर्त नयरे चंद्रगुत्तो राया। सौ य मौर्पोसगपुत्तो वि न न्तविया अभिनाणंति 20 त तस्य आणं परिसर्वति । चाणकस्स चिता नाया—आणाहीणो केरिसो राया ? तन्हा नहा एयस्म आणा तिक्ना भवइ तहा करेमि ति । तस्स य चाणकस्स कप्पडियते मिक्लं अडं-

^{? °}वते यश्चे न प्रतिसेवते तस्य का०॥ २ गायेत्रं चूर्णिकृता "अवराहे" २४८८ गायाऽनन्तरं व्याख्याताऽति ॥ ३ °स्याप्ये व° मा० का० निना॥ ४ परप्र° मा० त० के०॥

तस्स एगम्मि गामे भत्तं न रुद्धं । तत्थ य गामे वह् अंवा वंसा य अत्थि । तओ तस्स गामस्स पडिनिविट्टेणं आणाठवणनिमित्तं इमेरिसो लेहो पेसिओ—आम्रान् छित्त्वा वंजानां वृतिः शीघं कार्येति । तेहि अ गामेअगेहि 'दुल्लिहियं' ति काउं वंसे छेतुं अंवाण वई कया। गवेसावियं चाणकेण—िक कैयं ति !। तओ तत्थागंतूण उवालद्धा ते गामेयगा—एते वंसगा रोहगादिस उवउजांति, कीस मे छिन ? ति । दंसियं लेहचीरियं — अनं संदिद्धं अनं ह चेव करेह ति । तंथी पुरिसेहि अधीसिरेहिं वहं काउं सो गामो सबो दह्हो ॥

अथ गाथाक्षरगमनिका—चाणक्यस्य भिक्षामटतः कापि त्रामे भक्तस्य 'अदानं' भिक्षा न लब्धेत्यर्थः । तत आज्ञास्यापनानिमित्तमयं लेखः प्रेपितः—"अंव छेतुं वंसवइ" ति आम्रान् छित्त्वा वंशानां वृतिः कर्त्तव्या । ततो गवेषणे कृते श्रामेण च पत्रे दिशते 'अन्यदादिष्टं मया अन्यदेव च भवद्भिः कृतम्' इत्युपालभ्य ते पुरुपैर्दृतिं कारयित्वा सवाल-दृद्धस्य प्रामस्य दहनं 10 कृतम् ॥ २४८९ ॥ एप दृष्टान्तः । अर्थोपनयस्त्वेवम्-

> एगमरणं तु लोए, आणऽइआरुत्तरे अणंताई । अवराहरक्खणहा, तेणाणा उत्तरे वलिया ॥ २४९० ॥

लोके आज्ञाया अतिचारे-अतिकमे एकमेव मरणमवाप्यते, लोकोत्तरे पुनराज्ञाया अतिचा-रेऽनन्तानि जन्म-मरणानि पाप्यन्ते । तेन कारणेनापराधरक्षणार्थं लोकोत्तरे आज्ञा बलीयसी १६ ॥ २४९० ॥ अथानवस्था-मिथ्यात्व-विराधनापदानि व्याचष्टे—

> अणवत्थाऍ पसंगी, मिच्छत्ते संकमाइया दोसा । दुविहा विराहणा पुण, तहियं पुण संजमे इणमो ॥ २४९१ ॥

'यद्येप वहुश्रुतोऽप्येवं सागारिके प्रतिश्रये स्थितस्ततः किमहमपि न तिष्ठामि ?' इत्येवमनव-स्थायामन्यस्यापि प्रसन्तो भवति । मिथ्यात्वे शङ्काद्यो दोपाः, शङ्का नाम-किं मन्ये यथा वादिन- 20 स्तथा कारिणोऽमी न भवन्ति ², आदिशव्दाद् विरत्यादिधमै प्रतिपद्यमानानां विपरिणाम इत्यादिदो-पपरिग्रहः । विराधना पुनर्द्धिविधा—संयमे आत्मनि च । तत्र सयमविषया तावदियम् ॥२४९१॥

अणहादंडी विकहा, वक्खेवों विसोत्तियाएँ सहकरणं। आर्लिगणाइदोसा, असनिहिए ठायमाणस्स ॥ २४९२ ॥

अर्थ:-प्रयोजनं तदमावोऽनर्थः तेन दण्डोऽनर्थदण्डः, स च द्रव्यतो यदकारणे राजकुले 25 दण्ड्यते, भावतस्तु निष्कारणं ज्ञानादीनां हानिः सागारिके प्रतिश्रये स्थितानां भवति । 'विकथा' वक्ष्यमाणरूपा । 'व्याक्षेपो नाम' तां प्रतिमां पेक्षमाणस्य द्वितीयसाधुना सहोछापं कुर्वतः सूत्रार्थपरिमन्थः । विश्रोतसिका द्रव्य-भावमेदाद् द्विधा । द्रव्यतः सारणीपानीयं वहमानं तृणादिकचवरेण पुरःस्थितेन निरुद्धं यदन्यतः कुशारादिषु गच्छति ततश्च सस्यहानिरुपजायते । भावतस्तु ज्ञानादिजले जीवकुल्यायां वहमानतृणादिकचवरस्थानीयया चित्तविष्ठत्या निरुद्धे 30 सति चारित्रसस्यविनाशो जायते सा विश्रोतसिकेत्युच्यते । तैया स्मृतिकरणं भुक्तमोगिनाम्,

१ तथो तस्सेव गामस्स सवालबुहेहिं पुरि॰ का॰॥ २ °या समुत्पन्नया स्मृ॰ का॰॥ ३ °म्, उपलक्षणत्वादभु॰ का॰॥

असुक्तमोगिनां तु काँतुकमालिङ्गनादयश्च दोषा मवन्ति । एतेऽसर्तिहिते प्रतिमारूपे तिष्ठतो दोषाः ॥ २४९२ ॥ अय विकथापदमालिङ्गनादिषदं च विवृणोति—

सुङ्कु कया अह पिंडमा, विणासिया न वि य जाणसि तुमं पि । इय विकहा अहिराग्णं, आर्लिंगणें मंगें महितरा ॥ २४९३ ॥

एकः साधुर्वति—सुष्टु कृतेयं प्रतिमा, द्वितीयः प्राह्—विनाधितेयं नामि च जानासि न्यमि इत्येवं विक्या । तत्रश्रानग्यस्युनिरक्षां कुर्ववन्त्रयोगिकरणं भवति । अय कोंऽप्युर्वणिमो- हन्तां प्रतिमामालिकेत् तत्र आलिकेन प्रतिमाया हन्त-पादादिमको मनेत् । सपरिप्रहायां च प्रतिमायां महकेत्रत्वापाः—महको हन्त-पादादिमके मङ्गते सति पुनः संस्थापनं विद्ययात्, प्रान्तन्तु प्रहृणा-ऽऽकर्षणादीनि कुर्यात् ॥ २१९३ ॥

10 एने उसलिहिन दौषा उक्ताः । मिलिहितेऽपि त एव वक्तव्याः, एने चाम्यविकाः—

र्वामंसा पडिणीयहुया व भोगत्यिणी व समिहिया । काणच्छी उक्रेपण, आलाव निमंतण पलोमे ॥ २४९४ ॥

या तत्र सिनिहिना देवना मा त्रिमिः कार्गोः माधुं प्रकामयेत्—विमर्शाद्या प्रत्मिकार्थतया वा भौगार्थितया वा । विमर्शे नाम-'क्रिमेष माधुः शक्यः क्षोमयितुं न वा ?' इति जिज्ञासा 15 तया प्रतिमायामनुप्रतिस्य काणाक्षिकं वा उक्कम्यनं वा सानार्धानां विद्वीत, आलापं या क्र्यान्—अमुक्तामयेय ! क्रशकं तव ? इत्यादि, निमन्नगं वा विद्व्यान्—मया सह स्नामिन् ! मोगानुर्मुक्त, प्रकामनं वा कक्षान्त्रगेम्दर्शनेन क्रवींन ॥ २६२९ ॥

काणच्छिमाइएहिं, खाभिय उदाइयस्त भदा उ । नासद इयगे मोहं, सुकणकारेण दिइंतो ॥ २४९५ ॥

20 यदा काणानिष्ठममृतिमिगकाँरः क्षामितस्तदा गृहाग्येनान् इत्यमित्रायेणोढावितस्ततस्य सा देवना यदि मद्रा तनो नस्यति । 'इनगः' सायुस्तन्यानदर्धनीमृतायां मोहं गच्छति, मन्मृद्ध तां द्रपृमिच्छतिः 'हा कुत्र गनाऽसि ! देहि मक्कवान्मीयं दर्धनम्' इत्यादिमस्रापाँ करोति । अत्र च 'सुवर्णकारण' चम्पानगरीवास्त्रस्येन अनङ्गसेनान्स्येनै दृष्टान्तः, स च आवद्यका-दिश्म्येषु सुपमिदः (आव० हारि० टीका पत्र २९६)॥ २७६५॥

थ्य अय प्रचनीकार्यनयेनि स्थान्ये—

र्वामंसा पहिणीया, विद्यानिण-ऽक्तिचत्तमादिणो दाना । अमंपत्ती मंपत्ती, लग्गम्स य कहुणादीणि ॥ २४९६ ॥

प्रत्यनीक्षादि 'विषयीत्' काणाक्षित्रमृतिभिराकौरः क्षोमियता यदाद्रभी उद्घावितसदा "अमंपति" ति यावद्रभी ह्लादिना नेव गृहानि तावद् 'विदर्शनं' विकृतं कृषं दर्शयति, अध्वा 80'विदर्शनं नाम' अल्प्रमेव लोको लक्षं प्रत्यति । यहा मा तस्य मात्रोः विद्यवितादिनोपान्

१ °न हासा-प्रहासाच्यन्तर्गालुःचेन हष्टा॰ हः ।। २ °मी श्लीवन उद्धाविनश्च नदा ना॰ ॥ २ मा देवता वं साबुं क्षिमचित्तादिकं कुर्यात् । यावडा न गृहाति तावद् मारयेत्। अथवा ना॰ ।

कुर्यात् । अथवा परिभोगसम्पत्तिं कृत्वा तत्रैव तस्य सागारिकं रूपयेत् श्वानादिवत् । रुग्नस्य चै तस्य रुप्यकस्वामी अन्यो वा दृष्ट्वा ग्रहणा-ऽऽकर्पणादीनि कुर्यात् ॥२५९६॥ एतदेव न्याचप्टे—

पंता उ असंपत्तीह चेव मारिज खेत्तमादी वा। संपत्तीह वि लाएतु कहुणादीणि कारेजा॥ २४९७॥

प्रान्ता पुनः 'असम्पत्त्यामेव' यावदद्याध्यसौ हस्तादिना न गृह्यति तावन्मारयेत्, 'वा' अथवा ठ क्षिप्तिचित्तम् आदिशब्दाद् यक्षाविष्टं वा कुर्यात् । सम्पत्त्यामपि सागारिकं लापयित्वा ग्रहणा-ऽऽकर्पणादीनि कारयेत् ॥ २४९७ ॥ अथ भोगार्थिनीपटं विवृणोति—

> भोगत्थी विगए कोउगम्मि खित्ताइ दित्तचित्तं वा। दडुण व सेवंतं, देउलसामी करेज इमं॥ २४९८॥

भोगार्थिनी देवता काणाक्षिकादिभिराकारैरुपप्रछोभ्य क्षुभितेन सह भोगान् भुक्तवा विगते 10 भोगविषये कोतुके 'मा अपरया सह भोगान् भुद्धाम्' इति कृत्वा तं 'क्षिप्तचित्तं वा' यक्षा-विष्टं वा द्याचित्तं वा कुर्यात् । अथवा ता देवतां सेवमानं तं साधुं दृष्ट्वा देवकुल्लामी यथा-भावेनेदं कुर्यात् ॥ २४९८ ॥

तं चेव निद्ववेई, वंधण निच्छुभण कडगमदे अ। आयरिए गच्छम्मि य, कुल गण संघे य पत्थारो ॥ २४९९ ॥

तमेव साधुं कुद्धः सन् देवकुरुखामी 'निष्ठापयित' मारयतीत्यर्थः । यदि वा प्रभुरसौ ततः खयमेव तं साधुं वधीयात्, अप्रभुरिष प्रभुणा बन्धापयेत् । अथवा वसतेर्प्यामाद् नगराद् देशाद् राज्याद्वा निष्काशयेत् । कटकं—स्कन्धावारः स यथा परिविपयमवतीर्णः कस्याप्येकस्य राज्ञः प्रद्वेपेण निरपराधान्यिष ग्राम-नगरादीनि सर्वाणि मृद्धाति, एवमेकेन साधुनाऽकार्य कृतं दृष्टा यो यत्र दृश्यते स तत्र वाल-वृद्धादिरिष सर्वो मार्थते एवंविधं कटकमर्दं कुर्यात् । यद्वा यत्त-20 स्याचार्यो गच्छः कुरुं गणः सङ्घो वा तस्य 'प्रस्तारः' विनाशः क्रियेत ॥ २८९९ ॥ तथा—

गिण्हणें गुरुगा छम्मास कहुणे छेदों होइ ववहारे।
पञ्छाकडम्मि मूलं, उड्डहण-विरुंगणे नवमं ॥ २५००॥
उदावण निन्विसए, एगमणेगे पदोस पारंची।
अणवहुप्पो दोसु छ, दोसु छ पारंचिओ होइ॥ २५०१॥

स साधुः प्रतिसेवमानो यदि देवकुल्खामिना गृहीतः ततो ग्रहणे चत्वारो गुरुकाः। अथ हस्ते वा वस्त्रे वा गृहीत्वा राजकुलामिमुखमाक्तृष्टस्तत आकर्पणे षड्लघवः। तेन साधुना स प्रत्याकिषतस्ततः पण्मासा गुरवः। व्यवहारे पारव्धे च्लेदः। 'पश्चात्कृते' पराजिते मूलम्। 'उड्डहने' रासमारोपणादिके 'विरूपणे वा' नासिकादिकर्त्तनेन विरूपणाकरणे 'नवमम्' अनव-स्थाप्यम्। एकसिन्ननेकेषु वा साधुषु प्रद्रेषतोऽपद्रावणे कृते निर्विषये वाऽऽज्ञप्ते प्रतिसेवक ३० आचार्यो वा पाराश्चिकः। एवं च 'द्वयोः' उड्डहन-विरूपणयोरनवस्थाप्यः, 'द्वयोस्तु' अपद्रावण-

ļ

१ च प्रत्यनीकदेवताप्रयोगत एव लेप्य^० मा॰॥

२ कां॰ प्रती किं तत् ? इत्याह इत्यनतरणं नर्तते ॥

25

निर्विषयाज्ञपनयोः पाराश्चिको सवर्ताति ॥ २५०० ॥ २५०१ ॥

अथवा प्रद्विष्टः सन्निदं कुर्यात्-

एयस्स नित्य दोसो, अपरिक्तियदिक्खगस्स अह दोमो । इति पंतो निन्धिसए, उद्दण विंक्त्यणं व करे ॥ २५०२ ॥

५ 'एतस्य' प्रतिसेवकसाघोनीित दोपः किन्त्वेनमपरीक्षितं यो दाक्षितवान् तस्यैर्वापरीक्षितदी-क्षकस्याचार्यस्य 'अथ' अयं दोष इति विचिन्त्य प्रान्त आचार्यं निर्विषयं कुर्यात् अपद्रावयेद्वा, कर्ण-नासा-नयनाद्युत्पाटनेन विरुम्पनं वा कुर्यात् ॥ २५०२ ॥ अथासित्रहिते एते दोषाः—

तत्येव य पहिबंघो, अदिहुगमणाइ वा अणितीए । एए असे य तर्हि, दोमा पुण होंति सन्निहिए ॥ २५०३ ॥

10 'तंत्रेव' तस्त्रामेव देवतायां संयतस्य प्रतिवन्यो मवेत्, अयवा सा व्यन्तरी विगतकातुका सनी नागच्छति ततस्त्रसामनायान्यां स प्रतिगमनादीनि क्रयीत् । एतेऽन्ये चैवमादयो दोषा रुप्यकस्त्रामिनाऽदृष्टऽपि सन्निहिते प्रतिमारुपे मवन्ति ॥ २५०३ ॥

ताश्च सन्निहितप्रतिमा ईट्ट्यो मनेयुः—

कट्टं पुरंथे चित्ते, दंतकम्मे य सेलकम्मे य । दिहिष्यत्ते स्वे, वि खित्तचित्तस्य भंसणया ॥ २५०४ ॥

काष्टमयी पुलमयी चित्रमयी दन्तकर्ममयी शैल्कर्ममयी शतिमा मवेत् । एनासां रूपेऽपि दृशा प्राप्ते आक्षिप्तचित्तस्य प्रमत्ततया संयमक्ताविताद् मवर्जाविताद्वा परिसंदाना मवेत् , किं पुनस्तासामाश्रयस्थाने प्रतिसेवने वा ? ॥ २५०७ ॥ तासां पुनः सिन्नाहितदेवतानामिमे प्रकाराः—

मुहिविनवणा मुहमीयगा य मुहिविनवणा य होति दुहमीया।

20 दुइविन्नपा य मुहा, दुइविन्नपा य दुइमोया ॥ २५०५ ॥

विज्ञपना नाम-प्रार्थना प्रतिसेवना वा सा मुखेन यासां ताः मुखविज्ञपनाः मुखविज्ञप्या वा, तथा मुखेन मोच्यन्त इति मुखमोचाः मुपित्यजा इत्यर्थः, एप प्रथमो सङ्गः । मुखविज्ञ-पना दुःखमोचा इति द्वितीयः । दुःखविज्ञप्या मुखमोचा इति तृतीयः । दुःखविज्ञप्या दुःख-मोचा इति चतुर्थः ॥ २५०५ ॥ तत्र प्रथममङ्गे दृष्टान्तमाह—

सोपारयम्मि नगरं, रन्ना किर मिन्गितो उ निगमकरो । अकरो ति मरणधम्मा, बालतवे धुत्तसंत्रोगो ॥ २५०६ ॥ पंच सय मोह अगर्णा, अपरिग्गहि सालिमंत्रि सिंह्रं । तृह मन्त्र धुत्त धुत्तादि अवने विज्ञसीलणया ॥ २५०७ ॥

सोपार्यं नगरं । नत्य नेगमा अकृग परिवसन्ति । ताण य पंत्र कुडुंबसयाणि । तत्य य 20 राया मंतिणा बुन्गाहितो । तेण ते नेगमा करं मिनाता । ते 'पुत्ताणुपुत्तिओ करो एस मिन-स्सइ' ति काटं न दिति । रण्णा भिजया—वह न देह तो हमस्मि नहे अनिपवेसं करेह । ततो ते सब अस्मि पिनेष्टा । तेसि नेगमाणं पंत्र महिलासयाई ताणि वि अस्मि पिनेष्टाणि ।

१ त्रिक्सणं छां॰॥ २ °चेंप दोप इति वि° मा॰ त॰ डें॰॥ ३ विरूपणं चा त॰ डें॰ छां०॥

ताओं अ तीए अकामनिजाराए पंच वि सया अपरिग्गहियाओ वाणमंतिरयाओ जायाओ । तेहि य निगमेहि तिम्म चेव नगरे देवउर्छ कारियं। अत्थि तत्थ पंच सािठभंजियासया। ते तािहं देवतािह परिग्गहिया । ताओं अ देवताओं न कोइ अप्पिहृिओं वि देवो इच्छइ ताहे धुचेहि समं सपलगाओं । ते धुचा तस्संबंधेण भंडणं काउमाढचा—एमा मज्झं न तुज्झं। इतरो वि भणइ—मज्झं न तुज्झं। जा य जेण धुचेण सह अच्छई सा तस्स सबं 5 पुष्ठभवं साहइ। ततो ते भणंति—हरे अमुकनामधेया! एसा तुज्झं माया भगिणी वा इयािण अमुगेण समं संपलगा। ता य एगिम्म पीइं न बंधंति, जो जो पिडहाइ तेण सह अच्छंति। तं च सोउं तािसं पुष्ठभविण्हि पुचाईहि 'अम्हं एस अयसो' चि काउं वेजावाइ-एण खीलावियाउ ति।।

अथ गाथाद्वयस्याप्यक्षरयोजना—सोपारके नगरे राज्ञा किल मार्गितः 'निगमानां' वणि-10 ग्विशेपाणां समीपे करः । तैश्च 'अकर इति' अपूर्वः करो मा मूदिति कृत्वा मरणधर्मो व्यव-सितः । तासां (तेपां) च 'भोजिकाः' महेलाः पञ्चापि जतान्यिमप्रवेगलक्षणेन वालतपसा देवता अपिरगृहीताः सज्जाताः । धूर्तेश्च सह सयोगः । कथम् श इत्याह—'सिन्दूरं' सिन्दूरारुणं यद् देवकुलं तत्र शालमिक्षकानां पञ्च शतानि तामिर्देवताभिः परिगृहीतानि । तत्र स्थिताश्च धूर्तैः समं सम्प्रलमाः । "तुह मज्झे"ति 'नेयं तव, ममेयम्' इत्यवं ते धूर्ताः कलहायितवन्तः । 15 ततस्तासां पूर्वभववृत्तान्तं श्चत्वा 'अवणेंऽयमसाकम्' इति कृत्वा पुत्रादिभिर्विद्यापयोगेण तासां कीलना कारितेति ॥ २५०६॥ २५०७॥ उक्तः प्रथमो भक्षः । अथ शेपमङ्गत्रयं भावयति—

विइयम्मि रयणदेवय, तहए भंगम्मि सुहगविजाओ । गोरी-गंधाराइ, दुहविण्णप्पा य दुहमोया ॥ २५०८ ॥

द्वितीयमें हे रत्नदेवता निदर्शनम्, सा बल्पद्धिकत्वात् कामातुरत्वाच सुखविज्ञपना सर्व-20 सुखसम्पादंकतया च दुःखमोचा । तृतीये भक्ते शुचयो विद्यादेव्यो निदर्शनम्, ता हि शुचि-तया महर्द्धिकतया च दुःखविज्ञपना उत्रतया नित्यमत्यन्ताप्रमत्तेराराधनीयत्वात् पर्यन्ते सापा-यत्वाच सुखमोचाः । चतुर्थे भक्ते गौरी-गान्धारीप्रभृतयो मातङ्गविद्यादेवता द्रष्टव्याः, तथाहि—ताः साधनकाले लोकगर्हिततया दुःखविज्ञप्या यथेष्टकामसम्प्रापकतया च दुःखमोचा इति । २५०८ ॥ भाविताश्चत्वारो भङ्गाः । अथ प्राजापत्यादित्रिविधपरिगृहीते गुरुलाघवमाह— 25

तिण्ह वि कतरो गुरुतो, पागइ कोडुंचि दंडिए चेव । साहस अपरिक्ख भए, इयरे पडिपक्ख पश्च राया ॥ २५०९ ॥

शिष्यः प्रच्छति—'त्रयाणां' प्राजापत्य-कौटुम्बिक-दण्डिकपरिगृहीतानां मध्यात् कर्तेरद गुरुतरम् १ । गाथायां प्राकृतत्वात् पुंस्त्वनिर्देशः । शिष्य एवाह—अहं तावद् भणामि—

१ "सभा वा देवकुलो ति वा सेंद्रो ति" इति विशेषचूर्णो ॥ २ ०भक्के रत्नद्वीपवास्तव्या ज्ञाता-धर्मकथाङ्गप्रथमश्रुतस्कनधान्तर्गतमाकन्दीदारकज्ञाताभिहितस्वरूपा [रत्न]देवता का०॥ ३ द्कारानन्तरं भा० प्रति विहाय सर्वाखिष प्रतिषु प्रन्थाप्रम्-२००० इति वर्तते ॥

४ °तरो गुस्तरो दोपः ?। ही॰ मा॰ ॥

प्राज्ञापत्यपरिगृहीतं गुरुक्त, केंद्रिकिक्पिण्डिकणरिगृहीतं स्वृत्तत्. यतः "साहस" ति प्राङ्गतन्ते मृत्तिया साहिसकोऽपरिशिक्तर्गा च मवति, अनीश्वरत्या च तस्य तयाविषे मयं न मवति, अनोऽमी सर्णस्य्य्यक्तस्य तं माखं नार्यत्, तेनास्य गुरुक्तरे दोनः । 'इत्ते नाम' केंद्रिकिक-दिग्डिको तो श्राङ्गतिकस्य श्रिपक्षम्ता । किंगुक्तं मवि ?—तो न साह-हिको, नाव्यपरिशिक्तकारिणा, मयं च तयोर्भवति । अत्रार्चायः श्राह—दण्डिक-केंद्रिकिको गुल्डिंग, श्राह्मतो स्वृत्तरं, यतो गना उपस्थानतात् केंद्रिकिक्य श्रमः, श्रमुत्वाच स एकस्य रष्टः सङ्घस्य श्रमारं दुर्णादिति ॥ २५०९ ॥

अय कोड्डिक-दिक्तनां य्ट् नयहस्यते तैद् दर्शय्त् परः स्वःशं द्रव्यक्ताह— ईसरियत्ता रज्जा व मंसए मज्जपहरणा रिसओ । ते य समिक्छियकारी, अप्या वि य मिं वह अतिय ॥ २५१० ॥

एते ऋत्यः 'मन्द्रितहरणाः' शापायुग अतः कोरिताः सन्तो नामेश्वर्णाद् अंगयेयुरिति कोटुन्तिकश्चिन्तयेत्, गना तु नानमी गज्याद् अंशयेयुरिति जिन्द्रयति । 'ते ज' रानादयः 'समीक्षिकशिराः' नाविष्टस्य कार्ये द्ववीन्त । अन्यच तेत्रानन्या अपि वहनः प्रतिनाः सन्ति अदलस्योनेकस्यानेव तेतां नादरः ॥ २५१० ॥ एवं परेण स्वत्रक्षे माविने सति मेरिराह—

15 पत्थारदोसकारी, निवावराहो य बहुजण फुसहू ।

पानइओ पुण तस्त व, निवस्त व मया न पडिकुङा ॥ २५११ ॥

प्रतारः-कटकर्नाः, एकेस रदः सर्वनित यत्र व्यागदयनीत्पर्यः, तद्दोनकारी राजा, तुन्य-राज्य 'बहुबनान् स्ट्रिति' बहुजनमच्ये प्रकर्तानव्यीति मावः । एवं कौटुन्विकसापि द्रष्ट-व्यन् । अत्र एता द्वावित गुरुद्रते । प्राहृदकप्रश्वाक्त बहुदनं न स्ट्रिट्रति । अति च प्राहृदकः १० तस्य वा मेयदस्य तुम्स वा मयाद् 'न प्रतिक्ष्यीद्' न प्रस्याकारं करोति ॥ २५११ ॥

अवि य हु कम्मह्ण्णो, न य गुर्चा क्षो सि नेव दारहा । तेप क्ये पि न नजह, इनरत्य पुणो बुवा दोसा ॥ २५१२ ॥

'भिन न' इत्यन्त्वचये, प्राहृतकः क्षेत्र-रूखदिक्रमीनः अद्दशः—अक्षणिकः तत्त्वासां प्रति-मानाहृद्दतं न ब्हति, न च तत्मन्त्रनिष्ठति देवद्रोगीषु 'शैतिः' आत्यन्तिकी रक्षा, न व थः 'ह्यारस्ताः' हारणालः दतः कृतनि प्रतिनाप्रतिष्ठेवनं न जायते । 'इत्तरत्र तु' दिश्वन-नेहिन्दि-

१ इतरे नाम केंडिन्यक दण्डिकाः ते प्राकृतिक स्व प्रतिपद्ध मृताः । कि मुक्तं मवति ?—
ते न साहसिकाः, नाप्यपरीष्टितकारिपाः, मयं च तेषां मविति । अवासायः प्राह्म— रण्डिककोडिन्यका स्वतत्तरः, प्राहृतो ल्युतरः । इतः १ इत्याह— राज्ञा प्रमुः, प्रमुत्वा मा ।
- २ तदेवाह ना ० ६ २ न्युः-कोपः स एव प्रहर्णम्-श्रायुवं येषां ते तथा एवंविधा मा मानेप्ययाद् राज्याद्वा अंश्ययुः । अपि च ति राज्ञाद्यः समीक्षितं वार्य कर्तु शीलं येषां ते तथा, नाविमुद्ध कार्य इविन्जात्ययेः । अन्य स्व ।

४ चृतिः लामिष्रेत्रमयं समयेयबाह् नाः ॥ ५ च "सं" तस सम्ब व्हां० । ६ 'गुप्तयः' रसाप्रकाराः, न वा कं० । "द्वीः-क्ष्यव रहां" इति चृतीं ॥

Б

केषु पुनः 'ध्रुवाः' अवस्यम्माविनः प्रस्तारादयो दोपाः, द्वारपालादिरक्षासद्भावात् ॥ २५१२ ॥

अ अतं एव तेपां प्रतिमासु पूर्वं प्रमृततरं प्रायिश्चित्तसुक्तम्, न केवलं प्रतिमासु किन्तु
स्त्रीप्विप तदीयासु गुरुतरं प्रायिश्चत्तं भवतीति प्रसङ्गतो द्रशिव्यमाह—

रनो य इत्थियाए, संपत्तीकारणम्मि पारंची । अमची अणवठप्पो, मूलं पुण पागयजणम्मि ॥ २५१३ ॥

'राज्ञः स्त्रियाम्' अग्रमहिप्यां यद् मैथुनसपत्तिलक्षणं कारणं तत्र पाराश्चिको मवति । अमा-त्यायामनवस्त्राप्यः । प्राकृतजनस्त्रियां पुनर्मूलम् ॥ २५१३ ॥ ▷ शिप्यः प्राह—

> तुल्ले मेहुणभावे, नाणत्ताऽऽरोवणाय कीस कया। जेण निवे पत्थारो, रागो वि य वत्थुमासज ॥ २५१४॥

र्दंण्डिकादिपरिगृहीतासु प्रतिमासु स्त्रीपु वा तुल्ये मैथुनभावे कसाद् 'आरोपणायाः' प्राय-10 श्चित्तस्य 'नानाता' विसद्दशता कृता ? । सूरिराह—येन कारणेन 'नृपे' राज्ञि 'प्रस्तारः' कटकमदों भवति, अतस्तत्राधिकतरं प्रायश्चित्तम् । तदपेक्षया कौटुम्बिंके प्राकृते च यथा-क्रमं सल्पाः सल्पतरा दोपास्ततस्तयोः प्रायश्चित्तमपि हीनं हीनतरम् । रागोऽपि च वस्तु आसाद्य भवति, याद्दणं जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं वा वस्तु रागोऽपि तत्र ताद्दशो भवतीति भावः ॥ २५१ ।।

इदमेव भावयति--

जइमागगया मत्ता, रागादीणं तहा चओ कम्मे । रागाइविहुरया वि हु, पायं वत्थूण विहुरत्ता ॥ २५१५ ॥

रागादीनां 'मार्त्रा' जधन्यादिरूपा यतिषु—यावत्सह्याकेषु भागेषु गता—स्थिता 'कॅर्मण्यिप' ज्ञानावरणादी 'चयः' वन्धस्तथेव द्रष्टन्यः । अथ रागादीनां मात्रानानात्वं कथं भवति ! 20 इत्याह—रागादीनां 'विधुरताऽिप' मात्रावैषम्यमि प्रायः 'वस्तृनां' स्त्रीप्रभृतीनां 'विधुरत्वात्' सुन्दर-सुन्दरतर-सुन्दरतमविभागाद् भवति । प्रायोग्रहणं कस्यापि कदाचिद् वस्तुवैसदृश्यम-

१ ० एतिचित्तगतमवतरणं गाधा तद्दीका च भा॰ प्रतावत्र न वर्तते किन्तु विदेशपचूर्णाविन "जइ-भागगया मत्ता॰" २५१५ गाधानन्तरं किश्चिद्र्पान्तरेण वर्तते, दृश्यता पत्रं ७१२ टिप्पणी १ । चूर्णों पुनर्नेयं "रण्णो य इतिययाए॰" इति गाधाऽत्राप्ते वा व्याख्याता दृश्यते ॥

२ °या खलु, सं° ता॰॥

३ °णा उ की विष्णा भा॰ । भा॰ अतावेतदनुसारेणैव टीका, दश्यतां टिप्पणी ४॥

४ प्राकृत-कौटुम्विक-द्ण्डिकपरिगृहीतेषु तुल्ये मैथुनभावे कसाद् 'नानात्वारोपणा' तपः कालविशेषोपलक्षितप्रायश्चित्तरूपा कृता ?। सूरि॰ भा॰ ॥

५ °म्विकपरिगृहीते खल्पदोषं ततस्तत्र प्रायश्चित्तमपि हीनम्। प्राजापत्यपरिगृहीतं तु ततोऽप्यल्पदोपतरम्, तेन तत्र हीनतरं प्रायश्चित्तम्। रागोऽपि च मा॰॥

६ °जा' परिमाणं यति भार ॥ ७ 'कर्मणामपि' ज्ञानावरणादीनां 'खयः' भार ॥

८ स्त्रीरूपादीनां 'वि° मा॰ ॥

न्त्रेणानि नगदिवसद्दं मदनीनि हापनार्थस् । यत्र्येवमतो युक्तियुक्तं दण्डिकादिर्पारण्डी-वासु क्रीष्ट प्रतिमासु वा प्रायक्षित्रनान,चस् ॥ २५१५ ॥

तदेवसुक्तं दिख्यं प्रतिमायुक्तम् । अथ दिख्यम्येव देहयुक्तम्यवसरः—तवाचितं न सम्म-वति, जीवच्युक्तस दिख्यकरीरस्य तन्यपादेव विव्यंतमात् । यतु सचित्तदेवीयरीररूपं देहयुक्तं इक्त स्वानप्रायक्षित्तं यथा प्रतिमायुक्ते, प्रतिमेवनाप्रायक्षितं तु यथा मतुत्यकीयु मिनित्यते । गर्त दिख्यस्त्रम् । अथ मातुत्र्यस्त्रमाह—

> - माणुस्मं पि य तिविहं, जहस्रगं मन्झिमं च उक्कोमं । पायावच-कुटुंविय-इंडियपारिनगहं चेव ॥ २५१६ ॥

मानुज्यमीर न्हरं त्रिविवन्—ज्यम्यं मध्यममुकुष्टं च । पुनर्रेकेकं त्रिविवस्—याज्ञायस्य-१८पीरमृहीतं केष्टुम्बिकपीरमृहीतं दम्बिक्यीरमृहीतं चेति ॥२५१६॥ वैज्ञोक्कयदिविमागमाह—

> उद्योम माउ-मजा, मञ्झं पुण मिगणि-यृतमादीयं । खरियादी य जहसं, पगयं मिनिनेनरे देहे ॥ २५१७ ॥

इँह गृहिषो मादरं मार्गं वा नान्यस कसारि प्रयक्तिन. अतो मादा मार्ग चोक्रष्टं मातुप्रक्षम् । याद्य भगिनी-दृहितृ-यैाव्याद्योऽन्यसे सामिक्चिनाय द्यांयने ताः पुनर्मव्य-16 मन् । सार्त्रा—दासी तद्यद्य इतगः वियो जवन्यम् । एतत् त्रयमि प्रस्तेकं द्विया—अति-मार्थ्यं देहर्ष्यं च । प्रतिमार्थ्यं दिव्यवद् वक्तव्यम् । देहर्थनेन तु सर्वावन इत्रेषा वा—अर्वावन 'प्रस्तम्' अविकारः, तद्विषयं प्रायक्षितमिक्षस्य इत्यवः ॥ २५१७ ॥

तत्र स्थानप्रायश्चितं तावदाह**—**

पदमिह्नुगिम्म ठाणे, चडरो मासा हर्वतऽशुग्वाया । छम्मासाऽशुग्वाया, विद्दए तद्दए भवे छेदो ॥ २५१८ ॥

१ °गुकं प्राकृत-काँद्वस्विक-दण्डिकेषु प्राविश्वस्तनानात्वम् 🛚 २५१५ 🗈 अथ प्रकारान्तरेण वस्तुनानात्वनिष्यत्रं प्राविश्वसनानात्वमाहः—

> रण्यो य इत्थियाए, संपत्तीकारणिम पारंची । अमर्ची अपवरण्यो, मूळं पुण पानयजणिम ॥

राष्ट्रः क्रियां या मैशुनसंपत्तिस्त्रक्षणं यत् कारणं तत्र पाराञ्चिकः। अमासायां मैशुन-सम्पत्तावनवस्थाप्यः । प्राहृतजनक्षियां पुनर्मृत्यम् । यथवत् प्रायञ्चित्तनानात्वं तथा पृवोक्तमपि मन्तव्यम् । गतं दिस्रसागारिकम् । अय मानुष्यसागारिकमाह—मा॰।

"करनयः प्रकारः—रण्यो स॰ गाहा।" इति विदेशयं सूर्णी 🏾

२ व्सायं पि ति वा ॥

् ३ तम यत् प्रतिमायुतं तद् दिव्यवद्मिघातव्यम् । अय देह्युते उन्छ° न ० ॥

ं ४ इह गृहिणां या 'माठा' जननी या च तेषामेव मार्या तिहेष्यं यद्वहा तद् उत्कृष्टम् । तदीयमगिनी दृहित्-पाञ्यादिविषयं मध्यमम् । खरिका-इासी तदादिकी विषयं जवन्यम् । इह च सजीवेन इतरण वा-अजीवेन देहचुतेन 'प्रकृ' ना० ॥

10

प्रथमं नाम-जघन्यं गानुष्यरूपं तत्र पाजापत्यपरिगृहीतादो मेदत्रयेऽपि तिष्ठतश्चत्वारोऽनु-द्धाता मासाः, गुरव इत्यर्थः । द्वितीयं-मध्यमं तत्रापि त्रिष्वपि मेदेपु पण्मासा अनुद्धाताः । तृतीयम्-उत्कृष्टं तत्र मेदत्रयेऽपि तिष्ठतक्छेदो भवेत् ॥ २५१८ ॥

अथ कीद्दशक्छेदः १ इति ज्ञापनार्थमाह---

पदमस्स तइयठाणे, छम्मासुग्वाइओ भवे छेदो ।

चउमासो छम्मासो, विइए तइए अणुग्घाओ ॥ २५१९ ॥

प्रथमं-प्राजापत्यपरिगृहीतं तस्य यत् तृतीयं स्थानम्-उत्कृष्टमित्यर्थः तत्र पाण्मासिक उद्धा-तिकश्छेदः । द्वितीयं-कोट्टम्बिकपरिगृहीतं तस्य तृतीयस्थाने चतुर्गुरुकश्छेदः । तृतीयं-दण्ड-कपरिगृहीतं तत्रापि यत् तृतीयं स्थानं तत्र पाण्मासिकोऽनुद्धातश्छेदः ॥ २५१९ ॥ तथा---

पढिमिल्लुगिम्म तवऽरिह, दोहि वि लहु होंति एतें पिन्छत्ता। विइयम्मि य कालगुरू, तवगुरुगा होंति तइयम्मि ॥ २५२० ॥

प्रथमिल्लुकं-प्राजापत्यपरिगृहीतं तत्र जघन्य-मध्यमयोर्थे तपोऽहें प्रायश्चित्ते चतुर्ग्रह-पङ्गरुह्पे एते 'द्वाभ्यामि' तपः-कालाभ्यां लघुके कर्तन्ये । 'द्वितीये' कौदुम्बिकपरिगृहीते ते एव काल-गुरुके । 'तृतीये' दण्डिकपरिगृहीते ते एव तपसा गुरुके कालेन लघुके ॥ २५२० ॥

उक्तं स्थानप्रायश्चित्तं । अथ प्रतिसेवनाप्रायश्चित्तमाह-

15

चउगुरुका छग्गुरुका, छेदो मूर्ल जहण्णए होइ। छग्गुरुक छेअ मूलं, अणवद्वप्पो अ मन्झिमए ॥ २५२१ ॥ छेदों मूलं च तहा, अणवद्वप्पो य होइ पारंची। एवं दिट्टमदिट्टे, सेवंतें पसज्जणं मोत्तुं ॥ २५२२ ॥

प्राजापत्यपरिगृहीतं जघन्यमदृष्टं प्रतिसेवते चत्वारो गुरवः, दृष्टे पण्मासा गुरवः । कौटु-20 म्बिकपरिगृहीतं जघन्यमदृष्टं प्रतिसेवते षण्मासा गुरवः, दृष्टे छेदः । दण्डिकपरिगृहीतं जघ-न्यमदृष्टं प्रतिसेवते छेदः, दृष्टे मूलम् । प्राजापत्यपरिगृहीते मध्यमेऽदृष्टे षण्मासा गुरवः, दृष्टे छेदः । कौटुम्बिकपरिगृहीते मध्यमेऽदृष्टे छेदः, दृष्टे मूलम् । दण्डिकपरिगृहीते मध्यमेऽदृष्टे मूलम्, दृष्टेऽनवस्थाप्यम् । प्राजापत्यपरिगृहीते उत्कृष्टेऽदृष्टे छेदः, दृष्टे मूलम् । कौटुन्विकपरि-गृहीते उत्कृष्टेऽदृष्टे मूलम्, दृष्टेऽनवस्थाप्यम् । दिण्डिकपरिगृहीते उत्कृष्टेऽदृष्टेऽनवस्थाप्यम्, 25 हुए पाराञ्चिकम् । एवं दृष्टाहुष्टे प्रतिसेवमानस्य 'प्रसजनां' शङ्का-भोजिकादिरुक्षणां मुक्तवा प्रायश्चित्तं मन्तव्यम् ॥ २५२१ ॥ २५२२ ॥ अत्र नोदकः प्राह—

जम्हा पढमे मूलं, बिइए अणवट्टों तइएँ पारंची। तम्हा ठायंतस्सा, मूलं अणवह पारंची ॥ २५२३ ॥

अत्राचार्यः परिहारमाह-

१ प्रथमं नाम-जघन्यं तत्र तिष्ठति चत्वारो गुरुमासाः । द्वितीयं-मध्यमं तत्र तिष्ठति षण्मासा गुरवः । तृतीयम् उत्कृष्टं तत्र तिष्ठति च्छेदः ॥ २५१८ ॥ अथ भा॰ ॥ २ °तुर्मासगु° का॰॥

10

पिडसेवणाएँ एवं, पसजणा तत्य होइ इक्कि । चिरमपदं चिरमपदं, तं पि य आणाइनिष्मनं ॥ २५२४ ॥ अनयोज्यांच्या प्राप्तत् (गा० २४८१-८२) ॥ २५२३ ॥ २५२० ॥ तं चेव तत्य दोसा, मोरियआणाएँ ने मणिय प्रव्वि । आलिंगणाइ मोर्नुं, माणुस्य सेवमाणस्म ॥ २५२५ ॥

'त एव' अनवस्था-मिञ्जात्वादयः 'नत्र' मानुष्यक्रकीरूपे दोषा ये पूर्व ''सुरियाई आणाए'' (गा० २४८७) इत्यादिगाथायां भणिताः । नवरं दिञ्जप्रतिमाया आिङ्किन ये प्रतिमामक्ष-दोषा भद्क-प्रान्तकृता टक्तान्तान् सुक्वा दोषाः सर्वेऽपि मानुष्यकं देहयुतं सेवमानस्य भणि-तत्र्याः ॥ २५२५ ॥ इदमेव एकुटतरमाह—

आर्त्सिने हत्याहमंज्ञणे जे उ पच्छक्तमादी । ते इह नित्य हमे पुण, नक्खादिविछेत्रणे सूया ॥ २५२६ ॥

हैप्यपितमामालिक्समानस्य तस्याः यतिमाया हस्त-यादायव्यवमके सित ये पश्चान्त्रमीदयो दोषा एकान्ते 'इह' मानुष्यके देहयुने न यवन्ति । हमे पुनर्जीषा अत्र भवन्ति—मा स्त्री कामानुरत्या नं साक्षं नसैर्विच्छिन्यान्, आदिश्वच्छाद् दन्नक्षनानि वा कुर्वीत । तेश्च तस्य १० श्रमणकस्य स्वपन्नेण वा परपन्नेण वा सुचा क्रियत—यदंवमस्य वपुषि नस्त-दन्तक्षतानि हस्यन्ते तदेष निश्चिनं प्रतिसेवक इति ॥ २.२२६ ॥ अथ मानुर्पाषु चतुरो विक्रव्यान् दर्शयति—

सुइविन्नप्पा सुहमोहगा य सुइविन्नप्पा य होंति दुहमोया । दुहविन्नप्पा य सुहा, दुहविन्नप्पा य दुहमोया ॥ २५२७ ॥

य मेतुत्रवियश्चतुर्वियाः, तद्यया—> सुन्विज्ञायाः सुन्वमोच्याः १ सुन्विज्ञाया दुःत-20मोच्याः २ दुःन्विज्ञायाः सुन्तमोच्याः ३ दुःन्विज्ञाया दु न्तमोच्याः २ चेति ॥ २.४२७॥ चतुष्त्रीपे सकेषु ययाक्रममम्नि निद्र्यनानि—

> खरिया महिहिगणिया, अंतेषुरिया य रायमाया य । उमयं सुहविनवणा, सुमाय दोहि पि य दुमोया ॥ २५२८ ॥

'लिरका' द्यक्षरिका सा सर्वजनसाँ स्याप्त्या सुखिज्ञाच्या, परिकल्युमुखल्वालाइनहेतुत्वाच 25 सुस्तमोच्या १ १ या ता महाँदिका गणिका माऽपि साधारणळीत्वेतव मुखिज्ञाच्या, यावत-रूप-विश्वमादिमावयुक्तत्वेन तु दुःल्लमोच्या १ । या पुनरन्त पुरिका मा वर्षच्यदिरखपाल्केर्दुः प्राप्तिया दुःल्विज्ञाच्या, प्रत्यपायबहुल्त्रया च सुल्यमोच्या १ । या तु राजः सम्बन्धिनी माता सा सुरक्षितत्वया सर्वस्थापि च गुरुखाने पृज्नीयत्या च दुःल्विज्ञाच्या, प्राप्ता च सर्ता मर्थ-सोक्यमपिकारिणी प्रमाणमृतत्वाच गज्ञा विश्वयमानान् प्रत्यगयान् गिल्नतं व्यक्तांति दुःल्व-थण्या १ । 'दिसय' मिति प्रथमा सुल्विज्ञाच्या श्रमोच्या १ 'स्तुहिव्यन्त्रण' ति द्वितीया सुल्विज्ञपना परं दुःल्विज्ञपना १ चतुर्थी

१ ९४ १ एतदन्तर्गनः पाठ. सा॰ त॰ दे॰ नानि ॥ २ °का दासीत्यर्थः सा छां॰ ॥ ३ कां॰ मो॰ दे॰ विनाऽन्यत्र—'साध्यतया त॰ दे॰ । 'साम्रान्यतया ना॰ ॥

द्वाभ्यामपि 'दुःखा' दुःखविज्ञपना दुःखमोच्या चेति ॥ २५२८॥ अथाक्षेप-परिहारो प्राह— तिण्ह वि कयरो गुरुओ, पार्गय कोइंवि दंडिए चेव । साहस असमिक्ख भए, इयरे पडिपक्ख पश्च राया ॥ २५२९ ॥ ईसरियत्ता रज्जा, व भंसए मञ्जपहरणा रिसओ। ते य समिक्खियकारी, अन्ना वि य सिं वहू अत्थि ॥ २५३० ॥ Б पत्थारदोसकारी, निवावराही य वहुजणे फुसइ। पागइओ पुण तस्स व, निवस्स व मया न पिडक्कि ॥ २५३१ ॥ अवि य हु कम्मदण्णा, न य गुत्तीओ सि नेव दारहा। तेण कयं पि न नजह, इतरत्थ पुणी धुवी दोसी ॥ २५३२ ॥ तुल्ले मेहणभावे, नाणत्ताऽऽरोवणा उ कीस कया। 10

जेण निवे पत्थारी, रागी वि य वत्थुमासजा ॥ २५३३ ॥

इदं गाथापञ्चकमपि दिव्यद्वारवद् द्रष्टव्यम् (गा० २५०९-१४)॥ २५२९॥ २५३०॥ २५३१ ॥ २५३२ ॥ २५३३ ॥ गतं मानुष्यकम् । अथ तैरश्चमाह-

> तेरिचेंछं पि य तिविहं, जहन्नयं मिन्हमं च उक्कोसं। पायावच-कुडंविय-दंडियपारिग्गहं चेव ॥ २५३४ ॥

15

तैरश्चमपि रूपं त्रिविधम्—जधन्यं मध्यममुत्कृष्टं च । पुनरेकैकं त्रिधा—प्राजापत्यपरिगृ-हीतं कौटुम्बिकपरिगृहीतं दण्डिकपरिगृहीतं चेति ॥ २५३४ ॥ तत्र---

> अइय अमिला जहना, खरि महिसी मन्सिमा वलवमादी । गोणि करेणुकोसा, पगर्य सजितेतरे देहे ॥ २५३५ ॥

'अजिकाः' छगलिकाः 'अमिलाः' एडकाः एताः 'जघन्याः' जघन्यं तैरश्चरूपमित्यर्थः । 20 एवं खरी-महिपी-वडवादयो मध्यमम् । गावः-प्रतीताः करेणवः-हिस्तिन्यस्ताः 'उत्कृष्टाः' उत्कृष्टं तिर्थमूपैम् । एतत् त्रयमपि द्विधा—मितमायुतं देहयुतं च । इह सजीवेन 'इतरेण' अजीवेन देह्युतेन प्रकृतम्, तद्विपयं प्रायश्चित्तमभिधास्यत इत्यर्थः ॥ २५३५ ॥

५ तेंत्र स्थानप्रायश्चित्तमाह—

चत्तारि य उग्घाया, जहन्नए मिन्सिमे अणुग्धाया। छम्मासा जग्घाया, उक्तोसे ठायमाणस्स ॥ २५३६ ॥

25

प्राजापत्यपरिगृहीतादौ जघन्यके तिरश्रीदेहयुते तिष्ठति चत्वार उद्धाताः, मध्यमे तिष्ठति चत्वारोऽनुद्धाताः, उत्कृष्टे तिष्ठतः पण्मासा उद्धाताः ॥ २५३६ ॥

अंथैतदेव प्रायिधतं तपः-कालाभ्यां विशेषयति—

पढिमिछुगिम ठाणे, दोहि वि लहुगा तवेण कालेणं 1

30

१ °गतिय कुडुं° ता॰ ॥ २ °च्छगं पि ति° ता॰ ॥

३ °पम् । अत्र च सजीवेनाजीवेन च देहयुतेन मा० ॥ ४ ৺ ० एतदन्तर्गतमवतरणं भा० नास्ति ॥ ५ ৺ ० एतचिद्यमध्यगतमवतरणं भा० त० डे० नास्ति ॥

विद्यम्मि उ कालगुर, नवगुरूना होनि नद्यम्मि ॥ २५३७ ॥
'प्रणीयकुके खाने' प्राचारपर्यारगृद्दाने यानि प्रायक्षित्रानि दानि 'द्वान्यामिन' तरस कालन च रुष्टुकानि । 'द्विनीये' कादुन्विकपरिगृद्दाने दान्येव कालगुरूकाणि । 'तृतीये' दण्टिकपरि-गृद्दाने द्यागुरूकाणि ॥ २५३७ ॥ गनं म्हान्यायश्चित्तम् । अय प्रतिसेवनाणयश्चित्तमाह—

चडगे लहुगा गुरुगा, छेदो मुर्ल जहन्नए होह । चडगुरुग छेद मुर्ल, अणबहुप्यो य मन्हिमए ॥ २५३८ ॥ छेदो मुर्ल च नहा, अणबहुप्यो य होह पार्र्या । एवं दिहुमदिहे, सेवेंने पस्त्रणं मोर्त्तु ॥ २५३९ ॥

प्राज्ञापन्यर्गनगृहीनं जयन्यनदृष्टं प्रतिमेवन चन्तारे। छ्यवः, दृष्टं चन्तारे। गुरवः । काँदुन्वि10 कर्पारमृहीन जयन्यप्रदृष्टं चन्नारे। गुरवः, दृष्टं च्छेदः । दिण्डकर्यारमृहीतं जयन्यप्रदृष्टं च्छेदः,
दृष्टं मृत्रम् । प्राज्ञापन्यर्गरगृहीनं मध्यमेऽदृष्टं चन्नारे। गुरवः, दृष्टं च्छेदः । कींदुन्यिकपरिगृहीनं मध्यमेऽदृष्टं च्छेदः, दृष्टं मृत्रम् । दिण्डकर्पारमृहीनं मध्यमेऽदृष्टं मृत्रम्, दृष्टं चन्नस्थाध्यम् । प्राज्ञापन्यर्गरगृहीतं चन्क्रषेऽदृष्टं च्छेदः, दृष्टं मृत्रम् । कांदुन्विकपरिगृहीते चन्क्रषेऽदृष्टं च्छेदः, दृष्टं मृत्रम् । कांदुन्विकपरिगृहीते चन्क्रषेऽदृष्टं मृत्रम् । दृष्टं पराञ्चिकम् । द्र्षं
पन्नम्, दृष्टं पराञ्चिकम् । दृष्टिकपरिगृहीतं चन्क्रषेऽदृष्टं प्रत्यस्थाप्यम् , दृष्टं पराञ्चिकम् । एवं
पर्वाद्याः 'प्रयक्तनां' ग्रहा-मोजिकादिक्यां सुन्ता प्रायक्षित्तं ज्ञातव्यम् ॥ २५३८ ॥
२५३९ ॥ अत्र प्रागुक्तमेवादेप-परिहारवर्दं गायाद्वयमाद्

जम्हा परमे मृहं, विद्य अणबहों तह्य पार्त्या । तम्हा ठावंतस्मा, मृहं अणबहु पार्ग्या ॥ २५४० ॥ पडिसेबणाएँ एवं, पमलपा तन्य होद हेक्के । चिम्मपदं चरिमपदं, तं पि य आणाहनिपक्तं ॥ २५४१ ॥

गनार्थम् (गा० २४८१-८२) ॥ २५४० ॥ २५४१ ॥

तं चैत्र नन्य दोमा, मीरियआणाएँ जे मणिय पुर्व्ति । आलावणाद मीर्त्त, नेरिच्छे सेवमाणस्य ॥ २५४२ ॥

मीयंद्दशन्तहोरण या भगवनामात्रा वकीयसी प्रसाविता तस्या महै ये दोषाः 'पूर्वै' दिन्य-१० होर (गा० २८८७) मनुष्यहारे च (गा० २५२५—२६) मणिनाः तेऽपि तथेवात्र द्रष्टन्याः । परमान्यपनादीन् सुक्तवः दोषा अत्र देग्ध्यं देहयुने मेवमानस्य मवन्ति ॥ २५८२ ॥ पन्नदेवस्थापनादिषदं व्यावधे—

> जह हाम-मेंड-आगार-विव्यमा होंनि मणुयह-थीसु । आलावा य बहुविधा, तह निष्य निरिक्सहर्यीसु ॥ २५४३ ॥

थ्या मनुष्यक्षिष्ठ हास-क्रांडा-आकार-विक्रमा आजापाश्च बहुविया मनिन न तया तिर्य-क्कीष्ठ । एतावान् मनुष्यकीम्यानियंक्कींगां विदेखः ॥ २५७३ ॥ अथ जनुर्मेक्षीमाह—-सुद्दविष्णप्या सुद्दमोद्गा य, सुद्दविष्णप्या य होति दृद्दमोया ।

१ पंहरचनामा मा॰।।

दुहविष्णप्पा य सुहा, दुहविष्णप्पा य दुहमीया ॥ २५४४ ॥ गतार्था (गा० २५२७) ॥ २५४४ ॥ अत्रोदाहरणानि-

> अमिलाई उभयसुहा, अरहण्णगमाइमक्कडि दुमीया । गोणाइ तइयभंगे, उभयदुहा सीहि-वग्वीओ ।। २५४५ ॥

अमिला:—एडकाः ता आदिशन्दाद् अजा-खरिकादयश्च तिर्यिक्छिय उभयसुखाः, तत्र ⁵ निष्प्रत्यपायतया सुखविज्ञप्याः, लोकगर्हिततया तुच्छसुखासादमात्रहेतुत्वाच सुखमोच्याः १। ''अरहन्नगमाइमकाडि'' ति अरहन्नकस्य भ्रातृजाया तदनुरागादृ मृत्वा या मर्कटी जाता तदा-दयस्तिरश्र्यो दुःसमोच्याः परं सुसविज्ञप्याः, अरहन्नकदृष्टान्तश्रावक्यकादवसातन्यः (पत्र

) २ । तृतीयभन्ने तु गो-महिष्यादयः, ताः खपक्षेऽपि दुःखेन सङ्गमं कार्यन्ते किं पुनः परपक्षे मनुजेषु ? अतो दुःखविज्ञपनाः, छोकजुगुप्सितश्च ताखु सङ्गम इति कृत्वा सुख-10 मोच्याः ३ । यास्तु सिंही-च्याघीपमृतयस्ता उभयदुःखाः, तत्र जीवितान्तकारिणीत्वाद् दुःख-विज्ञपनाः, अनुरक्ताश्च सत्यः प्रतिवन्धवन्धुरतया दुःखमोच्याः ॥ २५४५ ॥

अत्र नोदकः प्रश्नयति—को नाम प्राक्ततोऽप्येतास्तिर्यक्सियो होकजुगुप्सिताः प्रतिसेवेत ? विशेषतो जिनवचनपरिमलितमतिः ! इंति, अत्रोच्यते-

जइ ता सणप्फईसं, मेहुणभावं तु पावए पुरिसो ।

जीवियदोचा जहियं, किं पुण सेसासु जाईसु ॥ २५४६ ॥ यदि तावत् 'सनखपदीपु' सिंहीपु पुरुषो मैथुनभावं प्रामोति यत्र ''जीवितदोच'' ति जीवितमयं प्राणसन्देहो यासु भवतीत्यर्थः, किं पुनः शेपासु खरिकादिजातिपु है।

तथा चात्र दृष्टान्तः एका सीही रिउकाले मेहुणत्यी सजाइपुरिसं अलममाणी सत्थे वहंते इकं पुरिसं वित्तुं गुहं पविद्वा चाटुं काउमादत्ता । सा य तेण पिंडसेविता । तत्थ तेसिं 20 दोण्ह वि संसाराणुमावतो अणुरागो जातो । गुहाँपडियस्स तस्स सा दिणे दिणे पोग्गरुं आणे उं देह । सो वि तं पडिसेवइ । जइ एवं जीवितंतकरी सु वि सणप्फईसु पुरिसो मेहुणधम्मं पिंडसेवइ किमंग पुण जासु जीवियभयं नित्थ तासु न पिंडसेविस्सइ ? ति ॥

यचोक्तम् ''विशेषतो जिनवचनपरिमलितवुद्धिः'' इति तद्प्ययुक्तम्, यतः किमेषोऽपि श्लोको भवतो न कर्णकोटरमध्यमध्यासिष्ट ?— 25

मात्रा खसा दुहित्रा वा, न विविक्तासनो भवेत् । वलवानिन्द्रियमामः, पण्डितोऽप्यत्र मुह्मति ॥ ॥ २५४६॥

 चंक्तं तैरश्चं रूपम्, तदुक्ती च समर्थितं भावसागारिकम्।
 एवं निर्श्नन्थानामुक्तम्। अथ तिर्श्रन्थीनामेतदेवातिदिशनाह-

१ °च्याः ?। द्वितीयभुद्गे मर्कटीप्रभृतयः, ताश्च ऋतुकाले कामातुरतया सुखविद्वप्याः, अनुरक्ताश्च सत्यो दुःखमोच्याः। अरहन्नकद्यान्तश्च मा॰॥ २ इत्यादाङ्कावकाश्चमवृत्रोक्य इदमाह कां॰॥ ३ व्हाप त्रियस्स त॰ दे॰ कां॰॥

ध प्रिचिद्यान्तर्गतः पाठः मा० नास्ति ॥

एसेव कमो नियमा, निन्नंशीणं पि होह नीयव्यो । प्रनित्तपिडमाउ नासि, साणिमा य वं च अणुरागो ॥ २५४७ ॥

'र्ष एव' द्रव्य-सावसागारिकविषयः क्रमो नियमाद् निर्यन्यीनामपि मवति हातव्यः । नवरं दिक्यहारे ठासां पुरुष्प्रतिमा द्रव्याः, मानुत्यहारे मतुत्रपुरुगः, तस्यहारे तिर्यक्पुरुग इति । धेतेरस्य च श्चानविषयो व्यनुगुगो वस्त्र तहुष्टान्तो सवति ।

इहा—एगा अविरद्ध अवाद्धा काइयं वोसिरंती विरहे सांपाप दिहा। सो य सामो पुन्छं छोछितो बाह्मि करेंतो अर्छापो। मा अगारी चितेह्—रेच्छानि ताव्ह एम कि करेंद्र शित । तस पुरतो सागारियं अनिम्रहं काउं जाणुपिहें हस्योहि य अहोस्हिं। ठिया। तेप सा पिंडसेविया। तीप, अगार्गप तस्येव सांपा अणुपागो जाते। एवं निग-छगछ-वातरादी वि 10 अगारि अभिन्छंति॥

यत एने दोगानतः सागरिके प्रतिश्रये न बस्तव्यव् ॥२५४७॥ वय हितीयगद्रमाह— अद्वाणनिगायादी, निक्सुची मिग्छिण असईए । गीयत्या स्वर्णाए, वसंति तो द्व्यसागरिए ॥ २५४८ ॥

शक्किनिर्गतादयः 'त्रिङ्क्तः' त्रीन् वारानम्यां निर्दोगं वसितं मार्गयिका यदि न रूमन्ते १६ वरोऽन्यसां वस्तावस्यां गीतायी यवनया द्रव्यसागारिकेऽस्तुराश्रये वसित् ॥ २५२८ ॥ यवनमित्राह—

> जहिं अप्यवता दोसा, आमरणादीण दृग्तो य मिगा । चिलिमिलि निमि चागरणं, गीए सच्हाय-हाणादी ॥ २५४९ ॥

'यन' राग-अन्यादान्त्रता दोषाः तत्र तिष्टनि । स्वा इव स्वाः-अन्नाद्वातार्था-20न्तानामरणादीनां दृष्टः क्ष्वंन्ति । निनिमिन्निकां च रूपादीनमगन्त्रगके दृष्टन्ति । 'निन्धि' गत्रो तत्र कागर्यं कर्तव्यम् । सा सेनादिगमरणादिकमग्रहरेदिनि क्ष्या । गांतस्रव्ये च शृ्यमाणे महत्रा स्ववेत नाव्यायं कुर्वन्ति, व्यानस्वित्रसम्प्रतो वा स्थानं व्यायित, सादिस्ववेत् नृते नाटके वा विवीयमाने दर्शमसुनं नावसेक्ष्ये ॥२५१९ ॥ मावसागारिके द्वितीयगदनाह—

अद्यापनिग्गयादी, वासे सावयमए व नेणमए । आविष्या तिविहे वी, वसीति जयणाएँ गीयत्या ॥ २५५० ॥

अव्यक्तियंद्रायो यानादीनामन्तः शुद्धां वस्तिमञ्ममाना बहिरप्युद्धानाहो वसन्ति । अय बहिबेस्टामिमे दोगाः—"वार्ष' ति वर्षं निरद्धि, सिंह-ज्यावादीनां वा खाण्यानां मयन्, स्त्रेनानां वा अर्गरेपिविहराणां मयन् । दने प्रामादेरन्त्रमीवसागारिक दश्यमध्यमोत्कृष्टमेदाद् यानाण्यादिपरिगृहीद्रमेगुद्धा त्रिविवेद्धाः वमन्ति । दत्र च यतिमा वक्षादिनिगृहताः वियन्ते । १०मनुष्य-निर्वेदिकय्थ करकत्रिनिमिलिकामपान्त्रगक्ते दस्त्या यथा न विद्योक्यन्ते तयाद्धान्ताः सन्तो गीदार्था यदन्या वसन्ति ॥ २५५० ॥ सूत्रम्—

25

र् नेयच्यो हा॰ ।

नो कप्पइ निग्गंथाणं इत्थिसागारिए उवस्सए वत्थए २६॥ कप्पइ निग्गंथाणं पुरिससागारिए उवस्सए वत्थए २७॥

तथा--

नो कप्पइ निग्गंथीणं पुरिससागारिए उवस्सए वस्थए २८॥ कप्पइ निग्गंथीणं इस्थिसागारिए उवस्सए वस्थए २९॥

अस्य सूत्रचतुष्टयस्य सम्बन्धमाह—

10

20

25

अंविसिट्टं सागरियं, वृत्तं तं पुण विभागतो इणमो । मज्झे पुरिससगारं, आदी अंते य इत्थीस ॥ २५५१ ॥

पूर्वसूत्रे 'अविशिष्टं' स्त्री-पुरुपविशेषरहितं सागारिकमुक्तम् । अधुना पुनः तदेव सागारिकं 'विभागतः' स्त्री-पुरुपविशेषादस्मिन् सूत्रचतुष्टयेऽभिधीयते । अत्र च मध्यवर्त्तिसूत्रद्वये पुरुषसा-गारिकमादिसूत्रे अन्त्यसूत्रे च स्त्रीसागारिकमाश्रित्य विधिरभिधीयत इति ॥ २५५१ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य सूत्रचतुष्टयस्य व्याख्या—नो कल्पते निर्श्रन्थानां स्त्रीसागारिके उपाश्रये वस्तुम् । कल्पते निर्श्रन्थानां पुरुषसागारिके उपाश्रये वस्तुम् । कल्पते निर्श्रन्थीनां पुरुषसागारिके उपाश्रये वस्तुम् । कल्पते निर्श्रन्थीनां स्त्रीसागारिके उपाश्रये वस्तुमिति सूत्र-चतुष्टयाक्षरार्थः ॥ अथ भाष्यकारो विस्तरार्थं विभणिषुराह—

इत्थीसागरिएँ उवस्सयम्मि स चेव इत्थिया होह । देवी मणुय तिरिच्छी, स चेव पसजणा तत्थ ॥ २५५२ ॥

स्त्रीसागारिके उपाश्रये वस्तुं न करुपते, सा चानन्तरसूत्रे या देवी मानुपी तिरश्ची च प्रति-पादिता सैवात्रापि द्रष्टव्या । सैव च 'प्रसजना' मिथ्यात्व-शङ्का-भोजिकादिरूपा । तत्र च प्राय-श्चित्तमपि तदेव मन्तव्यम् ॥ २५५२ ॥ अत्र परः प्राह—

> जइ स चेव य इत्थी, सोही य पसजणा य स चेव । सुत्तं तु किमारद्धं, चोदग ! सुण कारणं इत्थं ॥ २५५३ ॥

यदि सैव स्त्री सैव 'शोधिः' प्रायिधत्तं सैव च प्रसजना तर्हि किमर्थमिदं स्त्रीसागारिकस्-त्रमारव्धम् १ पुनरुक्तदोषदुष्टत्वान्नेदमारव्धुं युज्यत इति भावः । सूरिराह—नोदक ! कारणम-त्रास्ति येनेदं सूत्रमारव्धम् , तच्चावहितः 'शृणु' निशमय ॥ २५५३ ॥

१ ओहेण तु सागरियं ता॰ ॥ २ °ष्टं' सूत्रतः साक्षादिविधिष्टं-साक्षात् स्त्री-पु° कां० ॥

पुन्त्रभणियं तुं पुणर्गवि, जं भण्णाइ तत्य कारणं अत्यि। पडिसेहोऽशुन्ना कारणं विसेसोवर्लमो वा ॥ २५५४ ॥

तुशुळ्दोऽनिशळार्थे । पृवेभणितमपि पुनरिन यद् भण्यते तत्र कारणमिला । किस् १ इत्याह—"पडिसेहो" ति ये पृत्रेमनुज्ञां ऋत्रेता अर्था उक्तान्त एव मृयः प्रतिपेषद्वारेण मण्यन्ते । 5 "अणुत्र" चि चेऽर्थाः पृत्रं प्रतिषेत्रं कुर्वता मणिनानानेवानुज्ञां कुर्वेन् स्योऽपि दर्शयति । तया 'कारणं' निमित्तं तद्र्यनार्थं मृयोऽपि स एवार्थी मणनीयः । अथवा पूर्वं सामान्येन यः प्रतिपादिनोऽर्थलस्त्रेव विञेषापङ्मार्थ प्राग् मणितमित्र मृयः प्रतिपादनीयम् । एवं प्रागुक्त-मणने चत्नारि कारणानि सन्ताति॥२५५०॥ आह यदेवं ततः प्रस्तुते किमायातम् १ इत्याह—

ओहं सञ्जनिसेहो, सरिसाणुना विमागमुत्तेसु । जयणाहेरं मेदो, तह मञ्ज्रत्यादओ वा वि ॥ २५५५ ॥

< 3"नो कप्पद् निनांयाण वा निनांयाण वा सागारिए टवम्सए वस्यए" (सृ० २५) इत्यस्मिन् > ओवस्त्रेत्रे सर्वस्थापि सागारिकस्य निषेवः कृतः, इह तु विमागस्त्रेषु सहशानुज्ञा क्रियते, यथ-पुरमणां पुरुषसागारिक क्रांणां क्रीसागारिके वन्तुं करुपते । तथा यतना यथा पुरुषेषु कृषि वा कर्चन्या तद्दर्शनदैदोर्निमागस्त्राणां नेदः । मध्यसादयो वा की-पुरुषाणां 15 मेडा अर्थतो दर्शयिष्यन्ते (गा० २५६२) इति विमागस्त्राणां प्रथगारम्मः क्रियते ॥ २५५५ ॥ अय द्वितीयस्त्रे विशेषोपल्म्मं दर्शयन्नाह—

प्रित्समागारिए उवम्मयम्मि, चडरो लहुगा य दोस आणादी । ते वि य पुरिमा दुविहा, मविकारा निर्विकारा य ॥ २५५६ ॥

"करुपने निर्शन्यानां पुरवसानारिके उपाश्रवे बन्तुन्" (स्० २७) इत्येवं यद्यपि सूँत्रेऽनु-20 ज्ञानं तथा खुन्सर्गतो न करूरते । यदि वसन्ति तनश्चतारो व्युकाः ﴿ प्रायश्चित्तम् ﴾ आज्ञा-दयश्च दोषा. । तेऽपि च पुरुषा हिवियाः—सविकारा निर्विकाराश्च ॥ २५५६ ॥ तत्र सविकारान् व्याख्यानयनि---

रूर्व आमरणविद्धि, वन्धा-ऽलंकार-मोयणे गंधे ।

आउज नह नाहरा, गीए अ मणोहरै मुणिया ॥ २५५७ ॥

< ईह ये पुरमाः > रूपं उद्दर्शन-रान-ननदन्तकेशसंस्थापनादिना सर्शरोर जनयन्ति, 25 'आमरणविधिं मणि-कनकादिमयानाम्रणमेदान् 'वस्राणि वा' चीनांशुकादानि परिद्यते, 'अञ्झोरण वा' केश-माल्यादिनाऽङ्गानमञ्जूर्वन्ति, मोजनं वा महता वित्तरेण मुझते, चन्द्रन-कर्यूरादिसिः कोष्टपुटपाकादिमिर्वा गन्वेगत्यानमाहिन्यन्ति वासयन्ति वा, तत-वित्तादिकं वा चर्जिव्यातीयं वाद्यन्ति, नृतं वा कुविन्ति, नाटकं वा नाटयन्ति, मनुरव्यनिना वा गीत-३० मुच्दन्ति, एने मिकारा उच्यन्ते । एतेषा रुपार्दानि मनोहराणि दृष्टा गीतादिशक्दाश्च 'श्रुता'

१ तु तं पत्य मण्णतं तत्य ता० ॥ २ % % एतिबङ्गङ. पाङः मा० त० हे० नाति ॥ ३ सूत्रातु॰ ना० त० हे० ॥ ४-५, ४ % एतिबङ्ग्लसः पाङः मा० त० हे० नाति ॥

६ °िन्त, श्रच्यकाञ्रलीय्वनि° सा॰ ॥ ७ °िन इष्ट्रा गन्यांश्च मनोहरानात्राय गीता भा०॥

निशम्य भुक्ता-ऽभुक्तसमुत्था दोपाः ॥ २५५७ ॥ एतेपु तिष्ठतः भायश्चित्तमाह— एकेकिमि उ ठाणे, चउरो मासा हवंति उग्घाया । आणाहणो य दोसा, विराहणा संजमाऽऽयाए ॥ २५५८ ॥

एतेपु रूपा-ऽऽभरणादिपु एकैकेसिन् स्थाने तिष्ठतश्चत्वारो मासा उद्धाता भवन्ति, रूपव इत्यर्थः । आज्ञादयश्च दोषाः, विराधना च संयमे आत्मनि च द्रष्टव्या ॥ २५५८ ॥ 5

एवं ता सर्विकारे, निन्वीकारे इमे भवे दोसा । संसद्देण विबुद्धे, अहिगरणं सुत्तपरिहाणी ॥ २५५९ ॥

एवं तावत् सविकारपुरुषेषु दोषा उक्ताः । निर्विकारपुरुषेपु त्वमी दोषा भवेयुः—साधूनां खाध्यायसत्केनाविश्यकी-नेषेधिकीसम्बन्धिना वा संशब्देनं विद्युद्धास्त पुरुषाः साधुभिः सह 'अधिकरणम्' असङ्ख्रुडं कुर्युः । तत्रात्मविराधना सूत्रपरिद्याणिश्च भवति ॥ २५५९॥ 10

संयमविराधनां त्वियम्---

आउ जोवण वणिए, अगणि कुईंवी कुकम्म कुम्मरिए। तेणे मालागारे, उन्भामग पंथिए जंते ॥ २५६०॥

सं।धूनां गृहस्थानां च सम्बन्धिना असह्बह्याञ्देन विवुद्धाः स्त्रियः "आउ" ति अध्कायाहरणार्थं व्रजन्ति । "जोवर्ण" ति रथंकारादयः शकटे गंबादीन् योजियत्वा कांछादिहेतोरदवीं 15
गच्छेयुः । वणिजो घृतकुतुपादिकं गृहीत्वा व्रामान्तरं व्रजन्ति । "खंगणि" ति लोहकारादय उत्थायाम्रिप्रज्वालनादिकमणि लगेन्ति । कुटुम्बिनो हलादीनि गृहीत्वा क्षेत्राणि गच्छन्ति । 'कुकमणिः' मत्त्यबन्ध-वागुरिकादयो मत्त्यांचर्थं गच्छन्ति । कुत्तितः—मारणीयसन्त्वस्थातीववेदनोत्पादकत्वालिन्द्यो यो मारः—मारणं स विद्यते येषां ते कुमारिकाः—सौकरिका इत्यर्थः तेऽपि स्तर्कमणि लगन्ति । स्तिनः प्रभातमितिं कृत्वा पन्थानं वन्द्धं गच्छेत् । मालाकारः करण्डं गृहीत्वाऽऽ- 20
रामं गच्छति । 'उद्धामकः' पारदारिकः स दत्तसङ्केत उद्धामिकां गृहीत्वा पलायेत । पथिको
विद्यद्धः पथि प्रवर्तते । यम्निका विद्यद्धाः सन्तो यम्नाणि वाहयन्ति । यसादिते दोषांसासात् पुरुषेष्वपि न स्थातव्यम् ॥ २५६० ॥ नोदकः प्रह—

एवं सुत्तं अफर्ल, सुत्तनिवाओ उ असइ वसहीए। गीयत्था जयणाए, वसंति तो दंव्वसागरिए॥ २५६१॥

यदि 'एवं' पुरुषेष्वपि निर्मन्थानां वस्तुं न करूपते तर्हि सूत्रं ''करूपते पुरुषसागारिके वस्तुम्'' (स्० २७) इत्येवंरुंक्षणमफर्कं प्रामोति । गुरुराह—''सूत्रनिपातः' ⊲ सूत्रस्थावसरो ⊳ विद्य-

१ °न रात्रौ सुप्ताः सन्तस्ते पुरुषा बुध्येरन्, विबुद्धाश्च सन्तः षट्कायविराधनां कुर्वन्ति ततोऽधिकरणम् । अथाधिकरणमयात् सूत्रीर्थपौरुष्यौ न कुर्वन्ति ततः सूत्रार्थपरि- हाणिः ॥ २५५९ ॥ अथाधिकरणपदं व्याचष्टे मा॰ ॥

२ साधूनां शब्देनागारिणो विवुद्धा अप्काययन्त्राणि योजयन्ति, अथवा "आउ" ति अप्कायाद्दरणार्थं योषितो व्रजन्ति । "जोवणं" भा॰ ॥

३ °८ः ि एतम्मिष्युगतः पाठः भा० त० डे॰ नास्ति ॥

द्धायां वसतावसत्यां मन्तव्यः, तथा च यैद्यसागारिका वसतिर्न प्राप्यते ततो गीतार्था यतनया द्रव्यसागारिके वसन्ति, पुरुषसागारिके इत्यर्थः ॥ २५६१ ॥

ते वि य पुरिसा दुविहा, सन्नी अस्सन्निणो य वोधन्वा । मन्त्रतथाऽऽभरणिया, कंदप्या काहिया चेव ॥ २५६२ ॥

5 तेऽपि च पुरुपा द्विविधाः—संज्ञिनोऽसज्ञिनश्च । संज्ञा नाम—देव-गुरु-धर्मतत्त्वानां यथावत् परिज्ञानं सा विद्यते येपां ते संज्ञिनः, श्रावका इत्यर्थः । तद्विपरीता असज्ञिनः । एते प्रत्येकं चतुर्विधाः—मध्यस्था आभरणिया कार्न्टार्पकाः कािषकाश्च ॥ २५६२ ॥ एतानेव व्याचष्टे—

आभरणपिए जाणमु, अलंकरिते उ केसमादीणि । सह्रहित्य-प्यलिखा, सरीरकुर्णो य कंद्प्पा ॥ २५६३ ॥ अक्खाइयाउ अक्खाणगाइँ गीयाइँ छिलयकन्त्राईं । कह्यंता य कहाओ, तिसम्रत्था काहिया होंति ॥ २५६४ ॥ एएसि तिण्हं पी, जे उ विगाराण वाहिरा प्ररिसा । वेरगगरुई निहुया, निसग्गहिरिमं तु मन्त्रत्था ॥ २५६५ ॥

केशादीनि माल्यादिमिरलङ्काररलङ्कुर्वतः पुरुपानामरणप्रियान् नानीहि । ये तु स्तैरहसित-15 प्रलिताः' स्त्रेच्छर्यां परस्परमद्दद्वासादिना हसन्ति, घृतान्द्रोलनादिना च क्रीडन्ति, ये च 'शरी-रक्कचयः' विविधपिक्रचेष्टाकारिणः ते कान्दर्पिकाः २५६३ ॥

तथा 'आस्यायिकाः' तरङ्गर्वती-मलयवतीप्रमृतयः, 'आस्यानकानि' धृत्तीख्यानका-दीनि, 'गीतानि' श्रुवकादिच्छन्दोनिवद्धानि गीतपटानि, तथा 'छलितकाट्यानि' श्रुङ्कारकाट्यानि, 'कथाः' वसुदेवचरित-चेटककथादयः, 'त्रिसमुखाः' धर्म-कामा-ऽर्धलक्षणपुरुपार्धत्रयवक्तव्य-20 ताप्रमवाः सङ्कीणिकथा इत्यर्थः । एतान्याख्यायिकादीनि कथयन्तः काथिका उच्यन्ते, कथया चरन्तीति द्युत्पत्तेः ॥ २५६२ ॥

'एतेपाम्' आभरणियादीनां त्रयाणामि सम्बन्धिनो ये विकारास्तेभ्यः 'बाह्यः' बहिर्व-र्चिनो ये पुरुषाः 'वैराग्यरुचयः' केवल्वेराग्यश्रद्धाल्यो न शृङ्गारादिरसिष्टयाः 'निमृताः' कर-चरणेन्द्रियेषु सलीनाः निसर्गेण—समावेनैव द्दीमन्तः—सल्ज्ञाः ईदृशा मध्यस्या ज्ञातव्याः 25॥ २५६५॥ पुनरुप्यमीपां श्रत्येकं मेदानाह—

एकेका ते तिविहा, थेरा तह मिन्सिमा य तरुणा य । एवं सनी वारस, वारस अस्सिनिणो होंति ॥ २५६६ ॥

एकके मध्यस्थादयित्रविधाः—स्थितरास्त्रधा मध्यमाश्च तरुणाश्च । ततो मध्यस्थादयश्च-त्वारः स्थितरादिमेदत्रयेण गुण्यन्ते जाता द्वाद्य मेढाः। एवं 'संज्ञिनः' श्रावकास्ते द्वाढशविधाः।

१ यदि विश्रद्धा वस^o मा॰ ॥

२ °या-मातापित्रादिगुरुजनेनानिवार्यमाणा अष्टद्वासादिना हसनशीला धृतान्दो-उनादिफीडनशीलाश्च, ये च 'शरीर° भा॰ ॥

३ °दिकीडया च प्रकर्षण छछयन्ति, ये कां॰ ॥ ४ °वती-वासवद्त्ताद्यः, 'आ° भा॰ ॥

असंज्ञिनोऽपि द्वावशिवधा भवन्ति ॥ २५६६ ॥ एतेप्वेव प्रायश्चित्तमाह-काहीयातरुणेसं, चडस वि चडगुरुग ठायमाणस्स । सेसेसुं चडलहुगा, समणाणं पुरिसवग्गम्मि ॥ २५६७ ॥

संज्ञिनामसंज्ञिनां च यः काथिकस्तरुणः एतौ द्वी मेदी, ये च वक्ष्यमाणा नपुंसकाः पुरुपने-पथ्याखोपामपि सज्ञिनामसज्ञिनां चैकैकः काथिकखरूणः, एते चत्वारो मेदाः, एतेषु चतुर्पु 5 तिष्ठतः प्रत्येकं चत्वारो गुरुकाः । शेषेषु भेदेषु तिष्ठतः प्रत्येकं चतुर्रुषु । एतत् प्रायश्चित्तं श्रम-णानां पुरुपवर्गे भणितम् ॥ २५६७॥ कारणे पुनित्तष्ठतां विधिमाह-

सनीस पढमवरगे, असती अस्सनिपढमवरगम्मि । तेण परं सन्नीसं, क्रमेण अस्सन्निसं चेव ॥ २५६८ ॥

वसतौ निर्दोपायामसत्यां सज्ञिषु यः प्रथमवर्गः-मध्यस्थाः पुरुपास्तत्र तिष्ठन्ति । तत्रापि 10 प्रथमं स्थविरेपु, तेपामभावे मध्यमेपु, तद्लामे तरुणेप्विप । अथ सिज्ञनां प्रथमवर्गो न प्राप्यते ततोऽसंज्ञिनामपि प्रथमवर्गे स्थविर-मध्यम-तरुणेषु यथाक्रमं तिष्ठन्ति । 'ततः परं' तेषामभावे द्वितीयादिवर्गेषु ऋमेण तिष्टन्ति । द्वितीयवर्गो नाम आभरणप्रियाः । तेषु प्रथमं संज्ञिषु स्थविर-मध्यम-तरुणेषु, तत एतेप्वेवासिज्ञ्षु । तदभावे सिज्ञानां तृतीयवर्गे कान्द्पिंकपुरुषेषु, तेपाम-लामेऽसज्ञिनां तृतीयवर्गे स्थविरादिपु यथाक्रमं स्थातव्यम् ॥ २५६८ ॥ 15

एवं एकेक तिगं. वोचत्थकमेण होइ नायव्वं। मोत्तृण चरिम सन्नी, एमेव नपुंसएहिं पि ॥ २५६९ ॥

एवं मध्यस्थादिषु एकैकसिन् पदे त्रिकं 'विपर्यस्तक्रमेण' प्रथमं स्थविरेषु ततो मध्यमेषु ततस्तरुणेषु इत्येवंरुक्षणेन अ वैर्परीत्यविधिना भवति > ज्ञातव्यम् , परं मुक्तवा चरमं संज्ञि-नम् । किमुक्त भवति ?—चरमो मेदः काथिकः, तत्र सिज्ञिनि प्रथमतिश्चिकं न चारियतव्यं ?0 किन्तु द्विकम्, तद्यथा-यदा तृतीयवर्गी न प्राप्यते तदा चतुर्थवर्गे प्रथम संज्ञिषु काथिकस्थ-विरेपु, तदलामे काथिकमध्यमेपु, तदपाप्तावसज्ञिपु काथिकस्थविरेपु, तदभावे काथिकमध्यमेपु तिष्ठन्ति, अथ तेऽपि न पाप्यन्ते ततः सज्ञिषु काथिकतरुणेषु, तदभावेऽसज्ञिष्वपि काथिक-तरुणेषु तिष्ठन्ति, ते चोभयेऽपि प्रज्ञापनीया यथा कथां न कथयन्ति । एवं पुरुषेषु स्थातव्ये विधिरुक्तः । एवमेव च नपुंसकेष्विप वक्तव्यः ॥ २५६९ ॥ इदमेव भावयति-

एमेव होंति दुविहा, पुरिसनपुंसा वि सनि अस्सनी। मज्झत्थाऽऽभरणपिया, कंदप्पा काहिया चेव ॥ २५७० ॥

पुरुषसागारिकालाभे कदाचित्रपुंसकसागारिकः प्रतिश्रयो लभ्यते तत्राप्येवमेव भेदाः कर्त्तव्याः । तत्र नपुंसका द्विधा—स्त्रीनेपथ्यिकाः पुरुषनेपथ्यिकाश्च । ये पुरुषनेपथ्यिकास्ते द्विधा—प्रतिसेविनोऽप्रतिसेविनश्च । ये तु स्त्रीनेपथ्यिकास्ते नियमात् प्रतिसेविनः । तत्र 30

१ °म्। एतद्प्राप्तौ चतुर्थवर्गे काथिकपुरुपलक्षणे अनेनैव क्रमेण स्थेयम् ॥ २५६८ ॥ तथा चामुमेव किञ्चिहिरोपयुक्तमतिदेशमाह—एवं का॰ ॥

२ ॳ > एतदन्तर्गत पाठः का॰ पुस्तक एव वर्तते '॥

पुरुषनर्रुसका अपि न केव्छं पुरुष इत्यपिश्रकार्यः संतिनेष्टमंद्रिनश्चित द्विविया मवन्ति । टमचेष्ठपि प्रत्येकं चतुर्वियाः—मञ्जस्मा आमरपिश्याः कान्त्रपिकाः कार्यिकश्चिति ॥२५७०॥

एकेका ने निविद्या, थेरा नह मन्त्रिमा य नरुगा य । एवं सन्त्री वारम, वारम अस्मन्त्रिणो होंनि ॥ २५७१ ॥

 गृंकताः 'त' मञ्चलादयिकितियाः—स्विता मञ्जमात्तरमाळ । एवं मंतिनो द्वादत्व अमंहिनोऽित द्वाद्य मदित ॥ २५७१ ॥ गृतेषु प्रायश्चित्तमाइ—

जह चेव य प्रिसेसं, मीही नह चेव प्रिसवेसेस । नेरानिएस सुविहिय !, पडिसेवन-अपडिसेवीस ॥ २५७२ ॥

य्येव पुरुषेत्र क्रोविरागिता त्रेय पुरुषेषेत्रपति किंगिकित् नपुंसकेषु है सुविहित !

10प्रतिसंबकेषु क्रमतिसेवेकषु वा क्रोवि कार्नाहीत्सुग्न्मारः । सा चेयन्—पुरुषनपुंसकानां ये
कार्यकात्ररुपतेत्र च्याने गुरवः, शेषेत्र सेदेखु च्तुर्व्ह्यनाः । कार्ये पुनरव्वर्तिगीतादीनां
वसंतरक्रमे निष्टनां देवेव पुरुषनपुंसकेकार यदनाक्रमे यथा पुरुषेत् प्रतिणदितः ॥ २५७२॥

जह कारणें पृरिसेत्तं, तह कारणें इत्थियातु वि वसेजा। अद्याप-वास-सावय-नेपेतु व कारणे वसती॥ २५७३॥

गण कारणे उरेउई पुरावेशन गुंसकेषु व्यवसान तथा की इ क्षांविषयारिषु वा नर्गुंसकेषु कारणे वस्तुः । कि पुनलन् कारणम् इस्व ह—क्ष्यानं प्रतिग्कास्त्रतो निर्गता वा शुद्धानस्पत्रतो पहुष्टां वा वस्ति न स्मन्ते एव उद्यानस्पत्रतो विष्ठान्ति । अय वर्षे पत्रति वहिर्वा श्वापद्मयं द्यानि रोगिक्तेननमं वा नव ईहरो कारणे कीस गरिके स्वसाव क्षांवेषवारिषु वा नैपुंसकेषु पूर्वोक्ति क्षमेण वस्ति ॥ २५७३ ॥ निष्कारण ता दव तिष्ठतमित्रं प्रायक्षित्तम्—

१ °षु स्रीयते तथा 'र्द्धाप्वीप' स्त्रीसागारिकेऽपि कारणे वसेन् । यहा यथैव 'पुरुषेषु' पुरुषवेषष्ठ नपुंसकेषु कारणे वसन्ति तथा स्त्रीषु स्त्रीवेषवारिषु नपुं° स० ॥ २ °ब्बा-मार्गः वं मति° स० ॥

२ नपुंक्षेत्रपु स्थातव्यम् ॥ २५७३ ॥ मानितं निर्धन्यस्त्रहयम् । अथ निर्धन्यीस्त्रहये विमावविष्टराह—

एसेन कमो नियमा. निर्मार्थाण पि होह निष्नेत्रो । जह नेजि इत्यिपायो, तह तालि पुमो सुणयय्यो ॥

एप एव क्रमो नियमाद् निर्श्नर्थानामीप मवति, परं यथा तेपां निर्श्नयानां क्रियो गुरु-तरहोपस्थानं तथा तासां पुरुषो हातव्यः ६ दह अमणानां क्रीसागरिके तिष्ठतां प्राक् प्रायक्षित्तं नोट्यम् अतः सम्प्रति तहाह—काहीयात्वरणीसुं० गाथा म०।

गर्णेण तर्रेष्ठ च स.॰ ज्यावज्ञाविका वर्तते । नेर्व गाया चुर्गी विशेषचूर्गी बृहद्गाध्ये वा वर्तते किन्दु टा॰ वंडके सबुमाध्ययकार्के वर्षत इवं गाया ।

एत्झायलनारं वहुमाणवाले ता० वंडवे वाहरें "इति बोहविस गेरं०" इति २५८३ गायार्यवनना गायाः क्रमेंबेंट वर्तन्ते। तसाहि—एवेंव क्रमो नियमा० (क्रविद्या गाया)। बर्चायात्वर्गाहें० २५७४। बेरादिनी एक्डवें० २५८९। वर्ष-कस्वर्ष गे० २५८२। ब्याईबात्तरोष्ट्र वि० २५८०। बहु चेंव य इन्होंहें० २५७५। एनेव होंति इन्दी० २५७६। एवं एडेब्ड तिर्गं० २५७७। एवेंव बसो नियमा० २५७८। ब्याईमानवर्गाहें० २५७९। इति बोहविसमो ने० २५८३॥

काहीयातरुणीसुं, चउसु वि मूलं तु ठायमाणाणं । सेसासु वि चउगुरुगा, समणाणं इत्थिवग्गम्मि ॥ २५७४ ॥

स्त्रीपु स्त्रीवेषधारिपु वा नपुंसकेषु याश्चतस्रः काथिकतरुण्यस्तास्त्रं तिष्ठतां निर्श्रन्थानां मूलम् । शोषासु संज्ञिनीषु असंज्ञिनीषु वा स्त्रीषु चतुर्गुरुकाः । एवं श्रमणानां स्त्रीवर्गे तिष्ठतां प्रायिश्चत्त- सुक्तम् ॥ २५७४ ॥

जह चेवै य इत्थीसं, सोही तह चेव इत्थिवेसेस । तेरासिएस सुविहिय !, ते पुण नियमा उ पिंसेवी ॥ २५७५॥

यथैव श्रमणानां स्त्रीपु तिर्ष्ठतां शोधिरभिहिता तथैव स्त्रीवेषेषु त्रैराशिकेषु हे सुविहित ! शोधिमवबुध्यस्त्रेत्युपस्कारः । 'ते पुनः' स्त्रीनपुंसका नियमात् 'प्रतिसेविनः' प्रतिसेवनाकारापण-शीला इति ॥ २५७५ ॥ अथ कारणे तिष्ठतां यतनामाह—

एमेव होंति इत्थी, वारस सन्नी तहेव अस्सन्नी । सन्नीण पढमवग्गे, असइ असन्नीण पढमिम ॥ २५७६ ॥

'एनमेन' पुरुपनत् स्त्रिंयः स्त्रीनेपंधारिणश्च नपुंसका मध्यस्थादिभिः स्थिनरादिभिश्च भेदैर्द्धा-दश संज्ञिन्यो द्वादश चाऽसंज्ञिन्यः प्रत्येकं भवन्ति । तत्र प्रथमं संज्ञिनीनां 'प्रथमनर्गे' मध्यस्थ-स्त्रीलक्षणे तदभाने असंज्ञिनीनां प्रथमनर्गे स्थिनरादिक्रमेण स्थातन्यम् ॥ २५७६ ॥ 15

एवं एकेक तिगं, वोचत्थकमेण होइ नेयव्वं। मोत्तूण चरिम सिन्नं, एमेव नपुंसएहिं पि।। २५७७।।

एवम् 'एकैकसिन्' आभरणप्रियादौ वर्गे 'त्रिकं' तरुण्यादिभेदत्रयं विपर्यस्तकमेण नेत-व्यर्म्—प्रथमं स्थविरासु, ततो मध्यमासु, ततस्तरुणीषु, परं मुक्तवा 'चरमां' काथिकाख्यां संज्ञिनीम् । तत्र हि प्रथमं संज्ञिनीषु स्थविरासु, ततो मध्यमासु, तदलामेऽसंज्ञिनीषु स्थविरा-20 मध्यमासु, ततः संज्ञिनीषु तरुणीपु, तदप्राप्तावसज्ञिनीषु तरुणीपु तिष्ठन्ति । एवमेव स्त्रीवे-षधारीषु, नपुंसकेष्विप द्रष्टव्यम् ॥ २५७७ ॥

भावितं निर्श्रन्थस्त्रद्वयम् । सम्प्रति निर्श्रन्थीस्त्रद्वयं भावयति—>

एसेव कमो नियमा, निग्गंथीणं पि होइ नायव्वो । (अन्यायम्-६००० । सर्वयन्यायम्-१८२२० ।)

जह तेसि इत्थियाओ, तह तासि पुमा मुणेयन्वा ॥ २५७८ ॥

१ °ख़ चतसुष्वपि ति° का॰॥

२ 'शेषास्त्रपि' मध्यस्था-ऽऽभरणिवयात्रभृतिषु संक्षि॰ मा॰ ॥ ३ °व इत्थियासुं कां०॥

४ °ष्ठतामनन्तरोक्तगाथायां मूळचतुर्गुरुकाख्या द्यो° कां॰ ॥

५ स्त्रियोऽपि द्वादश संश्चिन्यो द्वादश चासंश्चिन्यो भवन्ति । प्रथमं संश्चिनीनां प्रथमवर्गे मध्यस्थस्त्रीषु, तद् ना ॥ ६ १म् । विपर्यस्तक्रमो नाम प्रथ का ॥

७ ९ ऐतिचित्रगतमवतरणं भा॰ प्रतावत्र न वर्तते, किन्तु किछिद् रूपान्तरेण २५७३ गाथाटीका-नन्तरं वर्तते । दश्यतां पत्रं ७२४ टिप्पणी ३ ॥ ८ नेयच्चो ता॰ ॥

एष एव क्रमो नियमाद्विर्धर्न्थीनामपि भवति ज्ञातव्यः । परं यथा 'तेपां' निर्धर्म्थानां स्त्रियो गुरुकतरान्तथा निर्धर्म्थानामपि पुगांमो गुरुकतरा ज्ञानव्याः ॥ २५७८ ॥

> काहीयातरुणीमुं, चरमु वि चरगुरुग ठायमाणीणं । मसामु वि चरलहुगा, समणीणं इत्थिवनगम्मि ॥ २५७९ ॥

क्षीणां स्रीवेपनपुंसकानां च मध्य काथिकतरुणीषु चतस्रप्विप तिष्टन्तीनां चतुर्गुरुकाः । 'द्रोपास्ति' मध्यस्यादिषु द्वाविंग्रतिसद्याकान्त स्रीपु द्वाविंग्यते। च स्त्रीनपुंसकेषु चतुर्रुषुकाः । एव श्रमणीनां स्त्रीवर्षे प्रायक्षितं ज्ञातस्यम् ॥ २५७९ ॥

> क्राहीयातरुषेसु वि, चडसु वि मृहं तु ठायमाणीणं। सेसेसु उ चडगुरुगा, समणीणं प्ररिसवग्गम्मि ॥ २५८० ॥

10 पुरुषाणां पुरुषनपुंतकानां च संद्यसंजिता ये प्रत्येकं चत्वारः काथिकालकणातेषु तिष्ठन्तीनां निर्धन्यानां मृत्यम् । 'राषेषु' पुरुषेषु पुरुषनपुंतकषु च प्रत्यकं चत्वारो गुरुकाः । एवं श्रमणीनां पुरुषवर्गं पायिश्वत्तं मन्त्रव्यम् ॥ २५८० ॥ अधापरं प्रायिश्वत्तादेशमाह—

र्थराइएमु अहवा, पंचग पन्नरम मासल्हुओ य । छेदो मन्द्रस्थादिसु, काहियतरुणेसु चडलहुओ ॥ २५८१ ॥ सन्नी-अस्मन्नीणं, पुरिम-नपुंतेसु एस साहृणं । एएसं चिय थीसं, गुरुओ समणीण विवरीओ ॥ २५८२ ॥

अथवा स्पविगदिषु त्रिषु परेषु पञ्चकः पञ्चद्रशको मासल्युकश्च छेदो दातन्यः । तद्यथा— मञ्जस्येषु स्पविरेषु तिष्ठन्ति ल्युपञ्चकर्लेदः, मञ्जसेषु मञ्जमेषु ल्युपञ्चद्रशकः, मञ्जसेषु तरुणेषु ल्युमासिकच्लेदः । एवमामरणिप्रयेषु कान्दर्षिकेषु च त्रिविवेष्त्रपि मन्तन्त्रम् । काथिका

20अपि ये स्वित् मञ्जमाश्च तेप्वप्येवमेवावसातव्यम् । विद्येपचृणिकृत् पुनराह— काहीप् सण्णियरे पत्ररस राइंदियाणि छहुत्रो छेदो, मन्त्रिमे मासछहुत्रो छेदो चि । ये तु काथिकासारुणालेषु चतुर्रुषुमासिकच्छेदः ॥ २५८१ ॥

ण्तं पुरुषाः पुरुषनपुंमका वा ये सिज्ञानो ये चामंज्ञिनस्रेषा समुदिताना येऽष्टचत्वारिशस्स द्वाका मेटान्तेषु यथोक्तकमेण 'एषः' पञ्चकादिकच्छेद सावृनां भवति । स्रीषु स्रीनपुंसकेषु च 25 'एनेप्यंव' मव्यसस्यविरादिमेदेषु सावृनामेष एव च्छेद्रो गुरुकः कर्तव्यः, तद्यथा—गुरुपञ्चको गुरुपद्वदशको गुरुपासिको गुरुचनुर्मासिकश्चेति । अन्णानां पुनरेष एव च्छेद्रो विषरीतो दात्तव्यः, किन्दक्तं मवति !—अन्णीना चीवर्गं तिष्टन्तीनां लघुपञ्चकादिकच्छेदः, पुरुपवर्गे तु गुरुपञ्चकादिकः । शेष सर्वनिष पान्वद् द्रष्टव्यम् ॥ २५८२ ॥

॥ सागारिकोपाश्रयप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ अय निय्रेर्ग्यानामेय स्त्रीषु तिष्टर्न्तानां प्रायश्चित्तमाह इसवनरणं सं ।।।

२ अथ अमर्णानामेव च पुरुपेषु तिष्टन्तीनां प्रायश्चित्तमाह इप्रवतरणं का॰ ॥

३ "श्रहता घुम्मगणिसमासमणार्रेनेषं नव्यंत्र वि परेत्र इमा नोही—धेरार्टन श्रहता० गाहाद्वम् ।" ः इति त्रिरोपचूर्णो ॥ ४ थेरादिनिए श्रह्मा ता० ॥ ५ ९पि मायश्चित्तं म॰ हा० ॥

प्रतिवद्धशय्याप्रकृतम्

सृत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथाणं पडिबद्धसेजाए वस्थए ३०॥

अस्य सम्बन्धमाह--

5

इति ओह-विभागेणं, सेजा सागारिका समक्खाया । तं चेव य सागरियं, जस्स अद्रे स पडिवद्धो ॥ २५८३ ॥

'इति' एवमोधेन विभागेन च 'सागारिका' सागारिकयुक्ता 'शय्या' प्रतिश्रयापरपर्याया समाख्याता । तदेव च सागारिकं यस्योपाश्रयस्य 'अदूरे' आसन्ने स प्रतिबद्ध उच्यते । तत्र निर्श्रन्थानामवस्थानमनेन प्रतिषिध्यते ॥ २५८३ ॥ 10

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—नो कल्पते निर्धन्थानां 'प्रतिबद्धशय्यायां' द्रव्यतो भावतश्च प्रतिबद्धे उपाश्रये वस्तुमिति सूत्रार्थः ॥ अथ निर्धुक्तिविस्तरः—

नामं ठवणा दविए, भावम्मि चउन्त्रिहो उ पडिवद्धो । दन्त्रम्मि पद्विवंसो, भावम्मि चउन्त्रिहो भेदो ॥ २५८४ ॥

नाम-स्थापना-द्रन्य-भावभेदाचतुर्विधः प्रतिवद्धः । तत्र नाम-स्थापने गतार्थे । द्रव्यतः पुनर-15 यम्—'पृष्ठवंशः' वरुहरणं स यत्रोपाश्रये गृहस्थगृहेण सह सम्बद्धः स द्रव्यप्रतिवद्ध उच्यते । 'भावे तु' भावप्रतिवद्धे चिन्त्यमाने चतुर्विधो भेदो भवति ॥ २५८४ ॥ तद्यथा—

पासवण ठाण रूवे, सद्दे चेव य हवंति चत्तारि । दव्वेण य भावेण य, संजोगी होइ चउभंगी ॥ २५८५ ॥

प्रश्रवणे स्थाने रूपे शब्दे चेति चत्वारो भेदा भावपतिबद्धे भवन्ति । तत्र यसिन् साधूनां 20 स्त्रीणां च कायिकी मूमिरेका स प्रश्रवणपतिबद्धः । यत्र पुनरेक मेवोपवेशनस्थानं स स्थानपति-बद्धः । यत्र स्थितभीषा-भूषण-रहस्यशब्दाः श्रूयन्ते स शब्दपतिबद्धः । अत्र च द्रव्येण च भावेन च संयोगे चतुर्भिक्षी भवति । तद्यथा—द्रव्यतो नामेकः प्रतिबद्धो न भावतः, भावतो नामेकः प्रतिबद्धो न द्रव्यतः, एको द्रव्यतोऽपि भावतोऽपि, एको न द्रव्यतो न भावतः ॥ २५८५॥ एवं चतुर्भिक्ष्यां विरचितायां विधिमाह—25

चउत्थपदं तु विदिन्नं, दन्वे लहुगा य दोस आणादी । संसद्देण विद्वद्वे, अहिकरणं सुत्तपरिहाणी ॥ २५८६ ॥

चतुर्थपदमत्र 'वितीर्णम्' अनुज्ञातम्, चतुर्थमङ्गवर्तिनि प्रतिश्रये स्थातन्यमित्यर्थः । द्रव्य-प्रतिबद्धे तिष्ठतां चत्वारो लघुकाः, आज्ञादयश्च दोषाः । साधूनां सम्बन्धिना आवश्यिकी-नैषे-

१ °न-ओघस्त्रेण विभागेन च-विभागस्त्रैः 'सागा° का०॥

२ °द्धे वक्ष्यमाणलक्षणे उ° का॰ ॥ ३ °ति । गाथायां पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्। त° कां०॥

४ °ये उभयतोऽप्रतिवद्धे स्था° कां॰ ॥

विकीप्रमृतिना संशब्देन विद्वद्वेषु गृहस्येष्वविकरणं भवति । अथाविकरणमयात्रिसस्वारास्तृष्णी-काश्चासते ततः सृत्रार्थपरिहाणिः ॥ २५८६ ॥ अधाधिकरणपदं व्यास्यानयति-

आउ स्रोवण वणिए, अगणि कुईंबी कुकम्म कुम्मरिए। तेण मालागारे, उच्मामग पंधिए जैने ॥ २५८७ ॥

असा व्यास्या पावत् (गा० २५६०)॥ २५८७॥ 5 अयायिकरणभयान् तृष्णांकान्तिष्टन्ति तत एने दोषाः—

आनल निर्माही वा, नन्द्राय न करिति मा हु बुन्द्रिजा ! तेणासंका लगगण, संजम आयाऍ माणाई।॥ २५८८ ॥

मा गृहस्या त्रिबुच्यन्तामिति ऋत्वा "आसज्ज" इति शब्दं नोचरन्ति मासल्खु । नेपविकी-10मावस्यिकी वा न कुर्वन्ति पञ्च गत्रिन्दिवाति । स्ताव्याय स्त्रेपारुपी न कुर्वन्ति मासल्झु । अर्थपारुयां न कुर्यन्ति मामगुरु । मृत्रं नाग्नयन्ति चतुर्रेष्ठ । अर्थे नाग्नयन्ति चतुर्गुरु । एतेन स्त्रपरिहाणिरिति पदं व्यास्यातम् । तथा सावृनामाविस्यकीश्रव्दं पटनिपानशक्दं वा श्रुत्वा ते गृहसाः स्तेनं।ऽयमित्याग्रङ्कया साबुना समं युद्धाय ख्नेयुः । तर्तर्श्व युव्यमानयोः संयमात्ममाज-नानां विरार्वनाट्यो दोषाः । यत एवमतो द्रव्यप्रतिबद्धायां वसते। न स्यातव्यं । द्वितीयपदे ¹⁵ तिष्टेर्द्यैरि ॥ २५८८ ॥ < कॅंबर् १ इत्यत आह—≫

अद्वाणिनगयादी, तिक्खुत्तो मन्गिङ्गा असईए। गीयत्या जयणाएं, वसंति तो दृष्ट्यपडिवद्धे ॥ २५८९ ॥

अञ्चनिगेतादयः 'त्रिकृत्वः' त्रीन् वारान् द्रव्यतो भावतोऽपि चाप्रतिवद्धमुपाश्रयं मार्गयित्वा यदि न रूपन्ते तँती गीतार्था यतनया द्रव्यप्रतिबद्धे रुपाश्रये वसन्ति ॥२५८९॥ यतनामेबाह— 20

आप्रच्छण आवासिय, आसज्ज निर्साहिया य जयणाए। वेरची आवासग, जो जाहे चिंघण दुगम्मि ॥ २५९० ॥

यदा काँऽपि साद्वः कायिकीस्मा गन्तुमिच्छति तदा हितीयं साद्यमाप्रच्छ्य निर्गच्छति, स च द्वितीयः प्रष्टमात्र एवात्याय दण्डकहत्तो द्वारे तिष्ठति यावदसी प्रत्यागच्छति. एषा आपच्छन्यतना । आवस्यिकीमासायशब्दं नेषेविकीं च यतनया यथा गृहस्या न शृष्वन्ति तथा 25 इर्वन्ति । वैरात्रिकवेटायामपि यः पूर्वेम्रस्थितन्त्रेन द्वितीयः साबुर्वतनया हर्न्तन स्पृट्टा प्रतिनोय-यितव्यः, स च स्पृष्टमात्र एव तृर्णाम्मावनोत्तिष्ठति, ततो द्वाविप कालम्मो गत्वा वेरात्रिकं कारुं यतनया गृहीतः यया पार्थसितोऽपि न शृणोति । आवस्यकं यो यदा यत्र सितो निवु-ध्यंत स तटा तत्र खित एव ऋरोति, वन्ट्रनकं स्तुतीश्च हृद्येनेव प्रयच्छन्ति, यहा यटा ते गृहस्याः प्रमाते सवमेत्रोत्यिताः तदाऽऽवस्यकं कुर्वन्ति । "चिषण दुगम्मि" ति परावर्त्तयतां यत्र

१ त॰ है॰ मो॰ है॰ विनाष्ट्यत्र—°श्च संय° मा॰ । ९श्च तैः समें युद्धमानस्य संय° कां॰ ॥ २ त॰ इ॰ मो॰ है॰ विनाऽन्यत्र— धना । यत एते दोषा अतो हु॰ मा॰। धना, आदिशब्दात् प्रयचनोडुाहाद्योऽनेके दोपाः । यत एयमतो हां॰ ॥ ३ °छेद्पि मा॰ ॥ ४ ५ १ एदन्मध्यगतः पाठ हां॰ प्रजावेव वर्तते ॥ ५ ततोऽसत्यां वसता गी॰ हां॰ ॥

स्त्रेऽथें वा रात्रो शङ्कतं भवति तस्य चिह्न-अभिज्ञानकरणम्, यथा अमुकस्मिन्नङ्गे श्रुत-स्कन्धेऽध्ययने उद्देशके वा इदं शक्कितमस्तीति, तत् सर्वं दिवा प्रश्नयित्वा निःशक्कितं कुर्वन्ति ॥ २५९० ॥ तथा-

> . जैणरहिए बुज्जाणे, जयणा भासाएँ किम्रुय पडिबद्धे । ढह्दरसरऽणुप्पेहा, न य संघाडेण वेरत्ती ॥ २५९१ ॥

यदि तावज्जनरहितेऽप्युद्याने वसता रात्रो मापायां यतना 'मा चतुप्पद-पक्षि-सरीसृपादयो जन्तवो विवुध्यन्ताम्' इति कृत्वा, ततः किं पुनः द्रव्यप्रतिवद्धे प्रतिश्रये !, तत्र युतरां यतना कर्त्तव्येति भावः । यस्तु 'ढड्ढारखरः' बृहता शब्देन मापणशीलः स वैरात्रिकं साध्यायमनुप्रे-क्षैया करोति, मनसेवेत्यर्थः । येऽपि च साघवो न बह्नरस्नरास्तेऽपि सङ्घाटकेन न परिवर्त्तयन्ति किन्त पृथक पृथगिति ॥ २५९१ ॥ 10

गतः प्रथमो भद्गः । अथ द्वितीयभङ्गं भावतः प्रतिवद्धो न द्रव्यत इत्येवंरुक्षणं निरूपयति--

भाविमम उ पडिवद्धे, चउरो गुरुगा य दौस आणादी। ते वि य पुरिसा दुविहा, अत्तमोगी अभुत्ता य ॥ २५९२ ॥

'भावे' भावतः प्रतिबद्धे प्रतिश्रये तिष्ठता चतुर्गुरुकाः आज्ञाद्यश्च दोपाः । ये पुनस्ते भावप्रतिबद्धे वसन्ति 'ते पुरुपाः' साथवो द्विविधाः—केचिद् 'मुक्तमोगिनः' ये स्त्रीमोगान् 15 भुक्तवा पत्रजिताः, केचित्रु 'अभुक्तमोगिनः' कुमारपत्रजिताः । एँपा पुरातना गाथा ॥२५९२॥

अथास्या एव व्याख्यानमाह-

भावम्मि उ पडिबद्धे, पनरससु पदेसु चउगुरू होंति । एकेकाउ पयाओ, हवंति आणाइणो दोसा ॥ २५९३ ॥

भावप्रतिवद्धे चतुर्भिः प्रश्रवणादिभिः पदैः पोडश भङ्गाः कर्त्तव्याः । तद्यथा--प्रश्रवणप्रति- 20 बद्धः स्थानप्रतिबद्धो रूपप्रतिबद्धः शब्दपतिबद्धश्च १ प्रश्रवणप्रतिबद्धः स्थानप्रतिबद्धो रूपप्रति-बद्धो न जञ्दप्रतिबद्धः २ इत्यादि । अत्र प्रथमभङ्गादारभ्य पञ्चदशसु 'पदेपु' भङ्गेषु चतुर्गुरवः प्रायश्चित्तम् । आदेशान्तरेण वा प्रथमे भन्ने चत्वारश्चतुर्गुरवः, चतुर्णामपि पदानां तत्राशुद्धत्वात् । द्वितीये भन्ने त्रयश्चतुर्गुरवः, त्रयाणां पदानां तत्राशुद्धत्वात् । एवमनया दिशा यत्र भन्ने यावन्ति पदान्यविशुद्धानि तत्र तावन्तश्चतुर्गुरवः । एकैकसाच 'पदाद्' भन्नकादाज्ञादयो दोपा 26 भवन्ति, यस्तु पोडगो भङ्गः स चतुर्ण्विप पदेषु गुद्ध इति न तत्र प्रायिधत्तम् ॥ २५९३ ॥

प्रश्रवणादीनामेवान्योऽन्यं सम्मवमाह-

ठाणे नियमा रूवं, भासासदो य भूसणे भइओ । काइय ठाणं नत्थी, सद्दे रूवे य भय सेसे ॥ २५९४ ॥ यत्र साधूनां स्त्रीणां चैकमेवोपवेशनस्थानं तत्र नियमात् परस्परं रूपमवलोक्यते भाषाशब्दश्च ३०

१ विजणम्मि वि उज्जाणे इति विशेषचूर्णी पाठः ॥ २ °क्षयैव करोति । येऽपि मा॰ ॥ ३ °वद्धे उपाश्रये मा॰॥

ध "भावम्मि उ॰ गाहा पुरातना । अस्या व्याख्या—भावम्मि उ॰ गाहा ।" इति विदेशपचूर्णी ॥

शृर्वते मृषणशब्दम्तु माज्यः, न्यमरणानां स्त्रीयां भवित इत्यमां न भवितित्यवः। 'काविकी' प्रश्नवयं तत्र स्थानं नान्ति, लोकजुगुज्यितत्या काविकी मृमाव्यवेशनामानातः, भाषा-मृषणशब्द- रूपाणि तु मवन्त्यगीति सानः। शब्दं रूपे च 'शेषाणि' प्रश्रवणादीनि 'मन' विकल्पय। किसकं मनि ?—शब्दे प्रश्रवण-स्थान-रूपाणि मविन्ति वा न वा, रूपेऽपि प्रश्रवण-स्थान-शब्दा भविति । वा न वेति ॥ २५९४॥ ऐने न्वेव दोषाद्यस्त्र्यंगित—

आवपरोभवदोना, काइयभूमी य इच्छऽणिच्छंन । संका एनमणेने, बोच्छेद पदोसतो जं च ॥ २५९५ ॥

यत्र संयत्तानामित्रगतिकानां चैका कायिकीमृमित्तत्रात्मण्रोमयसमुत्या दोषाः। तत्र संयत्त एवाविगितकां रहिस द्वय्व यदात्मना क्षुम्यति एव आत्मममुत्यो दोषः, यन्तु सा स्त्री निस्त् 19 संयत्ते क्षुम्यति स परसमुत्यः, यन्तु साबुरिवरितकाय्यमिवरितिकाऽपि सावा क्षोममुपगच्छिति स उमयसमुत्यो दोषः। ''इच्छऽणिच्छंत'' ति यदि विया मार्थितः साधुनां मितिमिवितिमच्छिति तत्ते प्रवस्तकः, अय नेच्छिति तत्तः सा उड्डाई कुर्यात्। ''संक'' ति अविगितका कायिकीमृमा प्रविधा पश्चात संयतमित तत्र गच्छन्तं द्वया कोऽपि ग्रहां कुर्यात्—यदेवमम् हे अप्यत्र व्हारतं प्रविधे तत्रृनं नेयुनर्थमिति । तत एकस्त्रानेकेषां वा साधुनां व्यवच्छेदं कुर्यात्। ''पदो-15 सत्रो लं च' ति तद्दायाः पति-देवरादयः प्रहेपत्रो यद् प्रहणा-ऽऽकर्षणादिकं करिप्यन्ति तिन-पत्रं प्रायक्षित्त्न्।। २५९५।। यत्रिवरितिकानां साधुनां चैकमेवोपवेद्यनस्यानं तत्र दोषानाह—

दुन्गृहाणं छन्नेगर्दमणे अत्तमोगि सहकरणं । वेडव्वियमार्द्सु य, पडिवंधुङ्गचयाऽऽमंका ॥ २५९६ ॥

'दुर्गृहानां' दुःखाइतानां कीणां यानि च्छन्नाङ्गानि करकुचार प्रमृतीनि तेषां दर्शने मुक्त20 मोगिनां ॰ म्छितिकरणं अमुक्तमोगिनां > तु कौतुकमुन्ययने । तया विक्रयं नातादिनिक्रियाविद्यान् महाप्रमानं सागारिकन् , अथवा विकुर्वितं नान महाराष्ट्रविषये मागारिकं विद्या तत्र
विग्यकः प्रक्षिप्यते, सा चारिरितेका ताह्येनाङ्गादानेन प्रतिमेवितपूर्वा, ततः विक्रयं विकुर्वितं
वा आदिग्रह्णात् पेतिकं वा सागारिकं दृष्ट्य सा की तत्र साथे प्रतिवन्यं कुर्यात् , उडुञ्चक वा कश्चिद्रगारः कुर्यात्, आग्रङ्गा वा लोकस्य मत्रीन—एने अनगका न सुन्द्रग येनवं महेलामिः
अ सनमासते ॥ २५६६ ॥ < सर्वेज्विष प्रश्रवणादिस्यानेषु सामान्यत इमे दोषाः—>

र्वर्भवयस्य अगुर्चा, लजानासो य पीद्द्रपरिद्वर्द्धा । साहु त्रवावणवासो, निवारणं तित्यपरिद्वाणी ॥ २५९७ ॥

र्कामिः सँहेक्त्र निष्ठतां सायूनां ब्रह्मचर्यस्त 'अगुप्तिः' महो जायते, रूजानाराश्च परस्परं मनति, अमार्क्गं सन्दर्भनादिना प्रीतिपरिष्टदिरूपजायते, रोक्श्चोपहासोक्तिमक्त्या व्रनीति— १० अहो ! स्प्री साध्यक्तपोत्रने दमन्टि, निवारणं च राजद्यः हुन्नेन्ति—मा एतेपां मध्ये कोऽपि

१ °यते 'सृष्णे' सृष्णविषयस्तु राख्ये सा⁹ काँ॰ ॥ २ तु साज्यानीति सा° मा॰ ॥ ३ < १ एतन्त्रकातः पारः सा॰ प्रतिवेद ॥ ४ < १ एतिवहणतः परः सा॰ नाति ॥ ५ अगुर्ती य वंसचेरे, छज्ञा° सा॰ ॥ ६ °स्यागुतिः, छज्ञा° सा॰ त॰ वे॰ ॥

भनज्यां गृह्णातु, तत्रश्च 'तीर्थपरिहाणिः' तीर्थस्य न्यवच्छेदो भन्नति ॥ २५९७॥ रूपप्रतिबद्धे दोषानाह—

चंकिम्मयं ठिंयं मोडियं च विष्पेक्खियं च सविलासं । आगारे य बहुविहे, दड्डं भुत्तेयरे दोसा ॥ २५९८ ॥

'चङ्गमितं' राजहंसीवत् सलीलं पदन्यासः, 'स्थितं' कटीस्तम्मेनोर्द्धस्थानम्, 'मोटितं' गात्र- 5 मोटनम्, विविधम्-अद्धीक्ष-कटाक्षादिमिभेदैः प्रेक्षितं विप्रेक्षितम्, तच्च 'सविलासं' श्रूविक्षेप-सिहतं विस्मितमुखं वा, एवमादीनाकारान् बहुविधान् दृष्ट्वा मुक्तानाम् 'इतरेषां च' अमुक्तानां स्मृतिकरण-कौतुकादयो दोषाः ॥ २५९८ ॥

अविरतिकानां पुनर्नानादेशीयान् साधून् दृष्टेत्थमध्युपपातो भवेत्— जल्ल-सलपंकियाण वि, लायन्नसिरी जहेसि देहाणं ।

सामन्त्रिम सुरूवा, सयगुणिया आसि गिहवासे ॥ २५९९ ॥

जलः—कठिनीभृतः, मरुः—पुनरुद्वर्तितः सन्नपगच्छति, जल्लेन मरुन च पङ्कितानामप्येषां सीधूनां देहेषु अभ्यङ्गोद्वर्त्तन-स्नानविरहितेष्विप यथा 'लावण्यश्रीः' कमनीयतालक्ष्मीः श्राम-ण्येऽपि सुस्तपा उपलभ्यते तथा ज्ञायते नूनममीषां गृहवासे शतगुणिता लावण्यलक्ष्मीरासीत् ॥ २५९९॥ शब्दप्रतिबद्धे दोषानाह—

गीयाणि य पढियाणि य, हसियाणि य मंजुला य उल्लावा । भूसणसद्दे राहस्सिए अ सोऊण जे दोसा ॥ २६०० ॥

स्त्रीणां सम्बन्धीनि भाषा-शब्द-रूपाणि, यानि गीतानि च पठितानि च हसितानि च, 'मञ्ज-लाश्च' माधुर्यादिगुणोपेता उल्लापाः, ये च वल्य-नूपुरादीनां भूषणानां शब्दाः, ये च रहसि भवा राहसिकाः—पुरुषेण परिभुज्यमानायाः स्त्रियाः स्त्रिनतादयः शब्दा इत्यर्थः, तान् श्चत्वा ये 20 भुक्ता-ऽभुक्तसमुत्था दोषास्त्रित्रणतं प्रायश्चित्तमाचार्यस्तत्र भावप्रतिवद्धे तिष्ठन् प्रामोति ॥ २६००॥ अथ स्त्रियः साधूनां खाध्यायशब्दं श्चत्वा यचिन्तयेयुस्तद् दर्शयति—

गंभीर-महुर-फुड-विसयगाहओ सुस्सरो सरो जह सिं। सज्झायस्स मणहरो, गीयस्स णु केरिसो आसी।। २६०१।।

गम्भीरो नाम-यतः प्रतिशब्द उत्तिष्ठते, मधुरैं:-कोमरुः, स्फुटः-व्यक्ताक्षरः, विर्धयप्राहकः- 25 अर्थपरिच्छेदपटुः, सुस्ररः-मालव-कौशिक्यादिखरानुरिक्ततः, एवंविधः स्वरो यथा 'एषां' साधूनां सम्बन्धी साध्यायस्यापि मनोहरः श्रूयते तथा ज्ञायते यदा गृहवासे विश्वस्ताः सन्तो गीतमेते विहितवन्तस्तदा गीतस्य कीहशो नाम शब्द आसीत् १ किन्नरध्वनयस्तदानीमभ्वन्निति मावः ॥ २६०१ ॥ उक्ताश्चतुर्व्विप प्रश्रवणादिप्रतिबद्धेषु दोषाः । अथ 'ते पुण पुरिसा दुविहा'' (गा० २५९२) इत्यादि पश्चार्द्धं व्याख्यानयति—

१ °यं जंपियं च वि° ता॰ ॥ २ साधुसम्बन्धिनां देहानामभ्य° का॰ ॥ ३ °रः-हृदयङ्गमः, स्फु॰ भा॰ ॥ ४ विशन्दः स्फुटाभिवचःत्राहकोऽर्थत्रहणसमर्थः, सुखेन-अनायासेन खर्यते-उच्चार्यत इति सुखरः, एवंवि° भा॰ ॥

15

25

पृत्सि य भ्रत्तभोगी, अभ्रत्तभोगी य केह निक्खंता । कोऊहुल-सहकरणुव्भवेहिं दोसेहिमं कुला ॥ २६०२ ॥

ते पुनः संयतपुरुषा द्विविधाः—किचिद् भुक्तभोगिनः केचित्त्वभुक्तभोगिनो निष्कान्ताः । ते च तत्रोषाश्रये स्पृतिकरण-कानृह्छोद्भवा दोषा ये उत्पद्यन्ते तरिदं कुर्युः ॥ २६०२ ॥

पडिगमणमन्नतिन्थिग, सिद्धी संवह सिलंग हत्थे य । अद्धाण-त्रास-सात्रय-तेणसु व भावपडिबद्धे । १२६०३ ॥

प्रतिगमनं नाम-तं साधवा म्योऽपि गृह्वास गच्छेयुः, यहा कश्चित् पार्श्वसादिःम्यः समा-गतः म तेप्वेव त्रजेत्, अन्यतीर्थिकपु वा गच्छेत्, सिद्धपुत्रिकां वा सयतीं वा खिङ्किस्थितः प्रतिसेवेत, हस्तकमें वा कुर्यात् । यत एतं दोषा अतो न मावप्रतिवेद्ध स्थानव्यम् । भवेहा १०कारण येन तत्रापि स्थानव्यं भवति । किं पुनस्तत् १ इत्याह—"अद्धाण" इत्यादि । अव्वप्रति-पन्नास्ते साथवः, न चान्यां वसतिं छमन्ते, वर्षं वा निरन्तरं पनति, श्वापदाः स्तेनां वा जामादेविहिम्पद्वन्ति । एतेः कारणभावप्रतिवेद्धऽप्युपाश्चये तिष्टन्ति ॥ २६०३ ॥

एतदेव न्याचष्ट—

विहनिग्गया उ जर्डं, रुक्ले जोर् पडित्रद्ध उस्सा वा । टायंति अह उ वासं, सावय-तणाद्ओ भावे ॥ २६०४ ॥

विद्य-अध्वा, ततो निर्गनासं प्रतिपन्ना वा त्रिकृतः शुद्धाया वमतेरन्वेषणे यतिता यदि न लगन्ते ततो वृक्षस्यायस्ताहा ज्योतिर्धृताया वा द्रव्यप्रतिवद्धायां वा वमतो तिष्टन्ति । "अह उ" ति अथ पुनर्वृक्षस्यायन्तादवद्यायो वा वपं वा निपनति श्वापट-स्तेनादयो वा तत्रोपद्रवन्ति ततो भावप्रतिवद्धायां वसतो वसन्ति ॥ २६०४ ॥ तत्र चेयं यतना—

20 भावस्मि ठायमाणा, पहमे ठायंनि रुवपडियद्ध ।

नहियं कडग चिलिमिली, तस्सऽसती ठंति पायवण ॥ २६०५ ॥

भावप्रतिवद्धे उपाश्रये तिष्टन्नः प्रथमं रूपप्रतिवद्धे तिष्टन्ति । तत्र चापान्तराले कटकं चिलि-मिलिकां वा प्रयच्छन्ति । 'तस्य' रूपप्रतिवद्धस्यामावे प्रश्रवणप्रतिवद्धेऽपि तिष्टन्ति । तत्रापि कायिकीं मात्रके स्युन्सुज्यान्यत्र परिष्टापयन्ति ॥ २६०५ ॥

> असई य मनगस्सा, निसिरणभृमीह वा वि असईए । वंदेण वोलकरणं, नामि वेलं च वर्जिति ॥ २६०६ ॥

मात्रक्स 'असित' अमावेज्यसा वा कायिकीनिसैर्जनस्मेरमावे 'वृन्छेन' त्रिचतुःप्रभृति-नाष्टुसमृद्देन महना ग्रञ्डेन वोछं ठ्वीन्तसासामेव कायिकीमृमे। प्रविग्रन्ति । 'तासां च' अगा-रीणां कायिकीव्युत्मर्जनवेछां वर्जयन्ति ॥ २६०६ ॥

20 प्रश्रवणप्रतिबद्धसामार्वे शब्दप्रतिबद्धेऽपि निष्टन्ति, तत्र—

^{? °}नाडयो त्रा° मा॰ विना ॥ २ तनो वृक्षप्रतिवद्धायां ज्योतिःप्रतिवद्धायां वा वसनी तिष्टन्ति । नस्यामावे त्रामादेवंहिर्वृक्षस्याचलात् "उस्सा व" चि वश्रावकारे। वा तिष्टन्ति । अथ तत्र वर्षोद्कं निपनति मा॰ ॥ ३ "सर्गमृ॰ मा॰ ॥

भूसण-भासासहे, सज्झाय ज्झाण निच्च प्रविशोगी । उवगरणेण सर्यं वा, पेछण अन्नत्थ वा ठाणे ॥ २६०७ ॥

प्रथमं भूषणशब्दप्रतिबद्धे तदमावे माषाशब्दप्रतिबद्धेऽपि तिष्ठन्ति । तत्र चोभयत्रापि महता शब्देन समुदिताः सन्तः खाध्यायं कुर्वन्ति, ध्यानलिधमन्तो वा 'ध्यानं' धर्म-शुक्कमेद्द-भिन्नं ध्यायन्ति, एतयोरेव खाध्याय-ध्यानयोर्नित्यमुपयोगः कर्त्तव्यः। भूषण-भाषाशब्दप्रतिबद्धा- ६ भावे खानप्रतिबद्धे तिष्ठन्ति । तत्रोपकरणेन खयं वा विप्रकीर्णाः सन्तस्तथा मालयन्ति यथा तासां प्ररणं भवति, अवकाशो न भवतीति भावः । अन्यत्र वा खाने गत्वा दिवसे तिष्ठन्ति । २६०७ ।। खानप्रतिबद्धस्याभावे रहस्यशब्दप्रतिबद्धे तिष्ठन्ति । ० तैत्र तिष्ठता यतना क्रमं च दश्चयति—>

पैरियारसद्जयणा, सद् वए चेव तिविह तिविहा य । उदाण-पउत्थ-सहीणभोइया जा जस्स वा गुरुगी ॥ २६०८ ॥

पुरुषेण स्त्री परिभुज्यमाना यं शब्दं करोति स परिचारशब्द उच्यते, तत्र 'यतना' साध्या-यगुणनादिका कर्त्तन्या। 'सद्द वए चेव तिविह'' ति शब्दतो वयसा च सा स्त्री त्रिविधा, तद्यथा— मन्दशब्दा मध्यमशब्दा तीव्रशब्दा च, वयसा तु स्थितरा मध्यमा तरुणी चेति त्रिविधा। ''तिविहा य'' ति पुनरेकैका त्रिविधा—अपद्राणभर्तृका मोषितभर्तृका स्वाधीनमोक्तृका चेति । एवं भेदेषु विरचितेषु यतनाक्रम उच्यते—तत्र पूर्वमपद्राणभर्तृकाया स्थितराया मन्दशब्दायां स्थातव्यम्, ततः प्रोषितभर्तृकायां स्थितरायां मन्दशब्दायाम्, तद्मावेऽपद्राणभर्तृकायां स्थितरायां मध्यशब्दायाम्, तदस्यमेऽपद्राणभर्तृकायां स्थितरायां तीव्रशब्दायाम्, तदस्यमेऽपद्राणभर्तृकायां स्थितरायां तीव्रशब्दायाम्, तदस्यमेऽपद्राणभर्तृकायां स्थितरायां तीव्रशब्दायाम्, तदप्राप्ती प्रोषितभर्तृकायां स्थितराया तीव्रशब्दायां स्थातव्यम्। एवमेव मध्यमास्रु तरुणीषु च अपद्राण-प्रोषितभर्तृकास्रु कमो द्रष्टव्यः। ततः स्वाधीनम-20 र्तृकायामपि प्रथमं स्थितरायां ततो मध्यमायां ततस्तरुण्यां यथाक्रमं मन्द-मध्यम-तीव्रशब्दाया स्थातव्यम्। अथवा ''जा जस्स गुरुगि'' ति यस्य साधोर्यो मन्दादिकः शब्दो रोचते तेन या युक्ता सा तस्य गुरुरागहेतुत्वाद् गुरुका, तेन च सर्वप्रयत्नेन तथा गुरुकस्त्रिया प्रतिबद्धः प्रति-श्रयः परिहर्त्तव्यः॥ २६०८॥ अथवाऽयमपरः क्रम उच्यते—

१ < > एतदन्तर्गत पाठ का॰ पुस्तक एव ॥

२ "परियार॰ गाहा पोराणा" इति विशेषच्रणौं ॥

३ भा॰ विनाऽन्यत्र—°ति । अथैतास्रु,तिष्ठतामयं क्रमः—पूर्वं का॰ । °ति । तत्र पूर्व त० है॰ मो॰ छे॰ ॥

४ श्वित्रायां स्थातव्यम्, तद्सम्भवे प्रोषितभर्तृकायां स्थविरायाम्, तद्प्रातावप-द्राण-प्रोषितभर्तृकयोरेव प्रथममध्यमयोः, ततस्त्रहण्योरपि क्रमेण स्थातव्यम् । ततः स्वाधीनभर्तृकायां स्थविरायां मन्द्राब्दायाम्, ततस्त्रस्थामेव मध्यमशब्दायाम्, ततस्तिव-शब्दायाम्, तद्भावे मध्यम-तरुण्योरपि यथाक्रमं मन्द्-मध्यम-तीवशब्द्योः स्थातव्यम् । अथवा "जा जस्सः भा० विनात।

15

उद्दाण परिदृत्रिया, पउन्थ कचा ममोद्या चेव । थेरी मज्झिम तरुणी, तिच्चकरी मैद्रमहा य ॥ २६०९ ॥

क्रम्याद्यको बन्यानुकोन्याद् मध्येऽभिहिनोऽप्यादी कर्तव्यः, तनः पृत्तै 'क्रम्यायाम्' अर्गार-णीनिष्याम्, तदमावेऽपदाणमर्गृकायाम्, ततः 'मर्गुपरिष्ठापिनायां' दौर्माग्यान् पितना परित्य-उक्तायाम्, तद्यामे प्रोपिनमर्गृकायां स्वविगयां स्वातव्यम् । तद्यात्योवनानेव प्रथमं मध्यमापु, तनक्तरुगीषु, तनः मगीनुष्या—म्बाबीनमर्गृका तस्यापि स्वविरादिक्रमेण स्वयम । नवरं मा नीवद्यक्ति मन्द्रव्या चरुव्याद् मध्यमद्यव्या चेति विविद्या । तत्र पृत्वे मन्द्रव्यायां तनो मध्यमद्यव्यायां तनम्बिद्याव्यायां तनक्तिव्याव्यायां तनक्तिव्याव्यायां सनक्ष्यम् ॥ २६०६ ॥

"सह् वर चेत्र तिविह" (गा० २६०८) ति व्याख्यानयति-

येरी मिन्सिम नरुणी, वण्ण निविहित्यि नत्य एकका । निव्यक्षरी मञ्ज्ञकरी, मेदकरी चेव महेणे ॥ २६१० ॥

स्वतिग मञ्चमा नर्ह्मा चेनि वयमा त्रिविधा की । नेत्रैकेका त्रिविधा—तीवधळकरी मञ्चमञ्च्यको मन्द्रशब्दको चेति शब्देन त्रिधिधा ॥ २६१० ॥ अथ प्रथवणप्रतिबद्धादिषु चतुर्विरि या भान्यकृता सविस्तरं यनना प्रोक्ता नामेव निर्युक्तिकुदेकगाथया सङ्ग्याह—

पानवण मत्तरणं, ठाणे अन्नत्य चिलिमिली रुवे । मञ्जार झाणे वा, आवरणे महक्रगणे वा ॥ २६११ ॥

काबिकीयितियहै प्रतिअये पश्चमणं मात्रकाग परिष्ठापियनस्यन् । न्यानप्रतिबहै उन्यत्र गत्म स्मानस्यम् । रूपप्रतिबहै चिलिमिकी दानस्या । अस्त्रप्रतिबहै स्वास्थायो स्थानं वा 'आवरणं वा' कणेयोः स्ववनं विषेयम् । तथापि सन्दे श्रृयमाणे 'सन्द्रक्रणं' तथा सन्द्रः कर्तस्यो यथा ४० तयोकिजनयोमीह स्पन्नान्यति ॥ २६११ ॥ अथास्या एव पश्चाहै स्वाचेष्ट—

वरनाकरं जं ता, वि परिजियं वाहिरं व इअरं वा । सो तं गुणह साह, झाणसरुद्वी उ झाण्झा ॥ २६१२ ॥

'वेगत्यकरम्' उत्तराव्ययनादि, यद् वाऽपि 'पिन्जितं' सम्यसं परावस्यमानमस्विष्ठिमा-गच्छतीति भावः, तच 'अङ्गाखं वा' प्रज्ञापनादि, 'इतरहा' अङ्गप्रविष्टमाचारादि, यद् यस्य १६ साथोरागच्छति स तत् सुत्रं तथा गुणयति यथा परिचारणाञ्चदो न श्यते । यस्तु 'ध्यानस-रुच्यः' ध्यानछित्रसम्पन्नः स ध्यानं ध्यायति ॥ २६१२ ॥

> दांसु वि अलढि कण्णे, टएइ तह वि सबणे करे सई। जह लिखाण माहो, नामइ जणनायकरणं वा ॥ २६१३॥

'दृषोरित' साध्याय-ध्यानयोवीः साधुग्छित्रकाः स कर्णी स्वायति । तथाति शब्दश्रवणे 20 शब्दे तथा क्वर्यान् यथा तयोर्छित्तनयोमोद्दी नस्यति, यथा—क्रिमेवं मोः ! न पर्यसि त्यमस्मानत्र स्विनान् यदेवं छत्रनीयानि चेष्टितानि क्वरुष । यद्यवमप्युक्तो न तिष्टति ततो जनज्ञातं क्वर्यन्ति, यथा—पत्र्यत पर्यन मो इन्द्रद्त ! यज्ञद्त ! सोमद्यमन् ! अयं विगुप्त इत्यमसाकं पुरनोञ्नाचारं संवने ॥ २६१३ ॥ गता द्वितीयमङ्गः । अयं तृनीयमङ्गमाह—

उभओ पडिवद्धाए, भयणा पन्नरसिया उ कायन्वा **।** दन्वे पासवणाम्मि य, ठाणे रूवे य सद्दे य ॥ २६१४ ॥

'उभयतः' द्रव्यतो भावतश्च या प्रतिवद्धा वसतिः तस्यां पञ्चद्रशका 'भजना' भङ्गकरचना कत्तेच्या । तद्यथा----द्रव्यतः प्रतिबद्धा भावे च प्रश्रवण-स्थान-रूप शब्दैः प्रतिबद्धा १ द्रव्यतः प्रतिवद्धा भावतश्च प्रश्रवण स्थान-रूपैः प्रतिवद्धा न शब्देन २ द्रव्यतः प्रतिवद्धा भावतः प्रश्र- छ वण-स्थान-शन्दैः प्रतिवद्धा न रूपेण ३ द्रव्यतः प्रतिवद्धा मावे च प्रश्रवण-स्थानाभ्यां प्रतिवद्धा न रूप-शब्दाभ्याम् ४ एते चत्वारो भङ्गाः स्थानप्रतिवद्धपदेन रुव्धाः । एवं स्थानाप्रतिवद्धपदे-नापि चत्वारो लभ्यन्ते जाता अष्टौ भङ्गाः । एते प्रश्रवणप्रतिवद्धपदेन लब्धाः, एवं प्रश्रवणा-प्रतिबद्धपदेनाप्यष्टौ रूभ्यन्ते, जाताः पोडश मङ्गाः ॥ २६१४ ॥

अत्र च पोडशो भड्गः 'द्रव्यतः प्रतिबद्धा न पुनः प्रश्रवणादिभिः' इत्येवंरुक्षणो नाधिकियते, 10 उभयतः प्रतिबद्धाया अधिकारात् , अत्र च भन्ने भावतः प्रतिबद्धाया अभावात् । ततो ये आद्याः पञ्चद्रज भङ्गकास्तेषु तिष्ठतो दोपानाह-

> उभओ पिडवद्धाए, ठायंते आणमाहणो दोसा । ते चेव पुन्वभणिया, तं चेव य होह विइयपयं ॥ २६१५ ॥

उभयतः प्रतिबद्धायां वसतौ तिष्ठत आज्ञादयो दोपाः । ये च प्रथमद्वितीयभद्भयोः पूर्वम-16 धिकरणादय आत्मपरोभयसमुत्थादयश्च दोपा भणितास्त एवात्रापि समुदिता वक्तव्याः । यच प्रथमद्वितीयभद्गयोर्द्वितीयपद्मुक्तं तदेवात्रापि ज्ञातव्यम् । गतस्तृतीयो भद्गः । चतुर्थस्तु भद्गो न द्रव्यतः प्रतिवद्धा नापि भावत इत्येवंरुक्षणः स चोभयथाऽपि निर्दोष इति न काचित् तदीया विचारणा ॥ २६१५ ॥ सूत्रम्-

कप्पइ निग्गंथीणं पडिबद्धसिज्जाए वृत्थए ३१॥

अत्र भाष्यम्—

एसेव कमो नियमा, निग्गंथीणं पि नवरि चउलहुगा। सुत्तनिवाओ निद्दोसे, पिडवद्धे असइ उ सदोसे ॥ २६१६ ॥

'एप एव ऋमः' द्रव्यभावोभयतःप्रतिवद्भव्याख्यापरिपाटिरूपो नियमाद् निर्श्रन्थीनामपि वक्तव्यः । नवरं प्रतिवद्धे तिष्ठन्तीनां तासां चतुर्रुषुकाः । नोदकः प्राह—ययेवं तर्हि सूत्रं 25 निरर्थकम्, अतंत्र निर्मन्थीनामवस्थानस्थानुज्ञातत्वात् । > आचार्यः पाह—सूत्रनिपातो निर्दोषप्रतिवद्धे प्रतिश्रये भवति, प्रायश्चित्तं तु सदोपप्रतिवद्धे द्रष्टन्यम् । अथ निर्दोपप्रतिवद्धो न प्राप्यते ततस्तस्य 'असति' अभावे सदोपप्रतिबद्धे स्थातव्यम् ॥ २६१६ ॥

आउज्जोवणमादी, दन्वम्मि तहेव संजईणं पि। नाणत्तं पुण इत्थी, नऽचासने न द्रे य ॥ २६१७ ॥

30

द्रव्यप्रतिवद्धे सयतीनामप्यप्काय-शकटयोजनादयो दोपास्तथैव भवन्ति, परं तासां सागा-

१ ॰ एतन्मध्यगतः पाठः कां॰ प्रतावेव वर्तते ॥

15

रिक्तिश्रया तिष्टन्तीना न दोषः। "नागचं पुण इत्यि" चि स पुनः प्रतिवद्धः स्त्रीभिरेव वस-न्तीभिज्ञीतव्यो न पुरुषः। एतद् निर्श्रन्थेभ्यो निर्श्रन्थीनां नानात्तम्। स च संयतीना प्रतिश्रयः सागारिक्रगृहस्य नात्यासन्ते न चातिदृरे भवि ॥ २६१०॥ तद्यथा—

अजियमादी मिर्गणी, जा यऽत्र सगारअन्मरहियाओ । विह्या वसंति सागारियस्म पासे अदृरम्मि ॥ २६१८ ॥

आर्थिका-पितामही मातामही वा, आदिशब्दाद् जनन्याद्रिपरिश्रहः, भगिनी प्रतीता, याश्चान्या अपि आतृज्ञायाप्रभृतयः मागारिकस्य-शब्यातरस्याभ्यार्द्ताः-पृत्या विभवाः मागारिकगृहस्य पार्श्वेडदृरे वनन्ति, नामिर्दृत्यतः प्रतिवद्धे प्रतिश्रये वन्तव्यमिति ॥ २६१८ ॥ आह च---

एयारिस गेहम्मी, वसंति वद्दणीउ द्व्यपदिवद्धे ।

10 पामवणादी य पया, ताहि समें होति जयणाए ॥ २६१९ ॥

एताहरो नेहं स्वीभिर्द्रयतः प्रतिबद्धे त्रतिन्यो वसन्ति । तत्र च स्थिताः प्रश्रवणादीनि पटानि 'यतनया' वारकप्रह्णादिन्यया ताभिः समं कुर्वन्ति । एतद् निर्दोपं द्रव्यप्रतिबद्धमुच्यते ॥ २६१९ ॥ नोदकः प्राह—यद्यत्राप्यप्काय-शकटयोजनादीन्यविकरणानि भवन्ति ततः कथं निर्दोप भवनि १ इत्युच्यते—

कामं अहिगरणादी, दोसा बद्दणीण इन्थियामुं पि । ने पुण हर्वनि सज्झा, अणिम्मियाणं असज्झा छ ॥ २६२० ॥

'कामम्' अनुमनमस्माकं यद्धिकरणाद्यो दोषा त्रतिनीनां 'स्रीप्यपि' स्त्रीप्रतिबद्ध भवन्नि परं ते पुनर्दोषाः साध्या , ''आपुच्छण आवासिय, आमज निसीहिया य जयणाए'' (गा० २५९०) इत्यादिगाथोक्तया यतनया तेषां परिहर्त्तुं शक्यत्वान् । ये तु तासामनिश्रिनाना नरु- 20 णादिससुन्या दोषा सवन्ति तेऽसाध्याः, असाध्यदोषपरिहारेण च साध्यदोषानादियमाणाना यननया च तत्ररिहारं कुर्यन्तीना न कश्चिद्दोष इति ॥ २६२०॥

उक्तो द्रव्यपतिबद्धे विधिः । अथ भावपतिबद्धे विधिमाह—

पासवण-ठाण-रूवा, महो य प्रमंसमन्निया जे उ । भावनिवंघो नामिं, दोसा न तं च विद्यपदं ॥ २६२१ ॥

25 ये च प्रश्रवण-स्थान-रूप-शब्दाः 'पुमास' पुरयमाश्रितास्तः प्रतिबद्धा या शब्या तस्या 'नासा' सार्ध्वानां 'भावनिवन्धः' या भावपतिबद्धेति भावः । अत्र च द्योपान्त एव पृवीक्ताः, द्वितीय-पदमपि तदेव मन्तव्यम् ॥ २६२१ ॥ यस्तु विशेषन्तसुपदर्शयति—

विद्यपय कारणम्मी, भावे मह्म्मि प्वलियखाओ । तनो ठाणे रूवे, काद्य मविकारमह् य ॥ २६२२ ॥

30 हिनीयपेंट 'कारणे' अञ्जनिर्गमनाचै निर्देशिपाश्रयस्त्राप्राप्ती मानप्रतिबद्ध तिष्टन्यः प्रथैमं प्रात्रिकाखादस्य-बध्यमाणन्खणस्य शब्दप्रनिबद्धे तिष्टन्नि, तनस्तस्यव स्थानप्रतिबद्धे, ननो

१ °द्वीपाया चसनेरप्रामी ना०॥

र °मं "वृत्रियगाद" चि पूपलिका म्याद्तीति पृपलिकाखादः नस्य पृप° सं० ॥

15

रूपप्रतिवद्धे, ततैः काथिक्या वायुकायस्य वा यो व्युत्सृजतः शब्दो भवति तेन 'सविकारे' सदोषे तस्यैव प्रश्रवणप्रतिवद्धे तिष्ठन्ति ॥ २६२२ ॥ पूपिलकाखादकस्य खरूपमाह—

नर्ड-सयाउगो वा, खद्दामल्लो अर्जगमो थेरो। अन्नेण उद्दविजद, भोइजइ सो य अन्नेणं।। २६२३।।

यः स्थिवरो नवतिवार्षिको वा जतायुष्को वा—सम्पन्नशतवर्ष इत्यर्थः, 'खट्टामल्लो नाम' 5 प्रवलजराजर्जरितदेहतया यः खट्टाया उत्थातुं न शकोति, अत एवासौ 'अजङ्गमः' गमन- कियासामर्थ्यविकलः, खट्टाया अपि चान्येन परिचारकादिनोत्थाप्यते अन्येन चासौ 'भोज्यते' भोजनं कार्यते एप पूपलिकाखादकः ॥ २६२३ ॥ अस्यैव व्युत्पत्तिमाह—

प्वलियं खायंती, चन्बचवसह सो परं कुणइ।

एरिसओ वा सदो, जारिसओ प्रभिवेखस्स ॥ २६२४ ॥ बादन' भूष्यम दन्नानामभावाद यसादसी 'एरं' केवलं नक्तनायहरं सरे

पूँपिलकां 'खादन्' भक्षयन् दन्तानामभावाद् यसादसौ 'परं' केवलं चञ्चचवाशव्दं करोति तेन पूपिलकाखादकः । यादशो वा पूपभक्षिणः शब्दो भवति ईदशो यस्य भाषमाणस्य शब्दः स पूपिलकाखादकः ॥ २६२४ ॥

सो वि य क्कडंतरितो, खाहुत्थूभाउ कुणइ जत्तेणं। परिदेवइ किच्छाहि य, अवितकंतो विगयभावो।। २६२५।।

'सोऽपि च' पूपिलकाखादकः स्थिवरः सयतीप्रतिश्रयस्य कुड्यान्तरितो वर्तमानः ''खाहु-हूमाउ'' ति काशित-निष्ठीवने ते द्वे अपि 'यत्नेन' कष्टेन करोति, क्रच्छूाचासौ 'पैरिदेवते' करणतीति भावः, 'अवितर्कमानः' वितर्कमकुर्वन् 'विगतभावः' निरिमसन्धिहृदयः ग्रुप्त-मत्त-मूच्छितादिरिवाव्यक्तचेतनाक इत्यर्थः, ईदृशेन पूपिलकाखादकशब्देन प्रतिवद्धे निर्भन्थीभिः प्रथमं स्थातव्यम् । तदभावे तस्यव स्थानप्रतिवद्धे, ततो रूपप्रतिवद्धे, ततः प्रश्रवणप्रतिवद्धेऽपि 20 ॥ २६२५ ॥ आह किमन्न पूपिलकाखादकप्रतिवद्धे रागोद्धवो न भवति व उच्यते—

> अवि होज विरागकरो, सदो रूवं च तस्स तदवत्थं। ठाणं च कुच्छणिजं, किं पुण रागोव्भवो तम्मि॥ २६२६॥

'अपि' इत्यभ्युच्चये, 'तस्य' पूपिलकाखादकस्य स्थविरस्य सम्बन्धी यः काशित-परिदेवना-दिकः शब्दः, यच 'तदवस्थं' तस्यामवस्थायां वर्त्तमानं वली-पलित-खल्त्यादिकं रूपम् , यच तस्य 25

१ त० हे० मो० छे० विनाऽन्यत्र—ततः कायिकीप्रतिवद्धे, ततस्तस्यैव व्युत्सृजतो यः सवि-कारो वायुकायशब्दो भवति तत्रापि तिष्ठन्ति मा०। ततः कायिकीं व्युत्सृजतः तस्या पव कायिक्या का०। "असित तस्तेव रूवपिटवद्धे, असित तस्तेव पासवणपिटवद्धे, सिवकारे ति वोसिरंतो वाउक्षायसद्दं करेति॥" इति न्यूणीं विशेषन्यूणीं च॥

२ पूपिलका 'खादन्' भक्षयन् शेपभाषणे शक्तिविकल्तवाद् यसादसौ 'परं' केवलं चव-चवाशब्दं करोति तेन च शब्देन पूपिलकां खादन् ज्ञायते अतः पूपिलकाखादक उच्यते । अथवा यादशः पूपभक्षिणः शब्दो भवति ईदशो यस्य स्थविरस्याव्यक्तवर्णविभागः शब्दः स पूपिलकाखादकः ॥ २६२४॥ का०॥ ३ "परिदेवित ति कणित" इति चूणौं ॥

19

20

विष्मृत्र-केनाग्रगुचिपद्विलं 'कुत्प्रतीयं' जुगुप्नास्परं स्तानं तानि यस्त कीपां विरागकराग्येव, कुतः पुनन्तत्र रागोद्धवो मित्रग्यति ! । अय पृष्ठिकास्तादकप्रतिवदं नावाप्यते तता यण निर्प्रन्थानां कटकचिलिनिलिकादिका यतना मित्रना (गा० २६०५) तया निर्प्रन्थानामित दृष्टक्य ॥ २६२६ ॥ अत्र परः प्राह्—

एयारिनम्मि रुवे, संद् वा संवर्षण वह्रश्रुण्णा । समणाण किंनिमिनं, पडिसेहो एरिसे मणिको ॥ २६२७ ॥

गीद 'एनाहरें)' पृप्रिकानाद्रकरान्त्रनित्र रूपे शब्दे वा संग्रनागमनुद्रा क्रियने वार्हि श्रमणानां किनिनित्तम् 'इंद्रो' स्वित्रकीमंश्रितं रूपादिप्रतित्रहे प्रतिषेत्रो' मणितः ! तेपामि तत्र वन्तुं हुक्तमिनि मातः ॥ २६२ ॥ मृरिगह—

> मोहोदएण जह ना, जीवविज्ते वि इत्यिद्हम्मि । दिह्या दोसपवित्ती, किं पुण सजिए मवे देहे ॥ २६२८॥

यदि ताबद् मोहोदयेन जीववियुक्तेऽनि स्रीदेहे पुरमणां प्रतिस्वन दोषप्रशृतिर्देश निर्द नि पुनः मजीवे देहे स्वविराणः सम्बन्धिनि ? तत्र सुतरां सविष्यतीति मावः, अवस्तेषां तत्रानि प्रतिषेयः कृतः । निर्प्रन्यानां तु पूर्णलेकालादकप्रतिबद्धे सत्य एव दोनः सनिश्रितानां तु महा-16 निनि तामां तत्र बन्तुमनुहायने ॥ २६२८ ॥

> ॥ प्रतिबद्धराज्याप्रकृतं समाप्तम् ॥ —————— गा था प ति इ ह म घ्य वा स प्र कृ त म्

मूत्रम्—

नो कप्यइ निग्गंथाणं गाहावइकुछस्स मन्झंमन्झेणं गंतुं वत्थए॥ ३२॥

अत्र मन्दन्यगायानाङ्—

जह चेत्र य पहितंत्रो, निवारिओ सुविहियाण गिहिएसु । नेनिं चिय मन्त्रेणं, गंतृण न कव्यए जोगा ॥ २६२९ ॥

र्यंथव पूर्वम्रेत्र 'गृहिषु' गृहस्त्रविषयो द्रव्यतो मावतश्च प्रतिवन्त्रः 'सुविहितानां' साष्ट्रनां १८ निवारितक्रियवात्रापि 'तेयामेव' गृहिष्णां मध्येन गत्ना यत्र निर्गन-प्रवेशा क्रियते तत्र वस्तुं न कल्पन इति निवार्यते । एषः 'छोगः' सम्बन्तः ॥ २६२९ ॥

अनेन मन्त्रन्येनायादस्यास व्यास्या—नो करूपने निर्यन्यानां गृह्यनिक्ररुस मस्यमध्येन गत्ना यत्र निर्गम-प्रदेशो क्रियेने नत्रोपाश्रये वस्तुन् । उपरक्ष्यमित्रम् तेन गृहसायत्र मंयदो-पाश्रयस्य मस्यमध्येन निर्गच्छन्ति वा प्रविद्यन्ति वा तत्रापि न करूपते वस्तुमिति स्त्रार्थः ॥

१ धो निर्मन्यम्बे सनि हां ॥

अथ विस्तरार्थं भाष्यकृत् प्रतिपादयति—

मज्झेण तेसि गंतुं, गिही व गच्छंति तेसि मज्झेणं । पविसंत निंत दोसा, तहियं वसहीएँ भयणा उ ॥ २६३० ॥

'तेषाम्' अगारिणां मध्येन गत्वा यत्र प्रविद्यते निर्गम्यते वा, गृहिणो वा 'तेषां' संय-तानां मध्येन यत्र गच्छन्ति तत्र न करूपते वस्तुम् । कुतः व् इत्याह —'तत्र' ताहशे उपाश्रये उ संयतानां गृहिणां वा प्रविश्वतां निर्गच्छतां च दोषा भवन्ति, ते चोषरिष्टादिभधास्यन्ते (गा० २६४०)। तथा वसितं प्रविष्टानां सयतानां वसितविषयाः पूर्वोक्ता ढोषास्तत्र भवेयुर्वा न वेत्येवं भजना कार्या — यदि प्रतिबद्धा वसितस्तदा प्रतिबद्धश्चरयास्त्रोक्ता दोषा भवन्ति, अथ न प्रतिबद्धा ततैस्ते न भवन्ति ॥ २६३०॥ अथ मध्यपदं व्याख्याति—

> सन्भावमसन्भावं, मज्झमसन्भावतो उ पासेणं । निन्वाहिमनिन्वार्हि, ओकमइंतेस सन्भावं ॥ २६३१ ॥

मध्यं द्विधा—सद्भावमध्यमसद्भावमध्यं च। तत्र सद्भावमध्यं नाम-यत्र गृहपतिगृहस्य पार्थेन गम्यते आगम्यते वा छिण्डिकयेत्यर्थः, "ओकमइंतेष्ठ" ति गृहस्थानाम् ओकः-गृहं सयताः संयतानां च गृहस्था मध्येन यत्र 'अतियन्ति' प्रविशन्ति उपलक्षणत्वाद् निर्गच्छन्ति वा तदेत-दुभयमपि सद्भावतः—परमार्थतो मध्यं सद्भावमध्यम् । तच्च प्रत्येकं द्विधा—निर्वाहि अनिर्वाहि 15 च। तत्र गृहपतिगृहस्य संयतोपाश्रयस्य च यत्र पृथक् फलिहकं तद् निर्वाहि । यत्र पुनस्त-योरेकमेव फलिहकं तद्निर्वाहि ॥ २६३१॥ अस्य चतुर्विधस्यापि त्रयः प्रकारा भवन्ति, तद्यथा—

सौला य मज्झ छिंडी, निग्गंथाणं न कप्पए वासी । चउरो य अणुग्धाया, तत्थ वि आणाइणो दोसा ॥ २६३२ ॥

शाला १ मध्यं २ छिण्डिका ३ चेति त्रयो भेदाः । एतेषु त्रिष्विप निर्मन्थानां न करुपते 20 वासः । अथ वसन्ति ततश्चत्वारोऽनुद्धाता मासा भवन्ति । तत्राप्याज्ञादयो दोषाः ॥ २६३२ ॥

तत्र शालापदं व्याचिख्यासुः प्रथमतो द्वारगाथामाह-

सालाऍ पचवाया, वेउन्वियऽवाउडे य अदाए। कप्पट्ट भत्त पुढवी, उदगऽगणी वीय अवहने।। २६३३।।

शालायां तिष्ठतां 'प्रत्यपायाः' दोषा वक्तव्याः । तथा वैक्रियेऽपावृते चाक्रादाने उड्डश्चकादयो 25 दोषाः । "अद्दाए" ति साधुमपावृतं दृष्ट्वा गृहस्था आदर्शो दृष्ट इत्यमक्तलं मन्यन्ते । करूपस्थानि वा तत्र निर्गम-प्रवेशपथे भवेयुः तेषां हस्त-पादायुपघातो भवेत् । तथा भक्तं—भोजनं तत्रावष्य-ष्कणादयो दोषाः । तथा पृथिव्युदकामिवीजानां विराधना । "अवहन्ने" ति उद्खलं तत्र वीजकायं कण्डयन्त्यः स्त्रियः शृक्तारगीतानि गायेयुः तदाकर्णने विश्रोतसिका समुत्पवते इति द्वारगाथासमासार्थः ॥ २६३३ ॥ अथ विस्तरार्थं प्रतिद्वारमिधित्सुराह—

१ °तस्तद्विषया दोपा न भ° मा॰ का॰॥

२ "अधुना निर्युक्तिविस्तरः-सन्भाव॰ गाधा" इति चूर्णी विशेषचूर्णी च ॥

३ साला मज्हें छिंडी ता॰ ॥

सालाए कम्मकरा, घोडा पेमा य दास गोवाला । पेह पर्वचुडुंचय, असहण कलहो य निच्छुमणं ॥ २६३४ ॥

गृह्पतेः जालायां ये 'कर्मकराः' मृतकाः, ये च 'घोटाः' चद्यः, 'प्रेप्याः' प्रेषणयोग्या आजिष्ठकग इत्यर्थः, 'टासाः' गृहजातकाः कीना या, 'गोपालः' प्रतीताः । एते शालायां तिष्टन्तः ध्रायाना या 'प्रेक्षा' प्रत्युपेक्षणां कुर्वाणाना साधृनां प्रपञ्च कुर्वन्ति, तथेव प्रत्युपेक्षन्ते इत्यर्थः । यहा प्रपञ्चो नाम—उपहासवचनम्—अहो ! वहवः प्राणजातीया एतेषु चीवरेषु पितता इत्यदि । मृत्रार्थपरावर्तनाठा वा 'टड्डञ्चकाः' उद्धेटकास्तान् कुर्वन्ति, आलापकान् कर्णाघाटकन पिटन्या तथेवोच्चग्नतीत्यर्थः । तत्र कश्चिदमहनः साधुस्तः कर्मकरादिमिः सह कल्हं करोति तत्रास्थिमङ्गादयो होषाः । स च गृहपितस्तः कर्मकरादिभिक्तेजितः साधृन् निष्काशयेत् । 10 निष्काशितानां च वसत्यर्थ पर्यटनां लोको बृयात्—याद्यममीषां चेष्टितं ताद्दगेवामीषां फल्मुपनतिमत्यादि ॥ २६३४ ॥ किञ्च—

आवासग सज्झाए, पडिलेहण धंजणे य मासा य । उचारे पामवणे, गेलने जे मवे दोसा ॥ २६३५ ॥

आवश्यकं स्वाध्यायं प्रतिलेखना च यदि सागारिकाः पञ्यन्तीति कृत्वा न कुर्वन्ति अवि16 िषना वा कुर्वन्ति तदा तिलप्यनं प्रायश्चित्तम् । मोजनं—समुद्देशनं तच्च मण्डस्यां तुग्वकेषु वा कियमाणं दृष्ट्वा सागारिका जुगुप्सां कुर्युः । ''मास'' ति संयतभाषाः श्चत्वा सागारिका गृहीयुः । उच्चारं प्रश्रवणं वा कियमाणं दृष्ट्वा प्रपञ्चादिक कुर्वन्ति । अथ तयोनिरोधः कियते तत आत्मविराधना । ग्लानो वा कश्चिद् भवेत् स सागारिकेषु पञ्यत्य महत्या दुःखासिकया तिष्ठति, ततस्त्रस्य या परितापना तिल्यन्तं प्रायश्चित्तम् । एवमावश्यकादिषु ये यत्र दोषाः 20 सम्भवन्ति ते तत्र वक्तस्या दृति होषः ॥ २६३५ ॥ तथा—

आहारे नीहारे, भासादोसे य चोदणमचोदे ।

किञ्चासु य विकहासु य, वाउलियाणं कओ झाओ ॥ २६३६ ॥

आहार नीहार च दोषविमाषा यथाऽनन्तरगाथायाम् । "भासादोसे य" ति दहृरमाषामिभीष्यमाणामिरष्काय-योजन-विण्जादयो दोषाः । "चोदणं" ति यदि साधृनां सामाचारीषु सीदना
25 नोदना कियते तदा सागारिकास्त्रथेव प्रषञ्चं कुर्युः । "अचोए" ति अनोदयता तु सामाचारीमहो भवेत्, आज्ञा-ऽनवस्थादयश्च दोषाः । तथा ते कर्मकरादयस्त्र नानाविधाभिः कीडाभि
कीडन्ति, स्रीकथाप्रमृतिकाश्च विविधाः कथाः कथयन्ति, तासु च यथाकमं विलोक्यमानासु
श्रूयमाणासु च व्याकुलितानां साधृनां कुतः साध्यायो मविष्यति ।। २६३६ ॥

गतं प्रत्यपायद्वारम् । अथ वैक्रियद्वारमपावृतद्वारं चाह-

30 वंदामि उप्पलजं, अकालपरिसडियपेहुणकलावं।

घम्मं किह शु न काहिइ, कन्ना जस्सेचिया विद्धा ॥ २६३७ ॥

कस्यापि साधोः समावतो विकियातो वा सागारिकं त्वचाविरहितं मवेत्, ततस्तदपावृतं दृश कर्मकरादयः पपञ्चेन तुवते—वन्देऽहमसुमुत्पलार्थं साञ्चम्, अकाले—अनवसरे परिशटितः

15

पेंहुणं-पिच्छं तदेव कलापो यस्य स तथा तम् । यद्वा कस्यापि महाराष्ट्रादिविषयोत्पनस्य साधोरङ्गादानं वेण्टकविद्धम्, ततस्तद् दृङ्गा बुवते—कथं नु नामासौ साधुर्धमै न करिण्यति यस्येयन्तः कर्णा विद्धाः ? ॥ २६३७ ॥ एवं च तैः प्रपञ्चेनोक्ते सति किं भवति ?—

> अहिगरणं तेहि समं, अञ्झोवायो य होइ महिलाणं। तकम्मभाविताणं, क्रतहरूं चेव इतरीणं ॥ २६३८ ॥

5 यः कोपनः साधुः स तैः सममधिकरणं करोति, ततश्चास्थिमङ्गादयो दोपाः । तथा या महेलास्ताद्दोन विकुर्विताङ्गादानेन यत् कर्म-प्रतिसेवनं तेन भावितास्तासां तस्मिन् साधावध्युप-पातो भवति । इतरासा कुतूहरूमुपजायते ॥ २६३८ ॥ अथादर्शद्वारं व्याख्यायते । तान् साधूनपावृतान् प्रतिमास्थितान् दृष्ट्वा कर्मकरादयः प्रपञ्चेन व्रवीरन्---

अदाइय ने चयणं, वचामो राउलं सभं वा वि । गोसे चिय अदाए, पेच्छंताणं सुहं कत्तो ॥ २६३९ ॥

'आद्शितम्' आद्शेदर्शनेन पवित्रीम्तं तावदसाकं वदनम्, अतो त्रजामो राजकुरुं वा समां वा । यद्वा ते प्रभात एव साधूनां पुतावपावृतौ दृष्ट्वा प्रकुपिताः सन्तो ब्रुवते-अहो ! ''गोसे'' प्रभात एवादशौँ पश्यतामसाकमद्य कुतः सुखं भविष्यति !। एवं तैरुक्ते त एवाधि-

करणादयो दोषाः ॥ २६३९ ॥ अथ कल्पखद्वारं व्याचष्टे-

हत्थाईअक्रमणं, उप्फुसणादी व ओहुए कुझा।

गेलच मरण आसिय, विणास गरिहं दिय निसिं वा ॥ २६४० ॥

तत्रागमन-निर्गमनपथे चेटरूपाणि भवेयुः तेषा साधुभिरागच्छद्भिर्निर्गच्छद्भिश्च हस्त-पादा-द्याक्रमणं भवेत् । अथासौ कल्पस्थः साधुना केनापि 'अवधुतः' उल्लङ्खित इत्यर्थः, ततस्तदीया माता तस्याप्कायेनोत्तपर्शनम् आदिश्रहणाद् रुवणोत्तारणं वा कुर्यात् । यदि वा स करपस्थो 20 ग्लानीभवेद्वा म्रियेत वा तदा तदीया माता-पित्रादयः खजना व्रवीरन् मन्येरन् वा-तेन श्रम-णकेनासादीय एष दारकसादानीमुछिद्वितः तत इत्थं ग्लानत्वं पञ्चत्वं वा प्राप्तवान् । ततः प्रद्वि-ष्टास्ते "आसिय" ति शालायाः साधूनां निर्धाटनं कुर्युः । "विणास" ति येन साधुना स कल्पस्थ उल्लिह्वितस्तस्य 'विनाशं' मारणं कुर्युः, यद्वा ते साधवस्तेन शय्यातरेण निष्काशिताः स्तेन-श्वापदादिभिर्विनाशमामुयुः । "गरिहं" ति लोकतो गर्हामासादयेयुः—किमेते [S] शोमनैः कर्म-25 भिर्निण्काशिताः ? इति । सर्वमध्येतद् निर्धाटनादिकं दिवा चा निशायां वा कुर्युः । यदि दिवा निष्काशयन्ति तदा चतुर्रुषु, रात्रौ निष्काशयन्ति चतुर्गुरु ॥ २६४० ॥ अथ भक्तद्वारमाह—

भोत्तव्वदेसकाले, ओसकऽहिसकणं व ते कुञा। दरभुत्ते वऽचियत्तं, आगय णिते य वाघाओ ॥ २६४१ ॥

मोक्तव्यं-भोजनम् , 🗠 अविवक्षितकर्मकत्वेन भावे तव्यप्रत्ययस्य समानीतत्वात् , 🗠 तस्य 30 देशकाले 'ते' गृहस्था अवप्वप्कणमभिष्वष्कणं वा कुर्युः । तत्रावष्वष्कणं नाम-यावित्रर्ग-च्छिन्ति साधवस्तावद् वयं भोजनं कुर्महे, अभिष्वष्कण-निर्गच्छन्तु तावद् भिक्षार्थं साधवस्ततो

१ ॳ ▷ एतचिह्नमध्यगतः पाठ. का० प्रतावेव दृश्यते ॥

मोध्यामहै । अथ ते 'दर्मुकाः' अर्द्धममुद्दिष्टास्तनः मावुषु गमनाऽऽगमनं कृतीणेषु महत्प्री-तिकं कुर्वन्ति । अथापीतिकमयाद् भिक्षाया आगता भिक्षां निर्गच्छन्तो वा गृहस्यान् समुद्दि-गृनः प्रतीक्षन्ने वतः समुद्गु-साच्यायादीनां मिक्षायात्र व्यायातो मनति ॥ २६११ ॥

अय पृथिन्युद्का-ऽमि-वीजा-ऽवहत्वद्वागणि व्यास्याति---

कुड्डाइलिंपणड्डा, पुढर्वा दगवारगो य उदित्ता । क्यविक्यमंबहण, घनं तह उक्खल तह य ॥ २६४२ ॥

कुट्यस मृन्या वा लिग्यनार्थं तत्र 'पृथ्वी' मृत्तिका 'दकवारकश्च' पानीयवटः सापितो मंत्रत् तत्र गच्छनानागच्छता वा पृथिव्यप्कायविगयना । "टिइ्त" ति अग्निकायः ग्रीनकाले उद्दीपिनी मुबेत् तत्रापरिणतादयः प्रतापयेयुः । < ''येत्रं'' ति विभक्तित्र्यत्ययाद् > वान्यस्य वा 10क्रयविक्रयार्थे तत्र मंबद्नं मञ्जन् तन्य सङ्घहनादिनिय्यत्रं प्रायश्चित्तम् । तथा तत्रोद्न्वछं 'तटे' यन्यासन्नयदेदो स्वापितं मनेत्, तत्र चानिरितका वीजकायं कण्डयन्यः शृक्तार्गातानि गायन्ति, तेषु च श्र्यमाणेषु विश्रोतिसका समुपजायते ॥ २६७२ ॥

> एवं ता प्रमुहम्मी, जा साला कोहुतो अलिंदो वा । भूमीइ व मालिम्म व, ठियाण मालिम्म सविसेमा ॥ २६४३ ॥

15 एवं ताब्द 'प्रमुखे' गृहद्वारे या शास्त्र वा कोष्टको वा अलिन्दको वा तत्र दौषा टक्ताः । एने च शाला-क्रोष्टका-अलिन्दका मुमा वा माले वा मत्रेयुः । तत्र मुमा तिष्टनां दोषा मणिताः । अथ माळोपरिवर्षिषु छाळादिषु तिष्टन्ति तत एत एव दोषाः सविशेषा द्रष्टच्याः ॥ २६४३ ॥

तथा च तमेत्र निशेषं दशेयति—

20

दुरुईत ओरुमेंने, हिट्ठियाण अचियत्त रेणू य । संकाय संक्रुहेंते, पडणा मत्ते य पाण य ॥ २६४४ ॥

विसन् माळे यदा साष्ट्ररागेहित वा अवरोहित वा वदा वस ये पादरणविदेशस्यानां गृहस्थानामुपरि प्रपत्रद्भिन्तेषां महद्भीतिकत्तुत्पर्यते । तथा स सामुरारोहन्नवराहन् वा अवः-सिवानां गृहसानाम् 'अपावृते। दर्शनपथं मा गमन्' इति शङ्कया द्वावप्यृतः सङ्कोचयन् वसं च 25 संयमयन् प्रपतत् । पनितस्य च पादादिविरायनाः, मक्तत्य च पानस्य च मृसो परिगङना भवति ॥ २६९१ ॥ गतं ग्रालाद्वारम् । अथ मध्यद्वारमाह-

उच्चरए वसमीद व, अंतो अन्नत्य वा वसंनाणं। ने चेव तत्य दोसा, सविसेसतरा इमे अन्ने ॥ २६४५ ॥

चतुः ग्रास्त्रदिगृह्स्य यद् 'अन्तः' मञ्चं तत्रापवरके वा वस्त्रिकायां वा 'अन्यत्र वा' अवि-थ्य देशित गृहमध्ये वसर्तां ये बाङाया प्रत्यायाद्या दोषा उक्ताः (गा० २६३३) त एवात्रानि द्रष्टत्र्याः, परं सविशेषतराः । ते च विशेषदोषाः 'इमे' अनन्तरमेव वक्ष्यमाणाः ॥ २६२५ ॥ तानेवाह-

१ 🕬 एनविह्मप्रागतः पाठः छाँ० प्रतावेव हत्र्यते ॥

अंइगमणमणाभोगे, ओभासण मज़णे हिरने य । ते चेव तत्थ दोसा, सालाए छिंडिमज्झे य ॥ २६४६ ॥

गृहमध्ये तिष्ठतामनाभोगेनान्यस्मिन्नपवरके 'अतिगमनं' प्रवेशो भवेत् । तत्र प्रविष्टस्य चाविरितका अवभाषणं कुर्यात् । मज्जनं च शय्यातरादिना कियमाणं दृष्टा स्मृति-कोतुके जायेते । हिरण्यं—रूप्यं चशब्दाद् भोजनादि च तत्र विप्रकीर्णं भवेत् तत्र मन्दर्धमणः कस्या- ६ प्याकाङ्का भवति । एते विशेषदोषाः । शेषास्तु प्रस्तुते मध्यद्वारे वक्ष्यमाणे च छिण्डिकाद्वारे त एव मन्तव्या ये शालाद्वारे पूर्वमुक्ताः ॥२६४६॥ अथातिगमनमनाभोगे इति द्वारं व्याचष्टे—

उभयद्वाय विणिग्गऍ, अइंति सं पईं ति मन्नएऽगारी । अणुचियघरप्पवेसे, पडणा-ऽऽवडणे य कुइयादी ॥ २६४७॥

कोऽपि संयत उमयं—कायिकी-संज्ञे तद्युत्सर्जनार्थ रात्रौ निर्गतः, स च प्रत्यागच्छन् 'आत्मी- 10 योऽयमपवरकः' इति मन्यमानोऽपरमपवरकम् 'अतियात्' प्रविशेत्, तत्र चाँगारी कायिकाद्यर्थ- निर्गतमर्नुका तं संयतमन्धकारनिकरनिरुद्धलोचना सं पतिं मन्येत, तत्रश्च परिष्वजेत्, स च मर्चा प्रविष्टस्तं संयतं तत्र स्थितं मत्या प्रहणा-ऽऽकर्षणादीनि कारयेत्, यद्वा तत्क्षणादेव तं तत्रैवापद्रावयेत्, सर्वेषां वा साधूनां निष्काशनं कुर्यात् । 'अनुचिते वा' अज्ञाते गृहे प्रवेशं कुर्वतो रात्रौ स्तम्मादिष्वापतन-प्रपतनादयो दोषाः । यद्वा तस्या अगार्याः पतिस्तत्र न स्वाधीनः, 15 स च संयतः प्रविष्टसस्याः शयनीयं स्पृष्टवान्, तया च 'क्जितं' महता शब्देन प्रकृतमित्यर्थः, ततस्तत्र भूयान् लोको मिलितः, तया च वृत्तान्ते निवेदिते भवति महानुङ्खाहः प्रवचनस्य, आदि-शब्दाद् प्रहणा-ऽऽकर्षणादयो दोषाः ॥ २६४७ ॥ अथावभाषणद्वारमाह—

अद्विगिमणद्विगी वा, उड्डाहं कुणइ सव्विनच्छुभणं। तेणुन्भामे मन्नइ, गिहिआविडओ व छिको वा ॥ २६४८॥

यस्या अविरितकायाः पितर्न साधीनः सा यदि स्वयम् 'अर्थिका' मैथुनार्थिनी ततस्तं साधु-मवभाषेत—मया सममुपसुद्दक्ष्व भोगानिति । यदीच्छिति ततः संयमिवराधना, अथ नेच्छिति ततः सा उड्डाहं कुर्यात् । अथासौ स्वयं नार्थिका परं सयतः क्षुभितचित्तस्तामवभाषते ततोऽप्येषा प्रवचनोड्डाहं करोति, सर्वेषां वा साधूना निष्काशनं कुर्यात् । यद्वा अविरितकस्तदानीमिवर-तिकया सह तिष्ठति, सयतश्च प्रविश्य तस्य गृहिण उपरिष्टादापिततो वा हस्तादिना वा तं 25 "छिको" ति स्पृष्टवान् ततोऽसौ 'स्तेनोऽयम्, उद्धामको वाऽयम्' इति मन्येते, ततश्च तं साधुं परितापयेद्वा विनाशयेद्वा । अथासौ ज्ञातो यथा 'संयतोऽयम्' ततः शङ्कां कुर्यात्—'किं मन्ये प्रतिसेवनार्थमायातः वत स्वोपाश्रयद्वारमजानानः व इत्येवं शङ्कायां चतुर्गुरु, य प्रतिसेवनार्थ-मेवेति ⊳ निःशङ्किते मूलम् ॥ २६४८ ॥ अथ मज्जनद्वारमाह—

१ अभिगम° ता॰ ॥ २ एषा द्वारगाथा । अथैनां विवरीषुरतिग्° का॰ ॥

३ च उभयमपि व्युत्सृज्य प्रत्या भा ॥ ४ चाविरतिकाया भर्ता पूर्वमेव कायिक्याद्यर्थ निर्गतो विद्यते, सा चाविरतिका तं संयतमन्ध भा ॥

५ °न्यमानस्तं साधुं भा० ॥ ६ ०० ० एतदन्तर्गत पाठः भा० त० डे० नास्ति ॥

मजणविहिमजंतं , दहु सगारं सर्डेकरणमादी । मिजायरीउ अम्ह वि, एरिसया आसि गेहेसु ॥ २६४९ ॥ तामि क्वचोरु-जघणाइट्सिणे खिप्पऽइक्सो कीवे । इत्यीनाइ-सुद्दीण य, अचियत्तं छेदमाईया ॥ २६५० ॥

र्व मैजनिविधिनीम—स्मानयोग्या महती प्रित्रया तया मजन्तं सागारिकं तत्र चतुःशास्यदिगृहमध्ये हृष्ट्रा मुक्तमोगिनां स्मृतिकरणम्भुक्तमोगिनां तु कें।तुक्रमुपनायते । अय्यातरीरिप तथेव मज्जन्ती-हृष्ट्रा भुक्तमोगिनामीहस्योऽसाकमि नेहृषु गृहवासे वसतामासन्निति स्मृतिस्त्ययते ॥२६४९॥

तथा 'तासा' राज्यातरस्त्रीणा मजन्तीनां हचोरु वमनादिदंशने 'हीवस' दृष्टिहीवास्यस 'सिप्रं' श्रीष्ठम् 'अतिक्रमः' त्रस्वतिवस्य मवति । ततश्च ये स्त्रीणां ज्ञातयः—मातापितृप्रभृतयः वस्त्रता ये च मुहदः—मित्राणि ते महद्भीतिकं तद्रस्यान्यद्रस्यस्यक्येत्रं वा हुर्युः, आदिश-हदाद् प्रह्णा-ऽऽक्रपंणादिप्रस्यणयनिकुरम्वं राजपुरुषेः कारापयेयुः ॥ २६५० ॥ अपि च—

आसंकितो व वासो, दुक्खं तरुणा य सन्नियत्ते । घंतं पि दुव्वलासो, खुव्मद् वलवाण मन्झिम्म ॥ २६५१ ॥

तंत्र स्रीप्रमृतिप्रस्यपायाग्रङ्ग्या सदैवाग्रहितो वासो मवति । ये च तरुणास्ते शय्यातरीणा 15 मज्जन्तीनामङ्ग-प्रन्यङ्गनिरीक्षणादेर्दुःखेन 'सन्निवर्चयितुम्' उपरमयितुं शक्यन्ते । तथा ''वंतं पि'' ति अत्यन्तमपि दुर्वेलः—क्षीणवपुरश्चो वडवानां मध्ये वर्चमानः क्षुम्यति, एवं तरुणा अत्यन्ततपोनिष्टसवपुपोऽपि स्त्रीणां मध्ये तिष्टन्तः क्षोमसुपगच्छन्तीति ॥ २६५१ ॥

र्गतं मजनद्वारम् । अत्र हिरण्यद्वारमाह—

तत्व उ हिरण्णमाई, समंतवो दहु विप्यक्तिन्नाई। स्रोमा हरेज कोई, अनेण हिए व संकेजा॥ २६५२॥

'तत्र' चतु शालादिगृहमध्ये 'हिरण्यं' रूप्यम् आदिशब्दात् सुवर्ण-मणि-माक्तिकादि सम-न्ततो निप्रकार्णम्—इतन्ततो निक्षिप्तम् आदिशब्दादन्यथा वा सुत्कलं शून्यं च दृष्टा कश्चिद् निर्धर्मा लोमादपहरेत्, अपहृत्य चोत्पन्नतेदिति मानः । अन्येन वा केनचिदपहृते स शब्या-

१ 'यरीसु अम्ह मा॰ । एतर्तुतारेणैय मा॰ प्रती टीम्र, रज्यता टिप्पर्धा ३ ॥

२ मद्भनं-स्नानं तस्य विधिः-प्रकारः सर्णसचितस्नानपीठोपवेशनादिस्पा महती स्नान-योग्या प्रक्रियेति भावः, तेन मद्मनविधिना मद्भनं मा॰ ॥

३ ^०तर्राप्वसङ्गतविभृषितासु द्रष्टासु मुक्त^० मा॰ ॥

ध "द्धीने "कींवे" चि पष्टी सतस्योर्थ प्रत्यमेदात् 'ही" का ।।

५ तत्र आद्यद्भित एव वासो भवति, र्खाप्रभृतिप्रत्यपायाद्यद्भया सदैव तत्र भयाकुलित-हृद्येः स्वातव्यमिति भावः । ये च वरणास्त यद्यपि तपसा क्षीणवपुपस्तयापि तत्र र्खाणां मध्ये दुःखेन 'सन्निवर्त्तयितुं तदङ्ग-प्रसद्ग निरीक्षणादेरूपरमितृतं द्यक्यन्ते । अमुमेवार्थ प्रतिवस्तुपमया दृदयति—"धंतं पि" इत्यादि । अत्य मा ॥

६ गतं सप्रसद्धं मञ्च° मा॰ ॥ ७ °र्णादि दृष्ट्य कश्चि° मा॰ त॰ दे॰ ॥

तरः संयतान् शङ्केत ॥ २६५२ ॥ गतं मध्यद्वारम् । अथ छिण्डिकाद्वारमाह— छिंडीइ पचवातो, तणपुंज-पलाल-गुम्म-उक्कुरुडे । मिच्छत्ते संकादी, पसजणा जाव चरिमपदं ॥ २६५३ ॥

इह यस्यादिछण्डिकाया मध्येन गत्वा पुरोहडे प्रविश्यते तस्या द्वारमूले यः प्रतिश्रयः, यद्वा छिण्डिका—पुरोहडं तत्र यस्या वसतेद्वीरं तत्र तिष्ठतां प्रत्यपाय उच्यते । तत्र पुरोहडे तृणपुञ्जो ६ वा पलालपुञ्जो वा 'गुल्मा वा' नवमालिका-कोरण्टकप्रमृतयः 'उत्कुरुदा वा' इष्टका-काष्ठादि-राशिरूपा भवेयुः तत्र वक्ष्यमाणा दोषाः । तत्र चोपाश्रये स्थितान् साधून् दृष्ट्वा केचिदिमिनव-धर्माणो मिथ्यात्वमुपगच्छेयुः । अथवा 'किं मन्ये मैथुनार्थिन एतेऽत्र स्थिताः '' एवं शङ्कायाम् आदिशब्दाद् भोजिका-घाटिकादिपरम्परया निवेदने च 'चरमपदं' पाराञ्चिकं यावत् प्रायश्चित्तस्य प्रसजना प्रायद् दृष्टव्या ॥ २६५३ ॥ तृणपुञ्जादिषु दोषानाह—

एकतरे पुन्वगर्ते, आउभऍ गभीर गुम्ममादीस । अह तत्थेव उवस्सओ, निरोहऽसज्झाय उड्डाहो ॥ २६५४ ॥

० "गुँम्ममाईसु" ति विभक्तिन्यत्ययाद् > गुँम-तृणपुञ्जादिभिः 'गभीरे' गुपिले तत्र पुरो-हां सयता-ऽिवरितिकयोरेकतरिसन् 'पूर्वगते' पूर्वमेव प्रविष्टे पश्चादितरत् प्रविशेष् तत्रात्मोभ-यसमुत्था उपलक्षणत्वात् परसमुत्था वा दोपा भवेगुः । अथ 'तत्रैव' पुरोहां उपाश्रयस्ततोऽविं-15 रितकानां निरोधो भवति, साधूनां लज्जया तत्र ताः कायिक्यादिकं कर्तुं न शकुक्नतीति भावः । तस्यां च छिण्डिकायामागच्छन्तीषु निर्गच्छन्तीषु वा अविरितकासु तरुणा हृष्टीः पात-यन्ति, तत्रश्च तेषां तामिरपहृतहृदयाना स्वाध्यायहानिभवति । यदि 'कर्णाधाटकेन महीष्यन्त्यमी' इति कृत्वा न पठन्ति ततस्तिकृष्पनं प्रायश्चित्तम् । अथ पठन्ति ततो लोकस्तेषां साध्यायशब्दं श्रुत्वा ब्रूयात्—अहो । स्त्री-पशु-पण्डकविविर्जितं विविक्तवासमासेवन्ते साधवः । एवमसूयया थ्र ब्रुवाणेषु तेषु प्रवचनस्योङ्घाहो भवति ॥ २६५४ ॥ अथवा तत्रेमे दोषा भवेगुः—

छिडीऍ अवंगुयाए, उन्मामग-तेणगाण अइगमणं । वसहीए वोच्छेदो, उनगरणं राउले दोसा ॥ २६५५ ॥

संयते रात्रों कायिकीन्युत्सर्जनार्थं 'अपावृतायाम्' उद्घाटितायां छिण्डिकायां कस्याप्युद्धाम-कस्य स्तेनस्य वा 'अतिगमनं' प्रवेशो भवेत् । ॳ स च प्रविश्य किञ्चिदपहरेत् अगारी वा 25 प्रतिसेवेत तित्रिष्पत्रं साधूनां प्रायश्चित्तम् । ▷ शय्यातरश्चिन्तयेत् —कुतो धननिहिछद्रे स्तेनकः प्रविष्टः १ नूनं सयतैश्छिण्डिका रात्राबुद्धाटिताः । ततोऽसौ प्रद्विष्टो वसतेर्व्यवच्छेदं कुर्यात् । यद्धा स स्तेनकः संयतानां गृहस्थानां वा 'उपकरणं' वस्त्रादिकमपहरेत् ततः सागारिको राज-कुले निवेदयेत् , यथा—संयतैरुद्धाटितायां छिण्डिकायां स्तेनकः प्रविष्टः । ततश्च ग्रहणा-ऽऽकर्षणादयस्त एव दोषाः ॥ २६५५॥ अथवा शय्यातरञ्जूणिका केनिचदुद्धामकेण सह सम्प-30

१ · एतन्मध्यगत· पाठः कां॰ प्रतावेव ॥ २ गुल्मादिभिः 'गभी° भा॰ ॥

३ प्रविद्यागत. पाठः त० डे० मो० छे० नास्ति ॥ । ४ भारिणीं वा तत्रोद्धामयेत् तिश्व-रुपन्नं भा० । "पविसित्तं किंचि हरेजा उन्मामेज वा तिणिष्फण्णं" इति चूर्णी विशेषचूर्णीं व ॥

ल्या, तया च 'रात्रो भवता समागन्तन्यम्' इति तस्य संदेतः कृतः, स चोद्धामक आयातः, संयोगश्च लिण्डिका स्थागता, ततः सा हिनीयदिने तं प्रश्नयति—

किं नागओं सि समणेहिं हिक्क्यं दोस ऋयरा नं तु । एतेहऽवंगुएण व, अज पहड़ी महरचारी ॥ २६५६ ॥

करुये कि नागताऽसि १। स प्राह—आगतोऽहं परं कि करोमि १ श्रमणैः खगितं छिण्डि-काहारम्। तनः "टोस कृयग नं नु" ित कृत्सितं ग्रिष्टनन्जुगुप्सितं चरन्तीति कृचराः— उद्घामका उद्घामका वा, तं यद् 'हुपान्' प्रहुपतः साधना प्रान्तापना-ऽभ्याख्यानगादि करि-प्यन्ति तन्निप्पन्नं प्रायश्चित्तम्। अथवा 'एतेः' श्रमणैः 'अपावृतेन' उद्घाटितन छिण्डिकाहारेण 'खरचारी' स्तेन उद्घामको वा अद्यासाकं गृहे प्रविष्ट इति कृत्वा सागारिको यद् वसत्यादि-10 व्यवच्छेदं कुर्यात् तन्निप्पन्नम् ॥ २६५६ ॥ अथवा स्तेनः प्रविष्टः सन्निदं कुर्यात्—

> अवहारे चडमंगो, पसंग एएहिं संपदिनं तु । संजयलक्खेण परे, हरिज तेणा दिय निसं वा ॥ २६५७ ॥

अपहारे चतुर्गज्ञी। तद्यथा—एके स्तेनाः प्रविष्टाः सन्तः संयतानां हरन्ति न गृहस्थानाम् १ अपरे गृहस्थानां न सयतानाम् २ केचिद् गृहस्थानामिष संयतानामिष ३ केचित्र गृहस्थानां न १० संयतानामित्येष चतुर्थो भज्ञः शृन्यः। तत्र यत्र संयतानामपहरन्ति तत्रोत्कृष्ट-मध्यम-जघन्योपिश-निष्यत्रम्। यत्र तु गृहस्थानामपहरन्ति तत्र 'एतर्व साधुमिश्छिण्डिकामुद्धाटयद्भिरस्पदीयं सुव-णादि स्तेनेभ्यः सम्प्रद्रचम्' इति विचिन्त्य ते गृहस्था राजकुले प्रहणा-ऽऽक्षपंणादिप्रसक्तं कारा-पर्येयुः। तथा 'अपरे' केचिद् मायाविनः स्तेनाः 'संयतल्क्ष्येण' साधुवेषव्यानेन दिवा वा निशायां वा तत्र प्रविद्य कथित्रत् प्रमत्तानामगारिणां सुवर्णादिकमपहरेयुः। ✓ तृतीयमक्ते तु १० प्रथमद्वितीयमङ्गोक्ता दोषा द्रष्टत्र्याः। > यत एते दोषा अतः (प्रन्थाप्रम्—६५००। सर्व-प्रन्थाप्रम्—१८०२०) शालाया वा मध्ये वा छिण्डिकाया वा न स्थातव्यम्। भवेत् कारणं येन तत्रापि तिष्टेयुः॥ २६५७॥ किं पुनस्त् १ हत्याह—

अद्वाणनिग्गयाई, तिक्तुत्तो मग्गिऊण अमईए । सालाऍ मज्झें छिंडी, वसंति जयणाऍ गीयत्था ॥ २६५८ ॥

25 अध्वनिर्गनाद्यः 'त्रिक्कत्वः' त्रीन् वारान् शुद्धां वसतिं मार्गियत्वा यदि न लगन्ते ततः प्रथमं शालायां तस्या अलामे चतुःशालादिगृहमध्ये तस्याप्यमावे छिण्डिकाया यतनया गीतार्था वसन्ति ॥ २६५८ ॥ तत्र शालाविषया यतनां तावटाह—

वोलेण झायकरणं, नहा वि गहिएऽणुसद्विमाईणि । वेउच्चि खढुऽचाउंडि, छिड्डा चोले य पडले य ॥ २६५९ ॥

उठ यत्र साध्यायं कुर्वतामालापकान् कर्णावाटयिन तत्र 'बोलेन' सर्वेऽिष मसुदिताः साध्यायं कुर्वेन्ति येन ते व्यक्तं किमप्याञ्यपकपदं न शृणुयुः । अथ तथापि ते तदेकायिचत्तवा शृण्वन्तो दक्षत्वादालापकपदानि गृहीयुः तनस्तेपामनुिशिष्टः कर्तव्या—भो भद्राः ! न वर्तते युप्पा-

१ <४ > एतडन्तर्गतः पाटः सा॰ नान्ति ॥

कमित्यं कर्णाधाटकेनालापकान् महीतुम्, इत्यं गृह्णतामिहैवोन्मादादयो वहवोऽनर्था भवन्तीति । आदिमहणाद् विद्यया मन्नेण वा ते तथा वशीकियन्ते यथा कर्णाघाटकेन महणादुपरमन्ते । तथा 'विकुर्विते' विण्टकविद्धे 'खद्धे' महाप्रमाणे 'अपावृते' व्यपगतत्वचि सागारिके सति इयं यतना-पटलकानां चोलपट्टकस्य वा चत्ररसीकृतैस्यैकसिन पटे छिद्धं कृत्वा सागारिकं गोपा-यितन्यम् ॥ २६५९ ॥ यत्रादर्शदोषा भवन्ति तत्रेयं यतना-

> अद्दागदोससंकी, जा पढमा ताव पाउया णिति । उद्दण-निवेसणेसु य, तत्तो पट्टिं न कुन्वंति ॥ २६६० ॥

आदरीदोषराङ्किनः सन्तो यावत् प्रथमा पौरुपी तावत् प्रावृता एव निर्गच्छन्ति । उत्थानो-पवेशनयोध्य 'ततः' गृहस्थाभिमुखं पृष्ठं न कुर्वन्ति, मा पुतौ दृष्टा तेऽमङ्गळं मन्यन्तामिति कृत्वा ॥ २६६० ॥ यत्र कल्पस्थकदोषाः समुद्देशदोषाश्च भवन्ति तत्रेयं यतना-10

> अवणावितिऽवणिति च, कप्पट्टे परिरयस्स असईए। अप्पत्ते सइकाले, वाहि वियद्वंति निग्गंतुं ॥ २६६१ ॥

परिरयो नाम-मार्गान्तरेण गमनम्, ततश्च यद्यन्यस्य मार्गस्य सम्भवस्ततः करपस्थाधिष्ठितं मार्गं विहाय तेन गन्तव्यम् । अथ नास्त्यपरो मार्गस्ततः कल्पस्थानि शय्यातरादिभिस्ततो मार्गा-दपनाययन्ति, 'वयं भिक्षादौ गमिष्यामस्तत एतदपत्यभाण्डं निर्व्यावाघमन्यत्र नयत' इत्येवं भण-16 न्तीति भावः । अथ न तत्र कोऽपि सिन्निहितः ततः खयमेव यतनया ततो मार्गात् तान्यपन-यन्ति । तेपां च गृहस्थानां यदा समुद्देशनवेला तदा साधवोऽपाप्ते एव भिक्षासत्काले पात्रका-ण्युद्राह्य निर्गत्य च बहिर्गत्वा 'व्यावर्त्त्यन्ति' मिक्षावेलां प्रतीक्षन्ते, येनावष्वष्कणादयो दोषाः परिहृता भवन्ति ॥ २६६१ ॥ यत्र संयतानां भुञ्जानानां सागारिकं तेत्रेयं यतना---

> नीउचा उचतरी, चिलिमिलि भुंजंत सेसए भयणा। पुढवी-दगाइएसुं, सारण जयणाएँ कायच्या ।। २६६२ ।।

यदि सर्वेऽपि साधवः 'भुज्ञानाः' मक्तार्थिनस्तदा तिस्रश्चिलिमिलिका दातव्याः, तद्यथा-प्रथमा नीचा, द्वितीया तस्याः सकाशादुचा, तृतीया तु ततोऽप्युचतरा । शेषा नाम-यदि केचिदमक्तार्थिनस्तदा तिसृणां चिलिमिलिकानां मजना, 🗸 कैदाचिदेका कदाचिद् हे ⊳ कदाचित् तिस्रोऽपि दातच्या इति भावः । यत्र च पृथिवी-दका-ऽग्नि-वीजानां सम्भवस्तत्र गृहस्थानां यतनया 25 'सारणा' अनुशिष्टिः कर्त्तव्या, यथा साधूनां पृथिव्युद्कामिनीजानां निराधना न भवति तथा यतितन्यमिति ॥ २६६२ ॥ यत्र वीजकायं कण्डयन्त्यो गायन्ति तत्रेयं यतना---

> जइ कुट्टणीउ गायंति विस्तरं साइयाउ मुसलेहिं। विलवंतीस सकलुणं, हयहियय! किमाकुलीभवसि ॥ २६६३ ॥

बीजकायं कुट्टयन्तीति कुट्टन्यः-कण्डनकारिण्य इत्यर्थः, तासु गायन्तीपु साधुभिः खचे- 30 तिस चिन्तनीयम्---यिद नामैताः कुट्टन्यो मुश्छेरनवरतमुत्शिप्यमाण-निक्षिप्यमाणैः 'सादिताः'

१ °तस्य यः सर्वाभ्यन्तरवर्त्ती पुटस्तत्र विछद्रं मा॰ ॥ २ °तः परिरयस्यासति क° कां॰ ॥ ३ ॰४ १० एतदन्तर्गतः पाठः मा॰ कां॰ पुस्तक्योरेन ॥

खेदिनाः सत्यस्तहुःन्वापनोदार्थिमित्यं त्रिस्तरं स्टन्त्य इव गायन्ति नर्हि परमार्थतो विरुपितमे-वताः कुर्यन्ति, ''सर्व गीतं विरुपितम्'' इति वचनात्; ततः सकरुणं विरुपन्तीप्वेतासु हे हतह्त्य! क्रिमेवम् 'आङ्करीमवसि' विश्रोतसिकामुपगच्छसि १ नेतं भवतो युज्यत इति मावः ॥ २६६३ ॥ गता द्यालविषया यतना । अथ मन्यविषयां यतनामाह—

> मञ्झे जगांति सया, निति समदा य आउला गर्च । फिडिए य जयण मारण, एहेहि इथो इमं दारं ॥ २६६४ ॥

यत्र चतुःशाखिदिगृह्मच्ये वसन्ति तत्र वृपमा रात्रे। 'सदेव' चतुप्त्रीप यामेष्तित्यर्थः वारकेण वायति । कायिक्यादित्युत्तर्जनार्थं च रात्रे। 'मग्रट्याः' काग्रितादिग्रट्यं कुर्वन्तः 'आकुरुश्य' स्तरमाणाः 'नियंन्ति' निर्मच्छन्ति यथा पूर्वोक्ताः शङ्कादयो दोषा न स्युः । यश्च रात्रे। 10 'स्फिटितः' ⊲ मार्गात् परिश्रष्टो ৮ मत्रति तस्य यतनया यथा गृहस्या न तित्रुच्यन्ते तथा सारणा कर्तव्या, यथा— गृहि पृहि इत इदं द्वारं वर्तते ॥ २६६० ॥

अविनाणंतों पितृहो, मणइ पितृहो अजाणमाणो मि । एहामि बैए ठविउं, न पवत्तइ अतिथ में इच्छा ॥ २६६५ ॥

यस्त्रान्यमपवर्कमिवजानन् प्रविष्टः म पृष्टोऽपृष्टो वा ग्रह्वापनोदार्थं भणिते—'अवानानः' 16 मार्गमनवबुध्यमानोऽहमत्र यविष्टः । यदि अविरतिका तमवमापते—मया समसुपसुङ्क्त मोगान् अन्यश्रोह्वाहं करिप्यामीति, ततो वक्तव्यम्—येषां गुरूणां समीपं मया त्रतानि गृहीतानि सन्ति तेपामेव सिवर्षा स्थापियर्त्वा एप्यामि, ममापि त्वद्विषया इच्छाऽस्ति परं कि करोमि ? 'न भवर्तने' न बुच्यते (युज्यते) गुरूणां समीपं त्रतान्यस्यापियत्वा एवं कर्त्तुम् इत्यमित्राय ततो निगन्तव्यम् ॥ २६६५ ॥ यत्र मज्जन-हिरण्ये मवतस्त्रेत्रं यतना—

20 कडओ व चिलिमिली वा, मर्जंतिमु थेरगा य तत्तो उ । आइसहिरनेमु य, थेर चिय सिक्खगा दृरे ॥ २६६६ ॥

श्रव्यातरस्त्रीषु मजन्तीषु उपलक्षणत्वात् श्रव्यातरं वा मज्जित अपान्तराले कृटको वा चिलिमिलिका वा दातच्या, तत्रश्च तेन पार्थेन स्वितराः स्वापिवतच्याः । येन घ पार्थेन हिर-ण्यादीन्याकीर्णानि मवन्ति ततः स्वितरा एव कर्तच्याः । श्रिक्षकास्तु ततो दूरे स्वापनीयाः 2011 २६६६ ॥ यता मध्यविषया यत्रना । अथ लिण्डिकाविषयामाह—

द्रारममुक्तं कार्ड, निति अईती ठिया उ छिडीए । काद्यवयणा स चिय, वगडामुत्तम्मि ना गणिया ॥ २६६७ ॥

छिण्डिकायां स्थिताः सन्तो द्वारमञ्जन्यं कृत्वा निर्गच्छन्ति वा प्रविश्वन्ति वा येन सेनाइयो दोषा न मर्वान्त । 'कायिकीयतना तु' मात्रकत्युत्मर्वनादिका सेव द्रष्टव्या या पूर्व वगडासूत्रे 30 मणिता (गा० २२७२—२२७७) ॥ २६६७ ॥

१ "मुखं विख्ययं गीयं" उत्तराध्ययने अ० १३ गा० १६ ॥

२ -४ № शतन्मव्यक्तः शहः काँ॰ एव वर्तते ॥

३ वर्त 3° ता॰ ॥ ४ °त्या आगसिष्यामि मा॰ ॥

20

सूत्रम्---

कप्पइ निग्गंथीणं गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं वत्थए॥ ३३॥

अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ अथ भाष्यम्---

एसेवं कसो नियमा, निग्गंथीणं पि नवरि चउलहुगा। नवरं पुण नाणत्तं, सालाए छिंडि मज्झे य ॥ २६६८॥

'एप एव' निर्श्रन्थस्त्रोक्तः क्रमो निर्श्रन्थीनामिष ज्ञातन्यः । नवरं तासां तत्र तिष्ठन्तीनां चतुर्रुधुकाः प्रायश्चित्तम्, वैक्रिया-ऽपावृता-ऽऽदर्शविषयाश्च दोषा न भवन्ति । शेषं सर्वमिष प्राग्वद् द्रष्टन्यम् । नवरं पुनः 'नानात्वं' विशेषः शालायां छिण्डिकायां मध्ये च त्रिष्विष स्थानेषु वक्तन्यम् ॥ २६६८ ॥ तत्र शालायां तावदाह—

सालाए कम्मकरा, उड्डंचय गीयए य ओहसणा। घर खामणं च दाणं, बहुसो गमणं च संबंधो ॥ २६६९॥

शालायां स्थितानामार्थिकाणां कर्मकरा उड्ड इकान् कुर्युः, यथा—यादशी इयमार्थिका तादशी मम क्यालिका चा मातुलदुहिता वा विद्यते । गीतेन चा ते कर्मकरादयः प्रवच्चन्ते, यथा—वंदामु खंति । पडपंडुरसुद्धदंति ।, रच्छाप् जंति । तरुणाण मणं हरंति ।।

इत्यादि । उपहसनं वा कश्चित् करोति । ततश्च भिक्षार्थं गृहं गतायास्तस्याः क्षामणम्, दानं च वस्न-पात्रादेः, गमनं च वहुशस्तस्याः समीपे करोति । ततश्चैवं 'सम्बन्धः' तयोः परस्परं घटनं भवति ॥ २६६९ ॥ अथामून्येवोपहसनादीनि पदानि गाथात्रयेण भावयति—

पाणसमा तुज्झ मया, इमा य सरिसी सरिन्वया तीसे। संखे खीरिनसेओ, जुझइ तत्तेण तत्तं च ॥ २६७० ॥ सो तत्थ तीऍ अन्नाहि चा वि निन्मित्थओ गओ गेहं। खामितो किल सुढिओ, अक्खुन्नइ अग्गहत्थेहिं॥ २६७१ ॥ पाएसु चेडरूवे, पांडेत्तू भणइ एस मे माता। जं इन्छइ तं दिजह, तुमं पि साइज जायाई॥ २६७२ ॥

तत्र शालादी काश्चिदुदाररूपां संयतीं हृष्ट्वा कश्चित् पुरुषः खबुहृदं विपन्नपत्नीकं सोपहास-28 मित्थं त्रवीति—वयस्य ! या किल तव प्राणसमा पत्नी सा तावन्मता, अपरा च तथाविधा न विलोक्यते, 'इयं तु' संयती 'तस्याः' त्वत्पल्याः 'सहशी' सहस्रूपा सहम्वयाश्च, अतस्तवानया सह सम्बन्धो विधीयमानः शक्के क्षीरनिषेक इव, तसं च लोहमपरेणापि तसेन सह संयोज्यमानमिव 'युज्यते' सुश्किष्टीभवति । एवं त्रुवाणोऽसौ तया संयत्या अन्याभिर्वा संयतीिमर्गाढं निर्मत्सितः सन् सवयस्योऽपि स्लगेहं गतः । अन्यदा च स तदीयवयस्यः सयतीं मिक्षार्थं 30

१ °व गमो ता॰ विना॥ २ °त-सागारिकविष° कां॰॥

३ वा काञ्चिदार्थिकामुद्दिस्य मित्रेण समं कश्चित् कां॰ ॥ ४ पाढेंतो भण^{० ता०}॥

स्वगृहमागतां घठतया "सुहितो" ति सुष्टु—अतीवाहतः—प्रयत्नपरैः किल क्षामयनिव स्वग्रह्सैः 'आश्चणति' तत्याः पादा विलिसतीत्यर्थः, चेटरूपाणि च प्राक्तनपत्त्याः सम्वन्धीनि तत्याः संयत्याः पाद्योः पानयित्वा मणिति—एवा "मे" भवतां माता, यिक्तमपीयिमच्छिति तत् सर्व-माहारादिनातमस्य दातव्यम् । संयतीमिष मणिति—एतत् त्वदीयं गृहम्, अमृनि च भवत्याः क्षम्वन्धीनि 'जातानि' अपत्यानि, अनस्त्वमेतानि 'सातयेः' सङ्गोपायेः। एवमुक्तवा वस्ता-ऽत्र-पानादीनि वहुगस्तयाः प्रयच्छिति । मा च कोत्समावतया तुच्छेनाप्याहारादिना वर्धाक्रियत इत्यतो मूयो मृयन्त्रदीयगृहं गमनागमनं कुर्वत्यास्तरणस्तेन सह सम्बन्धो मवति । यत एते दोषा अतो न तत्र स्थानव्यम् ॥ २६७० ॥ २६७१ ॥ २६७२ ॥ आह यद्यवं ततः स्व्रमपार्थकम् १, ५ तत्र माम्बीनां वस्तुमनुज्ञातत्वात् । स्रिराह— के नवम्—

मुत्तनिवाओ पासेण गंतु विद्यपय कारणजाए । सालाऍ मर्न्झे छिडी, सागारिय निग्गहसमत्यो ॥ २६७३ ॥

यत्र पार्श्वेन गत्वा निर्गमन-प्रवेशों कियेते तत्र निर्प्रन्यामिद्वितीयपदेऽध्वनिर्गमनादौ कार-णजाते वस्तव्यमित्येवमत्र स्त्रनिपातः । तत्र च ग्रालायां वा मध्ये वा छिण्डिकायां वा यदि सागारिकः 'नित्रहसमर्थः' जितेन्द्रियस्तरुणादीनां वा संयतीरुपसर्गयतां सरण्टनादिना शिक्षा-15 करणदक्षो भवति नतस्तत्र स्थातव्यम् ॥ २६७३ ॥ एतदेव व्यास्यातुमाह—

> पासेण गंतु पासे, व जं तु तहियं न होइ पच्छितं। मन्झेण व जं गंतुं, पिह उचारं घरं गुत्तं ॥ २६७४ ॥ दुज्जणवज्जा साला, सागारअवचभ्रणगज्जया वा । एमेव मन्झ छिंडी, निय-सावग-संज्ञणगिहे वा ॥ २६७५ ॥

20 यत्र पार्श्वेन गत्ना निर्गम्यते प्रविश्यते वा, ४ यंद् वा गृहं गृहपतिकुळ्स पार्थे मवति तत्र तिष्ठतां प्रायिश्चितं न मवति । → यद् वा गृहं गृहपतिकुळ्स मध्येन गत्ना प्रविश्यते तद् यदि पृथगुचार-कायिकीम्मिकं 'गुष्ठं च' कुळ्य-कपाद्यादिभिः सुतंत्रतं तत्तत्त्रत्रापि प्रायिश्चितं न मवति । तत्र यदि शाल्यां स्वातन्यं स्वात् तदा सा 'दुर्जनवर्जा' दुःशील्पिहेता यहा सागारिकस्य सम्वन्यिनो ये अन्यक्ताः—अद्याप्यपरिणतवयसो अ्णकाः—वालकासेर्युता या शाल्य तत्यां 25 स्वातन्यम् । एवमेव चतुःशालकादिगृहमध्ये छिण्डिकायां वा यत्र निजकाः—तासामेव संयतीनां नाल्यद्धाः पितृ-आत्रादयः आवका वा—माता-पितृसमाना जिनवचनमाविता मवन्ति यानि वा सज्जानां—समावत एव सुशीलानां यथामद्रकाणां गृहाणि तत्र स्वातन्त्रम् ॥२६७३॥२६७५॥

॥ गाथापनिऋसमध्यवासप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °रः क्रितित्रख्यस्तमस्तकः झामयति, झामणाव्याजेन च अप्र° मा॰ ॥

२ 'साद्येः' खेद्येः, शिक्षाप्रदानादिना श्रुण्णतां प्रापयेरित्यर्थः । एव° हां॰ ॥

२ ५ ⊳ एतिबहगतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ ४ ५ ⊳ एतिबहगतः पाठः मा॰ का॰ पुत्तक्योरेव ॥

15

व्यवश्मन प्रकृतम्

सूत्रम्—

मिक्ख् य अहिगरणं कहु तं अहिगरणं विओसवित्ता विओसवियपाहुढे, इच्छाए परो आढाइजा इच्छाए परो नो आढाइजा, इच्छाए परो अब्भुट्ठेजा इच्छाए परो नो अब्भुट्ठेजा, इच्छाए परो वंदिजा इच्छाए परो नो वंदिजा, इच्छाए परो संभुंजेजा इच्छाए परो नो संभुंजेजा, इच्छाए परो संवसिजा इच्छाए परो नो संवसिजा, इच्छाए परो संवसिजा इच्छाए परो नो संवसिजा, इच्छाए परो उवसमिजा इच्छाए परो नो उवसमिजा। जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स निध आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं। से किमाहु भंते!? उवसमसारं सामझं ३४॥

अथास्य सूत्रस्य कः सम्बन्धः ! इत्याशङ्काव्युदासायाह—

एगत्थ कहमकप्पं, कप्पं एगत्थ इचऽसद्दतो । पिडसिद्धे व वसंते, निवारण वहकमे कलहो ॥ २६७६ ॥

'ऐकत्र' गृहपतिकुरुस्य मध्ये कथं निर्श्रन्थानामकरूप्यम् है निर्श्रन्थीनां तु कथम् 'एकत्र' तत्रैव करूप्यम् है 'इति' एवमश्रद्धतः करुह उपजायते । यद्वा प्रतिषिद्धे प्रतिश्रये वसतः केन-चित्रिवारणं कृतम् , ततः प्रतिषिद्धोपाश्रयस्थाता तदीयवचनस्य व्यतिक्रमं—विकुद्दनं करोति एवं करुहो भवेत् । उत्पन्ने च करुहे झगित्येव व्यवश्मनं कर्त्तव्यमित्यत्र सूत्रे प्रतिपाद्यत 20 इति ॥ २६७६ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—'भिक्षुः' सामान्यः साधुः, चशब्दस्यानुक्तसमुचया-र्थत्वादाचार्योपाध्यायाविष गृह्येते, अधिक्रियते—नरकगतिगमनयोग्यतां प्राप्यते आत्मा अनेने-त्यधिकरणं कल्हः प्रामृतमित्येकोऽर्थः, तत् 'कृत्वा' तथाविधद्रव्य-क्षेत्रादिसाचिव्योपबृंहितात् कषायमोहनीयोदयाद् द्वितीयसाधुना सह विधाय ततः स्वयमन्योपदेशेन वा परिभाव्य तस्यैहिका-25 मुष्मिकापायबहुलतां तद् अधिकरणं विविधम्—अनेकैः प्रकारैः स्वापराधमितपत्तिपुरःसरं मिथ्या-

१ 'एकत्र' निर्श्नन्थपक्षे गृहपतिकुलस्य मध्ये कथमवस्थानमकल्प्यम् १ 'एकत्र तु' निर्श्र-न्थीपक्षे कथं तत्रैवावस्थानं कल्प्यम् १ 'इति' का॰ ॥

25

हुप्कृतपदानेने 'ध्ववशमय्य' उपशमं नीत्वा ततो विशेषेणावसायितम्-अवसानं नीतं प्रामृतं-कलहो येन स व्यवसायितप्राभृतः—व्युत्स्रप्रकलहो भवेत् । किमुक्तं भवति ?—गुरुसकारो खद्धरितमालोच्य तत्यद्त्तपायश्चितं च यथावत् प्रतिपद्य म्यस्तद्करणायाभ्युत्तिष्ठेत् । आह थेन सह तद्घिकरणमुत्पन्नं स यद्युपञम्यमानोऽपि नोपञाम्यति ततः को विघिः ? इत्याह— क''इच्छाए परो आढाएजा'' इत्यादि सूत्रम् । 'इच्छया' यथासरुच्या 'परः' अन्यो द्वितीयः साधुराद्रियेत इच्छया परो नाद्रियेत, प्रागिव सम्भापणादिभिरादरं कुर्याद्वा न वेति भावः । एवमिच्छया परस्तमम्युत्तिष्टेत् , इच्छया परो नाऽम्युत्तिष्टेत् । ◄ ईच्छया परस्तं साधुं वन्देत, ⊳ ' इच्छया परो न वन्देत । इच्छया परस्तेन साधुना सह 'सम्मुङ्गीत' एकमण्डल्यां मोजनं दान-ग्रहणसम्मोगं वा क़ुर्यात्, इच्छया परो न सम्भुङ्जीत । इच्छया परस्तेन साधुना सह 'संवसेत्' 10सम्-एकी मूर्यकत्रोपाश्रये वसेत्, इच्छया परो न सवसेत्। इच्छया पर उपगाम्येत, इच्छया परो नोपशाम्येत । परं यः 'उपशाम्यति' कपायतापापगमेन निर्वृतो भवति तस्यास्ति सम्य-म्दर्शनादीनामाराधना, यस्तु नोपशाम्यति तस्य नास्ति तेषामाराघना । 'तस्मात्' एवं विचिन्त्य आस्मनेव 'उपग्रान्तव्यम्' उपगमः फर्चव्यः । शिप्यः प्राह— "से किमाहुँ मंते !" अथ किमत्र कारणमार्हुः 'भदन्त !' परमकल्याणयोगिन् ! तीर्थकरादयः ? । सृरिराह—उपशमसारं श्राम-16ण्यम्, तद्विद्दीनस्य तस्य निष्फलतयाऽभिधानात् । उक्तञ्च 🗸 देश्चेकालिकनिर्धक्तौ ⊳---

सामन्नमण्यचरंतस्य कसाया जस्य उकडा हांति । मन्नामि उच्छुपुण्मं, व निष्मु तस्स सामन्नं ॥ (गा० ३०१)

इति सूत्रार्थः ॥ अर्थं विषमपदानि भाष्यकृद् विवृणोति —

घेप्पंति चसदेणं, गणि आयरिया य भिक्खुणीओ य। अहवा मिक्खुग्गहणा, गहणं खळु होइ सन्वेसि ॥ २६७७ ॥

इह स्त्रे मिझुश्चेति यश्चगन्दस्तेन 'गणी' टपाच्यायस्त्रथा आचार्यो मिझुण्यश्च गृह्यन्ते । अथवा 'मिञ्जयहणात्' मिञ्जपदोपादानात् सर्वेषामप्याचार्यादीना ग्रहणं द्रष्टव्यम्, ''एकप्रहणे तज्ञातीयानां सर्वेषां ग्रहणम्" इति वचनात् ॥ २६७७ ॥

> सामिय विवोसिय विणासियं च झवियं च होंति एगद्वा । पाहुड पहेण पणयण, एगद्वा ते उं निरयस्स ॥ २६७८ ॥

क्षामितं व्यवश्वमितं विनाशितं क्षपितमिति चैकार्थानि पदानि मवन्ति । तथा प्रार्मृतं प्रहे-

१ °न उपशमय्य व्युपशमितप्रामृतो भनेदिति कियाच्याहारः । किमुक्तं मा॰ ॥

२ ॰४ № एतसिहमध्यगतः पाठ सा॰ पुस्तकान्तरेव वर्तते ॥

हे °हु भंते !" दिराच्दो अथराज्यार्थे, किसिति परिप्रक्षे, अथ क्षं ॥ ॥ ४ °हुः भगवन्तः यदेवसुपराम पत्र मोक्षमार्गाराधनानियन्धनसुपरामंदि । सूरि°मा०॥

५ थें > एतन्मध्यगतः पाठः मा॰ नात्ति ॥ ६ °थ विस्तरार्थं भाष्यकृत् प्रतिपाद्यति मा॰ ॥ ७ शामितमिति वा व्यवशमितमिति वा बिनाशितमिति वा श्रितमिति वैका° मा॰ ॥

८ ° भृतमिति वा प्रदेणकसिति वा प्रण° मा॰ ॥

णकं प्रणयनमिति वा त्रीण्यप्येकार्थिनि । तानि तु प्राभृतादीनि 'निरयस्य' नरकस्य मन्तन्यानि, यत एतद्धिकरणं नरकस्य-सीमन्तकादेः मामृतमिव प्राभृतमुच्यते, एवं प्रहेणक-प्रणयनपदे अपि भावनीये ॥ २६७८ ॥

इच्छा न जिणादेसी, आहा उण आदरी जहा पुष्टि । भंजण यास मणुत्रे, सेस मणुत्रे व इतरे वा ॥ १६७९ ॥

इच्छा नाम न 'जिनादेशः' तीर्थकतामुपदेशोऽयिमिति कृत्वा नादरादीनि पर्दानि करोति किन्तु सच्छैन्देन । तथा आढा नाम—आदरस्तं यथा पूर्वमुचितालापादिभिः कृतवास्तर्था कुर्याद्वा न वा । शेषाणि त्वभ्यस्थानादीनि सुगमानीति कृत्वा भाष्यकृता न व्याल्यातानि । अत्र च सम्भोजन-संवासनपदे 'मनोज्ञेषु' साम्भोगिकेषु भवतः । 'शेषाणि तु' आदरा-ऽभ्युत्थान-वन्दनी- पश्चमनपदानि 'मनोज्ञेषु वा' साम्भोगिकेषु 'इतरेषु वा' असाम्भोगिकेषु भवेषुः ॥ २६७९ ॥ १०

कृता भाष्यकृता विषमपद्व्याख्या । अथ निर्धुक्तिविखाः— नामं ठवणा द्विए, भावे य चडव्विहं तु अहिगरणं । दब्बम्मि जंतमादी, भावे उद्दशी कसायाणं ॥ २६८० ॥

नामाधिकरणं 'खापनाधिकरणं द्रव्याधिकरणं भावाधिकरणं 'चेति चतुर्विधमधिकरणंम् । 'तत्र नाम-खापने गतार्थे । द्रव्याधिकरणमागमतोऽधिकरणग्रब्दार्थं प्रक्ष्पयन्ननुपयुक्तो वक्ता । नोआ-15 गमतो ज्ञशरीर-मन्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्याधिकरणं यत्रादिकं द्रष्टव्यम् । यत्रं नाम दस्तन्य-

ब्रादि । 'भावे' भावाधिकरणं 'कपाग्राणां' क्रोधादीनामुदयो विज्ञेयः ॥ २६८० ॥

तत्र द्रव्याधिकरणं व्याख्यानयति-

दन्त्रस्मि उ अहिगरणं, चउन्त्रिहं होह आणुप्रन्तीए। निन्त्रत्तण निक्तित्रणे, संजोयण निसिरणे य तहा ॥ २६८१ ॥

'द्रव्ये' द्रव्यविषयमधिकरणं चतुर्विधं मवति 'आनुपूर्व्या' परिपाट्या, तद्यथा—निर्विर्त्तर्गं-धिकरणं निक्षेपणाधिकरणं संयोजनाधिकरणं निसर्जनाधिकरणं चेति । तत्र योनिप्रामृतादिना यदेकेन्द्रियादिशरीराणि निर्वर्त्तयति, यथा सिद्धसेनाचार्यणाधा उत्पादिताः ।

जहा वा एगेणायरिएण सीसस्स जोगो उविदृष्टो जहा महिसो भवति । तं च सुतं आय-रियाणं भाइणिज्जेण । सो निद्धम्मो उन्निक्लंतो महिसं उप्पाएउं सोयरियाण हत्थे विक्रिणइ । 25 आयरिएण सुतं । तत्थ गतो भणेइ—किं एतेणं ! अहं ते रयणजोगं पयच्छामि, देवे आह-

१ 'श्रीनि' अधिकरणपर्यायनामानि, धत भा॰ ॥

^{&#}x27; २ °च्छन्दसा । तथा भा॰ ॥

३ °युः ॥२६७९ ॥ अथाधिकरणपदं व्याचिख्यासुः प्रथमतः तिश्वक्षेपमाह—नामं मा० । "एत स्त्रार्थः, अधुना निर्युक्तिवित्तरः—णाम्ं ठनणा० गाधा" इति स्त्रूणो ।

^{(&}quot;एव स्त्रार्थः । अधुना स्त्रूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिविस्तर उच्यते—णामं ठवणा० आहा" हति विशेषणुर्जी ॥

४ ''णिक्नत्तणाधिकरणं जोणिपाद्वदेणं एगिदियारीणं सरीराणि णिक्वतेति'' ख्रुकीं विद्येषचूर्णी व श

राहि । ते अ आहरिया । आयरिएण संजोइया एगंते निक्खिता भणितो—एतिएण कालेण उक्खणिजासि, अहं गच्छामि । तेण उक्खतो । दिट्टीत्रिसो सप्यो जातो । सो तेण मारितो । एवं अहिगरणच्छेदो । सो ति सप्यो अंतोमुहुत्तेण मस्रो ति ॥

यहा वैकिया-ऽऽहारकशरीरे अपि यनिष्कारणे निर्वर्चयित, परशु-कुन्तादीनि वा करोति कित्तिविर्वर्चाधिकरणमुच्यते । निक्षेपणाधिकरणं हिथा—केकिकं कोकोचिरिकं च । तत्र यद् मत्यग्रहणार्थं गलनामा कोहकण्टकः कृदं वा मृगादीनां ग्रहणाय जाकं वा लावकाटीनामर्थाय निक्षिप्यते, शतक्र्यादीनि घरद्दा-ऽरघद्दादीनि वा यन्नाणि स्थाप्यन्ते तदेतद् कोकिकं निक्षेपणा-धिकरणम् । यन्नु लोकोचिरिकं तैत् पड्विधम्—यत्र पात्राद्युपकरणं निक्षिपति तत्र न पर्युपेक्षते न प्रमार्जयति १ न प्रत्युपेक्षते प्रमार्जयति २ प्रत्युपेक्षते न प्रमार्जयति ३; यन्नु पर्युपेक्षते विष्ठमार्जयति च तद् दुष्प्रत्युपेक्षितं दुःप्रमार्जितं १ करोतिः एवमेते पङ्कता निक्षेपणाधिकरणम् । यन्नु सप्तमो मङ्गः सुप्रत्युपेक्षितं दुष्प्रमार्जितं करोतीति रुक्षणः स नाधिकरणम् , शुद्धत्वात् । यद्वा यद् मक्तं पानकं वाऽपाद्वतं स्थापयित तिन्नक्षेपणाधिकरणम् । संयोजनाधिकरणमपि द्विया कोकिक-लोकोचिरिकमेदात् । तत्र कोकिकं रोगाशुत्पचिकारणं विष-गरादिनिष्पचिनियन्वनं वा द्वय्यसंयोजनम् । लोकोचिरिकं तु मक्तोपधिश्वय्याविषयसंयोजनम् । निसर्जनाधिकरणमपि क्रोकिकं शर-शक्ति-चक-पाणाणिनां निसर्जनम् । लोकोचिरिकं तु सहसाकारादिना यत् कण्टक-कर्करादीनां भक्तपानान्तःपतितानां निसर्जनम् ॥ २६८१ ॥ गतं द्वयाधिकरणम् । अथ भावाधिकरणमाह—

अह-तिरिय-उहुकरणे, वंघण निव्यत्तणा य निक्खिवणं । उवसम-खएण उद्दं, उदएण भवे अहेरारणं ॥ २६८२ ॥

20 इह क्रोधादीनां कपायाणामुद्रयो मावाधिकरणिनियुक्तम् (गा० २६८०), अतस्तेषामेव 'अविद्यिगृद्ध्करणे' अधोगितनयने तिर्थगातिनयने ऊर्द्धगितिनयने च सरूपं वक्तव्यम् । तथा 'वन्धनं नाम' संयोजनं १ निर्वर्चना २ निश्चेषणं ३ चश्चव्दस्य व्यविहतसम्बन्धस्यात्र योज-नादृ निसर्जना १ चेति चतुर्वियं द्रव्याधिकरणम् । आह अनन्तरप्रतिपादितमिदं किमर्थमिदा-

१ 'दो आयरिवर्हि क्यो । सो का॰ ॥

२ तत् चतुर्विधम्—यत्र पात्राद्युपकरणं निश्चिपति तत्र न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्जयति १ न प्रत्युपेक्षते प्रमार्जयति १ न प्रत्युपेक्षते प्रमार्जयति १ न प्रत्युपेक्षते प्रमार्जयति १ न प्रत्युपेक्षते प्रमार्जयति च तद् दुष्प्रत्युपेक्षितं दुष्प्रन्युपेक्षितं दुष्प्रन्युपेक्षितं दुष्प्रन्युपेक्षितं दुष्प्रन्युपेक्षितं दुष्प्रन्युपेक्षितं स्वप्रनार्जितम् २, पते त्रयो मङ्गा एक एव चतुर्थो विकल्पः । यस्तु सुप्रत्युपेक्षितं सुप्र-मार्जितं छत्या निक्षिपति स नाधिकरणम्, शुद्धत्यात् । संयोजना॰ मा॰ ॥

³ इतः श्रमृति "कृम्मं चिणंति सवसा०" २६८९ गायान्ता गाया विद्याप्त्रृणिकृता क्रममेटेन व्याख्याताः सन्ति । तथा च तत्क्रमः—शह-तिरिय-उहुकरणे० २६८२ । गुरुयं उहुयं नीस० २६८५ । जा तेयगं सरीरं० २६८६ । श्रह्मा बायरबोंदी० २६८७ । वबहारणयं पप्प स० २६८८ । तिब्बकसाय-समुदया० २६८३ । खीणेहि स निब्बाणं० २६८४ । कृम्मं निणंति सवसा० २६८९ ॥

नीमिभधीयते ? उच्यते — यत् पाग् गाथायां चतुर्विधं द्रव्याधिकरणमुक्तं तद् ''दबिम्म जंत-मादी" (गा० २६८०) इति पदं व्याख्यानयता भाष्यकृता दिशतम्, इदं तु निर्युक्तिकारः सङ्ग्रहगाथया द्वयोरिष द्रव्यभावाधिकरणयोः स्वरूपं सूचयतीति ।

अथास्या एव प्रथमपादं पश्चार्द्धेन व्याच्ये—''उवसम'' इत्यादि । कपायाणामुपणमेन क्षयेण चोर्च्द्भगतिः—स्वर्गा-ऽपवर्गलक्षणाऽवाप्यते । तेपामेव च तीत्रपरिणामानामुद्येन 'अधःकरणं ५ भवति' नरकगतिगमनं भवतीति भावः । उपलक्षणमिदम्, तेन नातितीत्रैः कपायैस्तिर्यग्गतिर्म- ध्यमैस्तु मनुष्यगतिरवाप्यत इति पुरातनगाथासमासार्थः ॥ २६८२ ॥'

अयास्या एव भाष्यकारो व्याख्यानं करोति-

तिन्वकसायसमुद्या, गुरुकम्मुद्या गती भवे हिंद्वा । नाइकिलिद्द-मिऊहि य, उववज्जइ तिरिय-मणुएसु ॥ २६८३ ॥

तीत्राः—सिक्किप्टपरिणामा ये कपायाः—क्रोधावयस्तेषा सम्बन्धी यः सम्—एकीमावेनोदयस्तेन जीवा गुरूणां—ज्ञानावरणीयादिकर्मणामुपचय कुर्वन्ति । गुरुकर्मोदयाच तेपाम् 'अधः' सप्तम-नरकप्टिथव्यादिनरकेषु गतिर्भवति । ये तु कपाया नातिक्किप्टाः—नातीवाशुभपरिणामास्तैर्नाति-क्किप्टः कर्मोपचयो भवति तत्रश्च तिर्थक्षूत्पद्यन्ते । ये तु मृदवः—प्रतनुपरिणामास्तैर्भृदुः कर्मोप-चयो भवति तत्तो मनुप्येपूत्पद्यन्ते ॥ २६८३ ॥

खीणेहि उ निन्वाणं, उवसंतेहि उ अणुत्तरसुरेसु । जह निग्गहो तह लहु, समुवचओ तेण सेसेसु ॥ २६८४ ॥

'क्षीणैः' अभावतां गतैः कपायैनिर्वाणमासादयति । 'उपशान्तेः' विष्कम्भितोदयेः तुज्ञव्दात् क्षीणोपशान्तैश्चानुत्तरियमानवासिपु सुरेषूल्यते । एवं यथा प्रकृष्टः प्रकृष्टतरः कपायाणां निम्रहः तथाऽयं जीवः 'लघुः' लघुभूतो भवति । अथ न तथाविधः कपायाणां निम्रहः कृतस्ततः कर्मणां 20 समुपचयो भवति, तेन 'शेपेपु' अनुत्तरिवमानवासिवर्जेषु देवेषूल्यते । आह गुरुलघुकमगुरुलघुकं वा द्रव्यं भवति नैकान्तगुरुकं न वा एकान्तलघुकमित्यागमेऽभिधीयते ततः कर्मणां गुरुतया जीवा अधो गच्छन्ति लघुतया तूर्द्धमिति कथं न विरुध्यते द उच्यते — इह हि यद् आगमे गुरुलघुकमगुरुलघुकं वा द्रव्यमुक्तं तिक्रश्चयनयमता विरुध्यते द उच्यते — इह हि यद् आगमे गुरुलघुकमगुरुलघुकं वा द्रव्यमुक्तं तिक्रश्चयनयमता विरुध्यते , इदं तु कर्मणां गुरुतं लघुत्वं च व्यवहारनयमता⊳श्चयणाद् उच्यते ॥ २६८४ ॥ तथा चामुमेवार्थं ज्ञापियतुमिदमाहं — 25

गुरुयं लहुयं मीसं, पांडिसेहो चेव उभयपक्ले वि । तत्थ पुण पढमविद्या, पया उ सन्वत्थ पांडिसिद्धा ॥ २६८५ ॥

गुँरकं १ लघुकं २ 'मिश्रं' ॰ गुँरलघुकमिति ३ 'प्रतिपेधश्चैवोभयपक्षेऽपि' न गुरुकं नापि ⊳ लघुकमित्यर्थः ४, एवं न्यवहारतश्चतुद्धी द्रन्यम् । 'तत्र पुनः' एतेपा मध्ये ये प्रथम-

१ एतदमे त॰ डे॰ मो॰ छे॰ अन्थामम्-३००० इति वर्त्तते ॥

२ ॳ > एतचिह्नमध्यगत पाठ भा० का० पुस्तक्योरेव विद्यते॥

३ इह व्यवहारनयाभिप्रायतश्चतुर्विधं द्रव्यं भवति, तद्यथा—गुरुकं का॰ ॥

ध प ० एतन्मध्यगतः पाठ भा० का० पुस्तकयोरेव वर्त्तते ॥

हितीये परं ते 'सर्वत्रात' निश्चयनयमनाश्चितेषु छत्रेषु प्रतिषिद्धे । तथाहि स निश्चयनयो प्रवीति—नाम्त्येकान्तेन गुरून्वमानं किमित नम्नु, परामिप्रायेण गुरूत्वेनाम्युपगतस्वापि लेख्नादः परप्रयोगादृङ्गीदिगननदर्शनात्; एवमेकान्तेन ल्खुसमानमीत नास्ति, अतिल्वोरपि बाप्यादेः करताडनादिना अयोगमनादिदर्शनात्; तन्मादियं वस्तुनः परिमाना—यिकमप्यत्र वन्तिति बादरं वस्तु तत सर्वं गुरूल्खु, रोष तु सर्वमप्यगुरूल्खुक्तिमिति ॥ २६८५ ॥

इत्मेवं व्यक्तीकृत्रेनाह—

जा तेयगं सर्नां, गुनलहु द्व्वाणि कायजोगो य । मण-भामा अगुरुलहु, अरुविद्व्या य सन्त्रे वि ॥ २६८६ ॥

श्रीदारिकशर्रागदारम्य तेजसगरीरं यात्रद् यानि द्रव्याणि, यश्च तेषामेव सम्त्रन्वी 'काय-10योगः' श्ररीरव्यापारः एतत् नवै गुरुल्बुरुमिति निर्देश्यम् । यानि तु ननो-नापाप्रायोग्याणि, उपलक्षणत्वाद् जानपान-कार्मणणयोग्याणि तदपान्त्रगलवर्तिनि च द्रव्याणि, यानि च सर्वी-ण्यिर धर्मी-ऽश्चर्मी-ऽऽकाश-जीवालिकायलक्षणान्यक्षिद्व्याणि तदेतत् सर्वनगुरुल्बुकमिति परिसाप्यम् ॥ २६८६ ॥

अहवा वायरवेंदी, कलेवरा गुरुलह भवे सच्वे । सुहुमार्णतपदेमा, अगुरुलह जाव परमाणू ॥ २६८७ ॥

'श्रयवा' इति प्रकागन्तन्योतने । जदग वोन्दिः—क्दीरं येपां ते 'वादरवोन्द्रयः' वादर-नानकर्नोद्रयवर्षिनो जीदा इत्यर्थः, तेषां सम्बन्धीनि यानि कडेवराणि, यानि चापराण्यिनि चादरपरिणामपरिणनानि मृ-मृयराजीनि क्षक्रचान-गन्यवेषुरप्रमृतीनि वा वस्नूनि तानि सर्वा-ण्यपि गुरुक्ष्यृत्युच्यन्ते । यानि तु स्क्ष्मनामकर्मोद्यवर्षिनां चन्तूनां करीराणि, यानि च 29 सुक्मपरिणामपरिणनानि अनन्त्रगोदिक्षकाजीनि परमाणुपुद्रलं यावद् द्रव्याणि तानि सर्वाण्य-प्रमुख्लभूनि ॥ २६८७ ॥ < वैद्यते निश्चयनयननम् > अथ व्यवहारनयमतमाह—

ववहारनयं पष्प उ, गुरुया लहुया य मीसगा चेव । लेडुग पदीव सारुय, एवं जीवाण कम्माई ॥ २६८८ ॥

व्यव्हारतयं पुनः 'शाव्य' अर्जाकृत्य त्रिवियानि द्रव्याणि मवन्ति, तद्या—गुरुकाणि 25 खुकानि 'निश्रव्याि च' गुरुव्यूनीत्यर्यः । नत्र यानि निर्वगृक्षं वा प्रश्चिष्ठान्यि समायादे- वाषो निपनिन तानि गुरुकाणि, यथा—लेष्ट्रतमृनीनि । यानि तृर्द्वगतिस्वमावानि तानि छबु- कानि, यथा—प्रदीपक्रिकार्यःनि । यानि तु नायोगनित्वमावानि न वा अर्द्धगतित्वमावानि, किं तर्हि ! समावदेव निर्यगनिवर्मकाणि तानि गुरुख्यूनि, यथा—'मारुनः' वायुक्तव्यमु- तीनि । एवं वीयानां क्रमीत्यपि त्रिया मवन्ति—गुरुक्ति छ्यूनि गुरुख्यूनि च । तत्र येर्सी

१ °व निश्चयनयमनं व्य° हारु ।

२ < ४ एतिव्हातः पष्टः हा॰ पुत्तव एव वर्तते ।

३ त॰ दे॰ नं॰ टे॰ जिनाज्यम् भित । एवं जीवानां कर्माण्यपि द्रष्ट्यानि, क्रिमुकं भवति ?—यः कर्मभिरमी जीवाः न्यमाबादुईगदिनमनशीला अपि वलादेवायोगित

जीवा अधोगतिं नीयन्ते तानि गुरुकाणि, यैस्तु त एवोर्द्धगतिं प्राप्यन्ते तानि रुघुकानि, यैः पुनिस्तर्यग्योनिकेषु वा मनुष्येषु वा गतिं कार्यन्ते तानि गुरुरुषुकानीति ॥ २६८८ ॥

तदेवं व्यवहारनयाभिप्रायेण समर्थितः कर्मणां गुरुत्व-रुघुत्वपरिणामः । अथ परः प्राह--ननु जीवास्तावत् स्ववशा एव ज्ञानावरणादिकं कर्मोपचिन्वन्ति ततो गतिरिप तेषां स्ववशतया किं न प्रवत्तते ? यदेवं कर्मोदयबरुादूर्द्धमधिस्तर्यग् वा नीयन्ते ? उच्यते--

कम्मं चिणंति सवसा, तस्युदयम्मि उ परन्वसा होंति । रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइ स परन्वसो तत्तो ॥ २६८९ ॥

जीवाः 'खवशाः' खतन्ना एव मिथ्यात्वा-ऽविरत्यादिभिः कर्म 'चिन्वन्ति' वध्नन्तीत्यर्थः, परं 'तस्य' कर्मण उदये ते जीवाः परवशा भवन्ति । दृष्टान्तमाह—यथा कश्चित् पुरुषो वृक्ष- मारोहन् 'खवशः' खाभिपायानुकूल्येनारोहति, स च कुतश्चिद् दुःप्रमादात् ततो विगलन् 10 'परवशः' खकाममन्तरेणव विगलति ॥ २६८९ ॥ आह यद्येवं ततः किं ससारिणो जीवाः सर्वथैव कर्मपरवशा एव ! उच्यते—नायमेकान्तः, यत आह—

कम्मवसा खल्ज जीवा, जीववसाइं किहंचि कम्माइं। कत्थइ घणिओ चलवं, घारणिओ कत्थई वंलवं॥ २६९०॥

कर्मवशाः खद्ध प्रायेणासी ससारिणो जीवाः, परं 'कुत्रचित्' प्रवलघृति-वलैदिसद्भावे कर्मी-18 ण्यपि जीववशानि । अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रदयति—यथा 'कुत्रचिद्' जनपदादौ 'धनिकः' व्यवहारिको बलवान्, 'कुत्रचित् पुनः' प्रत्यन्तग्रामादौ 'धारणिकः' ऋणधारकोऽपि बलवान् । इयमत्र
मावना—यदि जनपदमध्यवतीं विद्यमानविभवो वा धारणिकसादा धनिको वलीयान्, अथ
धारणिकः प्रत्यन्तग्रासे वा पह्यां वा गत्वा स्थितः न वा तस्य तथाविघ किमपि द्रव्यमस्ति
ततो धारणिको बलवान् भवति ॥ २६९०॥ एष दृष्टान्तः । अथार्थोपनयमाह—

धणियसरिसं तु कम्मं, धारणिगसमा उ कम्मिणो होंति । संताऽसंतधणा जह, धारणग धिई तणू एवं ॥ २६९१ ॥

इह धनिकसदृशं कर्म, धारणिकसमानाः 'कर्मिणः' सकर्मका जीवा भवन्तिं, युख-दुःखो-पभोगादिऋणधारकत्वात् तेषामिति भावः । यथा च 'सद्धनाः' विद्यमानविभवाः 'असद्धनाश्च' अविद्यमानविभवा धारणिका भवन्ति । तत्र च विद्यमानविभवे धारणिके धनिको यदि कार्ये 25 भवति तदा राजकुलवलेन तं धारणिकं घृत्वा खल्पं द्रव्य वलादेपि गृह्णाति, स च धारणिक-स्तस्मिन् द्रव्ये दत्ते सैति अनृणीभवति । अथासावविद्यमानविभवस्ततस्तेन धनिकेन स वशी-क्रियते, वशीकृतश्च तत्पारतृष्येण वर्त्तमानो दुस्सहं दासत्वादिमहादुःखोपनिपातमनुभवति ।

नीयन्ते भा॰। °नि । व्योमादिरूपमगुरुलघुनामकं तु चतुर्थं द्रव्यं प्रस्तुतेऽनुपयोगित्वादत्र । न विवक्षितमिति । 'पवं' लेष्ट्रादिष्टप्रान्तेन जीवानां कर्माण्यपि का॰॥

१ विलिओ ता॰ ॥ २ °लादिसम्पन्ने दृढप्रद्वारिप्रसृतिके पुरुषे कर्मा भां॰॥

३ °मास्त 'क° का॰ ॥ ४ °न्ति, कर्मणः प्रति सुख° का॰ ॥

५ °द्पि दापयति, स च भा॰ ॥ ६ त्तति आनण्यं प्रतिपद्यते । अथासा भा॰ ॥

एवमत्रापि "विइ" ति वृतिवरुं "तणु" ति वारीरं च वरुं विवमानविभवताकस्पमवसेयम् । इद्मुक्तं मवति—यस्य जीवस्य वज्रकुट्यसमानं विद्यिष्टं मनःप्रणियानवर्लं वज्रर्पभनाराचसंहनन-ल्याणं च ग्रारीरं वर्लं मवति स घनिकसदृशं कर्म क्ष्ययिता सुदेनेवानृणीमवति; यस तु शृतिवर्लं शारीरवर्लं वा न भवति स तेन कर्मणा वर्जाकियते, वशीकृतश्च तत्परतन्नतया **ठवर्तमानो विविधवारीर-मानसहु.स्रोपनिपातमनुभवति ॥ २६९१ ॥ आह वृति-संहननवर्होपेतो** यत् कर्म क्षपयति तत् कितुर्वाणेयनुर्वाणे वा क्षपयति ? इति उच्यते-

सहणोऽसहणो कालं, जह घणिओ एवसेव कम्मं तु । उदिया-ऽणुदिए खबणा, होज सिया आउवजेसु ॥ २६९२ ॥

घनिको द्विवा—सहिप्गुरसहिष्णुश्च । यः सहिष्णुः स विवक्षितं कालं प्रतीक्षते, इतरस्त 10न प्रतीक्षते । एवमेव कर्नापे किञ्चित् सकालपृची किञ्चित् पुनस्तामन्तरेणापि सविपाकं दर्शयतीति । एवमुद्गिणेस्यानुद्गिणेस्य वा कर्मणः क्षपणा श्रति-संहननवङोपेतस्य भवेत् , ''सिय'' वि 'स्यात्' कडाचित् कस्याप्येवं मवति न सर्वस्य । यस्तु संहनन-वलविद्दीन स नवरमनुदीर्ण कर्म देशतः क्षपयेत् न सर्वतः । "आडवळेतु" ति आयु.कर्मवर्जानां दोपकर्मणामनुदीर्णा-नामपि क्षपणं मत्रति, आयुषः पुनरुर्वाणेस्यत् क्षपणमिति मावः। तदेवं घनिक-घारणिक-15 दृष्टान्तेन जीव-कर्मणोरुमयोरपि तुरुयमेव यथायोगं वङीयस्त्वं दृष्टव्यन् । उक्तञ्च---

> हैयाची ब्रह्मदुत्ते भरतन्त्रपत्रयः सर्वेनाद्यश्च कृष्णे र्नाचेर्गोत्रावतारश्ररमजिनपतेर्मछिनाथेऽवलातन् । निर्वागं नारदेऽपि प्रश्नमणरेणैतिः सा चिलातीस्तेऽपि

इत्यं कर्मा-ऽऽत्मवीर्ये स्फुटमिह जयतां स्पर्द्वया तुल्यरूपे ॥ ॥ २६९२ ॥ टक्तं सप्रपत्नं मानाविकरणम् । अय कथं तदुत्पचते ? इत्याशङ्कानकाशमनलोक्य तदुत्या-चकारणानि दर्शयति-

> सिंचते अचित्ते, भीस वश्रीगय परिहार देसकहा। सम्ममणाउईने, अहिनरणमञ्जो समुष्पञ्जे ॥ २६९३ ॥

'सचिचे' शैक्षादों 'अचिचे' वल-पात्रादों 'मिश्रके' समाण्ड-मात्रकोपकरणे शैक्षादावना-25 मान्येऽपरेण गृह्यमाणे, तया 'क्चोगर्त' व्यत्यात्रिडिजादि तत्र वा विवीयमाने, परिहार:-स्थापना तदुपरुष्टितानि यानि कुरुनि तेषु वा प्रवेशे कियमापे, देशक्रणयां वा विधायमानायाम्, एतेषु स्थानेषु प्रतिनोदितो यदि सम्यग् नावर्चते न नतिपचते अतोऽविकरणमुलचते इति निर्द्यक्तिगाथासनासार्थः ॥ २६९३ ॥ अथेनामेत्र तितृणोति—

> आमन्त्रमदेमाणे, निण्हंत तहेत्र मन्त्रमाणे य । सचिचेतरमीसे, वितहापडिवत्तिओ कलहो ॥ २६९४ ॥

१°पि तुराञ्खापिराञ्चार्यत्वात् किञ्चित् कं॰ ॥

30

४ °िन श्राद्धार्दानि तेषु छं॰॥

२ आन्व्यं यद् व्र° मा॰ र्चा॰ ॥ े ३ °णतः साचिलातीसुतोऽपि त॰ दे॰ ॥ ५ इति गाथा° मा॰ ॥

'आभाव्यं नाम' शैक्षः शैक्षिका वा कायाप्याचार्यस्योपतस्थे र् 'युष्मदन्तिके ⊳ प्रव्रज्यां गृह्णामि' इति । तमुपिस्यतं मत्वा विपरिणमय्य परः कश्चिदाचार्यो गृह्णाति ततो मौलाचार्यो व्रवीति—िकमेवं मदीयमाभाव्यं गृह्णासि १, पूर्वगृहीतं वा शैक्षादिकं याचितः—मदीयमाभाव्यं किं न प्रयच्छिसि १ इति । एवमाभाव्यं सचित्तम् 'इतरद्' अचित्तं मिश्रं वा तत्कालं गृह्णमाणं पूर्वगृहीतं वा मार्ग्यमाणमपि यदा वितथपतिपत्तितो न ददाति तदा कलहो भवति । वितथ- 5 पतिपत्तिनीम—परस्याभाव्यमपि शैक्षादिकमनाभाव्यतया प्रतिपद्यते ॥ २६९४ ॥

वचोगतद्वारमाह—

विचामेलण सुत्ते, देसीभासा पर्वचणे चेव । अन्नम्मि य वत्तन्वे, हीणाहिय अक्लरे चेव ॥ २६९५ ॥

'स्त्रे' स्त्रविषया या 'व्यत्याम्रेडना' अपरापरोद्देशका-ऽध्ययन-श्रुतस्कन्धेषु घटमानका-10 नामालापक-श्लोकादीनां योजना, यथा—"सन्वजीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं" (दश्वै० अ०६ गा०१०) इत्यत्र इदमप्यालापकपैदं घटते "सबे पाणा पियाउया" (आचा० अ०२ उ०३) इत्यादि । तथाभृत स्त्रं परावर्त्तयन् 'किमेवं स्त्रं व्यत्याम्रेडयसि ' इति प्रतिनोदितो यदि न प्रतिपचते तदाऽधिकरणं भवति । देशीभाषा नाम—मरु-मालव-महाराष्ट्रादिदेशानां भाषा तामन्यत्र देशान्तरे भाषमाण उपहस्यते, उपहस्यमानश्चासङ्खं करोति । यद्वा प्रपञ्चनं 15 वचनानुकारेण वा चेष्टानुकारेण वा कोऽपि करोति ततः प्रपञ्चयमानसाधुना सहाधिकरणस-रपचते । अन्यसिन् वा वक्तव्ये कोऽप्यन्यद् वक्ति । यद्वा हीनाक्षरमधिकाक्षरं वा पदं वक्ति । तत्र हीनाक्षरम्—मास्कर इति वक्तव्ये भाकर इति वक्ति, अधिकाक्षरम्—सुवर्णमिति वक्तव्ये सुयुवर्णमिति व्रवीति । २६९५ ॥ परिहारिकद्वारमाह—

परिहारियमठवेंते, ठवियमणहाए निन्त्रिसंते वा । क्रुच्छियकुले व पविसह, चोईंयऽणाउट्टणे कलहो ॥ २६९६ ॥

गुरु-ग्लान-बालादीनां यत्र प्रायोग्य लभ्यते तानि कुलानि परिहारिकाण्युच्यन्ते, एकं गीता-र्थसङ्घाटकं मुक्तवा शेषसङ्घाटकानां परिहारमर्हन्तीति व्युत्पत्तेः । तानि यदि न स्थापयित, स्थापि-तानि वा 'अनर्थ' निष्कारणं 'निर्विश्चाति' प्रविश्चातीत्यर्थः, यद्वा 'परिहारिकाणि नाम' कुत्सितानि जात्यादिजुगुप्सितानीति भावः, तेषु कुलेषु प्रविश्चाति । एतेषु स्थानेषु नोदितो यदि नावर्चते 25 न वा तेषु प्रवेशादुपरमते ततः कल्हो मवति ॥ २६९६ ॥ ⊲ देशकथाद्वारमाह—⊳

देसकहापरिकहणे, एके एके व देसरागम्मि । मा कर देसकहं ति य, चोईय अठियम्मि अहिगरणं ॥ २६९७॥ देशकथाया उपलक्षणत्वाद् भक्त-स्त्री-राजकथानां च परिकथनं कुर्वाणो द्वितीयेन साधुना

१ « > एतदन्तर्गत पाठ. का॰ विना नास्ति ॥ २ °पद्माचाराद्वान्तर्गतं घ° को॰ ॥

३ °ति । ततोऽन्येरुपहस्यमानः सोऽप्यसङ्घडं कुर्यादिति ॥ २६९५ ॥ परि° का॰ ॥

४ चीयणऽणाउ° ता॰ ॥

५ 🗠 🗹 एतदन्तर्गत. पाठः त० डे॰ मो॰ छे॰ नास्ति ॥

६ चोदिणो अठि^२ ता॰ ॥

नंदितः—ना देशदिक्षां कार्षाः, न वर्तते साधूनामीदशीं कथां कथियतुन्। न प्राह्—कोऽसि त्वं येनैवं नां वारयसि १। तथारि 'अस्थितं' अनुपरते सत्यविकरणं मवति । यहां ''एके एके व देसरागिमाः' ति एक नाष्ट्र सुराष्ट्रां वर्णयति, यथा—रनणीयः सुराष्ट्राविषयः; हिनीयः प्राह—कृपमण्ड्कस्वन्, किं जानसि १ दक्षिणापथ एव प्रवानो देशः; एवनैकैक- इदेशननेणोत्तरप्रस्तुत्रिकां कुर्शपयोक्तयोगिष्ठकरणं मवति ॥ २६९७॥

एवस्त्रनेऽविकरणे किं कर्तव्यम् ! इत्याह—

वो वस्त उ उवसमई, विव्हवणं नस्य तेण कायव्वं । वो उ उवेहं कुझा, आवसह मासियं लहुगं ॥ २६९८ ॥

यः सार्ह्यस्य सायोः प्रज्ञापनयोषद्यान्यति उस तेन नाहुना 'विच्यार्गनं' ह्रोघाग्निर्नापणं IV क्रुंच्यन् । यः पुनः साहुत्येकां हुर्यन् म आण्यने मासिकं लघुक्रम् ॥ २६९८ ॥

< इंदमेबानुबंदन् देशियानीर विदेशियां स्यायश्चितान् दर्शयति—>-

ल्हुओ उ उनेहाए, गुरुओ सो चेन उनहसंतस्स । उत्तयमाण लहुना, सहायगचे सरिसदोसो ॥ २६९९ ॥

टेंपेड़ां हुर्नाणस्य लडुको मासः प्रायिश्वितम् । टपहसतः स एव मासो गुरुकः । अय टत्— १६ प्रावस्थेन तुरति टतुद्दि—अधिकरणं कुदेन्तं विद्यापत टत्तेजयतीत्वर्यः ततश्चत्वारो लडुकाः । अय कल्टहं कुर्वतः 'सहायक्रनं' साहाय्यं करोति ततोऽसावधिकरणकृता सह सहस्रदोप इति कृत्वा सहस्रं प्रायक्षितमापद्यते, चतुर्गुरुकमित्वर्यः ॥ २६९९ ॥ तँषा चाह—

> चडरो चडगुरु अहवा, विसेतिया होंति मिक्तुमाईणं । अहवा चडगुरुगार्दा, हवंति ऊ छेद निहुवणा ।। २७०० ॥

26 मिश्च-हरमोराव्याया-ऽऽचार्यणामिवकरणं द्वर्वतां प्रत्येकं चतुर्गृतकत्, तत्रश्चतारश्चतुर्गृतका मवन्ति । अथ्या त एव चतुर्गृतकाद्यः-काव्यविद्योरिता सर्वान्ति, तद्यया—सिश्चोश्चतुर्गृतकं तपसा कालेन च ल्रुक्रम्, द्वरमस्य तदेव काल्गुरकत्, द्याध्यायस्य तपोगृतकम्, आचार्यस्य तपसा कालेन च गुरकत् । अथ्या चतुर्गृतकाद्यरम्य च्छेदे निष्ठापना कर्तव्या, तद्यथा— सिश्चरविकर्गं करोति चतुर्गृतकम्, द्वरमस्य पद्वत्रक्त्, द्याध्यायस्य पह्रकम्, आचार्यस्य- १५ व्यकरणं द्वर्गगस्य च्छेद इति । यथा चाविकरणकरणं आदेशक्रयेण प्रायश्चित्तमुक्तं तथा साहा- व्यकरणंऽपि प्रत्ययम्, समानदीपत्वात् ॥ २७०० ॥ अथोपेश्वाच्यास्यान्यान्याह—

परपत्तिया न किरिया, मोत परई च जयत आयहे। अवि य उवेहा बुत्ता, गुणा वि दोसा हवह एवं ॥ २७०१ ॥

इहाविकरणं छ्वंदो दक्ष नान्तस्त्र्यमात्रेन तिष्ठन् अन्यपानप्युपदेशं प्रयच्छति—पर्प-20स्त्रया या 'किया' क्रेनंबन्यः सा असाकं न सन्नति. पर्रष्ठदस्य क्रमण आस्त्रेनि सङ्क्षमामावात् । तथा यथेताविकरणकरणाद्वपद्याम्येते तनः पर्गयं. कृतो भन्नति । तं च परार्थं मुक्तना

१८४ एनविद्माद्यातः पठ क्षं० प्रनाधेव वर्षते ॥ २ अधिकरणकारिनि उपेक्षां क्षं० ॥ ३ तत्राणिकरणकारिगास्मावत प्राणिश्चित्तमाद्द क्षं० ॥ ४ अमेसस्यम्यः मा० विमा ॥

यदि मोक्षार्थिनस्तदा 'आत्मार्थ एव' खाध्याय-ध्यानादिक 'यतध्वं' प्रयतं कुरुत । अपि चेत्यम्युच्ये । ओघनिर्युक्तिगास्नेऽप्युपेक्षा संयमाङ्गतया प्रोक्ता, "उविहित्ता सजमो वृत्तो" (पेहेता संजमो वृत्तो, उवेहित्ता वि सजमो । मा० गा० १७०) इति वचनात् । यद्वा "मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि सत्त्व-गुणाधिक-क्किर्यमाना-ऽविनेयेपु" (तत्त्वा० अ० ७ सू० ६) ४ ईति वचनाद् अविनेयेपु > माध्यस्थ्यापरपर्याया उपेक्षेव प्रोक्ता, ततः सैव ६ साधूनां कर्त्तुमुचितेति भावः । अत्र सूरिराह—"गुणो वि दोसो हवइ एवं" ति यदिदम-विनेयेपु माध्यस्थ्यमुपदिष्टं तदसयतापेक्षया न पुनः सयतानङ्गीकृत्यः, यसादसंयतेष्वियमुपेक्षा कियमाणा गुणः, सयतेपु तु कियमाणा महान् दोपो भवति । उक्तञ्चौचनिर्युक्तावपि—

सजयगिहिचोयणऽचोयणे य वावारओवेहा । (मा० गा० १७१) ॥२७०१॥

अथ ''परपत्तिया न किरिय" ति पदं भावयति-

id

जइ परो पिडसेविजा, पावियं पिडसेवणं । मन्झ मोणं चरंतस्स, के अहे परिहायई ॥ २७०२ ॥

यदि 'परः' आत्मन्यतिरिक्तः 'पापिकाम्' अकुश्चलकर्मरूपामधिकरणादिकां प्रतिसेवनां प्रति-सेवेत ततो मम मौनमाचरतः को नाम ज्ञानादीनां मध्यादर्थः परिहीयते १ न कोऽपीत्पर्थः ॥ २७०२ ॥ अथ 'भोत्तु परट्टं व जयसु आयट्टे' इति पदं व्याचिए—

> आयट्टे उवउत्ता, मा य परद्विम्म वावडा होह । हंदि परद्वाउत्ता, आयट्टविणासगा होति ॥ २७०३ ॥

आतमार्थी नाम—ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपं पारमार्थिकं स्वकार्यं तत्रोपयुक्ता भवत, मा च 'परार्थे' परकार्येऽधिकरणोपश्चमनाटो व्याप्टता भवत । हन्दीति हेतूपदर्शने । यसात् परार्थायुक्ताः 'आत्मार्थविनाशकाः' स्वाध्याय-ध्यानाद्यात्मकार्थपरिमन्थकारिणो भवन्ति ॥ २७०३ ॥

गतमुपेक्षाद्वारम् । अथोपहसनोत्तेजनाद्वारे युगपद् व्याचछे---

एसो वि ताव दम्मड, हसइ व तस्सोमयाए ओहसणा। उत्तरदाणं मा ओसराहि अह होइ उत्तअणा।। २७०४।।

द्वयोरिषकरणं कुर्वतोरेकसिन् सीदित आचार्योऽन्यो वा त्रवीति—एपोऽपि तावददान्तपूर्वो दम्यतामिदानीमनेन, यदि वा—तस्य 'अवमतायां' पश्चात्करणे इत्यर्थः स्वयमङ्कृहासैरुपह्सित, 25 एतदुपह्सनमुच्यते । तथा तयोर्मध्याद् यः सीदित तस्य 'उत्तरदानं' अमुक्रममुक च ब्रृहि इत्येवं शिक्षापणम् , यद्वा—माऽमुज्मादपसरस्त्वम् , दृढीम्य तथा लग यथा नैतेन पराजी-यसे, अथेपोत्तेजनाऽभिधीयते ॥ २७०४ ॥ अथ सहायकत्वं द्याख्यानयति—

वायाए हत्थेहि व, पाएहि व दंत-रुउडमादीहिं। जो कुणइ सहायत्तं, समाणदोसं तयं वेंति॥ २७०५॥

30

१ ॰ ० एतचितान्तर्गत. पाठ॰ त॰ डे॰ मो॰ छे॰ नास्ति॥

२ गुणो मन्तव्यः, संयतेषु तु कियमाणा एपा 'गुणोऽपि' गुणक्रपाऽपि महान् वा॰ ॥ ३ उपेक्षां कुर्वचन्येभ्य उपदेशमित्यं प्रयच्छति—आत्मार्थो नाम वा॰ ॥

हुगेः क्टहायमनगैनेव्यादेक्स परे मुचा यः कोऽति वाचा हतास्यां चा पद्यां वा दर्लर्षा छगुहादिनिर्धा 'सहावतं' साहाव्यं करोति तं तेनिषका नकतिना सह समनदोरं तीर्थकतद्वयो हुन्ते ॥ २७०५ ॥ अथाचार्या नाहम्कां कुर्वा नानं सामान्येन वाऽविकागेऽहु-प्रशासकाने दोस्तर्कनार्थनिवद्वद हर्महाच्येते—

अल्बनन्ते एवं अवहन्तं महने द्यानंद्रमंद्रियं महंतं सरं अस्य । तस्य य द्यूपि वर्ष-चर-यन्त्रर-महचरस्तापि अन्तंति । तस्य एवं महत्वं हृतियनुद्दं परिवरह् । अन्नया य विन्हृत्राते ते हृतियनुद्दं पपित्रं पाउं प्यादितंतं मन्त्रमृद्देमकाने मीयक्तन्तन्त्र्याणम् सुद्दंसुद्देपं चिद्धः । तस्य य अद्युदेसे तो सर्वा मीदिरमाग्द्या । व्यादेदयाम् अ ते दहुं सर्वेतं समामार आक्षेपियं । ४ वित दत्रं इत्यह्—>>

> नागा ! जलवासीया !, सुणेह नय-यावरा ! । मगहा जत्य मंडीत, अमावी परियत्तई ॥ २७०६ ॥

भी नगाः !' इत्तिनः ! तयः 'जेन्द्रासितः !' मन्य-केन्न्यात्यः ! अरोर च ये त्रमाः !— मृग-पशु-परित्रमृतयः ! स्वत्रश्च-महकागरयो हृक्षः ! एते सर्वेऽपि यूर्य शृशुन महीयं वचनम्---यत्र सामि सरो 'मण्डतः' केन्द्रं कुरुतः तस्य 'अमातः परिवर्षते' विसासः 18 सम्मान्यन इति मातः ॥ २७०६ ॥

ता मा एते सरहे मंदित स्वेक्ट्स ब्रॉन्स तुक्ते । एवं स्टीया वि ते जनकाइयो वितंति—कि अर्च एते मरहा मंदिता काहिति । त्रिय य एगो सरहो मंदितो पिछितो । स्रो व्यक्तिते सुद्दरस्त्रम्स एएस्स जुद्दाहिबस्स हिन्स्म 'विस्' ति काउं कसापुदं पविद्यो । विद्यो वि तस्स पिछुबो चेंब पविद्वे । ते सिर्क्ताले सुद्धं मंदलगा । तस्म हिन्स्स धन्द्देती काई ज्ञाय । तथो वियाहो मह्हंप् अस्माहीप बहुमानो स्ट्रेस तं बन्मेंड चूरेद्दा

ब्ह्रें तथ विस्तंत सदा बह्या, इनं च बाडोहितेय उठवरा बह्या, तरुगनार्की य नेह्या, तरुगं विग्रहं, दाहे दक्वर वि संहे विग्रहा ॥ बहुनेवर्थनाह—

वणमंड मरे जल-थल-खहचर वीतमण देवया कहणं । वारेह सरड्देक्त्रण, वाडण गयनास चृरणया ॥ २७०७ ॥

25 इत्तर्यद्वारित प्रति व्यवस्थित्र स्वयानां विश्वनान् । तत्र च सर्विन्दितं द्यू वनदेवत्या 'नामा ! व्यवस्थिता!' इत्यदि (२७०६) स्वेत्रत्वयां कृत्य 'वस्य पर्या कृत्यायमानां' इत्यादिष्य । वत्रत्व देनीमादिन्तः सर्ययोग्नेद्वनं कृत्य । एकसः च मरस्य द्वितायन थारन् । वर्षायक्षेत्रायमानां गव्यस्तानां गव्यस्त्युदं प्रविष्य न्। तत्र्व्यने द्वितायक्षेत्र प्रतिया स्वयस्ति । एत द्व्यन्तः, अथ्यस्ति । एत द्व्यन्तः, अथ्यस्ति । एत द्व्यन्तः, अथ्यस्ति । एत द्वयन्तः, अथ्यस्ति । वर्षाय त्याव्यक्षेत्र विषयः, वर्षाय त्याव्यक्षेत्र वर्षायः स्वयं विषयः, वर्षाय वर्षायः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः वर्षायः । वर्षायः स्वयः स्वयः वर्षायः । वर्षायः स्वयः स्वयः वर्षायः । वर्षायः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः स्वयः । वर्षायः स्वयः स्वयः

युध्येताम्, ततश्च परम्परया राजकुरुज्ञाते सङ्जाते सित स राजादिस्तेषां साधूनां वन्धनं वा र्माम-नगरादेनिष्काशनं वा कटकमदे वा कुर्यात् ॥ २७०७॥ किञ्चान्यत्—

तानो भेदो अयसो, हाणी दंसण-चरित्त-नाणाणं। साहुपदोसो संसारवहुणो साहिकरणस्स ॥ २७०८ ॥

तापो भेदोऽयशो हानिर्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणां तथा साधुप्रद्वेषः संसारवर्द्धनो भवति । एते ६ साधिकरणस्य दोपा अवन्तीति च ³निर्युक्तिगाथा ⊳समासार्थः ॥ २७०८ ॥ ' अथैमामेन गाथां विवृणोति-

> अइभिणय अभिणए वा, तावी भेदी उ जीव चरणे वा । रूवसरिसं न सीलं, जिम्हं च मणे अयस एवं ॥ २७०९ ॥

तापो द्विधा--- प्रशस्तो अपशस्तश्च । तत्रातिभणिते सति चिन्तयति-- धिग् मां येन तदानीं 10. स साधुर्वहुविधैरसदभ्याख्यानैरभ्याख्यातः इत्थमित्यं चाकुष्टः, एप प्रशुस्तस्ताप उच्यते । अथ अभिणतं-न सथाविधं किमिप तस्य सम्मुखं भिणतं ततिश्चन्तयति —हा ! मन्दभाग्यो विसार-णशीलोऽहं यद् मया तदीयं जात्यादिमर्मनिकुरुम्वं न प्रकाशितम्, एप अप्रशस्ताखापो मन्तज्यः। तथा 'मेदो नाम' करुहं कृत्वा जीवितमेदं चरणमेदं वा कुर्युः, पश्चाचापतसचेतसो वैहायसादि-मरणमभ्युपगच्छेयुः उन्निष्क्रमणं वा कुर्युरिति भावः । तथा छोको ब्र्यात्—अहो ! अमीपां 15 श्रमणानां 'रूपसदृशं' यादृशं वृद्धिः प्रशान्ताकारं रूपमवलोक्यते तादृशं 'शीलं' मनःप्रणिधानं नास्ति । यद्वा-- किं मन्ये 'जिहां' लजानीयं किमप्यनेन कृतं येनैवं प्रम्लानवदनो दृश्यते ? । एवमादिकमयशः समुच्छलति ॥ २७०२ ॥^४

> अकुट्ट तालिए वा, पनखापनिख कलंहिम गणभेदो । एगयर स्यएहिँ व, रायादीसिट्टें गहणादी ॥ २७१० ॥

25

जकार-मकारादिभिर्वचैनैराक्तुष्टे 'ताडिते वा' चपेटा-दण्डादिभिराहते सति^ह 'पक्षापिक्ष' पर-स्परपक्षपरिग्रहेण साधूनां कलहे जाते सति गणमेदो भवति । तथा तयोः पक्षयोर्मध्यादेकत-रपक्षेण राजकुरुं गत्वा 'शिष्टे' कथिते सति 'सूचकैर्वा' राजपुरुपविशेषे राजादीनां ज्ञापिते भ्रहणा-ऽऽकर्पणादयो दोषा भवन्ति ॥ २७१० ॥[°]

्वत्तकलहो वि न पढइ, अवच्छलत्ते य दंसणे हाणी। जह कोहाइविवद्वी, तह हाणी होइ चरणे वि ॥ २७११ ॥ 'वृत्तकरुहोऽपि' करुहकरणोत्तरकारुमपि कपायकर्खपितः पश्चाचापतप्तमानसो वा यत्र पठित

१'°त । एवं च देवतास्थानीयेन तीर्थकरेण निषिद्धामुपेक्षां कुर्वाणेष्वाचार्यप्रभृतिषु वनखण्डस्थानीयस्य गच्छस्य पद्मसरःस्थानीयस्य च संयमस्य विनादाः सक्षायते ॥२७०७॥ अधाधिकरणकारिणामेव विशेषदोपान दर्शयति—तावो कां॰ ॥

२ °न-चारित्र-ज्ञानानां तथा कां॰ ॥ ३ ⁴ > एतचिद्यमध्यमः पाठः कां॰ एव वर्त्तते ॥

ध अथ भेदपदं प्रकारान्तरेण विवृणोति इस्तवतरणं कां ।। ५ °चनैः रापिते 'ता° मा ।। ६ °ति द्वितीयसाधी 'प॰ कां॰ ॥ ७ अथ झान-दर्शन-चारित्राणां हानि व्याख्याति इसवतरणं कां॰ ॥ बृ० ९५

Б

30

एवा ज्ञानपरिहाणिः। सांघुप्रद्वेपतः साधामंकवात्सरूयं विराधितं भवति, अवात्सरूये च दर्शन-परिहाणिः। यथा च क्रोधादीनां कपायाणां यृद्धिस्तथा 'चरणेऽपि' चारित्रस्य परिहाणिभवति, विश्रद्धसंयमस्थानप्रतिपातेनाविश्रद्धसंयमस्थानेषु गमनं भवतीत्पर्थः॥ २७११॥

एतच व्यवहारमाश्रित्योक्तम् । निश्चयतन्तु-

अकसायं खु चरित्तं, कसायसहितो न संनओ होइ। साहण पदोसेण य, संसारं सो निवहेंद्र ॥ २७१२॥

खुशव्दस्येवकारार्थत्वाद् 'अकपायमेव' कपायविरहितमेव चारित्रं भगवद्भिः प्रज्ञष्ठम् । अतो निश्चयनयाभिप्रायेण कपायसहितः संयत एव न भवति, चारित्रशृत्यत्वात् । तथा साधूनामुपरि यः प्रद्वेपखेनासा साधिकरणः सन् संसारं वर्द्धयति, दीर्घतरं करोतीति भावः । 16यत एते दोपास्तत उपेक्षा न विषया ॥ २०१२ ॥ किं पुनर्सार्ह् कर्सव्यम् ? इत्याह—

आगाढे अहिगरणे, उवसम अवकहणा य गुरुवयणं । उवसमह कुणह न्यायं, छङ्गणया सागपत्तेहिं ॥ २७१३ ॥

'आगाढे' कर्कदोऽिषकरणे उत्पन्ने सित द्वयोरप्युपश्चमः कर्चव्यः । कथम् ? इत्याह—कठ-हायमानयोस्तयोः पार्श्वस्थितेः साधुमिः 'अपकर्पणम्' अपसारणं कर्चस्यम् । गुरुमिश्चोपश्चमना-15 श्रीमदं वचनमिघातव्यम्—आर्थाः ! उपशाम्यतोपश्चाम्यत, ⊸ गाथायामनुक्तमपि द्विवचनं धक्तमाद् इस्यम्, > अनुपशान्तानां कृतः संयमः ? कृतो वा स्वाध्यायः ?, तसादुपशमं कृत्वा साध्यायं कुरुत, किमेवं द्रमकवत् कनकरसस्य शाकपत्रैः 'छर्दनां' परित्यागं कुरुथ ? ॥२७१३॥

कः पुनरयं द्रमकः ? उच्यते —

जहा एगो परिद्यायगो दमगपुरिसं चिन्तासोगसागरावगाढं पासचि, पुच्छित य—िकमेवं 20 चिंतापरो ! । तेण से सब्मावो किहतो 'दारिद्दामिमृतो मि' चि । तेण भणितं—इस्सरं तुमं करेमि, नतो नेमि ततो गच्छाहि, नं च भणामि तं सद्यं कायवं । ताहे ते संवर्छ घेत्तुं पवय- निगुंनं पिन्हा । परिद्यायगेण य भणितो—एस कणगरसो सीत-वाता-ऽऽतव-परिस्समं अगणि- नतेहिं तिसा-खुवावेयणं सहंतेहिं वंभचारीहिं अचिचकंद-मूळ-पच-पुष्फ-फछाहारीहि समीपच- पुडएहिं भावतो अरुस्समाणेहिं घेचबो, एस से उवचारो । तेण दमगेण सो कणगरसो उव- 25 चारेण गहितो , तुंवयं भरितं । ततो निग्गता । तेण परिद्यायगेण भणितं—सुरुहेण वि तुमे एस सागपचेण न छिद्धियबो । ततो सो परिद्यायगो गच्छंतो तं दमगपुरिसं पुणो पुणो भणइ—मम पमावेण ईसरो मिनस्सिस । सो य पुणो पुणो भन्नमाणो रुहो मणित—र्ज तुज्ञ पसाएण ईसरचणं तेण मे न कृद्धं । तं कृणगरसं सागपचेण छेद्धेति । ताहे परिद्याय- गेण भन्नति—हा हा दुरात्मन् । किमेयं तुमे कृयं ! ।

नं अजियं समीखछएहिं तन-नियम-त्रंममइएहिं। तं दाणि पच्छ नाहिसि, छिंहतो सागपत्तेहिं॥ २७१४॥

१ 4 D एतन्मध्यगतः पाटः कां॰ एव वर्तते ॥

२ °तो, कडुयदुद्धियं भरि° मा॰ ॥

यदिनंतं शमीसम्बन्धिमः सिंह न्यत्रपृटेस्तपो-नियम-त्रक्षेयुक्तेः तिदिदानीं शाकपत्रैः परि-त्यन् 'पश्चात्' परित्यागकालादुर्द्ध परितप्यमानो ज्ञास्यसि, यथा—दुष्ठु मया कृतं यिचरस-श्चितः कनकरसः शाकपत्रैरुस्तिच्य परित्यक्तः । एवं परित्राजकेण द्रमक उपालक्यः । अथा-वार्यस्ताविधकरणकारिणावुपालभते—आर्यः! यचारित्रं कनकरसस्थानीयं तपो-नियम-त्रह्मच-र्यमयैः शमीसहिकरिनंतं परीषहोपसर्गादिश्रममगणयद्भिश्चरात् कथं कथमपि मीलितं तिद्दानीं र्व शाकपत्रसदृशेः कपायैः परित्यजन्तः पश्चात् परितप्यमानाः स्वयमेव ज्ञास्यथ । यथा—हा! बहुकालोपानितेन संयमकनकरसेन तुम्बकस्थानीयं स्वजीवं बहुपूर्णं कृत्वा पश्चात् कलहायमानैः शाकग्रक्षपत्रस्थानीयैः कपायैरुस्तिच्यास्तिच्यायमात्मा रिक्तीकृतः, शिरस्तुण्डमुण्डनादिश्च प्रत्र-ज्याप्रयासो मुधेव विहित इति ॥ २७१४ ॥ आह् कथमेकमृहूर्चभाविनाऽपि कोधादिना चिर-सिञ्चतं चारित्रं क्षयमुपनीयते ! उच्यते—

जं अजियं चरित्तं, देख्णाए वि पुव्वकोडीए। तं पि कसाइयमेचो, नासेइ नरो मुहुत्तेण॥ २७१५॥

यदिनंतं चारित्रं 'देशोनयाऽपि' अष्टवर्पन्यूनयाऽपि पूर्वकोट्या तदिष, आस्तामस्पतरकालो-पार्नितिमत्यिषशञ्दार्थः, 'कषायितमात्रः' उदीर्णमात्रक्रोघादिकपाय इत्यर्थः 'नाशयित' हारयिति 'नरः' पुरुषः 'मुहूर्त्तेन' अन्तर्महूर्त्तेनेति भावः । यथा प्रमृतकालसिन्नितोऽपि महान् तृणराशिः 15 सक्तत्रज्वालितेनाप्यमिना सकलोऽपि भस्तसाद् भवित, एवं क्रोधानलेनापि सकृदुदीरितेन चिर-सिन्नितं चारित्रमिप भसीभवतीति हृदयम् ॥ २०१५ ॥ एवमाचार्येण सामान्यतस्तयोरनुशिष्टि-द्रातन्या, न स्वेकमेव कश्चन विशेष्य भणनीयम् । यत आह—

आयरिय एगु न भणे, अह एगु निवारि मासियं लहुगं। राग-होसविम्रको, सीयघरसमो उ आयरिओ ॥ २७१६॥

आचार्यो नैकमधिकरणकारिणं 'भणिति' अनुशास्ति । अथाचार्य एकमेव 'निवारयित' अनुशास्ति न द्वितीयं ततो मासिकं छष्ठकमापद्यते, असामाचारीनिष्पन्नमिति भावः । तसादाचार्यो राग-द्वेषविमुक्तः शीतगृहसमो भवेत् । शीतगृहं नाम—वर्द्धिकरलिनिर्मतं चक्रवर्तिगृहम्, तच्च वर्षास्र निवातप्रवातं शीतकाले सोष्मं भीष्मकाले शीतलम् । यथा च तच्चकवर्तिनः सर्वर्तुक्षमं तथा द्रमकादेरि पाकृतपुरुषस्य तत् सर्वर्तुक्षममेव भवति, एवमाचार्येरि निर्विशेषेभीवितन्यम् 25 ॥ २७१६ ॥ अथ विशेषं करोति तत इमे दोषाः—

वारेइ एस एयं, ममं न वारेइ पक्खरागेणं। बाहिरमावं गाढतरगं च मं पेक्खसी एकं।। २७१७॥

एवं आचार्यः 'आत्मीयोऽयम्' इति बुद्धा अधं वारयति, मां तु परवुद्धा पश्यत्र वारयति, एवं पक्षरागेण कियमाणेन अनर्नुशिष्यमाणः साधुर्नीद्यभावं गच्छति । यद्वा सोऽनर्नुशिष्यमाणो ३० गाडतरमधिकरणं कुर्यात् । अथवा तमाचार्ये परिस्फुटमेव श्रूयात्—त्वं मामेवैकं वाद्यतया

१ °समयैः तदुपचारसंयुक्तैरित्यर्थः तदिदा° कां॰॥

२-३ °तुशास्त्रमा° भा॰॥

प्रेवसे । ततश्चात्मानमुद्रिय्य यदि नारयति तत् आचार्यस्य पाराश्चिकम् । अथीत्रिष्कामति ततो मूलम् । तसोद् द्वावप्यनुशासनीयो ॥ २७१७ ॥

अनुशिष्टे। च यद्युपद्यान्तो ततः सुन्दर्स् । अर्थेक् उपद्यान्तो न हितीयः, तेन चौपद्यान्तेने गला स सापराध्यतिपत्तिपुरस्तरं आमितः परमसी नोपद्यान्यति । आहं कथमेतदसी जानाति ध्यथाऽयं नोपद्यान्तः ? उच्यते — यदा बन्द्यमानोऽपि न बन्द्रनकं यतीच्छति, यदि वाऽवमरला- धिकोऽसी ततस्तं रत्नाधिकं न बन्द्रते, आदियमाणोऽपि वा नादियते । एवं तमनुपद्यान्तसुप- स्क्य ततोऽमा कि करोति ? इत्याह—

उनसँतोऽणुवसंतं, तु पासियाँ विन्नवेद आयरियं । तस्स उ पण्णवणद्वा, निक्लेंबों पर इमी होद्।। २७१८॥

10 डपञान्तः साधुरनुपञान्तमपरं दृष्ट्वाऽऽचार्यं विज्ञपर्यति—क्षमाश्रमणाः ! डपञ्जान्तोऽह्म् परमेप ज्येष्ठायाऽमुको वा नोपञान्यति । तत आचार्यास्तस्य प्रज्ञापनार्थं परनिक्षेपं कुर्वन्ति । म च परनिक्षेपः 'श्रयं' बक्ष्यमाणो भवति ॥ २७१८ ॥ तमेवाह—

> नामं ठनणा द्विए, खेत्ते काले तदत्रमने अ । आएस कम बहु पहाण भावओ उ परो होड् ॥ २७१९ ॥

15 नामपरः स्वापनापरो द्रव्यपरः क्षेत्रपरः कालपरः । एते च द्रव्यपरादयः प्रत्येकं द्विषाः, त्त्वया—"तद्रत्रमन्ने य" ति तद्रव्यान्योऽन्यद्रव्यान्यश्च, तद्रव्यपरोऽन्यद्रव्यपरश्चित्यर्थः । एवं तत्क्षेत्रपरोऽन्यक्षेत्रपरश्च, तन्कालपरोऽन्यकालपरश्च । तथाऽऽदेशपरः कॅमपरो बृहुपरः प्रवानपरो मावपरश्चेति दश्या मृलमेदापश्चया परिनिक्षेपो मवर्ताति नियुक्तिगाद्यासमासार्थः ॥ २७१९ ॥ अधास्या एवं माप्येकारो व्यास्यां कर्तुकामो नाम-स्वापने सुष्णत्वादंनाहस्य ज्ञशरीर-मव्य-

20 शरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यपरं तावदाह-

परमाणुपुरगलो खलु, तद्व्वपरी मने अणुस्सेन । अन्नद्व्वपरो खलु, दुपएसियमाइणो तस्स ॥ २७२० ॥

. द्रव्यपरो द्विचा, तद्यया—तद्देव्यपरोऽन्यद्रव्यपरश्च । तैत्र 'अणोः' परमाणु-(र्मन्धायम् → ७००० । सर्वप्रन्थापम् — १९२२०) पुद्गलस्यापरः परमाणुपुद्गलः परतया चिन्त्यमानस्तद्रव्य- २५परो मवति । 'तस्येव' परमाणुपुद्गलस्य द्विपदेशिकाद्यः स्कन्धाः परतया चिन्त्यमाना अन्यद्र- व्यपरा मवन्ति ॥ २७२० ॥

एमेव य खंबाण विन्तद्व्यपरा उ तुष्टसंघाया । जे द_ियतुष्टपएसा, अण् य तस्सऽन्नद्व्यपरा ॥ २७२१ ॥

'एवमेव च' परमाणुपुद्रस्वद् द्यणुकप्रमृतीनां स्कन्धानामपि ये 'तुल्यसङ्घाताः' परस्परं समा-क्षानपदेशसङ्गाकाः स्कन्धान्ते तद्रव्यपराः, ये पुनः 'अतुल्यपदेशाः' विसदृशपदेशसङ्गाकाः स्कन्धाः 'अणवश्च' एकाणुकान्ते सर्वेऽप्यन्यद्व्यपरा मवन्ति । तद्यथा—द्यणुकस्कन्धो द्यणुकः स्कन्यस्य तद्वयपरः, व्यणुकादयस्तु स्कन्धाः परमाणवश्च तस्यात्यद्वयपराः; एवं व्यणुकादयो-

१ तत्र परमाणुपुद्रलः सन्त्रपरस्य 'यणोरेच' परमाणुपुद्रलसैंच परतया को 🔎 🗀 📑

र्डप्यनन्ताणुकपर्यन्ताः स्कन्धाः परस्परं तुल्यपदेशसङ्घ्याकास्तद्भव्यपराः, विसद्दशप्रदेशसङ्घान् कास्त्वन्यद्भव्यपरा मन्तव्याः, यावत् सर्वोत्क्रष्टाणुको महास्कन्धः ॥ २७२१ ॥

अथ क्षेत्र-कालपरी प्रतिपादयति—

एगपएसोगाढादि खेर्चे एमेव जा असंखेळा।

एगसमयाइठिइणी, कालिमा वि जा असंखेजा ॥ २७२२ ॥ 💯 🔭

'क्षेत्रं' क्षेत्रविषयेऽपि परद्वारे चिन्त्यमाने 'एवमेव' तत्क्षेत्रपरा-ऽन्यक्षेत्रपरमेदेन पुद्गला एक-प्रदेशावगाढादयोऽसङ्क्षेयप्रदेशावगाढं यावद् द्रष्टव्याः । तद्यथा—एकप्रदेशावगाढः परमाणुः स्कन्धो वा एकप्रदेशावगाढस्य तत्क्षेत्रपरः, द्वित्रिप्रदेशावगाढाँदयः पुनस्तस्यान्यक्षेत्रपराः; तथा ﴿ द्विप्रदेशावगाढः स्कन्धो ﴾ द्विप्रदेशावगाढस्य स्कन्धस्य तत्क्षेत्रपरः, एकत्र्यादिप्रदेशावगाढास्तु तस्यान्यक्षेत्रपराः; एवं विस्तरेण सर्वोऽवगाहना द्रष्टव्या । कालेऽप्येकसमयादिस्थितयः पुद्गला 10 यावदसङ्क्ष्येयसमयस्थितयस्तावत् तत्कालपरा-ऽन्यकालपरमेदाद्वक्तव्याः—तत्रैकसमयस्थितिकानां पुद्गलामेकसमयस्थितिकास्तत्कालपराः, द्वित्र्यादिसमयस्थितिकाः पुनरन्यकालपराः; एवं यावद-सङ्क्ष्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीगतासङ्क्ष्येयसमयस्थितिकानां पुद्गलानां तावत्सङ्क्ष्याकसमयस्थितिका एव तत्कालपराः, शेवास्त्वेकसमयस्थितिकादयः सर्वेऽप्यन्यकालपरा अवसातव्याः ॥ २७२२ ॥

अथादेशपरं न्याचष्टे-

15

भोअण-वेंसणमादीसु एगखित्तिहुयं तु जं पच्छा । आदिसह भुंज कुणसु च, आएसपरो हवह एस ॥ २७२३ ॥

भोजनं-प्रतीतं प्रेषणं-न्यापारणं तदादिषु कार्येषु कञ्चन पुरुषमेकसिन् क्षेत्रे स्थितमपि 'पश्चात्' पर्यन्ते आदिशति—यथा 'मुद्दक्ष्व' भोजनं विधेहि, 'कुरु वा' कृष्यादिकर्म विधेहि, 'एवं आदेशपरो भवति, आदेशः-आज्ञपनं तदाश्चित्य परः-पश्चात्य आदेशपर इति व्युत्पचेः ४० ।। २०२३ ॥ अथ कमपरमाह—

दन्वाइ कमी चउहा, दन्वे परमाणुमाइ जाऽणंतं। एगुत्तरबुद्धीए, विविद्धियाणं परी होइ॥ २७२४॥

कमः परिपादीरित्येकोऽर्थः, तमाश्रित्य परः कमपरः । सं चतुद्धी—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-मेदात् । तत्र 'द्रव्ये' द्रव्यतः परमाणुमादौ कृत्वा अनन्तप्रदेशिकस्कन्धं यावदेकोत्तरप्रदेशिवृद्धा १७ विधितानां पुद्गलद्वव्याणां यो यदपेक्षया परः स तसाद् द्रव्यक्रमपरो भवति, तद्यथा—परमाणु-पुद्गलाद् द्विपदेशिकस्कन्धः, द्विपदेशिकस्कन्धात् त्रिपदेशिकस्कन्धः, एवं यावदसङ्क्षेयपदेशिक-स्कन्धादनन्तप्रदेशिकस्कन्धो द्रव्यक्रमपरः । क्षेत्रक्रमपरोऽप्येवमेवः नवरमेकप्रदेशावगाढाद् द्विपदेशावगाढः, द्विपदेशावगाढाद् त्रिपदेशावगाढः, द्विपदेशावगाढाद् त्रिपदेशावगाढः, एवं यावत् संद्वेयपदेशावगाढाद् द्विसमयस्थितिकः, ३७ द्विसमयस्थितिकात् त्रिसमयस्थितिकः, एवं यावत् सद्वेयसमयस्थितिकादसद्वेयसमयस्थितिकः, ३७ द्विसमयस्थितिकात् त्रिसमयस्थितिकः, एवं यावत् सद्वेयसमयस्थितिकादसद्वेयसमयस्थितिकः

१ ॳ ओं एंतिबहान्तर्गत. पार्ठः भा॰ एव वर्त्तते ॥

२ कारणेषु क° त॰ डे॰ मो॰ डे॰ ॥ कि कि विकास कियते, अविक मां॰ में

कालकमपरः । भावकमपरः पुनरेवम्—एकगुणकालकाद् हिगुणकालकः, हिगुणकालकात् त्रिगुणकालकः, एवं यावदसद्येयगुणकालकादनन्तगुणकालको सावकमपरः । एवं नील-छोहित-हारिद्र-गुक्त्रपेषु शेषेप्त्रपि चतुर्षु वर्णेषु, सुरमि-दुरमिल्झण च गन्यद्वये, तिक्त-कटु-कपाया-Sम्ल-मधुरात्मके च रसपबके, गुरु-लबु-मृदु-कठिन-स्निग्व-रूख-शातोप्गलक्षणे च स्पर्शाष्टके ध्यथाकमं मावकमपरता मावनीया ॥ २७२४ ॥ अथ बहुपरं मावयति-

नीवा १ पुरगल २ समया ३, दन्व ४ पएसा य ५ पजवा ६ चेव । धोवा १ णंता २ णंता २, विसेसमहिया ४ दुवेऽणंता ५-६ ॥ २७२५ ॥ इह पूर्वाई-पश्चाईपदानां यथाक्रमं योजना काया । तद्यथा — 'जीवाः' संसारि-मुक्तमेदमित्रास्ते सर्वन्तोकाः, जीवेम्यः पुद्रस्य अनन्तगुणाः, पुद्रस्यम्यः समया अनन्तगुणाः, 10द्रव्याणि विद्येपाधिकानि, द्रव्येभ्यः प्रदेशा अनन्तगुणाः, प्रदेशेभ्यः पर्याया अनन्तगुणाः । टकन्न व्याख्यात्रहरी-

एएसि णं भंते । जीवाणं पोग्गराणं अद्वासमयाणं सबद्बाणं सबपएसाणं सबपज्जवाण य कयरे क्टोरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुःखा वा विसेसाहिया वा ! गोयमा ! सबत्योवा जीवा, पोगग्छा अर्णतगुणा, श्रद्धासमया अर्णतगुणा, सबदबा विसेसाहिया, सबपएसा अर्णतगुणा, 15 सबपजना अर्णतगुणा (श० २५ ड० ३ स्० ७३३) ।

अत्रामीपामित्यमस्यमहुत्वे हेतुमावना मगवतीटीकायां वृद्धेरुपदर्शितीऽऽस्ते, अतस्तदर्थिना सेवावलोकनीया ॥ २७२५ ॥ अय प्रचानपरमाह—

> द्वे सचित्तमादी, सचित्तद्वपएस होट् तित्थयरो । सीही चउप्पएमं, अपयपहाणा बहुविहा उ ॥ २७२६ ॥

में भान एव परः प्रधानपरः, स च द्विधा—इत्यतो मानतश्च । तत्र 'इत्ये' इत्यतिस्रधा सचिचादि, आदिशब्हाद् मिश्रोऽचिचश्च । तत्र सचिचप्रधानस्त्रिधा—द्विपद-चतुप्पदा-ऽपद-मेदात् । तत्र हिपदेषु तीर्थकरः प्रवानो भवति, चतुप्पदेषु सिंहः प्रधानो मवति, अपदेषु बहुत्रियाः सुदर्शनामियानजम्बृबृक्षप्रमृतयः पनसादयो वा प्रधानाः । अचित्तः प्रधानपरोऽने-कवा, तद्यथा—यातुषु सुवर्णम्, वस्रेषु चीनांशुकम्, गन्धद्रव्येषु गौर्शार्षचन्दनमित्यादि । ²⁵ मिश्रप्रधानपराणि तु सुवर्णकरकाद्यस्कृतवित्रहाणि तीर्थकरादिद्रव्याण्येव द्रष्टव्यानि ॥२७२६॥

मानप्रधानपरमाह-

वण्ण-रस-गंघ-फासेसु उत्तमा ने उ भू-द्ग-वणेसु ।

मणि-सीरोदगमादी, पुण्य-फलादी य रुक्खेसु ॥ २७२७ ॥ "कृष्ण-रस-गंब-फासेसु" वि वृतीयार्थे सप्तमी, वतो वर्णेन रसेन गन्येन स्पर्शेन वा 8) - वर्णीदिस्य्रेणमीवैरित्यर्थः > ये 'म्-दक-वनेषु' पृथिवीकाया-ऽप्काय-वनस्पतिकायेषु उत्त-माद्वे भावप्रवानपराः । तानेव पश्चार्द्धनोदाहरति-"मणि-सीरोदग" इत्यादि । प्रथिवीकायेषु

१ °ताऽस्ति अ° मा॰ कां॰॥

२ प्रधानपरो द्विधा—द्ववः भा॰ ॥

३ 4 > एतदन्तर्गतः पाठः कां ० एव वर्तते ॥

पद्मराग-वज्र-वैद्धर्यादिमणयः प्रधानाः, अप्कायेषु क्षीरोदकादिपानीयानि 'वृक्षेषु' वनस्पतिषु पुष्प-फलादीनि प्रधानानि ॥ २७२७ ॥

गतः प्रधानपरः । अथ भावपरो व्याख्यायते — भावः — क्षायोपशमिकादिस्तदपेक्षया परः — भावान्तरवर्ती भावपरेः । स च इहोदयिकमाववर्ती गृह्यते । तथा चाह—

> आहणमन्ध्रहाणं, वंदण संश्रंजणा य संवासो । एयाई जो कुणई, आराहण अकुणओ नित्थ ॥ २७२८ ॥ अकसायं निन्वाणं, सन्वेहि वि जिणवरेहिँ पन्नतं । सो लब्भइ भावपरो, जो उवसंते अणुवसंतो ॥ २७२९ ॥

आदरो अभ्युत्थानं वन्दनं सम्भोजनं संवासश्चेत्येतानि पदानि य उपशान्तो भूत्वा करोति तस्याराधना अस्ति, यस्त्वेतानि न करोति तस्याराधना नास्ति । एतेन "जो उवसमइ तस्स 10 अत्थि आराहणा" इत्यादिकः सूत्रावयवो व्याख्यातः । अथ किमर्थमादरादिपदानामकरणे आराधना नास्ति । इत्याह—'अकषायं' कषायाभावसम्भवि 'निर्वाणं' सकलकर्मक्षयलक्षणं सर्वेरिप जिनवरैः प्रज्ञसम् । अतो यः कश्चिद्रपशान्तेऽपि साधावनुपशान्त आदरादिपदानामकरणेन सकषायः स भावपरो लभ्यते, औदियकभाववर्तित्वात् ॥ २०२८ ॥ २०२८ ॥

अथाचार्यस्तमुपशान्तसाधुं प्रज्ञापयन् प्रस्तुतयोजनां कुर्वन्नाह-

15

सो वट्टइ ओदइए, भावे तं पुण खओवसियम्मि । जह सो तुह भावपरो, एमेव य संजम-तवाणं ॥ २७३०॥

भो भद्र! 'सः' द्वितीयः साधुरद्याच्योदयिके भावे वर्तते', त्वं पुनः क्षायोप्रामिके भावे वर्तसे । अतो यथाऽसौ 'तव' त्वदपेक्षया भावपरस्तथा संयम-तपोभ्यामप्ययं परः-पृथग्मृत इति । अतस्त्वया न काचित् तदीया चिन्ता विधेया ॥ २७३० ॥

द्वितीयपदे कुर्यादप्यिकरणम्, यत आह—

खेत्तादऽकोविओ वा, अनलविगिंचहुया व जाणं पि। अहिगरणं तु करेत्ता, करेज सन्वाणि वि पयाणि॥ २७३१॥

क्षिप्तचित्तः आदिशब्दाद् दृसचित्तो यक्षाविष्टो वा अनात्मवशत्वादिधकरणं कुर्यात् । 'अको-विदो वा' अद्याप्यपरिणतिजनवचनः शैक्षः सोऽप्यज्ञत्वादिधकरणं विदध्यात् । यद्वा 'जान-25 न्निप' गीतार्थोऽपीत्यर्थः अनलस्य—प्रव्रज्याया अयोग्यस्य नपुंसकादेः कारणे दीक्षितस्य तत्कार-णपरिसमाप्तौ विवेचनार्थ-परिष्ठापनाय तेन सहाधिकरणं करोति, कृत्वा चाधिकरणं सर्वाण्य-प्यनादरादीनि पदानि कुर्यात् ॥ २७३१ ॥

॥ व्यवशमनप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °रः । अत्र चानेनैवाधिकारः, शेपास्तु शिष्यमतिविकाशनार्थे प्रकृपिताः । स च भावपरः इहीदयिकः भा॰ ॥

२ °ते, अतः खेच्छयाऽऽदरादीनि पदानि कुर्याद्वा न वेति । स्वं कां ।।

पाउसो सावणो भद्दवओ अ, वासारत्तो अस्सोओ कत्तियओ अ ति । विशेपचूर्णिकृत् पुनराह—

पाउसो आसाढो सावणो अ, वासारत्तो मद्दवओ अस्सोओ अ ति । ⊳ तत्र यदि पार्रिष शामानुशामं चरन्ति तदा चतुर्गरुकाः, वर्षास विचरतश्चतुर्रुषकाः, एव' चत्वारो लघुकाः पूर्णे वर्पारात्रे 'अनिर्यतः' अनिर्गच्छतः प्रायश्चित्तम् ॥ २७३४ ॥ तत्र प्रावृषि विहरतैस्तावद् दोपानाह—

> वासावासविहारे, चउरो मासा हवंतऽणुग्घाया। आणाइणी य दोसा, विराहणा संजमाऽऽयाए ॥ २७३५ ॥

इह वर्षावासः श्रावणो माद्रपदश्चामिधीयते, तत्र विहारं कुर्वतश्चत्वारो मासाः 'अन-द्धाताः' गुरवः प्रायश्चित्तं भवति, आज्ञादयश्च दोषाः, विराधना च सयमात्मविषया ॥२७३५॥ 10 तामेव भावयति-

> छकायाण विराहण, आवडणं विसम-खाणु-कंटेसु । बुन्भण अभिहण रुक्खोल्ल, सावय तेणे गिलाणे य ॥ २७३६ ॥

वर्षासु विहरतः पट्कायानां विराधना । तथा 'आपतनं' वर्षे निपतति वर्षाकरुपादितीमन-भयाद् वृक्षादेरधिताष्ट्रतस्तदीयशाखादिना शिरस्यभिघातो भवेत्, यद्वा 'आपतनं' कर्दमपि-15 च्छिले पथि स्वलैनम् । विपमे वा भूपदेशे निपतेत् । 'स्याणुः' कीलकः सः ⊲ कर्दमे जले बाऽहृइयमानः > पादयोरास्फलेत् । कण्टकैर्वा पादतले विध्येत् । उदकवाहेन वा गिरिनद्या वा 'वाहनम्' उत्क्षिप्यान्यत्र नयनं भवेत् । तथा गिरिनदीतिटकया मार्गे गच्छतोऽभिघातो भवेत्। "रुक्लोल" ति यद्यादींकरणभयाद् वृक्षमालीयते, स च वृक्षः प्रवलवातप्रेरिततया पतेत् तत्रात्म-संयमविराधना । तथा यस्य वृक्षस्याधिताप्रति तस्योपरि चित्रकादिकः श्वापद 20 आरुढ़ो भवेत् तेनानागाढमागाढं वा परिताप्येत । ''तेणे'' त्ति अवहमानेषु मार्गेषु द्विविधाः स्तेना विश्वस्ताः सश्चरेयुः, तैरुपधेर्वा तस्य वा साधोरपहारः क्रियेत, अकाले वा परिभ्रमन् स्तेनक इति शङ्क्षेत । "गिलाणे" चि तीमितेनोपिधना प्रावियमाणेन भक्तेऽजीर्यमाणे ग्लानो भवेत् । एवमापतनादिप्वात्मविराधना संयमविराधना वा या यत्र सम्भवति सा तत्र योजनीया ॥ २७३६ ॥ अथ पट्कायविराधनां व्याख्यानयति-25

अक्खुन्नेसु पहेसुं, पुढवी उदगं च होइ दुहओ वि । उल्लपयावण अगणी, इहरा पणगो हरिय कुंथू ॥ २७३७ ॥

अक्षुण्णाः-अमर्दिताः पन्थानः प्रावृषि मवन्ति, तेषु विहरन् पृथ्वीकाय विराधयति । तथा 'द्विविधमपि' भौमा-ऽन्तरिक्षमेदाद् द्विप्रकारमप्युदक तदा सम्भवति ततोऽप्कायविराधना । वर्षेण आर्द्रीभूतमुपिं यद्यमिना प्रतापयित तदाऽमिनिराधना । यत्रामिस्तत्र वायुरवश्यं भवतीति ३०

१ प्रातन्मध्यगतः पाठ का॰ एव वर्तते ॥ २ °तस्तस्य दोपा° मा॰ का॰ विना ॥ ३ °छनम्, फिलसनकसित्यर्थ । "विसमे"ति विप° का॰ । "आवडर्ण फेहनण अप्फिडितं वा" इति चूर्णी ॥ ध 🗸 ⊳ एतचिद्वगत. पाठः का॰ एव वर्त्तते ॥ चृ० ९,८

वायुविराधनाऽपि । 'इतर्था' यद्युपींय न प्रनापयति तदा पनकः सम्मूर्च्छति, तत्संसक्त चौपधि प्रावृण्यनः परिदयतः पत्युपेक्षमाणस्य वाऽनन्तकायसङ्घद्दनादिनिप्पन्नं प्रायश्चित्तम्; 'हरितानि वा' दुवादीनि तदानीमचिरोद्गनानि निरन्तराणि च मवेयुः ततो वनस्पतिविरा-धना । अप्रत्युपेक्षमाणा उपयो कुन्युप्रसृतयो जन्तवः सम्मूर्च्छन्ति, मार्गे गच्छतामिन्द्रगोप- श्रिशुनाग-कुत्तिकाटयस्त्रसमाणिनो वहवा सवन्ति ततस्त्रसकायविरायना । एवं पण्णामिप कायानां विरायना यनः प्रावृषि विहरतां भवति अतो न विहर्तव्यम् । द्वितीयपदे विहरेतिप ॥ २७३७ ॥ कथम् १ इत्याह—

> असिवे ओमोयरिए, रायहुट्टे भए व गेलने। आवाहाईएमु व, पंचमु ठाणमु रीह्झा ॥ २७३८ ॥

'अग्निवं' र अग्निवगृहीतेषु प्रमृतेषु कुलेषु असंस्तरत्नन्यत्र गच्छेत्। ⊳ परपञ्जतो वा अवमाद्रें सज्जात सित असंखरन गच्छेत्। राजिहेष्ट विराधनाभयाद् गच्छिति । 'भये वा' वोधिक-स्तेनममुखे 'यद्यमी मां द्रस्यन्ति ततोऽपहरिप्यन्ति' इति मत्वा गच्छति । ग्ञानो वा कश्चिद्न्यत्र मझातन्तस्य प्रतिचरणार्थं गच्छति । आवाघादिषु वा पञ्चसु स्वानेपूर्यनेषु पादृप्यपि 'रीयन' श्रामान्तर गर्च्छेत् ॥ २७३८ ॥ तान्येवावाघादीनि स्थानानि दर्शयति—

आवाहे य मये वा, दुव्मिक्खे वाह वा द्ओईसि । पन्त्रहण व परेहिं, पंचिहिं ठाणेहिं रीहजा ॥ २७३९ ॥

वानार्षं नाम-मानसी पीडा, भयं-स्तेनादिसमुत्थम्, दुर्भिधं-प्रतीतम्, एतेषु समुत्पन्नेषु, अथवा 'दकोवे' पानीयप्रवाहेण प्रतिश्रये ग्राम वा ब्यृद्ध सति, 'परेवी' प्रत्यनीकर्दण्डकादिसिः 'प्रज्यथने' परिमने ताडने वा त्रिवीयमाने, एतेषु पश्चमु स्थानेषु प्राष्ट्रप्यपि रीयेत ॥ २७३९॥

एतं तु पाउसम्मी, भणियं वासामु नवरि चउलहुगा । 20 ते चेव तत्य दोसा, विद्यपदं तं चिमं वडनं ॥ २७४० ॥

'एतद्' अनन्तरोक्तं मायश्चित्तं दोपनारुं द्वितीयपदं च प्रावृषि भणितम् । अथ 'वर्षासु' वर्षारात्रेऽधिन-कार्तिकरूपं चरति ततधातुर्छबुकाः प्रायधित्तम् । 'त एव च' तत्र विहरतः पदकायविराधनादयो दोषाः, तदेव च हितीयपदम् । इदं वा 'अन्यद्' अपरं हितीयपदमसि-25 घीयते ॥ २७४० ॥

असिवे ओमीयरिए, रायहुट्टे भए व गेलचे। नाणादितिगस्सऽहा, वीसुंमण पेसणेणं वा ॥ २७४१ ॥

अगिवंडवमीवर्ये राजिहें भये वा ग्लानकारणे वा समुत्यने वर्षामु प्रामान्तरं गच्छेन्, एनावन् प्रागुक्तमेव द्वितीयपदम्। अवदमपरमुच्यते — ज्ञानादित्रयसार्थायान्यत्र वर्षामु गच्छेत्। ३६ तत्रापृर्वः कोऽपि श्रुतम्कन्योऽन्यस्याचार्यस्य विद्यते, स च मक्तं प्रत्यास्यातुकामो वर्तते, स च श्रुतस्क्रन्यन्तन आचार्योदगृद्यमाणो व्यवच्छियते, अतस्तद्ध्ययनार्थं वर्षास्ति गच्छेत् । एवं

१ ४ १/ एतन्मच्यमतः पष्ठः सा० त० दे० नान्ति ॥ २ °च्छेटिनि भाषः॥ मा॰॥ ३ °पि थावण-माद्रपद्रुपायां विहरतां भणि° हां ।॥ ४ °याच गृहाते तनो व्यव° ना ।॥

दर्शनप्रभावकशास्त्राणामप्यध्ययनार्थं गच्छेत् । चारित्रार्थं नाम-तत्र क्षेत्रे स्त्रीसमुत्यद्वोषरे वणादो-पैर्वा चारित्रं न शुद्धातीति तिन्निमित्तमन्यत्र वर्षास्त गच्छेत् । "वीसंभण" ति 'विष्कम्भनं' मरणम्, तत्र यस्याचार्यस्य ते शिष्याः स आचार्यो मरणधर्ममुपगतः, तिस्त्रिय गच्छेऽपर आचार्यो न विद्यते, अतस्ते वर्षास्वपि अन्यं गणमुपसम्पत्तं गच्छेयुः । अथवा "वीसंभण" ति 'विष्वगमवैनं नाम' कश्चिदुत्तमार्थं प्रतिपत्तुकामस्तस्य विञोधिकरणार्थं गच्छेत् । "पेसणेणं व" 5 ति कश्चिदाचार्येणान्यतरसान् औत्पत्तिके कारणे वर्षास्वपि प्रेषितो भवेत्, स च तिसान् कारणे समापिते भूयोऽपि गुरूणां समीपे समागच्छेत् ॥ २७४१ ॥ 'अथवेदं द्वितीयपदम्—

आऊ तेऊ वाऊ, दुव्वल संकामिए अ ओमाणे । पाणाइ सप्प कुंथू, उद्दण तह थंडिलस्सऽसती ॥ २७४२ ॥

अप्कायेन वसितः स्नाविता भवेत् स्विण्डलानि वा व्यूढानि, अग्निकायेन वा प्रतिश्रयो 10 यामो वा दग्धः, ''वाऊ'' इत्ति वातेन वा तत्र वसितर्भया, ''दुव्वल'' ति वर्षण तीम्यमाना वसितः 'दुर्वल' पतितुकामा सङ्गाता, ''सकामिए य'' ति स प्रामो घिग्जातीयादेः कस्यापि प्रत्यनीकस्य सङ्गामितः—दत्त इत्यर्थः, अथवा ''सकामिए य'' ति तानि श्राद्धकुलान्यन्यत्र प्रामे सङ्गामितानि, ''ओमाणे'' ति इन्द्रमहादिपु वहवः पाण्डुराङ्गप्रभृतय आगतास्तैरवमानं सङ्गानितम्, 'प्राणादिभिवी' मकोटकोद्देहिकादिमिर्वसतिः ससक्ता भवेत्, सर्पो वा वसतौ समागत्य 15 स्थितः, अनुद्धितामकेवी कुन्धुजीवैर्वसतिः संसक्ता समजायत, ग्रामो वा सकलोऽपि 'उत्थितः' उद्धसीभूतः, 'स्थण्डिलस्य वा' विचारभूमिलक्षणस्य हरितकायादिभिरभावः समजनि, एवमा-दिकस्तत्र व्याघातो भवेत् ॥ २७४२ ॥ अत एव ते साधवः प्रागेवामुं विधि विद्यति—

मूलग्गांमे तिन्नि उ, पिडवसभेसुं पि तिन्नि वसहीओ । ठायंता पेहिंति उ, वियार-वाघायमाइद्वा ॥ २७४३ ॥

मूलग्रामो नाम-यत्र साधवः स्थिताः सन्ति तस्मिन् तिस्रो वसतीः प्रत्युपेक्षन्ते । प्रतिदृपम-ग्रामा नाम-येषु भिक्षाचर्यया गम्यते तेष्विप प्रत्येकं तिस्रो वसतीस्तिष्ठन्त एर्वं प्रत्युपेक्षन्ते । किमर्थम् ! इत्याह—मूलग्रामे यदि विचारमूमेर्वसतेर्वा व्याघातो भवति ततस्तेषु प्रतिदृपभग्रा-मेषु तिष्ठन्ति ॥ २७४३ ॥ तत्राप्कायादिव्याघाते समुत्पन्ने यतनामाह—

उदगा-ऽगणि-वायाइसु, अन्नस्सऽसतीइ थंभणुद्दवणे । संकामियम्मि भयणा, उद्दुण थंडिछ अन्नत्य ॥ २७४४ ॥

उदकेन वा अभिना वा वातेन वा आदिशन्दात् त्रसप्राणादिजन्तुससत्तया वा न्यावाते समुत्पन्नेऽन्यस्यां वसतो तिष्ठन्ति । अथ नास्त्यन्या वसतिस्तत उदका-ऽभि-वातान् स्तम्भनी-

१ °वनमुच्यते, तच्च जीवाच्छरीरस्य पृथग्भवनम्, तत्र प्रत्यासन्नीभूते सति कश्चिदुत्त° का॰॥ २ द्वितीयपदमाह इस्रवतरण भा॰॥ ३ तानि निश्राकुलान्य° भा॰ का॰। "अधवा 'सकामिते य' ति जीमाधराणि अण्णम्मि गामे सकताणि।" इति चूर्णो ॥

४ या' प्राशुक्रविचा° का॰ ॥ ५ °न् वर्णावासे तिष्ठन्तः प्रथमत एव तिस्रो का॰ ॥ ६ °व प्रथमतः 'प्रेक्षन्ते' प्रत्यु° का॰ ॥

विद्यया स्तभ्रन्ति । यत्र च सर्पः समागत्य तिष्ठति तत्र तस्य सर्पस्य 'अपद्रावणं' विद्ययाऽन्यत्र नयनं कुर्वन्ति । यत्र च ग्रामस्वामी कुरुनि वा अन्यानि सङ्गान्तानि तत्र मजना कर्त्तव्या—यदि स ग्रामस्वामी कुरुनि वा भद्रकाणि ततस्तित्रैव तिष्ठन्ति, अथ प्रान्तानि ततोऽन्यत्र गच्छन्ति । अथासौ ग्राम उत्थितः स्थण्डिरुनां वा व्याघातः समजायत ततोऽन्यत्र ग्रामे कगच्छन्ति ॥ २७४४ ॥ अवमान-दुर्वरुजय्ययोर्थतनामाह—

इंदमहादी व समागतेस परउत्थिएस य जयंति । पडिवसभेस सिखत्ते, दुव्वलसेजाए देस्रणं ॥ २७४५ ॥

इन्द्रमहोत्सवादो वा वहुपु परतीर्थिकेषु समागतेषु खंक्षेत्रे ये प्रतिवृपमग्रामास्तेषु अन्तरप-छिकाषु च भिक्षाग्रहणाय यतन्ते । अथ तेष्विप न सस्तरन्ति ततोऽन्यत्र गच्छन्ति । 'दुर्वेछ-१० शय्यायां' वर्षेण तीम्यमानतया वसतौ दुर्वछायां सञ्जातायां स्थूणां दद्यात् ॥ २०४५ ॥ अथ वसतिप्रमार्जने विधिमाह—

> दोनि उ पमजणाओ, उडुम्मि वासासु तह्य मज्झण्हे । वसिंह वहुसों पमजेण, अइसंघट्टऽन्नहिं गच्छे ॥ २७४६ ॥

वसतेरप्रसु ऋतुवद्धमासेषु द्वे प्रामार्जने कर्त्तव्ये, तद्यथा—पूर्विहेऽपराहे च । वर्षासु पुनस्तृ-15 तीया प्रमार्जना मध्याहे विधेया । अथ कुन्थुप्रमृतिभिस्नसप्राणेः संसक्ता वसतिस्तत ऋतुवद्धे वर्षावासे च यथोक्तप्रमाणादितिरिक्तमिष बहुजः प्रमार्जनं कुर्यात् । अथ बहुशः प्रमार्जने त्रस-प्राणानामतीव सङ्घट्टो भवति अतिवहवो वा त्रसास्ततोऽन्यत्र प्रामे गच्छेयुः ॥ २७४६ ॥ गैच्छता च मार्गे यतनामाह—

> उत्तण ससावयाणि य, गंभीराणि य जलाणि वर्जेता । तलियरहिया दिवसओ, अन्भासतरे वए खेत्ते ॥ २७४७ ॥

'उर्तृणानि नाम' ऊर्द्धीमृतानि तृणानि दीर्घाणीति यावत् तानि यत्र मार्गे भवन्ति, 'सश्वा-पदानि च' सिंह-व्याघादिश्वापदोपेतानि यत्र तृणानि भवन्ति, 'गम्भीराणि च' अस्ताघानि जलानि यत्र भवन्ति, तान् मार्गान् वर्जयन्तः 'तिलकारिहताः' अनुपानरका दिवसतो गच्छन्ति न रात्रौ । यच्चाम्यासत्तरम्—अतिपत्यासन्नं क्षेत्रं तत्र व्रजन्ति ॥ २७४७ ॥

25 सूत्रम्---

20

कष्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हेमंत-गिम्हासु चारए ३६॥

अस्य सम्बन्धमाह—

१ 'स्रक्षेत्रे' सक्तोशयोजनप्रमाणे ये प्रति° कां॰ ॥

२ °ज्ञह, अइ° ता॰ ॥

३ एतदमे प्रन्थात्रम्-३५०० इति मो॰ छे॰ ॥

४ एवमादी कारणे वर्पाखप्यन्यं ग्रामं गच्छतां मार्गे का॰ ॥

५ उद्-ऊर्द्वभूतानि दीर्घाणीति यावद् यानि तृणानि तानि उच्चणानि उच्यन्ते, तानि च यत्र मार्गे भवन्ति तेन न गच्छन्ति । 'सश्बा° मा॰ ॥

दुस्संचर वहुपाणादि काउ वासासु नं न विहरिंसु । तस्स उ विवज्जयम्मी, चरंति अह सुत्तसंबंधो ॥ २७४८॥

वर्षास्र कर्दमाकुरुतया दुःसञ्चरं बहुपाण-हरितादिसङ्कुरुं वा मेदिनीतरुं भवतीति कृत्वा यत् तदानी न विहृतवन्तः, तत एव 'तस्य' वर्षावासस्य 'विपर्यये' ऋतुवद्धे काले सुसञ्चरम- ल्पपाणजातीयं वा मत्वा 'चरन्ति' ग्रामानुग्रामं विहरन्ति । 'अथ' एष पूर्वसूत्रेण सहास्य हसूत्रस्य सम्बन्ध इति ॥ २७४८ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—कल्पते निर्श्रन्थानां वा निर्श्रन्थीनां वा हेमन्त-ग्रीष्म-योरष्टसु ऋतुबद्धमासेषु 'चरितुं' श्रामानुश्रामं पर्यटितुमिति सूत्रार्थः ॥

अथ निर्युक्तिविस्तरः---

पुण्णें अनिग्गमें लहुगा, दोसा ते चेव उग्गमादीया। दुव्बल-खमग-गिलाणा, गोरस उवहिं पडिच्छंति॥ २७४९॥

यदि पूर्णे वर्षावासे ततः क्षेत्रान्न निर्गच्छन्ति ततश्चत्वारो छघुकाः । त एव चोद्गमाशुद्धि-स्नीसमुत्थादयो दोषा ये मासकल्पन्रकृते (गा० २०२७) दर्शिताः । अपरे चामी दोषाः— ''दुब्बल'' इत्यादि । ये साधव आचाम्लेन 'दुर्बलाः' कृशीमृतशरीरास्ते 'कदा वर्षावासः पूरि-ण्यते 2' इत्येवं निर्गमनं प्रतीक्षमाणा यत् परितापनादिकमवामुवन्ति तिन्नपन्नं प्रायश्चित्तम्। 15 क्षपका वा विक्रष्टतपोनिष्टसवपुषो निर्गमनं प्रतीक्षन्ते; ग्लानो वा अधुनोत्थितो दुःखं तत्र तिष्ठति, चतुर्मासादूर्द्धमप्यवस्थानेन क्षेत्रस्य चमदिततया तथाविधपथ्याद्यभावात्; गोरसधातुको वा कश्चित् सिन्धुदेशीयः प्रविज्ञतः सोऽपि गोरसाभावान्न तत्र स्थातु शकोति; उपिषवी पूर्वगृहीतः परिक्षीणोऽतस्तममिनवमुत्पादियत्तं साधवो निर्गमनं प्रतीक्षन्ते; ततस्तेन विना यत् परिताप्यन्ते तिन्नज्यन्तमिनवमुत्पादियत्तं साधवो निर्गमनं प्रतीक्षन्ते; ततस्तेन विना यत् परिताप्यन्ते तिन्नज्यन्तमिनवम्रत्यादियत्तं साधवो निर्गमनं प्रतीक्षन्ते; ततस्तेन विना यत् परिताप्यन्ते तिन्नज्यनमिनगेच्छतां प्रायश्चित्तम् ॥ २७४९ ॥

अथ निर्गच्छन्ति ततः किं भवति ? इत्याह—

एए न होंति दोसा, वहिया सुलभं च भिक्ख उवही य। भवसिद्धिया उ वाणा, विद्यपय गिलाणमादीसु ॥ २७५०॥

्य वैषीवासे पूर्णे > निर्गच्छताम् 'एते' अनन्तरोक्ता दोषा न भवन्ति । 'बहिश्च' वहिर्मामेषु विहरतां मेक्षं सुरुभं भवति, तेन च दुर्वरु-क्षपकादीनामाप्यायना स्यात् । उपिधश्च वहिः ३५ प्राप्यते । भवसिद्धिकाश्च सत्त्वा वोधमासादयन्ति । केचिद्वा तदानीमाचार्याणां दर्शनमिरु-षन्ति तेषां सर्वविरत्यादिप्रतिपत्तिः । आज्ञा च भगवतां तीर्थकृतां कृता भवति । यत एव-मतो ० वैषीवासानन्तरं > निर्गन्तव्यम् । द्वितीयपदे ग्रानादिषु कारणेषु न निर्गच्छन्ति, आदिशब्दादवमौदर्यादिपरिग्रहः । अत्र च यतना यथा मासकरपत्रकृते "चडभाग तिभागऽद्धे,

१ °णजातीयसङ्ख° मा॰ ॥

२ °णः, बहिश्च तेषु दिवसेषु सुलभोऽसौ पश्चाद् दुर्लभो भवति, ततस्तेन विना भा॰। "उन्धी ना पुन्नगहितो परिक्खीणो, बहिता य वेहिं दिवसेहिं सुलभो पच्छा दुरुभो, ज तेण विणा पाविहिति तिणाप्मणण।" इति चूर्णों ॥ ३-४ ⁴ ▷ एतन्मध्यगतः पाठः का॰ एम वर्तते ॥

30

जयंतऽनिच्छे अर्लमे वा ।'' (गा० २०२८) इत्यादिना द्धिता तथेव द्रष्टव्या ॥ २०५० ॥ तम्हा उ विहरियव्यं, विहिणा जे मासकप्यिया गामा । छहेह वंदणादी, तह लहुगा मग्गणा पत्था ॥ २७५१ ॥

यदि रज्ञानादिकारणं न स्यात् ततोऽनक्ष्यं निधिना मासकल्पप्रकृतोक्तेन (गा० १४८०) वि मासकल्पणयोग्या प्रामास्तेषु निहर्त्तव्यम् । अथ मासकल्पप्रायोग्याणि क्षेत्राणि 'नैत्यनन्द्रना-दिमिः' वक्ष्यमाणः कारणः छर्द्यति तदा यावन्ति क्षेत्राणि परित्यज्य गच्छति तावन्ति चतुर्रुषु-कानि । ''मग्गणा पत्थ'' ति द्वितीयपद् मासकल्पप्रायोग्यक्षेत्राणामपि परित्यागे ये गुणास्तेषां 'मार्गणा' अन्वेषणा 'पथ्या' हिता ॥२७५१॥ अथ बन्दनादीन्येव कारणानि प्रतिपादयति—

आयरिय साहु वंदण, चेइय नीयछए तहा सन्नी । गमणं च दंसदंसण, वहगासु च एवमाईणि ॥ २७५२ ॥

आचार्याणां साधूनां चत्यानां वा वन्द्रनार्थं गच्छति । 'निजकाः' संज्ञातकाः 'सज्ञिनः' आवकालेपासुमयेपामपि दर्शनार्थं देशदर्शनार्थं वा गमनं करोति । ब्रजिकासु वा 'क्षीरादिकं रुप्सेऽह्म्' इति कृत्वा गच्छति । एवमादीनि कारणानि मासकस्पयोग्यक्षेत्रं परित्यजन्नवरु-म्बते । २७५२ ॥ अधामृत्येव व्याख्यानयति—

25 अणुन्य विवित्त बहुस्सुया य परियारवं च आयरिया । परियारवज्ज साह, चेह्य पुट्या अभिनवा वा ॥ २७५३ ॥ गाहिस्सामि च नीए, सण्णी वा भिक्खुमाइ बुग्गाहे । बहुगुण अपुन्य देसो, बहुगाइसु सीरमादीणि ॥ २७५४ ॥

'अपूर्वाः' अदृष्टपूर्वाः 'विविक्ताः' निरितचारचारित्राः 'बहुश्रुता नाम' युगप्रधानागमा 20 विचित्रश्रुता वा 'परिवारवन्तश्च' बहुसाध्रुसमृह्परिवृताः, एवंविष्ण आचार्या अमुकत्र नगर्रादो तिष्टन्ति तानहं वन्द्रिप्य । साधवोऽप्येवंत्रिवगुणोपेता एव, नवरं परिवारवर्जासे भवन्ति । चेत्यानि 'पूर्वाणि वा' चिरन्तनानि जीवन्तस्यामिप्रतिमादानि 'अभिनवानि वा' तत्काल्कृतानि, 'एतानि ममादृष्टपूर्वाणि' इति बुद्ध्या तेषां वन्द्रनाय गच्छति ॥ २७५३ ॥

तथा 'निजकान् वा' संज्ञातकान् 'माहियप्यामि' वोषयिप्यामीत्यर्थः, 'संज्ञिनो वा' श्राव-25 कान् 'मिश्रकादिः' तचित्रक-यरिवाजकादिपरपापण्डी व्युद्धाह्यति तेषां स्थिरीकरणार्थम्, देशो वा 'बहुगुणः' सुल्मेमञ्जतादिगुणोपतोऽपूर्वश्च वर्तते, व्रजिकायां—गोकुले आदिशकात् पचुरद्रव्यपतित्रामादिषु वा श्लीर-दिष-शृता-ऽवगाहिमादीनि ल्म्यन्ते, एवमादिभिः कारणेमीस-क्ल्यप्रायोग्याणि श्लेत्राणि परित्यजिति ॥ २७५४ ॥ अत्र दोषान् दर्शयति—

> अद्वाणे उन्त्राता, मिक्खोबहि साण तेण पडिणीए । ओमाण अमोज घरे, यंडिल असतीह जे जत्य ॥ २७५५ ॥

ते सापवोऽञ्चिन त्रजन्तः 'उद्घाताः' परिश्रान्ताः सन्तश्चिन्तयन्ति—अर्ते प्रामे गुरवः

१ °नि अपुग्रालम्यनस्पानि कार° छा॰ ॥ २ अर्थनामेन निर्नुक्तिगाथां व्या° छा॰ ॥ २ जीनितस्ता° त॰ दे॰ ॥ ४ ४ - ४ व्याने गु॰ गा॰ ॥

स्थास्यन्ति । आचार्याश्च तं भ्रामं व्यतीत्यात्रतो गताः, ततस्ते छिन्नायामाण्यायां व्रजन्तो यद्नागादमागादं वा परिताप्यन्ते तन्निष्पन्नं स्रीणां प्रायश्चित्तम् । मैक्षं वा तत्र स्फिटितायां वेलायां
न प्राप्येत, अत्यन्तपरिश्रान्ता वा मार्ग एवोपिं परित्यजेयुः । अकाले च पर्यटतां श्वान उपद्रवं
कुर्युः, स्तेना वा तेपामुपिं तानेव वाऽपहरेयुः, प्रत्यनीको वा तदानीं विजनं मत्वा हन्याद्वा
मारयेद्वा, अवमानं वा स्वपक्षतः परपक्षतो वा भवेत्, 'अभोज्यगृहेपु वा' रजकादिसम्बन्धिपु 5
मिक्षां गृह्वीयुः तत्रैव वा तिष्ठेयुः, तत्रश्च प्रवचनविराधना । स्थण्डलानि वा तत्र न भवेयुः,
तेषाममावे सयमात्मविराधना । एवं ये यत्र दोपाः सम्भवन्ति ते तत्र योजयितव्याः ॥२७५५॥

अथ द्वितीयपदमाह—

बिइयपए असिवाई, उवहिस्स उ कारणा व लेवो वा। बहुगुणतरं व गच्छे, आयरियाई व आगाढे॥ २७५६॥

10

25

द्वितीयपदेऽशिवादीनि कारणानि विज्ञाय व्यतिव्रजेयुरि । तत्र यदपान्तराले क्षेत्रं तदिश-वगृहीतम्, आदिशव्दादवमौदर्य-राजद्विष्टादिदोष्युक्तं साध्यायो वा तत्र न शुद्धातीत्यादिपरि-प्रहें: । उपिः—वस्र पात्रादिरूपस्तत्र न लभ्यते, प्रतेवित्ति द्व प्रामादी लभ्यते, अतस्तस्य कारणात् । लेपो वा अप्रतोवित्ति प्रामे लभ्यते न तत्र । गच्छस्य वा वहुगुणतरं तत् क्षेत्रम्, धान-प्रत्यनीकाद्यमावाद् भिक्षात्रयवेलासद्भावाच । आचार्यादीनां वा प्रायोग्यं तत्र विद्यते; यद्वा 16 "आयरियाई व" ति सम्यक्तवं प्रहीतुकामाः केविदाचार्याणां दर्शनं काङ्क्षन्तः; आदिशव्दात् परप्रवादी वा कश्चिदुद्धोपणां कारयेत्, यथा—शून्याः परप्रवादा इत्यादि; ते चाचार्या वाद-लिक्ससम्पन्नाः अतस्तित्रग्रहार्थं गच्छेयुः । "आगादे" ति आगादयोगवाहिनां वा प्रायोग्यमवीग् न प्राप्यते, परिसन् प्रामे द्व प्राप्यते । यद्वा आगाद सप्तधा, तद्यथा—द्रव्यागादं क्षेत्रागादं काछागादं सावागादं प्रत्यागाद विकित्सागादं सहायागादम् । तत्र द्रव्यागादमेषणीयं द्रव्यं तत्र 20 न लभ्यते । क्षेत्रागादं नाम तदतीव खळु(खुल)क्षेत्रम्, स्वर्पभैक्षदायकमित्यर्थः । कालागादं तत् क्षेत्रं न ऋतुक्षमम् । भावागादं ग्रताविद्यायोग्यं तत्र न लभ्यते । पुरुपागादमाचार्यादि-पुरुपाणां तदकारकम् । चिकित्सागादं वैद्यास्तत्र न प्राप्यन्ते । सहायागादं सहायासात्र न सन्तीति ॥ २७५६ ॥

एएहिँ कारणेहिं, एक-दुगंतर तिगंतरं या वि । संकममाणो खेत्तं, पुद्दो वि जओ नऽइक्तमइ ॥ २७५७ ॥

'एतैः' अधिवादिभिः कारणेरेकं वा द्वे त्रीणि वा अपान्तरारुक्षेत्राण्यतिकस्यापरं क्षेत्रं सङ्का-मन् पूर्वोक्तेदेंपिः स्ष्टष्टोऽपि न दोपवान् भवति । 'यतः' यसात् तीर्थकराज्ञामसो नातिकामति, यद्वा 'यतो नाम' यतनायुक्तः ॥ २७५७ ॥

१ ग्रामं मासकल्पयाग्यमपि व्यती व्यति मा ॥

२ ° दः, अतस्तं प्रामं व्यतीत्याप्रेतनं गच्छेयुः । यद्वा उप° वा॰ ॥

३ °मादौ सुलभतरः। लेपो मा॰॥

ंअथ विस्तरार्थ भाष्यकृदाह—

वेरं जत्थ उ रज़े, वेरं जायं व वेररज़ं वा । जं च विरज़इ रज़ं, रज़ेणं विगयरायं वा ॥ २७६० ॥

्यत्र राज्ये पूर्वपुरुषपरम्परागतं वैरं तद् वैराज्यमुर्ज्यते, नैरुक्ती शब्दनिष्पत्तिः । यद्वा न पूर्वपुरुषपरम्परागतं परं सम्प्रति ययो राज्ययोवैरं 'जातम्' उत्पन्नं तद् वैराज्यम् । अध्या पर- कियमाम-नगरदाहादीनि कुर्वन् यत्र राजादिः वैरे—विरोधे रज्यते तादृशं डमरं वैराज्यमुच्यते । यदि वा यद् राज्यममात्यादिप्रधानपुरुषसमूहरूपं ''रज्जेणं'' ति विविक्षतेन राज्ञा सह 'विरज्यते' विरक्तीभवति तद् वैराज्यम् । इष्टरूपनिष्पत्तिः सर्वत्रापि निरुक्तिवशात् । यद्वा विगतः—मृतः प्रोषितो वा राजा यत्र तद् विगतराजकम्—अराजकमित्यर्थः, तदेव वैराज्यम् । यत्र तु द्वयोरपि राज्ञो राज्ये परस्परं गमनागमनं विरुद्धं तद् विरुद्धराज्यमुच्यते ॥ २५६०॥

अथ सद्यःप्रभृतीनि शेषपदानि न्यावष्टे-

सज्जगहणा तीयं, अणागयं चेव वारियं वेरं। पन्नवग पहुच गयं, होजाऽङगमणं व उभयं वा।। २७६१।।

सद्यः—वर्षमानकालमावि यद् वैरं तत्र गमनादिकं न करुपते, एँवं सद्योग्रहणादतीतमना-गतं च वैरं निवारितं भवति, यत्र वैरं पूर्वोत्पन्नमित्त यत्रं वा मविप्यत्तया सम्मान्यमानं 15 तत्रापि क्षेत्रे गमनादीनि न कर्ष्तव्यानीति भावः । तथा प्रज्ञापकं प्रतीत्य 'गतं' गमनमागमनम् 'उमयं वा' गमनागमनमत्र भवति । तत्र यत्र प्रज्ञापकिस्तिष्ठति ततो यदन्यत्र गम्यते तद् गम-नम्, अन्यतः स्थानात् प्रज्ञापकसम्मुखं यदागम्यते तदागमनम्, गत्वा प्रत्यागमने विधीयमाने गमनागमनम् ॥ २०६१ ॥ अथ वैरशन्दस्य निक्षेपमाह—

नामं ठवणा दविए, खेत्ते काले य भाववेरे य । तं महिस-वसभ-वग्धा-सीहा नरएसु सिज्झणया ॥ २७६२ ॥

नामवैरं स्थापनावैरं द्रव्यवैरं क्षेत्रवैरं काल्वैरं भाववैरं चेति पड्विध वैरम् । तत्र नाम-स्था-पनावैरे सुगमे । द्रव्यवैरं तु यद् द्रव्यनिमित्तं गोत्रजादीनां वैरसुत्पद्यते । क्षेत्रवैरं यस्मिन् क्षेत्रे यस्य वा क्षेत्रस्य हेतोवैरसुत्पद्यते । काल्वैरं तु यस्मिन् काले वैरसुत्पद्यते, यावन्तं वा कालं वैरं वर्तते । भाववैरं तु पश्चार्द्धेनाह—"तं महिस" इत्यादि । 'तद्' इति भाववैरं "महिप-दृपभ" १६ इत्यादिना तु दृष्टान्तसूचा । स चायम्—

एगत्थ गामे गावीओ चोरेहि गहियाओ । तओ जो गामस्स महयरगो सो कुढेण निग्गओ । 'अम्मियाओ गावीओ । जुद्धं सपलगं । चोराहिवो सेणावई महत्तरेण सह संपलगो । ते रुद्द्ज्झाणोवगया एकमेक वहेउं मया पढमपुढवीए नारगा उववन्ना । तओ उव्वट्टा ते दो

१ °च्यते, पृपोदरादित्वाद् चैरदाव्यसम्यन्धिनो रकारस्य छोपः । यहा न मा॰ ॥ २ °म् । "वेरर्ज्ञं व' त्ति अथवा का॰ ॥ ३ अथवा यः परेपां मृपतीनां प्राम-नगरदाहा-दीनि करोति स खलु वैरोर्त्पादने रज्यत इति कत्वा यत् तादृशं डमर तद् चैरा॰ भा॰ ॥ ४ एवं सूत्रे सद्योग्रहणादतीतमनागतं च वैरमुपलक्षणत्वाद् निवा॰ का॰ ॥ चू॰ ९९

वि महिसा जाया। अन्नमन्नं पासिचा आयुरचा ज्झुजिन्नडं मया दुचं पुढविं गया। तथो उविहेचा चसमा जाया। तेणेव चेरेणं अन्नमनं मारिचा पुणो दुचं पुढिवं गया। तथो उविहेचा दो वि चग्वा जाया। तत्थ वि अन्नोन्नं विहेचा मया तचं पुढिवं गया। ततो उविहेचा दो वि सीहा उववन्ना। तत्थ वि एकमेकं विहेचा मया चडत्थपुढवीए नारगा उववन्ना। ततो उविहा दो ६ मणुण्यु उववन्ना। तत्थ जिणसासणं पवन्ना, सिद्धा य।

्य एतेंद् मार्वेवरं मन्तन्यम् । अत्र चार्नेनेवाधिकार इति № ॥ २७६२ ॥ वेराज्यस्रहणादेतेऽप्यर्थाः स्चिता भवन्तीति दर्शयति—

> अणराए जुवराए, तत्तो वेरजए अ वेरजे । एत्तो एकिकम्मि उ, चाउम्मामा भवे गुरुगा ॥ २७६३ ॥

10 अराजके यावराज्ये ततश्च वराज्ये हैं गज्ये चेति चतुर्णा मेदानामक सिन् मेदे गच्छत-स्तपः-काळविशेषिताश्चतुर्मासा गुरुका भवेयुः । तत्र प्रथमे द्वाभ्यामपि तपः-काळाभ्यां ळघवः, द्वितीये काळगुरवः, तृतीये तपोगुरवः, चतुर्थे द्वाभ्यामपि गुरवः ॥ २७६३ ॥

अराजकादीनामेव चतुर्णी व्याख्यानमाह—

अणरायं निवमरणे, जुवराया जाव दोच णऽमिसित्तो । वेरखं तु परवलं, दाइयकलहो उ वेरखं ॥ २७६४ ॥

नृपस्य-प्राक्तनस्य राज्ञो मरणे सञ्जाते सति यावदद्यापि राजा युवराजश्चेतौ द्वाविप नामि-पिक्ती तावदराजकं भण्यते । प्राचीननृपतिना यो योवराज्येऽमिपिक्त आसीत् तेनाविष्ठितं राज्यम् परमनेन यावलाद्यापि द्वितीयो युवराजोऽमिपिक्तः तावद् योवराज्यसुच्यते । यत्र तु 'परवर्ल' परचक्रमागत्य विद्वरं करोति तद् वराज्यम् । यत्र तु द्वयोदीयकयोः—सगोन्नयोरेकरा-20 ज्यामिलापिणोः ससकटकमन्निविष्टयोः परस्यरं कल्रहः—विग्रहस्तद् द्वराज्यसुच्यते ॥ २७६९ ॥

र्व्यास्त्रातं वेराज्यम् । अथ विरुद्धराज्यं व्यास्यानयति—

अविरुद्धा वाणियगा, गमणा-ऽऽगमणं च होइ अविरुद्धं । निस्तंचार विरुद्धे, न कप्पए वंघणाईया ॥ २७६५ ॥

१ वि महिसज्हेसु महिसबसहा उववन्ना, जूहाहिचा इत्यर्थः । तत्य वि अन्नमन्ने पातिचा आसुरुष्टा जुद्धं संपलगा अन्नोन्नं बहिचा मया दोच्चपुढवीए नारगा उववन्ना । तस्रो उव्यहिचा दो वि वग्धा जाया मा॰ ।

[&]quot;तम्य चोरसेणायःणा समं हताहति मया परमपुरवी गया । तओ उन्बहिता महिसा वसमा य जाया, संह ति मणियं हो । अन्नमन्नं पासिता पुर्वमन्वेगाणुवंबेणं अदेव रोसो समुप्पन्नो । हताहित मया दोचपुरवी गता । तओ उन्बहिता वग्या नाया ।" इति विद्योपसूर्णी ॥

२ ४० १० एतन्मध्यगतः पाठः भा॰ नान्ति ॥ ३ ० दे विहारं कुर्वत आचार्यादेस्तपः° कां॰ ॥ ४ परमसी यावश्राद्यापि हितीयं युवराजमिषिश्चति तावद् यीवराज्यमुच्यते । यसु 'परबलेन' परचेकेणागत्य समन्ततो विछोषितं तद् वैराज्यम् । यत्र तु द्व° मा॰ ॥

५ अथ विराज्ये यादशे करपते यादशे च न करपते तदेतद् दर्शयति मा॰ । "एतं वेर्ष्वं निर्युक्तायुक्तम् । निरुद्धराज्यमनिष्टराज्यमपेश्य भवति तेन तदुच्यते—अतिरुद्धाः ।" इति चूर्णो ॥

20

यत्र वैराज्ये वाणिजकाः परस्परं गच्छन्तोऽविरुद्धास्तत्रं साधूनामपि गमनागमनं विरुद्धं न भवति, कल्पते तत्र गन्तुमिति भावः । यत्र तु विणजां शेषजनपदस्य च निस्सञ्चारं कृतं—गमनागमनिषेधो विहितेस्तद् वैराज्यं विरुद्धमुच्यते, तिस्मन् विरुद्धराज्ये गमनादिकं न कल्पते । कुतः ! इत्याह—"वंधणाईय" ति नृपतिविहिताः वन्धनादयो दोपास्तत्र भवन्तीति ॥२७६५॥ तत् पुनर्गमनागमनं कथं भवति ! इत्याह—

अत्ताण चोर मेया, वग्गुर सोणिय पलाइणी पहिया । पडिचरगा य सहाया, गमणागमणिम्म नायव्वा ॥ २७६६ ॥

्य ईंह विरुद्धराज्ये गच्छतामनेके प्रकाराः—तत्र > "अत्ताण" ति संयता आत्मनेव चौरादिसहायविरहिता गच्छन्ति, एव चूण्यभिप्रायः; निश्चीथचूण्यभिप्रायस्तु—"अत्वाण" ति अत्राणा नाम—स्कन्धन्यस्तरुगुडद्वितीया ये देशान्तरं गच्छन्ति कार्षिटका वा य तैः सह 10 साधवोऽपि गच्छन्तीति प्रथमः प्रकारः, एवमुत्तरत्रापि भावना कार्या > १ । तथा 'चौराः' गवादिहारिणः २, 'मेदा नाम' गृहीतचापा दिवा रात्रौ च जीवहिंसापरा म्लेच्छिविशेषाः ३, 'वागुरिकाः' पाश्चपयोगेण मृगघातकाः ४, 'शौनिकाः' शुनिकाद्वितीया छुट्धकाः ५, 'पल्लियनो नाम' ये भटादयो राज्ञः पृच्छां विना सकुटुम्बाः प्रणश्च राज्यान्तरं गच्छन्ति ६, 'पथिकाः' नानाविधनगर-प्राम-देशपरिश्रमणकारिणः ७, 'प्रतिचरका नाम' ये परराष्ट्रस्वरूपं प्रच्छन्नचारि-15 तथा गवेपयन्ति, हेरिका इत्यर्थः ८ । एते आत्मादयोऽत्राणादयो वाऽष्टो मेदा भवन्ति । केपाश्चिदाचार्याणां वागुरिकाः शौनिकाश्च द्वयेऽप्येक एव भेदस्तन्मतेनाष्टमा अहिमरका भवन्ति । अहिः—सर्पसाद्वदक्वतेऽप्यपकारे परं मारयन्तीत्यहिमरकाः । एते सहायाः साधूनां वैराज्यगमनागमने ज्ञातव्याः ॥ २७६६ ॥ एतेण्वेव भङ्गोपदर्शनायाह—

अत्ताणमाइएसं, दिय पह दिट्ठे य अट्ठिया भयणा । एत्तो एगयरेणं, गमणागमणम्मि आणाई ॥ २७६७ ॥

आत्मादिमेदेषु अत्राणादिषु वा सहायेण्वेकैकस्मिन् दिवा-पथ-दृष्टपदेः सप्रतिपक्षेरिष्टका भजना भवति, अष्टावष्टो भङ्गा भवन्तीत्यर्थः । तथाहि—आंत्मना सहायविरहिता दिवा मार्गेण राजपुरुवैर्देष्टा गच्छन्ति १ आत्मना दिवा मार्गेण राजपुरुवैर्द्दष्टाः २ आत्मना दिवा उन्मार्गेण राजपुरुवैर्द्दष्टाः ३ आत्मना दिवा उन्मार्गेण राजपुरुवैरद्दष्टाः ४ आत्मना रात्रो मार्गेण दृष्टाः ५ १००

१ °त्र शेषस्यापि जनपदस्य गमनागमनमविरुद्धम्, तत्र साधूनां करुपते गन्तुमिति घाक्यशेषः। यत्र तु भा०॥ २ °त इति भावः तद् विरु भा०॥ ३ कतिभिः प्रकारेभंव ° का०॥ ४-५ ॰० १० एतम्मध्यगतः पाठः भा० त० हे० गास्ति॥ ६ °च्छामन्तरेण पुत्र दार-धनस्मेताराज्या भा०॥ ७ °राष्ट्रीयग्राम-नगर-सेनादीनां प्रच्छन्नचारितया खरूपं गवे भा०॥ ८ °काः, "पृषोद्राद्यः" (सि० ३-२-१५५) इति रूपनिष्पचिः, घातका इत्यर्थः। एते कां०॥ ९ "भत्तणा दिवा पंयेण भदिहो १, भत्तणा दिवा पंयेण भदिहो १, भत्तणा दिवा उपयेण भदिहो १, भत्तणा दिवा उपयेण भदिहो भृं, भत्तणा राभो उपयेण भदिहो न्रां, भत्तणा राभो उपयेण भदिहो न्रां,

आत्मना रात्रो मार्गेणादृष्टाः ६ आत्मना रात्रो उन्मार्गेण दृष्टाः ७ आत्मना रात्राबुन्मार्गेणादृष्टा गच्छन्ति ८। एवं चारादिमिः द्वितीयव्याख्यानापेक्षया त्वत्राणादिमिः प्रतिचरकान्तेः सहायरिष सार्द्धं गच्छतां प्रत्येकमष्टी भङ्गाः कर्त्तव्याः । "एत्तो एग" इत्यादि पश्चार्द्धम्—एतेपामष्टानीं मेटानां प्रत्येकमष्टविधाना मध्यादेकतरेणापि प्रकारेण यो गमनागमनं करोति तस्याऽऽज्ञा-ऽनव- इसाद्यो दोषा भवन्ति ॥ २०६०॥ प्रायश्चित्तं चेदम्—

अत्ताणमाइएमुं, दिय-पह-दिद्वेमु चडलहू होंति । राओ अपह अदिद्वे, चडगुरुगाऽइक्कमे मृलं ॥ २७६८ ॥

आत्मादिप्तत्राणादिपु वा पदेपु ये दिवातिपयाः प्रथमे चत्वारो मङ्गकासेषु पथ-दृष्टपदाभ्या सप्रतिपक्षाभ्यामुपलक्षितेषु तपः-कालित्रशेषिताश्चत्वारो लघुकाः । ये तु रात्रितिपयाः पाश्चात्या-10श्चत्वारो मङ्गकासेषु अपथा-ऽदृष्टपदाभ्यां सप्रतिपक्षाभ्यामुपलक्षितेषु तपः-कालित्रोषिताश्चत्वारो गुरुकाः । यतो राज्यात् प्रधानितस्तस्य 'अतिकमे' अतिलङ्घने कृते सित मृलम् ॥ २७६८ ॥ अध सर्वभङ्गपरिमाणज्ञापनार्थमाह—

> अत्ताणमाइयाणं, अद्वण्हऽद्वृहि पएहिँ भइयाणं । चडसद्विए पयाणं, विराहणा होइमा दुविहा ॥ २७६९ ॥

15 आत्मादीनामत्राणाटीनां वा अष्टाना पटानामष्टिमेः 'पदैः' महैः प्रत्येकं 'भक्तानां' गुणि-तानां चतुःषष्टिसद्ध्यानि मङ्गकपदानि मवन्ति । चतुःषष्टश्च पटानामन्यतरेण गच्छत इयं 'द्विविधा' संयमा-ऽऽत्मल्या विराधना भवति ॥ २७६९ ॥ तामेवाह—

> छक्काय गहणकहुण, पंथं भित्तृण चेव अइगमणं । मुन्निम्म य अइगमणे, विराहणा दुण्ह वन्माणं ॥ २७७० ॥

20 अपये—अग्रस्नोपहतपृथिन्यां गच्छन् पृथिवीकायम्, नद्यादिसन्तरणेऽवश्यायसम्भवे वाऽ-प्कायम्, द्वानलसम्मवे सार्थिकप्रज्ञालिताग्निप्रतापने वा तेजःकायम्, "यत्राग्निस्तत्र निय-माद् वार्युभवति" इति कृत्वा वायुकायम्, हरितादिमर्दने प्रलम्बासेवने वा वनस्पतिम्, पृथिन्यु-दकवनस्पतिसमाश्रितत्रसानां परितापनादौ त्रसकायम्, एवं पद् कायान् विराधयति इति संयम-विराधना । तथा राजपुरुषा ग्रहणाकर्पणादिकं विदस्युरित्यात्मविराधना । अथ ते साधवः 25 पन्थानं मार्ग भित्त्वोत्मयेन परजनपदे 'अतिगमन' प्रवेशं कुर्वन्ति ततो गाहतरेऽपराधे लगन्ति । 'शून्ये वा' स्यानपालविरहिते मार्गेऽतिगमने विधीयमाने 'द्वयोरिप वर्गयोः' संयतानां सहायानां च विराधना मवतीति ॥ २७७० ॥

अथ पट्कायविरायनायां तावत् प्रायश्चित्तमाह-

30

छक्काय चउसु लहुगा, परित्त लहुगा य गुरुग साहारे । संघट्टण परितावण, लहु गुरुगऽइवायणे मूलं ॥ २७७१ ॥ असा व्यास्या प्रावत् (गा० १६१) ॥ २७७१ ॥ वय ब्रहणाकर्षणापदं व्याचष्टे-

१ °त्रां भद्गानां प्रत्येकमप्रविधानां सर्वसङ्ख्याया चतुःपिष्टसङ्ख्यानां भेदानां मध्या° कां॰ ॥ २ अथात्मित्रिराधनां विभाविषधुर्प्रहणाकर्षणाद्वारं व्या° मा॰ ॥

संजय-गिहि-तदुभयभद्या य तह तदुभयस्स वि य पंता । चउभंगों गोम्मिएहिं, संजयभद्दा विसर्जेति ॥ २७७२ ॥

गौलिमका नाम—ये राज्ञः पुरुपाः स्थानंकं वद्धा पन्थानं रक्षयन्ति तेषु चतुर्भेद्गी—संयत-भद्रका गृहस्थमान्ताः १, गृहिणां भद्रकाः संयतपान्ताः २, संयतभद्रका अपि गृहस्थभद्रका अपि ३, न संयतभद्रका न गृहस्थभद्रकाः किन्तु तदुभयस्थापि पान्ताः १। अत्र ये संयतभद्रका ७ गौलिमकाः प्रथमतृतीयभद्भवर्तिन इत्यर्थः ते साधृन् गच्छतो विसर्जयन्ति न निरुन्धते॥२७०२॥

संजयभद्रगमुके, वीया घेतुं गिही वि गिण्हंति । जे पुण संजयपंता, गिण्हंति जई गिही मुत्तुं ॥ २७७३ ॥

संयतभद्रकेर्मुक्तानिष साधून् 'द्वितीयाः' द्वितीयभङ्गवित्तंनः स्थानपालकास्ते संयतप्रान्तत्वाद् गृह्णन्त, गृहीत्वा च ते 'गृहिणोऽपि' प्रथमस्थानपालकान् गृह्णन्त, 'कस्माद् भवद्विरमी संयता 10 मुक्ताः ?' इति कृत्वा । यद्वा ते साधवो गृहस्थसिहता गच्छन्तः संयतभद्रकेर्मुक्ताः, गृहस्था अपि तैः 'अमीषां साधूनामेते सहायाः' इत्यभिप्रायेण मुक्ताः, परं ये द्वितीयभङ्गवित्तंनः स्थानपालकास्ते संयतप्रान्तत्या संयतान् गृहीत्वा गृहस्थानिष गृह्णन्ति, यसाद् 'अमीभिः समं यूय गच्छतेत्यतो यूयमप्यपराधिनः' इति कृत्वा । ये पुनः संयतप्रान्ताः, पुनःशव्दो विशेषणे, कि विशिनष्टि ? ये गौलिमकाः सयतानामेवातीव प्रद्विष्ठास्ते गृहिणो मुक्तवा यतीन् गृह्णन्त, गृहीत्वा च वन्धना-15 दिकं कुर्युः ॥ २७७३ ॥

परम-तइयमुक्ताणं, रज्जे दिद्वाण दोण्ह वि विणासो । पररज्जपवेसेवं, जञ्जो वि णिती तिहं पेवं ॥ २७७४ ॥

प्रथमतृतीयभद्भयोः सयतभद्भकेर्युक्ताः सन्तः साधवः परराज्ये प्रविष्टा दृष्टाश्च राजपुरुषैः, ततः प्रष्टाः—किमुरपथेनायाताः ? उत पथा ? । यदि साधवो भणन्ति 'उत्पथेन' तत 20 उन्मार्गगामित्वात् 'चारिका एते' इति कृत्वा प्रहणाकर्पणादिकं प्रामुवन्ति । अथ ब्रुवते 'पथा वयमागताः' ततो द्वयोरपि वर्गयोर्विनाञो भवति, संयतानां स्थानपालकानां चेति भावः । एवं परराज्यप्रवेशे दोषा अभिहिताः । यतोऽपि राज्याद् निर्गच्छन्ति तन्नाप्येत एव दोषा भवन्ति ॥ २७७४ ॥ अथ ''पंथं भित्तूण'' (गा० २७००) इत्यादिपदं व्याख्यानयति—

रिक्तज़इ वा पंथी, जह तं भित्तृण जणवयमइंति । गाढतरं अवराही, सुत्ते सुन्ने व दीण्हं पि ॥ २७७५ ॥

अथ चौर-हेरिकादिभयात् पन्था रक्ष्यते, न वा कस्यापि गमनागमनं कर्तु स्थानपालकाः प्रयच्छन्ति, ततस्तं पन्थानं भित्त्वा यद्युत्पयेन परनृपतेर्जनपदम् 'अतियन्ति' प्रविश्चन्ति ततो गाढतरमपराघो भवति, महान् दोपस्तेषा लगतीति भावः । अत्र साघूनामेव दोपो न स्थानपा-लकानाम् । अथ स्थानपालकाः सुप्ता भवन्ति शून्यं वा तत् स्थानकं वर्तते, स्थानपालकानाम- 30

१ °नकबद्धाः प° मो॰ हे॰ ॥

२ ° द्वी भवति, गाथायां पुंस्त्वं प्राह्मतत्वात्, तद्यथा—संय° गं॰ ॥

३ °अपि, एते तदुभयभद्रका उच्यन्ते ३, तथा न सं कां ॥ ४ पद्त्रयं व्या भा कां ॥

Б

16

न्यत्र कुत्रापि गमनात्, तत्र यदि सामनो गच्छन्ति तदा 'द्वयोरपि नर्गयोः' स्यानपालकानां संयतानां चेत्यर्थः प्रहणाकर्षणादयो दोषा मनन्ति ॥ २७७५ ॥ तानेन सप्रायश्चितान् दर्शयति—

नेण्हणें गुरुगा छम्मास कहुणे छेओं होइ वबहारे।
पच्छाकडे य मृर्ल, उड्डहण विहंगणे नवमं॥ २७७६॥
उद्दावण निन्त्रिसए, एगमणेने पञ्जोस पारंची।
अणबहुप्पो दोसु य, दोसु य पारंचिओ होइ॥ २७७०॥

गायाद्वयसापि व्यान्या प्रान्तत् (गा० ९०१-५) ॥ २७७३ ॥ २७७७ ॥ एवमात्मनेवासहायानामत्राणसहायानां वा गच्छतां दोषा अमिहिताः । अथ चौरादिसहाय-यक्तानां दोषानतिदिशकाह—

> एमेव सेसएहि वि, चोराईहि समगं तु वर्चते । सविसेसयरा दोसा, पत्थारो जाव मंसणया ॥ २७७८ ॥

एवनेव चौर-प्रतिचरकादिसहाँगः देषेरिप समकं त्रजता दोपाल एव प्रहणाकर्पणाद्यो वक्तज्याः, परं सिवदोषतराः । तथाहि—तेषां साघूनां दोषेण यदन्येषामि तद्गर्च्छायानां पर-गच्छीयानां वा कुल्स्य वा गणस्य वा सङ्क्ष्य वा प्रहणाकर्पणादिकम् एप प्रस्तार उच्यते । 15स वा मनेद् जीवितस्य वा चरणस्य वा अंशनं स्यात् । यावच्छक्दोपादानात् शरीरिवकर्षनमेदा द्रष्ट्याः ॥ २७७८ ॥ सिवदोषद्शेषदर्शनार्थमाह—

तेणहम्मि पसजण, निस्तंकिएँ मृह अहिमरे चरिमं । वह तात्र होति महय, दोसा ते तं चिमं चऽनं ॥ २७७९ ॥

देनादिमिः सह गच्छन् खेन्यार्थे प्रसन्ननं करोति, खेन्यादिकं करोति कारयति अनुमन्यते 20वा इत्यर्थः । तथा यदि 'खेनोऽयम्' इति ग्रङ्गते तदा चलारो गुरुकाः । निःग्रह्विते मूळम् । 'अमिनरोऽयम्' इति निःश्रह्विते 'चरमं' पाराश्चिकम् । आप च यदि तावन् ते स्थानपाळका भद्रका मञ्जन्त तथानि वैराज्यं सङ्कामतः साधृत् हृद्धा चिन्त्यन्ति—एनेऽपि यदीह्यानि कुर्वन्ति तर्हि न किमप्यमीयां मध्ये शोमनम् , तीर्थकरेण वा कि न प्रतिषद्धं वैराज्यसङ्क्षमणम् ! इत्यादि । एवं च तेऽनि प्रान्तीमवन्ति । अथवा यदि ते स्थानग्रला मद्रका मवन्ति तदा तैर्विसर्वितानां द्रिपरगृष्टं प्रविद्यानां त एव दोनाः, तदेव च चतुर्गुरुकादिकं प्रायश्चित्तम् , इदं चान्यत् प्रायश्चित्तालम् । २०७२ ॥ ४ तैदेव दर्श्यति—>

आयरिय उनन्झाया, कुल गण संघे। य चेह्याई च । सन्दे दि परिचत्ता, देरेंडां संक्रमंदेणं ॥ २७८० ॥

'आचार्याः' अर्थदातारः 'दणव्यायाः' स्त्रप्रदाः 'कुरुं' नागेन्त्रादि 'गराः' परस्यरसापे-१० क्षानेक्कुरुससुदायः 'सङ्घः' गणस्युदायः 'कैत्यानि' मगबद्धिन्त्रानि जिनमवनानि वा । एते आचार्यादयः सर्वेऽपि वैराज्यं सङ्घानता परित्यक्ताः ॥ २७८० ॥ एतदेव मावयति— किं आगय त्या ते विति संति ण इत्य आयरियमादी ।

१ < १ एतिष्कातमन्तरनं कां । १ ९ स्बे सं ता । ३ न्य वृती, संती णे ता ।।

उग्घाएमो रुक्खे, मा एंतु फलत्थिणो सउणा ॥ २७८१ ॥

'ते' साधवो राजपुरुषेः पृच्छयन्ते—किमर्थं यूयमिहागताः स्व १ । साधवो बुवते—'सन्ति' विधन्ते ''णे'' असाकमिहाचार्यादयः अतो वयमागताः । ततो राजपुरुषा दृष्टान्तं वदन्ति—यसात् फलार्थिनः 'शक्तुनाः' पक्षिणो वृक्षानागच्छन्ति तसात् तानेव वृक्षानुद्धातयामः, मा फलार्थिनः शक्तना आगच्छन्त । एतेन दृष्टान्तसामध्येन तानेवाचार्यादीनुद्धातयामो येन तदर्थमिह ६ कोऽपि नागच्छति ॥ २७८१ ॥ यत एते दोषा अतः—

एयारिसे विहारो, न कप्पई समणसुविहियाणं तु । दो सीमेऽइकमई, जिणसीमं रायसीमं च ॥ २७८२ ॥

एताहरो वैराज्ये विरुद्धराज्ये विहारः श्रमणानां सुविहितानां न कल्पते । यस्तु करोति स द्वे सीमानावतिकामति, तद्यथां—'जिनसीमानं' 'न कल्पते वराज्यसङ्कमणं कर्त्तुम्' इति रुक्षणां 10 'राजसीमानं च' 'न कर्त्तव्यो मदीयराज्यात् परराज्ये गमागमः' इति रूपाम् ॥२७८२॥ किञ्च—

> वंधं वहं च घोरं, आवज्जइ एरिसे विहरमाणी। तम्हा उ विवजेज्ञा, वेरज-विरुद्धसंकमणं॥ २७८३॥

'बन्धं' निगडादिनियन्नणं 'वधं च' कशाघातादिकं 'घोरं' मयानकमीहरो निहरमाणो यत आपद्यते तसाद् वैराज्य-विरुद्धराज्यसङ्कमणं विवर्जयेत्॥ २७८३ ॥ अथ द्वितीयपदमाह— 15

दंसण नाणे माता, भत्तविसोही गिलाणमायरिए। अधिकरण वाद राय कुलसंगते कप्पई गंतुं॥ २७८४॥

दर्शनार्थं ज्ञानार्थं वैराज्यसङ्ग्रमणमि कुर्यात् । "माय" ति मातापितरो कस्यापि प्रव्रजितुकामौ शोकेन म्रियेते तयोः समाधानार्थं गच्छेत् । "भत्तविसोहि" ति कश्चित् साधुर्भक्तं प्रत्यास्यातुकामः स विशोधिम्—आलोचनां दातुकामो गीतार्थस्य पार्थे गच्छेत् , अजङ्गमस्य वा 20
तस्य पार्थे गीतार्था गच्छन्ति । "गिलाण" ति ग्लानस्य वा प्रतिचरणार्थ प्रायोग्योपधहेतवे वा
गच्छेत् । "औयरिय" ति आचार्यसमीपे आचार्याणामादेशेन वा गच्छति । "अधिकरण"
ति कस्यापि साधोः केनापि गृहिणा सहाधिक्रणमुत्पन्नम् , स च गृही नोपशाम्यति, ततः प्रज्ञापनालिक्यमान् तस्योपशमनाय गच्छति । "वाद" ति अन्यराज्ये परभवादी कश्चिदुत्यितः तस्य
निम्नहार्थं वादलिक्यसम्पन्नेन गन्तन्यम् । "राय" ति राजा वा कश्चित् परराष्ट्रीयः साधूनामु- 25
परि प्रद्विष्टस्तस्योपशमनार्थं सलिक्यकेन गन्तन्यम् । "कुलसंगय" ति उपलक्षणत्वात् कुल-गणसङ्घसङ्गतं किमपि कार्यमुत्पन्न कुलादिविषयमित्यर्थः । अथवा "रायकुलसंगत" ति एकमेव

१ °मः, येन ते फलार्थिनः शकुना नागच्छन्ति । पतेन मा॰ ॥

२ °था-जिनसीमानं राजसीमानं च। तत्र जिनसीमा नाम-'न कल्पते वैराज्यसङ्क्रमणं कर्जुम्' इति लक्षणा भगवतामाज्ञा, राजसीमा तु-'न कर्ज्यो मदीयराज्यात् परराज्ये गमागमः' इति रूपा, उमे अपि सीमानावेवमतिकामतीति ॥ २७८२ ॥ कां ॥

३ "क्षायरिओ ति सो भत्तं पचक्खाइउकामो तस्य णिजनगद्वाए गच्छेजा। अहिकरणं वा कुल-गण-सपाणं समुष्पनं तस्स उनसमणद्वा गच्छेज ।" इति विशेषचूर्णो ॥

पदम्, राजकुलेन सह सङ्गतं-सम्बद्धं केनापि साधुना अधिकरणं कृतं तदुपशमनाय गच्छति । एवमादिषु कार्येषु वेरीज्येऽपि गन्तुं कल्पते ॥ २०८३ ॥

- अथ दर्भन-ज्ञानपदद्वयं भाष्यकृद् व्याख्यानयति---

सुत्त-ऽत्थ-तदुभयविसारयम्मि पडिवन्न उत्तिमह्म्मि । एतारिमम्मि कप्पद्द, वेरज्ज-विरुद्धसंक्रमणं ॥ २७८५ ॥

दर्जनप्रमावकशास्त्राणामाचारादिश्चतज्ञानस्य वा सम्बन्धि यद्न्यत्राविद्यमानं स्त्रार्थतदुभयं तत्र विशारदः कश्चिदाचार्यः म चोत्तमार्थमनश्चनं प्रतिपन्नः । यस्भिश्च क्षेत्रेऽसौ स्थितस्तत्र अपान्तराले वा वराज्य वर्त्तते, 'ता च स्त्रार्थो मा व्यवच्छेदं प्रापताम्' इति कृत्वा एतादशे कारणे वराज्य-विरुद्धे सङ्क्षमणं कर्त्तुं कल्पते ॥ २७८५ ॥

10 अथ येन विधिना तत्र गन्तव्यं तमिभिवलुराह—

आपुच्छिय आरक्तिय-सेट्टि-सेणावई-अमच-राईणं । अइगमणे निग्गमणे, एस विही होइ नायच्यो ॥ २७८६ ॥

आप्रच्छ्यारक्षिकं ततः श्रेष्टिनं ततः सेनापतिं ततोऽमात्यं ततो राजानमप्याप्रच्छ्य निर्ग-न्तव्यं प्रवेष्टव्यं वा । एप विधिः 'अतिगमने' परराज्यप्रवेदो 'निर्गमने च' पूर्वसाद् राज्याद् 15निर्गमने च ज्ञातव्यो भवति ॥ २७८६ ॥ असुमेवाथं प्रकटयन्नाह—

> आरिक्सितो विसञ्जइ, अहव भणिजा स पुच्छह तु सेईं। जाव निवो ता नेयं, मुद्दा पुरिसो व द्तेणं ॥ २७८७ ॥

वैराज्य-विरुद्धं गच्छता प्रथमत एवारिक्षकः प्रष्टव्यः । यद्यसौ विसर्जयित ततो छएम् । अथासौ मणेत्—नाहं जानामि, 'श्रेष्टिनं' श्रीदेवताऽध्यासितिशरोवेष्टनिवम्पितोत्तमाङ्गं प्रच्छत । 20 ततः श्रेष्टी प्रष्ट्यः, एवं यावद् 'नृपः' राजा तावद् 'नेय' नेतव्यं वक्तव्यमित्यर्थः । तच्चेवम् — श्रेष्टी प्रष्टो यदि विसर्जयित ततः सुन्दरम्, अथासौ श्र्यात् — अहं न जानामि, सेनापितं प्रश्नयत । ततः सेनापितः प्रश्निनो यद्यनुजानीते ततः श्रोमनम्, अथासौ श्र्यात् — अमात्यं प्रच्छत । ततोऽसावमात्यः पृष्टो यदि विसर्जयित ततो छएम्, अथ श्र्यात् — राजान प्रच्छत । ततो राजाऽपि प्रष्टव्यः । एते च राजादयो यदि विसर्जयन्ति तदा मुद्रापष्टकं दृतपुरुपं वा 25 मार्गयितच्याः, येन 'राजादिना विसर्जिता एते' इति स्थानपालकाः प्रत्ययतः पथमवतार-यन्तिः, यो वा दृतस्तत्र राज्ये वजति तेन सार्द्धं गच्छन्ति ॥ २७८७ ॥ एवं तावद् यतो राज्यात्रिर्गच्छन्ति तत्र विधिरुक्तः । अथ यत्र राज्ये गन्तुकामास्तत्र पविश्वतां विधिमाह—

जस्य वि य गंतुकामा, तस्य वि कारिति तेसि नायं तु । आरिक्खयाइ ते वि य, तेणेव कमेण पुच्छंति ॥ २७८८ ॥

अव यत्रापि राज्ये गन्तुकामास्त्रत्रापि ये सायवा वर्त्तन्ते तेषां छेखप्रेषणेन सन्देशकप्रेषणेन वा प्रापेव ज्ञात क्वर्यन्ति, यथा—वयमितो राज्यात् तत्रागन्तुकामाः, अतो भवद्भिस्तत्रारक्षिकादयः

१ °राज्यः विरुद्धराज्येऽपि कां ॥ २ °ष्ठानलक्षणमाद्यं पद् ° का ॥ २ °घरतिगमने निर्गमने च झातव्यो मा विरुद्ध । ,

प्रष्टन्याः । ततस्तेऽपि 'तेनैव' पूर्वोक्तेन क्रमेण आरक्षिकादीन् पृच्छन्ति । यदा तैरनुज्ञातं भवति तदा तान् साधून् ज्ञापयन्ति—आरक्षिकादिभिरत्रानुज्ञातमस्ति, भवद्भिरत्रागन्तव्यम् ॥ २७८८ ॥ एप निर्गमने प्रवेशे च विधिरुक्तः । अंथ "आयरिय" त्ति पदं विशेषतो भावयन्नाह—

राईण दोण्ह भंडण, आयरिए आसियावणं होइ।

कयकरणे करणं वा, निवेद जयणाएँ संकमणं ॥ २७८९ ॥

द्वयो राज्ञोः परस्परं 'भण्डनं' कल्हो वर्तते, तत्रैकस्य राज्ञः कोऽप्याचार्योऽतीव पूजा-सत्कार-स्थानम्, ततश्च द्वितीयो नृपतिस्तत् परिज्ञायाऽऽत्मीयदृश्चपुरुषैः "आसिआवणं" ति तस्याचार्य-स्थापहरणं कारयति 'अस्मिन् हि गृहीते स प्रतिपन्थिपार्थिवो गृहीत एव भवति' इति । अत्र च यः 'कृतकरणः' धनुर्वेदादौ गृहवासे कृतपरिश्रमस्तस्य तत्र करणं भवति, तेनाचार्यापहारिणा सह युद्धं कर्त्तुमुपतिष्ठत इत्यंर्थः । अथ नास्ति कोऽपि कृतकरणस्ततो यस्य राज्ञः सकाशादपह्-10 तस्तस्य निवेदनं कृत्वा यतनया शेपसाधवः सङ्गमणं कुर्वन्ति ॥ २७८९ ॥

इदमेव स्फुटतरमाह—(ग्रन्थात्रम्-७५०० । सर्वत्रन्थात्रम्-१९७२०)

अन्भरिहयस्स हरणे, उज्जाणाईिठयस्स गुरुणो उ । उच्चट्टणासमत्थे, दूरगए वा वि सवि वोलं ॥ २७९० ॥ पेसवियम्मि अदेते, रना जह वि उ विसज्जिया सिस्सा । गुरुणो निवेहयम्मि, हारितगराइणो पुन्ति ॥ २७९१ ॥

15

'अभ्यहितस्य' राजमान्यस्य 'गुरोः' आचार्यस्योद्यान-सभा-प्रपादिषु स्थितस्य हरणं भवति। यदि च कोऽपि युद्धकरणेन विद्याप्रयोगेण वा तस्योद्धर्त्तनायाः—चालनायाः समर्थो भवति ततः स तं निवार्याचार्यं प्रत्याहरति। अथ नास्त्युद्धर्त्तनासमर्थः ततः क्षणमात्रं साधवस्तूप्णीका आसते। यदा आचार्यापहारी दूरं गतो भवति तदा ''सिव'' ति सर्वेऽपि साधवो बोलं कुर्वन्ति—असाकमा-20 चार्यो हतो हतः, धावत धावत लोकाः! इति। आसन्नस्थिते तु बोलं न कुर्वन्ति 'मा भृत् परस्परं चहुजनक्षयकारी युद्धविष्ठवः' इति। तत्रश्च राजा साधुमिरिभधातव्यः—अनाथा वयमाचार्यविना, अत आचार्या यथाऽत्रागच्छन्ति तथा कुरुत। प्रवसुक्तोऽसौ द्वितीयस्य राज्ञो दूतं विसर्जयति—भीत्रमाचार्यः भेषणीय इति। यदि तेन प्रस्थापितस्ततो लष्टम्। अथासौ दूते भेषितेऽप्याचार्यं न ददाति—न विसर्जयतीत्यर्थः ततः साधवो द्वे त्रीणि वा दिनानि राजानं दृष्टा ब्रुवते—असान् 25 विसर्जयत येन गुरुत्णामुपकण्ठं गच्छामः, कीह्या वयं गुरुविरहिता अत्र तिष्ठन्तः! साध्यायादिकं वाऽत्र न किमपि निर्वहतीत्यादि। एवमुक्ते यद्यपि ते शिष्या राज्ञा विसर्जितास्वर्थापे गुरुणां सन्देशकप्रेपणेन निवेदयन्ति—वयमागच्छन्तः सः। ततो गुरवः ''हारितगराइणो पुर्वि'' ति अपहर्गुराज्ञः पूर्वमेव निवेदयन्ति—वयमागच्छन्तः सः। ततो गुरवः ''हारितगराइणो पुर्वि'' ति अपहर्गुराज्ञः पूर्वमेव निवेदयन्ति—अहं शिष्यानप्यानयामि, अतः स्थानपालानामादेशं प्रयच्छत येन ते तात्र गृहन्ति। एवं निवेदिते सति यतनया सद्धमणं कुर्वन्ति ॥२७९०॥२७९१॥३०॥। वैराज्यविरुद्धराज्यप्रकृतं समाप्तम्॥।

१ अथाचार्यहारं विशे° मा॰ ॥

२ °त्यर्थः । वादान्दादन्यो वा विद्याप्रयोगेण तं निवारयति । अथ नास्ति कां॰ ॥

10

15

अवग्रहमकुतम्

سمور نيز يم

सुत्रम् —

निगांथं च णं गाहाबह्कुछं पिंडवायपिंडयाए अणु-प्यविद्धं केंद्र् वत्थेण वा पिंडिगाहण वा कंवछण वा पाय-पुंछणण वा उवनिसंतिज्ञा, कप्पड् से सागार-कडं गहाय आयरियपायमृह्हे ठिवत्ता दोचं पि उगाहं अणुणणिवत्ता परिहारं परिहरित्तए ३८॥

थस मृत्रस सम्बन्धमाह—

अविकढे भिक्खगर्त, कोइ निमंतेज नत्यमाईहि । काग्ण विकढचारी, विगिचितो वा वि गेण्हेजा ॥ २७९२ ॥

'अविकेंद्वे' विरुद्धराज्यविरहिते मामादे। 'मिक्षागर्न' मिक्षायां प्रविष्टं माबुं कश्चिद्धपासका-द्विलादिमिनिनन्नयेत्, यहा 'कारणे' दर्शन-ज्ञानादे। विरुद्धराज्यचारी मोनादिभिः 'विविक्तः' मुपितः सन् बल्लाण सृहीशन्, अतो बल्लग्रहणविषिः प्रतिपाद्यने ॥ २७६२ ॥

अह्वा लोह्यनेण्णं, निवसीम अह्च्छिए हमं मणितं । दोचमणणुचवेउं, उत्तरियं वन्यमोगादी ॥ २७९३ ॥

अथवा नृपर्शामानमिकम्य विरुद्धनाच्यमङ्कमणे छैक्तिकन्तेन्यन्, इद्मनन्तरम्बे मणितम् । और तु सुबै द्वितीयं वारमवप्रहमाचार्यसमीपंऽननुज्ञाप्य यदा वव्यर्गरमोगम् आदिशब्दाद् घारणं वा करोति तदा छोकोत्तरिकन्तेन्यं मवतीति प्रतिपाचते ॥ २७२३ ॥

एभिः सम्बन्धेरायादम्यास्य त्र्याक्या—'निर्धन्यं' पूर्वोक्तग्रज्ञार्थं चग्र्क्टोऽर्थान्तरोपन्यासे २० ''ण''मिति वाक्याल्क्कारं गृहस्य पितः—सामा गृहपितम्तस्य कुरं—गृहं 'निण्डपातप्रितिज्ञया' निण्डः—खोदनादिम्नस्य पातः—पात्रे प्रवेशन्तन्यित्ज्ञया—त्रस्रस्ययमनुप्रविद्धं 'कश्चिद्' उपासका-दिवंश्वेण वा प्रतिप्रदेण वा कम्बन्धेन वा पात्र-प्रोच्छन्न वा उपनिमन्नयेत् । वस्तं मीत्रिक्तिम्ह गृह्यते, प्रतिप्रहः—पात्रकम्, कम्बन्धम्—खोणिकः कल्पः, पात्रग्रन्देन तु पात्रवन्य-पात्रकेसरिका-प्रमृतिकः पात्रनियागः, प्रोच्छनग्रन्देन तु ग्नोहरणस्च्यते, आह च चृणिकृत्— पायनाहणणं पायमंद्यं गहियं, पुंछगं रयहरणं नि ।

४ °व्हो बाक्यान्त° मा॰॥

१ °रुढे' पृषेमुश्रनिषिद्धविरु° कां॰ ॥

२ °नादी वाऽऽसम्बने सदाते सति विरू सं॰ ॥ ३ अय हिर्ता° स॰ विना ॥

५ द० दे० मो० दे० विनाज्यत्र—'स्य यत् कुछं-गृहं तत् पिण्ड' मा०। 'स्य यत् कुछं-गृहं गृहपतिकुछं नत् 'पिण्ड' हा०। ''गाधात्रति गाचा गृहमिरोग्रेऽषं. तस्य गृहस्य पति. गृहपति तस्य कुरं गृहमिनोसेज्येः।'' हति स्मूर्णो ॥

20

० तैतश्च पात्रं च मोञ्छनं चेति पात्र-पोञ्छनम्, समाहारद्वनद्वः, > एतेः उप—सामीप्ये आगत्य निमन्नयेत् । उपनिमन्नितस्य च "से" तस्य निर्मन्थस्य 'साकारक्वतं' 'आचार्यसत्कमेतद् वस्तं न मम, अतो यसौ ते दास्यन्ति अन्यसौ वा मद्यं वा आत्मना वा परिमोध्यन्ते तस्येतद् भविष्यति' इत्येवं सविकरूपवचनव्यवस्थापितं सद् गृहीत्वा तत आचार्यपादम्ले तद् वस्तं स्थाप-यित्वा यदि ते तस्येव साधोः प्रयच्छन्ति तदा 'द्वितीयमप्यवमहम्' एकस्तावद् गृहस्थादवमहो- ऽ ऽजुज्ञापितो द्वितीयं पुनराचार्यपादम्लादवमहम्जुज्ञाप्य धारणा-परिमोगरूपं द्विविधमपि परिहारं तस्य वस्तस्य 'परिहर्जुं' धातृनामनेकार्थत्वाद् आचरितुं करूपते इति स्त्रसङ्खेपार्थः ॥

अथ विस्तरार्थ विभणिपुराह—

दुनिहं च होइ वत्थं, जायणवत्थं निमंतणाए य । निमंतणवत्थं ठप्पं, जायणवत्थं तु वोच्छामि ॥ २७९४ ॥

द्विनिधं च भवति वस्तम्—याच्ञावसं निमन्नणावसं च । तत्र निमन्नणावसं 'स्थाप्यं' पश्चादिभधास्यते इत्यर्थः । याच्ञावस्त्रं पुनः साम्प्रतमेव वक्ष्यामि ॥ २७२४ ॥

यथाप्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—

नामं ठवणावत्थं, दुव्वव्वत्थं च भाववत्थं च । एसो खळु वत्थस्सा, निक्खेवों चउव्विही होइ ॥ (गा० ६०२) 15 ईत्यादिकाः

> एवं तु गविद्वेसुं, आयरिया देंति जस्स जं नित्य । समभागेसु कएसु व, जहराइणिया भवे वीओ ॥ (गा० ६४८)

इति पर्यन्ताः षट्चत्वारिंशद् गाथा यथा पीठिकायां वस्त्रकिलपकद्वारे (पत्र १७४) तथैवात्र द्रष्टव्याः ॥ उपसंहरत्नाह—

एयं जायणवत्यं, भणियं एत्तो निमंतणं वीच्छं। पुच्छादुगपरिसुद्धं, पुणरिव पुच्छेजिमा मेरा ॥ २७९५ ॥

एतद् याच्ञावस्रं भणितम् । इत ऊर्द्धं निमन्नणावस्रं वक्ष्यामि । र्तच यदा 'कस्येतद् वस्तम् ! किं वा नित्यनिवसनीयादिकमिदमासीत् '' इति प्रच्छाद्वयेन परिशुद्धं भवति तदा 'पुनरिप' वृतीयया प्रच्छया प्रच्छेत् । तत्र च 'इयं' वक्ष्यमाणा 'मर्यादा' सामाचारी ॥२७९५॥ तामेवाह—25

१ पि एतिमाहगत पाठः भा॰ का॰ एव वर्तते ॥ २ "परिहरित्तए ति आयरित्तए ॥ एप स्त्रार्थः । अधुना निर्युक्तिविस्तरः—"दुविधं च॰ गाधाह्य" इति चूर्णो ॥

३ 'याच्जावसं तु' याच्जा-प्रार्थना तया प्राप्तं यद् वसं तद् याच्जावस्त्रम्, शाकपार्थि-वादित्वाद् मध्यमपदलोपी समासः, तत् पुनः साम्प्र° का॰ ॥ ४ इत वारम्य—एवं को॰ ॥

५ °द्वारे व्याल्यातास्तद्वस्था प्वात्रापि तथैव द्रष्टवाः का॰ ॥

६ तदिष यदा 'पृच्छाद्वयपरिगुद्धं' 'कस्यैतद् चस्त्रम् शक्तं वा निस्यनिवसनीयादिक-मिदमासीत् ?' इति हाभ्यां निद्धित्मिति निश्चितं तदा 'पुनरत्ये' गा॰ ॥

७ 'या 'किमर्थ ददासि !' इति लक्षणया पृच्छेत् छा ।।

20

25

विउसग्ग जोग संघाडएँण भोइयकुले तिविह पुच्छा । फस्स इमं किं व इमं, कम्स च कजे लहुग आणा ॥ २७९६ ॥

'खुत्सगां नाम' उपयोगसम्बन्धां कायोत्सर्गस्तं कृत्वा, 'यस्य च योगः' इति भणित्वा, संद्वा-टकेन मिक्षार्थं निर्गतः । ततो मोगिककुले उपलक्षणत्वादन्यत्रापि यथाप्रधाने कुले प्रविष्टः क्रियाचिदीश्वरया महता सम्प्रमेण भक्त-पानेन प्रतिलाभ्य बक्षेण निमन्नितः, तत्र त्रिविधा प्रच्ला प्रयोक्तव्या । तद्यथा—'कस्य सत्किमदं वस्त्रम् ! कि वा इवैमासीत् !' अनेन प्रच्लाह्रयेन परिशुद्धं यदा भवति तटा प्रष्टव्यम्—कस्य वा कार्यस्य हेतोः प्रयच्लिस ! इति । यद्येवं न प्रच्लित ततश्चत्वारो लघवः आज्ञादयश्च दोपाः ॥ २०२६ ॥ अथ विशेषदोपानमिषित्सुराह—

मिच्छत्त सोच संका, विराहणा भोइए तहिँ गए या । चढथं व विटलं वा, वेंटल दाणं च ववहारो ॥ २७९७ ॥

मोगिन्या दीयमानं वस्तं यदि 'केन कार्येण प्रयच्छिस ?' इति न प्रच्छिते तदा भोगिको मिथ्यात्वं गच्छेत् । अथासो देशान्तरं गतस्तत आगतस्य महत्तरादिमुखाच्छुत्वा शङ्का भवति । मोगिके तत्र स्थिते 'गते वा' देशान्तरपासे पश्चादायाते सित 'विराधना' वश्यमाणा भवति । सा चात्रिरतिका 'चतुर्थं वा' मेथुनमवभाषेत 'वेण्टलं वा' वशीकरणादिप्रयोगं प्रच्छेत् ततश्च १८ वक्तव्यम् — वेण्टलमहं न नानामि, उपलक्षणत्वात् चतुर्थं च प्रतिसेवितुं न कल्पते । ततो यदि सा वस्त्रं याचते तदा दानं कर्त्तव्यम्, म्योऽपि तद् वस्तं तस्या एव समर्पणीयमिति भावः । अथ तद् वस्त्रं छिन्नं वा पाष्टुणकादीनां दत्तं चा भवेत् सा च तदेव वस्त्रं मार्गयेत् तदा रानकुलं गत्वा व्यवहारः कर्त्तव्य इति द्वारगाथासमासार्थः ॥ २०९० ॥ अथैनामेव विवरीपुराह—

वत्थिम्म नीणियिम्म, किं दलसि अपुच्छिछण जइ गेण्हे । अन्नस्स भोयगस्स व, संका घडिया णु किं पुच्चि ॥ २७९८ ॥

बस्ने भोगिन्या निष्काशिते सित यदि 'किं' किमर्थं ददासि ई इत्यप्ट्वेंच गृहाति तदा 'भोक्तः' तदीयस्पेव भर्त्तः 'अन्यस्य वा' श्वश्चर-देवरादेः ग्रह्मा भवेत् । तुरिति वितर्के, किं मन्ये एते। परस्परं पूर्वमेव घटितो यदेवं तूप्णीको टान-ग्रहणे कुरुतः ई अथवा किमेषा मैथु-नार्थिनी मृत्वा वस्नमस्मे पयच्छति ई उत्त वेण्टलार्थिनी ई इति ॥ २७९८ ॥

मिच्छत्तं गच्छेजा, दिजंतं दहु भोयओ तीसे । बोच्छेद पओसं वा, एगमणेगाण सो कुजा ॥ २७९९ ॥

तद् वस्तं दीयमानं दृष्ट्वा तस्याः सम्बन्धी 'मोनकः' भर्ता मिय्यात्वं गच्छेत्, यथा— निस्सारं प्रवचनममीपामित्यादि । प्रतिपन्नमिथ्यात्वश्च तस्य वैकस्य साधोरनेकेषां वा साधूनां तद्द-व्यान्यद्रव्यव्यवच्छेदं कुर्यात् प्रद्वेषं वा गच्छेत् ॥ २७९९ ॥

१ °ए स भो° ता॰ विना ॥ २ 'सङ्घाटकः' साधुयुग्मस्था भिक्षार्थे नि॰ कां॰ ॥ ३ °दम् १ कस्य चा कार्यस्य अर्थाय प्रयच्छिति । तत्राद्यपृच्छाद्वयपिर्छुद्धं यदा भवति तदा प्रयुच्यम्—केन कार्यण प्रयच्छिति १ मा॰ ॥ ४ °म्—न करपते मैथुनं प्रतिसेवितुम्, चेण्टसं वा अहं न जानामि । ततो यदि भा॰ ॥

16

च गैतं मिथ्यात्वद्वारम् । अथ 'श्रुत्वा शङ्का'द्वारं विराधनाद्वारं चाह—⊳

एमेव पउत्थे भोइयम्मि तुसिणीयदाण-गहणे तु । महतरगादीकहिए, एगतर पतोस वोच्छेदो ॥ २८०० ॥ मेहुणसंकमसंके, गुरुगा मूलं च वेंटले लहुगा । संकमसंके गुरुगा, सविसेसतरा पउत्थम्मि ॥ २८०१ ॥

एवमेव 'प्रोषिते' देशान्तरगतेऽपि भोगिके दोपा वक्तव्याः । तथाहि—तेन भोगिकेन देशान्तरं गच्छता ये महत्तरकाः स्थापितास्तैः आदिशब्दाद् महत्तरिकया द्यक्षरिकया कर्मकरेण वा तयोरिवरितका-संयतयोस्तूष्णीकदान-प्रहणं हृष्ट्वा भोगिकस्य भूयः समागतस्य कथितम् । तत्रश्चे सः 'एकतरस्य' संयतस्याविरितकाया वा उपिर प्रद्वेपं गच्छेत् , प्रद्विप्रश्चाविरितकां संयतं वा हन्याद् निष्काशयद्वा वधीयाद्वा निरुष्धाद्वा विमानयेद्वा, व्यवच्छेदं वैकस्यानेकेषां वा कुर्यात् । १० अत्र च मैथुनशङ्कायां चत्वारो गुरुकाः, निःशङ्किते मूलम् । वेण्टलशङ्कायां चत्वारो लघुकाः, निःशङ्किते चत्वारो गुरुवः । सविशेषतराश्च दोषाः प्रोषिते मोगिके भवन्ति, ते च यथास्थानं प्रागेवोक्ताः (गा० २७९९) ॥ २८०० ॥ २८०१ ॥

एवं ता गेण्हंते, गहिए दोसा पुणो इमे होंति । घरगयमुवस्सए वा, ओभासइ पुच्छए वा वि ॥ २८०२ ॥

एवं तावद् वस्तं गृहतो दोपा उक्ताः, गृहीते पुनर्वस्ते 'एते' वक्ष्यमाणा दोपा भवन्ति—
तस्मिन् गृहे यदा स एव साधुरन्यस्मिन् दिवसे गतो भवति सा वा अविरतिका तस्य साधोरुपाश्रये आगता भवति तदा मैथुनमवभाषते—त्वं ममोद्धामको भव। वेण्टलं वा सा प्रच्छति—

मिच्छत्तं गच्छिजा, दिजंतं दहु भोयथो तीसे। बोच्छेय पथोसं वा, एगमणेगाण सो कुजा॥

तद् चस्तं दीयमानं दृष्ट्वा तस्याः सम्त्रन्धी 'भोजकः' भर्ता मिथ्यात्वं गच्छेत्, यथा— निस्सारं प्रवचनममीपाम् इत्यादि । प्रतिपन्नमिथ्यात्वश्च तस्य चा एकस्य साधोरने-केपां वा साधूनां तद्वव्या-ऽन्यद्वव्यव्यवच्छेदं कुर्यात् प्रद्वेपं वा गच्छेत् ॥ एवं ता० गाधा त० हे० मो० हे० ।

अथ चतुर्थावभाषण-वेण्टलपृच्छाद्वारे विवृणोति—एवं ता० गाथा हा० । "पिस्सकिए मिच्छत ति शस व्याख्या—मिच्छत्तं गच्छेजा० गापा नंटा ॥" इति चूर्णो ।

मिन्छत्तं गन्छिजा॰ गाथा त॰ दे॰ मो॰ छे॰ न्यूणीं च व्याख्यासहिता पुनरावर्तिता वर्तते, भा॰ गां॰ विशेषचूणीं वृहद्भाष्ये च सर्वथा नास्ति, २८०१ गाथाव्याख्यान्ते "ते च यथास्मानं प्रागेवोक्ता" इति टीकाकृद्वकेसद्वीनेन नेय गाथाऽत्र टीकाकर्त्तुरिभमवेति वय मन्यामह इति नेयं गाथा तद्दीरा च मूरु आहता ॥

१ ॰ एतन्मध्यगत पाठः त० हे॰ मो॰ हे॰ नास्ति॥

२ °श्च तच्छुत्वा भोगिको मैथुनविषयां वेण्टलविषयां वा शद्धां कुर्यात्। अत एव संः 'एक' कां॰॥ २ °के वक्तव्याः, ते मा॰॥

४ इतोऽप्रे भा॰ विनाऽन्यत्र—

कथय किमिप तादृशं वर्शाकरणं येन सोगिको में वर्शामवित ॥२८०२ ॥ इटमेव स्पष्टयित—
पुच्छाद्दीणं गिह्यं, आगमणं पुच्छणा निमित्तस्स ।
छिन्नं पि दृ द्यव्यं, वयहारो स्टमए तस्य ॥ २८०३ ॥

ग्रहणकाले 'केन कार्यण में प्रयच्छिस ?' इत्येवं प्रच्छ्या दीनं वस्तं गृहीतन् । गृहीते च कत्याः संयतप्रतिश्रये आगमनम्, आगता च सा 'पुत्रो में मित्रता ? न वा ?' इत्यादिकं निमित्तं प्रच्छितं', येन वाऽदं मोगिकत्यामिरुचिता मवामि तत् किमप्युपिद्य । ततः साञ्चना वक्त्य्यम्—न कत्यतं मेशुनं प्रतिसेवित्तं साघृनाम्, वण्यलं निमित्तं वा नाहं जानामि । एव- मुक्तं यदि सा वस्तं भ्योऽपि मार्गयेन् ततः प्रतिवातव्यम् । अय तेन वस्त्रेण च्छित्ता पात्रवन्यादिकं किमप्यपरं इतं तत्तिव्यक्तमपि तदेव दातव्यम् । अय व्यवहारहारं व्यास्यायते—10 तत्र यदि सा छित्रं न गृहाति, त्रवीति च—मम सक्त्रस्त्रेष प्रयच्छ । ततो राजकृत्यं गत्वा व्यवहारे प्रारच्ये कारणिका अभिवातव्याः, यथा—केनचिद् वृक्षसामिना वृक्षो विकीतः, किय- केण च मृत्यं दत्त्वा छित्त्वा च स्वगृहं नीनः, ततः स विक्वियकः पश्चातापितो मणिति— प्रतिगृहाण मृत्यम्, प्रत्यप्य मदीयं वृक्षम्; क्रिकः प्राह—मया स वृक्षिव्यत्वा पृथकाष्ठानि इतः, अतः क्यं तमेव वृक्षमखण्डमहं ते समर्पयामि ?; एवं विवदमाना तो राजकृत्यप्रसितीं, 15 ततः क्ययत कारणिकाः ! किं स क्रियको युप्मामिर्थकं दाप्यते ? अय दाप्यते ततः काष्टान्येव, न पूर्वावसं वृक्षमिति व्यवहारो लम्यते ॥ २८०३ ॥

पाहुणएणऽण्णेण च, नीयं च हियं च होइ दहुं चा । तिहयं अणुसद्घाई, अन्नं चा दहु मोत्तृणं ॥ २८०४ ॥

अथ वस्त्रं प्राष्ट्रणकेनाम्येन वा साधुनाऽम्यत्र नीतं मंत्रेत् सेनेन वा हृतं प्रदीपनेन वा दृग्यं 20 तत्र चानुशिष्ट्रादिकं कर्त्वस्रम् । अनुशिष्टिनीम-सङ्गावकथनपुरःसरं प्रज्ञापना । तथाऽप्यनुपर- तायां धर्मकथा कर्त्तव्या, विद्या मन्नेण वा निराकरणीया । तद्रमावेऽम्यद् वस्तं तस्या दात- व्यम्, परं दृग्यं वस्तं मुक्तवा, दृग्ये हृतं वा न किञ्चिद् द्रायत इति भावः । यदि सा राजकु- स्मुपतिष्टते ततस्त्रत्रापं व्यवहारो सम्यते, "दृक्ता द्यानमनीश्वरः" इति ॥ २८०२ ॥

अथ जनकाले साबुना पृष्टम्—िकि निमित्तं दृडासि ? तत्र सा तृत्णिका स्थिता, बहिश्चे-25 ष्टया न तयावियः कोऽपि भाव उपदर्शितः, परं प्रह्णानन्तरं काचिदुपाश्रयमागत्य वेण्टलं पृच्छिति चतुर्थमवमापते वा तत्रामिघातव्यम्—

न ति जाणामों निमित्तं, न य णे कप्पइ पउंजिउं गिहिणो । परदारदोसकहणं, तं मम माया य भगिणी य ॥ २८०५ ॥ वयं निमित्तं न जानीमः, न च ''णे'' अलाकं जानतामि गृहिणंः पुरतो निमित्तं प्रयोक्तं

१ °ति, उपछ्छणसिद्म्, तेन चतुर्थमवमायते वशीकरणं वा पृत्छति-धेनाहं भो° हां । । २ भो॰ हे॰ विनाइन्यत्र— भा । पतेन दानहारमपि विवृतम् । अथ व्यव॰ हां । भा । अथ सा छिन्नं मा॰ त॰ हे॰ ॥ ३ एतत्वे अवैव प्रकारान्तरमाह इत्यवतरणं हा॰ ॥ ४ मवति हतं वा स्तेनेन प्रदीपनकेन वा हा॰ ॥ ५ °हिणां पु॰ हां॰ विना ॥

करुपते, तपः-संयमादिक्षतिप्रसंज्ञात् । या च चतुर्थमवर्मापते तस्याः परदारदोपकथनं क्रियते, यथा-- परपुरुप-परदारप्रसक्तयोः स्त्री-पुंसयोरिहैव भवे दण्डन-सुण्डन-तर्जन-ताडनादयः, पर्भवे तु नरकगतौ गतानां तप्तायः पुत्तिकालिङ्गनादयः, तत उद्भृतानां तिर्यग्मनुप्यगवग्रहणेषु भूयो मूयो नपुंसकत्व-दौर्भाग्यभभृतयो वहवः प्रत्यपायाः । अपि च त्वं मम माता वा भगिनी वा वर्त्तसे अतः कृतमनया वार्त्तयेति ॥ २८०५ ॥ वस्त्रदानस्येव कारणान्तरमाह-

> एकस्स व एकस्स व, कञ्जे दिञ्जंत गिण्हई जो उ 1 ते चेव तंस्स दोसा, वालम्मि य भावसंबंधो ॥ २८०६ ॥

'एकस्य वा' पूर्वसम्बन्धस्य 'एकस्य वा' पश्चात्सम्बन्धस्य कार्ये दीयमानं वस्त्रं यः साधुर्गृताति तस्य 'त एव' प्रागुक्ताः शङ्कादयो दोपाः । 'वाले च' वालविपयो भावसम्बन्धो वस्यमाणो भवतीति समासार्थः ॥ २८०६ ॥ अथैनामेव गार्थां विवृणोति-10

> अहवण पुद्वा पुन्वेण पच्छवंधेण वा सरिसमाह । संकाइया उ तत्थ वि, कडगा य वह महिलियाणं ॥ २८०७ ॥

अथवा सा दात्री पृष्टा सँती 'पूर्वसम्बन्धेन' याहशो मम आता ताहश एव त्वं वर्चसे, 'पश्चात्सम्बन्धेन तु' श्वशुरस्य देवरस्य भर्तुर्वा सदृशस्त्वं विलोक्यसे अतोऽहं भवते वसं प्रय-च्छामीत्याह, एवमन्यतरेण सम्बन्धकार्येण दीयमानं यदि गृहाति तदा त एव शक्कादयो दोषाः । 16 यदि च तस्या अविरतिकाया वालमपत्यं किमपि विद्यते तदा स साधुस्तया आतृमावेन प्रति-पन्नः सन् चिन्तयति—इदं मे भागिनेयम्; अथ भर्तृतया प्रतिपन्नस्ततिश्चिन्तयति—इदं मे पुत्रभाण्डम्, एवमादिको भावसम्बन्धो भवति, ततश्च प्रतिगमनादयो दोपाः । किञ्च महेलि-कानां वहूनि 'क़तकानि' कैतवानि भवन्ति, तेर्ने देवरादिश्रहणोपायेन सम्बन्धमानीय चारित्रात् परिम्रंशयन्तीति भावः ॥ २८०७ ॥ यत एवमतः-20

एयदोसिवमुकं, वत्थग्गहणं तु होइ कायव्वं ।

खमंड ति दुव्वली ति य, धम्मी ति य होति निहोसं ॥ २८०८ ॥

एते:--अनन्तरोक्तेदीपैर्विमुक्तं वस्त्रप्रहण साधुना कर्तव्यं भवति । कथम् ? इत्याह---''खमड त्ति'' इत्यादि । यदि सा दात्री प्रष्टा सती वृयात्—'क्षपकः' तपसी त्वम् , अथवा दुर्व-छोऽसि क्षपकतया स्वभावेन वा ततस्ते प्रयच्छामि, यद्वा 'तपस्विने टीयमाने धर्मो मगति' इति 25 कृत्वा ददामीति, एवं ब्रुवति ढायके तद् वस्र रुम्यमानं निर्दोपं भवति ॥२८०८॥ किय-

आरंभनियत्ताणं, अिकणंताणं अकारविंताणं । धम्महा दायन्वं, गिहीहि धम्मे कयमणाणं ॥ २८०९ ॥

आरम्भः-पट्कायोपमदेः तसान्निवृत्ताना तथा 'अकीणतां' वसादिक्रयमकुर्वाणानाम् 'अकार-यतां' आरम्भ-क्रयकरणे परमव्यापारयतामेवंविधानां 'धर्में' श्रुत-चारित्रमेवभिने कृतमनसां 80

१ तत्थ दो॰ ता॰ ॥ २ °ति निर्युक्तिगाथासमा॰ कां॰ ॥ ३ सती पूर्वसम्बन्धेन वा पह्यात्सम्बन्धेन वा यदि 'सहशं' सम्बन्धिनं तं साधुम् 'आहं' त्रृते । तत्र पूर्वसम्बन्धेन यथा—याहशो का॰ ॥ ४ °न पत्यादिमहणो भा० ॥

साघूर्ना गृहिभिः सर्वारम्भप्रकृतेः 'घर्मार्थं' कुशुलानुवन्त्रिपुण्योपार्जनार्थं वस्त्र-पात्रादिकं यथा-योग्यं दातन्यम् इति बुद्धा य उपासकादिवेक्षेणोपनिमन्नयति तस्य प्रहीतन्यमिति प्रकमः ॥ २८०९ ॥ तदेवं वस्त्रमुत्पन्नं यावद् गुरूणां समीपे न गम्यते तावत् कस्यावप्रहे भवति ? इति उच्यते-

> संघाडए पविद्वे, रायणिए तह य ओमरायणिए। नं लब्मइ पाओगां, रायणिए उगाही होइ ॥ २८१० ॥

टपयोगकायोत्सर्ग कृत्वा मिक्षार्थ सङ्घाटकः मित्रपः, तंत्रको रातिको द्वितीयोऽनमरानिकः। तत्र च यत् प्रायोग्यं सङ्घाटकेन रुम्यते तद् यात्रदाचार्यपादमृहं न गम्यते तात्रत् सर्व 'रानि-कत्स' ज्येष्टार्यस्यावमहो भवति, ज्येष्टार्यस्यस्य स्वामीति मावः ॥ २८१० ॥ अथ यदुक्तम्-10 "कप्पइ से सागारकडं गहाय दोचं पि उग्गहं अणुत्रवित्ता परिहारं परिहरित्तए" (उ० १ स्० २८) तदेतद् यथा केचिदाचार्यदेशीयाः सच्छन्द्बुच्या व्याचझते तथा प्रतिपादयति—-

दोचं पि उग्गहो ति य, केइ गिहत्येमु दोचिमच्छंति । साग ! गुरुणो नयामी, अणिच्छें पचाहरिस्सामी ॥ २८११ ॥

'द्वितीयमि वारमवयहोऽनुज्ञापयितव्यः' इति स्त्रे यदुक्तं तत् केचिदाचार्या गृहस्यविषयं 15 द्वितीयमवप्रहमिच्छन्ति । कथम् ? इत्याह—"साग" इत्यादि । यः श्रावको वस्त्रं ददाति स वक्तज्यः—हे श्रावक ! वयमेतर् वसं गृहीत्वा गुरूणां समीपे तावलयामः, यद्याचार्या एतर् महीन्यन्ति ततो मुयोऽप्यागम्य सवतः समीपे द्वितीयं वारमवमहमनुज्ञापयिप्याम इति, अथा-चार्या वस्त्रं न प्रद्याप्यन्ति ततस्तेषां वस्त्रस्यानिच्छायां मवत एवेदं प्रत्याहरिप्यामः ॥ २८११ ॥ अंसुमेव पशं परः समर्थयन्नाह—⊳

इहरा परिट्ठवणिया, तस्स व पचप्पिणंति अहिगरणं।

गिहिगहण अहिगरणं, सो वा दृहुण वोच्छेदं ॥ २८१२ ॥ 'इत्तरथा' यदेवं न त्रिवीयते ततो द्शितमिष वस्तं यदाऽऽचार्या न गृहीयुक्तवा पारिष्टाप-निकादोपै । अथ न परिष्ठापयन्ति ततोऽप्रातिहारिकं गृहीत्वा म्यस्सेव गृहस्यस्य प्रत्यपेयतां परिमोग-धावनादिकमिवकरणसुपजायते । अय तत् परिष्ठापितं वस्त्रं कोऽपि गृही गृहाति 25 ततोऽप्यविकरणमेव । 'स वा' दाता तद् वस्रं परिष्टापितं श्रुत्वा अन्यगृहस्वगृहीतं वा हट्टा तद्रव्यान्यद्रव्यवच्छेद्रमेकस्यानेकेयां वा साधृनां कुर्यात् ॥ २८१२ ॥

अय सृरिः परोक्तं दूपयन्नाह-

चीयग ! गुरुपडिसिद्धे, तिहं पटत्थे घरित दिसं तु । घरणुज्झणें अहिगरणं, गेण्हेज सर्य व पडिणीयं ॥ २८१३ ॥

20 है नोंडक! एवं कियमाण त एव त्वदुक्ता दोषा मबन्ति । तथाहि—तद् बल्लमानीय गुरुणामर्पितम्, तेन चाचार्याणां न प्रयोजनं ततसैः प्रतिषिद्धम्, तच वस्तं यावत् तस्य दाय-

१ ४ ▷ एतचिहगतः पाठः सा० त० डे॰ नास्ति ॥ २ 'दोषो भवति । 'वा' इति अथवा चेस परि° नां॰ ॥ ३ एतर्वे अन्याप्रम्—४००० इति मा॰ विना ॥

15

25

कस्य प्रत्यर्प्यते तावदसौ शामान्तरं पोपितः, प्रोपिते च तसिन् यदि तद् वस्तं धारयति-परिभुद्धे इत्यर्थः तदा अदत्तादानम् । अथ तस्य सत्क भणित्वा धारयति तदाऽधिकरणम् । अथात्मार्थितं कृत्वा धारयति तथाप्यधिकरणम्, अतिरिक्तोपकरणस्यापरिमोग्यतया अधिकरणत्वात्। अथ तद् वस्त्रमुज्ञति-परिष्ठापयतीत्यर्थः तथापि गृहिगृहीतेऽधिकरणं परिष्ठापनादोपाध्य । अथवा प्रतिनीतं तद् वस्तं 'स्वयमेव' आत्मना गृहीयाद्, न प्रतिदद्यादिति भावः । तसादेप त्वदुक्तो इ द्वितीयावत्रहो न भवति, किन्तु गृहस्थहरताद् वस्त्रं गृहीत्वा गुरुमूलमागम्य तेपां समर्प्य यदि ते तस्येव प्रयच्छन्ति तदा यत् ते भूयोऽप्यवग्रहमनुज्ञाप्यन्ते एप द्वितीयावग्रहः ॥ २८१३ ॥

> निग्गंथं च णं वहिया वियारमू मिं वा विहारसू मिं वा निक्खंतं समाणं केइ वत्थेण वा पडिग्गहेण वा कंबलेण वा पायपुंछणेण वा उवनिमंतेजा, कप्पइ से सागारकडं गहाय आयरियपायमूळे ठवित्ता दोचं पि उग्गहमणुत्रवेत्ता परिहारं परिहरित्तए ३९॥

अस्य व्याख्या शाक्तत् ॥ अथ भाष्यम्-

वहिया व निग्गयाणं, जायणवत्थं तहेव जयणाए । निमंत्णवत्थें तहेव, सुद्धमसुद्धं च खमगादी ॥ २८१४ ॥

'वैहिः' विचारमुमा वा विहारमुमा वा निर्गताना याच्यावस्त्रं तथेव यतनया ग्रेंहीतुं फल्पते यथा भिक्षाचर्यायामुक्तम् (गा० २७९४)। निमन्नणावस्त्रमपि तथैव ग्रुद्धमग्रुद्धं च वक्तव्यम् (गा० २७९५ आदि) । शुद्धं नाम-यत् क्षपक इति वा धर्म इति वा कृत्वा दीयते । अशुद्धं-यत् चतुर्थ-वेण्टलदिकार्येण दीयते ॥ २८१४ ॥ 20

सूत्रम्---

सूत्रम्—

निग्गंथिं च णं गाहावइकुछं पिंडवायपिडयाए अणु-प्पविद्वं केइ वरथेण वा पडिग्गहेण वा कंवलेण वा पायपुंछणेण वा उवनिमंतेजा, कप्पइ से सागारकडं गहाय पवत्तिणिपायमूले ठवित्ता दोचं पि उग्गहम-णुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए ४०॥

तथा-

निग्गंथिं च णं वहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं

१ 'विदः' विचारभूमी-संदाभुवि विहारभूमी चा-खाध्यायभूमिकायां निगनानां भा॰ २ प्रहीतव्यं यथा भा॰ ॥ विना ॥

वा निक्खंतिं समाणि केइ वरथेण वा पडिग्गहेण वा कंबलेण वा पायपुंछणेण वा उवनिमंतेजा, कप्पइ स सागारकडं गहाय पवित्तिणिपायमूले ठवेता दोचं पि उग्गहमणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए ११॥

अस सृत्रद्वयसानि स्यास्या प्रान्तन् ॥ अथ माप्यतिसरः —
 निग्गंथियन्थगहण, चउरो मासा ह्यंतऽणुग्याया ।
 मिच्छत्ते संकाई, पमझणा जाव चरिमपर्दं ॥ २८१५ ॥

निर्यन्यानां गृह्स्येम्यो बस्त्रप्रहणं कुर्वन्तानां चत्तारा मासा अनुद्वाताः प्रायक्षित्तम् । ताश्च वसं गृहन्तार्हप्ता कश्चिद्गमिनवश्चाद्वां मिथ्यात्वं गच्छेत्—अहो ! निर्यन्थ्योऽपि माटिं गृहन्तीति । 10 अथवा ब्रष्टां कुर्यान्—किं मन्ये धर्मार्थं दत्तमियं गृहाति १ उत भाटिनिमित्तम् १ । एवं ब्रह्मायां चतुर्गुर्दे । निःश्चिति मुख्य् । प्रसन्तना नाम—माजिका-धाटिकादिप्रसक्तपरम्परा, तत्र 'चरमपदं' पागिचकं यावत् प्रायश्चित्तम् ॥ २८१५ ॥ इदमेव भावयनि—

पुरिसेहिंतो वर्त्थं, गिण्हेंति दिस्म मंकमादीया । ओमासणा चउरथे, पडिसिद्धें करेज उड्डाई ॥ २८१६

15 पुरुषेम्यः सकाद्याद् वश्चं गृहन्तीं निर्यन्थीं दृद्दा ग्रिष्ठायों देषाः । ग्रिष्ठा नाम—िकमेषा मार्टि गृहाति ? । एवं ग्रिष्ठायां चतुर्गुरु, सोजिकायाः कथिते पद्छत्व, घाटिकस्य कथने पहुरु, ज्ञातीनां कथने च्छेदः, आरक्षिकेण श्चेत मृत्यम्, श्रेष्टि-सार्थवाह-पुरोहितः श्चेतेऽनव-स्थाप्यम्, अमात्य-नृपतिभ्यां श्चेत पाराज्ञिकम् । स वा गृहस्थो दस्थाणि दत्त्वा चतुर्थविषया-मवमापणां कुर्यान्, तया च प्रतिषिद्धे उद्धाहं कुर्यान्—एषा मर्ग्रायां मार्टि गृहीत्वा मन्प्रति 20 मदुक्तं न करोतीति ॥ २८१६ ॥ किञ्चान्यन—

रुंभिअ आमिओंगे, विराहणा पद्दएण दिइंतो । दायच्य गणहरेणं, तं पि परिच्छित्त लयणाए ॥ २८१७ ॥

"होमय" ित येन वा तेन वा वस्तादिना स्त्री सुखेनेव प्रहोम्यते । "आमिओरो" ित कोऽप्युदारशर्गरां संयतीं ह्या तस्या वर्णाकरणार्थनिमयोगं क्र्यात् । तत्रश्चारित्रविगयना । अत्र 25च प्रकृतेन हृष्टान्तः । यत एवमतः संयतीनां गणघरेण वस्त्राणि दातव्यानि । 'तदिष' वस्रदानं नष्ठ दिवसानि 'पर्गक्ष्य' पर्गक्षां कृत्वा 'यतनया' वक्ष्यमाणस्त्रणया कर्तव्यमिति सङ्ग्रहगाथा-ममानार्थः ॥ २८१७ ॥ अथ विस्तरार्थमाह—

पगई पेलवसत्ता, लोभिज्ञइ जेण तेण वा इत्था । अवि य हु मोहा दिप्पद्द, सहरं तासि सरीरेसु ॥ २८१८ ॥

20 'प्रकृत्या' समावनेव ली प्रायः 'पेलवसत्त्वा' तुच्छ चृतिवला ततो येन वा तेन वा

१ °रु । त्रादिरात्राद् भाटिनिमित्तमेव गृहातीति निःशद्वितं हा॰ ॥ २ 'पट्टकेन' वक्ष्यमाणस्त्रणेन द° हा॰ ॥

वस्त्रादिना लोभ्यते । अपि च ताः स्वभावेनेव वहुमोहा भवन्ति अतस्तासां पुरुषेः सह संलापं कुर्वतीनां दानं च गृहतीनां 'सैरं' सेच्छया गरीरेषु मोहो दीप्यते । अभियोग वा तस्या विद्याभिमन्नितवस्त्रपदानव्याजेन कुर्यात् , अभियोगिता च सती चारित्रं विराधयेत् ॥ २८१८॥

तथा चात्र पट्टकदृष्टान्तमाह

वियरग समीवारामे, ससरक्खे पुष्फढाण पट्ट कया। निसि वेल दारपिड्रण, पुच्छा गामेण निच्छुमणं ॥ २८१९ ॥

एगत्थ गामे कृविया, सा य आरागसमीवे । ततो य इत्थिजणो पाणियं वहड । तिम आरामे एगो ससरक्लो । सो कृवियातडे उरालं अविरइयं दृष्टुं तीए विज्ञामिमंतियाणि पुण्काणि देह । तीए घरं गतु नीसापट्टए ताणि ठवियाणि । ततो ते पुष्फा पट्टगं आविसिडं अट्टरत्त-वेलाए घरदारं पिइंति । ततो अगारो निग्गओ पेच्छइ पट्टगं सपुप्फग । तेण अगारी 10 पुच्छिता । तीए सव्भावो कहिओ। तेण वि गामस्स कहियं । गामेण सो ससरक्सो निच्छुडो॥

अथाक्षरगमनिका--'विदरकः' कृपिका, सा चारामस्य समीपे । ततः सरजस्कः कृपिका-तटे काश्चिदविरतिकां दृष्टा विद्याभिमन्नितपुष्पदानं करोति । तया च गृहे गत्वा तानि पृहके कृतानि । ततो 'निभि' रात्रो 'वेलायाम्' अर्द्धरात्रे गृहद्वारस्य पिट्टनं तेः कृतम् । ततस्तेन तस्याः प्रच्छा कृता । सद्भावे च कथिते श्रामस्य कथियत्वा तेन निप्कायनं सर्जस्कस्य कृतम् । 15 यत एते दोपा अतो निर्श्रन्थीमिरात्मना गृहस्थेभ्यो वन्त्राणि न ग्रहीतन्यानि, किन्तु गणघरेण तासां दातच्यानि ॥ २८१९ ॥ कः पुनरत्र विधिः १ इति अत आह—

सत्त दिवसे ठवेत्ता, थेरपरिच्छाऽपरिच्छणे गुरुगा। देइ गणी गणिणीए, गुरुगा सय दाण अहाणे ॥ २८२० ॥

संयतीपायोग्यमुपिभुत्पाद्य सप्त दिवसान् स्थापयति-परिवासयति । ततः स्थापयित्वा फर्लं 20 च कृत्वा स्वविरो धर्मश्रद्धावान् प्रावार्यते । यदि नास्ति कोऽपि विकारः सुन्दरम् । एवं परी-क्षा कर्चच्या । यद्यपरीक्ष्य प्रयच्छति ततश्चत्वारो गुरवः । एवं परीक्षिते 'गैणी' गणघरः 'गणिन्याः' प्रवर्त्तिन्याः वस्ताणि प्रयच्छति । साऽपि गणिनी संयतीनां यथाकमं ददाति । अथाचार्य आत्मना प्रयच्छति ततश्चतुर्गुरुकम् । काचिद् गन्दधर्मा वृयान्—एतस्याः गुन्दरतरं दत्तं न मम, तन्नृन्मियमस्यामीष्टा । एव स्वयं दाने विधीयमाने आचार्यस्यास्याने स्वापनं भवति । 25 यत एवमैतो नात्मना टातन्यं किन्तु प्रवितन्या तासा दापयितन्यम् ॥ २८२० ॥ नोदकः पाह—यद्येवं तर्हि सूत्र निरर्थकम्, तत्र निर्मन्थ्या वन्त्रग्रहणस्यानुज्ञानत्वान् । आचार्यः पाह—

असइ समणाण चीयग! जाइयै-निर्मनणवन्थ तह चेव। जायंति थेरि असई, विमिस्सिया मोत्तिमे ठाणे ॥ २८२१ ॥

हे नोढक ! सूत्रं निरर्थकं न भवति, किन्तु श्रमणानामगति यदा खिवरा निर्मन्य्यो चन्नाणि ३०

१ 'गणी' आचार्यः सः 'गणिन्याः' प्रवर्तिन्याः प्रयच्छति । माऽपि गणिनी पूर्वीकन विधिना ददाति । अथा° गा॰ ॥

२ °मतः प्रवर्तिन्या तासां दानव्यम् न॰ हे॰ मो॰ ने॰ ॥ 3 °य-नेमंत्रचस्य ग्रा॰ ॥

गृहन्ति तृष्टिपयमतत् सूत्रम् । तत्र याच्यावस्त्रं निम्ब्रणवस्त्रं च तृष्टेव सर्वोऽपि विधिर्दृष्टव्यः । ताश्च प्रथमतः स्वविरा एव केवला याचन्त । तासामसति तृरुणीविमिश्रिताः स्वविराः, परमे-तानि स्थानानि मुक्तवा ॥ २८२१ ॥ तान्येव वर्ज्यति—

> कावालिए य मिक्ख, सहवादी कुव्विए अ वेसिन्थी। वाणियग तरुण संसद्ध मेहुण मोइए चेव ॥ २८२२ ॥ माता पिया य भगिणी, भाउग संबंधिए य तह सन्नी। मावितकुलेसु गहणं, असई पडिलोम जयणाए॥ २८२३॥

'कापालिकः' अस्विसग्जस्कः, 'मिक्रुकः' सोगतः, 'ग्रुचिवादी' दक्रसोकरिकः, 'कृचिकः' कूर्चन्यरः, वेश्यास्त्री वाणिजकाश्च प्रतीताः, 'तरुणः' युवा, 'संस्रष्टः' पृवेपरिचित उद्घामकः, 10 मिथ्रुनः' मातुरुपुत्रः, 'मोक्ता' मती, माता पिता मिर्गनी श्राता एते चत्वारोऽपि प्रसिद्धाः, 'मस्वन्धी' सामान्यतः सज्ञातिकः, 'संज्ञी' श्राण्यकः । एतान् कापालिकादीन् सक्त्वा यानि मात्रितानि—यथाप्रधानानि मध्यस्थानि कुरुगनि तेषु संयतीमिर्वस्त्रहणं कर्चत्र्यम् । अय मावि- तक्रुरुगनि न प्राप्यन्ते ततस्त्रेषाममावे 'प्रतिलोमं' प्रतीपक्रमेण प्रतिषिद्धस्थानेप्वेच यतनया यथा वश्चमाणा दोषा न मवन्ति तथा गृँहीग्रुरिति सङ्ग्रहगाथाद्वयसमासार्थः॥ २८२२॥ २८२३॥ अथेतदेव प्रतिपदं मावयति—

अड्डी विज्ञा कुच्छित, मिक्खु निरुद्धा उ सजर्ऽण्णत्थ । एव दगमोय कुचिग, मुद्दग ति य वंभचारिता ॥ २८२४ ॥

"अट्टि" ति अस्यसरजस्काः, ते विद्यया मन्नेण वा संयतीनां वस्तरानव्याजेनामियोगं कुर्युः, अपि च ते 'कुत्सिताः' जुगुप्मिता भवन्ति । ये तु 'मिक्षुकाः' सागतान्ते प्रायो निरुद्धवन्तयः 20 'अन्यत्र च' खन्निरिकादिपु गच्छन्तो छज्जन्ते, गाथायां प्राकृतत्वादेकवचननिर्देशः । एवं 'दक्सोक्रिकाः' परिवानकाः 'कुर्चिकाश्च' कूर्चन्यरा वक्तव्याः, ते चोभयेऽप्येवं मन्यन्ते— एताः श्रमण्यो व्रक्षचारित्वाद्रप्रमन्नाः, अप्रमवत्त्राच 'ग्रुचयः' पवित्रा एता इति ॥ २८२४ ॥

अन्नठवणह जुना, अभिओगे जा व रूविणी गणिया । भोइग चोरिय दिन्नं, दहुं समर्णास उड्डाहो ॥ २८२५ ॥

25 या जीणी गणिका सा स्तयं विवपयितुमसमर्था रूपवर्ती सवर्ती हट्टा 'अन्यस्थापनार्थम्' अपरगणिकास्थापनार्थमिमयोगयेत् । या वा रूपवर्ती गणिका साऽप्येवनेवाभियोगं कुर्यात् । नथा यो मातुल्युत्रस्तर्ने स्तमोजिकाया वल्लं चौरिकया संयत्याः दत्तम्, तच तया पादृतं हट्टा सा मोगिनी बहुजनमध्ये उद्घाहं कुर्यात्—एषा मे गृहमङ्गं करोति ॥ २८२५ ॥

देसिय वाणिय लोमा, सइं दिन्नेण उ चिरं पि होहिचि । तरुणुत्रमामग मोयग, संका आतोभयसमृत्या ॥ २८२६ ॥ 'देशिकः' देशान्तरायातो वाणिजश्चिन्तयति—'सङ्खु' एकवारं 'दर्चन' दानेन ममेयं

20

१ ° हीयाडिति त॰ है॰ मो॰ है॰॥

२ °न आत्मीयाया मोगिन्याश्चौरिकया वस्त्रं दत्तम्, तच अमण्या प्रावृतं मा० ॥

20

चिरमपि भविष्यति इति विचिन्त्य लोगाद् भ्यांसि दस्नाणि दत्त्वा प्रलोमयेत् । यस्तु तरुणः स विकारबहुल उत्कटमोहश्च भवति, संस्रष्टः पूर्वोद्धामकः, 'भोक्ता' प्राक्तनो भर्चा, एतेपां हस्ता-दादीयमाने वस्ने शद्कादय आत्मोभयसमुत्थाश्च दोपा भवन्ति ॥ २८२६ ॥

दाहामो णं कस्सइ, नियया सो होहिई सहाओ थे। सन्नी वि संजयाणं, दाहिइ इति विष्परीणामे ॥ २८२७ ॥

मीतृ-पितृप्रभृतयः 'निजकाः' खजनाश्चिन्तयन्ति—य[स्य क]स्याप्येना वयं दास्यामः सः असाकं सहायो भविष्यति; यस्तु 'संज्ञी' श्रावकः सोऽपि—एया मे श्रमसहाया भविष्यति, अन्यच सयतानामेषा विपुरुं भक्तपानं मदीये गृहे वर्तमाना दास्यति; 'इति' एवं चिन्तयिता विपरि-णामयेत्, विपरिणाम्य चोन्निष्कमणं कारयेत् । यत एयमत एतानि स्थानानि वर्जयिता यानि भावितकुलानि तेषु ग्रहीतव्यम् । भावितकुलानामभावे प्रतिषिद्धस्थानेष्वेय पश्चानुपूर्व्या गृही-10 यात्—प्रथमं यः सभोगिनीकः श्रावकरतस्य सकाद्याद् ग्रहीतव्यम् , तस्याभावेऽभोगिनीकश्या-वकहस्तादिष, एवं प्रतीपक्रमेण तायद् वक्तव्यं यावद् भिक्षुकाणामभावे कापालिकानां सका-शादिष यतनया वस्त्रग्रहणं कर्चव्यम् ॥ २८२७ ॥ यतनामेवाह—

मग्गंति थेरियाओ, लद्धं पि य थेरियाउ गेण्हंति । आगार दड्ड तरुणीण व देते तं न गिण्हंति ॥ २८२८ ॥

याः स्थितरा धर्मश्रद्धाल्यो गीतार्थाश्च ता वस्नाणि मार्गयन्ति । ल्व्धमि च वसं दाय-कसकाशात् स्थितरा एव गृहन्ति । अथासो दाता काणाक्षिप्रभृतीनाकारान् करोति, स्थिवरया वा हस्ते प्रसारिते मणिति—तव न ददािम, एतस्यास्तरुण्याः प्रयच्छागीति । एवमाकारान् दृष्ट्वा तरुणीनां वा ददतं दायकं विज्ञाय तद् वसं न गृहन्ति ॥ २८२८ ॥

एवमादिदोपविष्रमुक्तं वस्त्रमुत्पाद्य वसति प्राप्तानामय विधिः---

सत्त दिवसे ठवित्ता, कप्पें कते थेरिया परिच्छंति । सुद्धस्स होइ घरणा, असुद्ध छेत्तं परिष्टवणा ॥ २८२९ ॥

सप्त दिवसान् वसं स्थापयन्ति । यद्यस्थापयित्वा परिभुञ्जते तदा चत्वारो गुरव आज्ञादयश्च दोपाः । यत एवं ततः स्थापयित्वा करूप-प्रशालनं कुर्वन्ति । कृते च करूपे स्थविरास्तद् यसं प्रावृत्य परीक्षन्ते । यदि शुद्धं ततस्तस्य धारणम् , अथ 'अशुद्धम्' अशुद्धगावोत्पादकं तद् मन्तं 25 ततस्तत् छित्त्वा परिष्ठापनं कर्त्तव्यम् ॥ २८२९ ॥ अथ वस्त्रोत्पादनविनिर्गतानां निर्मन्थानां निर्मन्थानां च सामान्यतो लामा-ऽलाभादिनिमित्तपरिज्ञानोपायमाह—

नं पुण पढमं वत्थं, चडकोणा तस्त होंति लाभाए। वितिरिच्छंऽता मन्झे, य गरहिया चडगुरू आणा॥ २८३०॥

यत् पुनः प्रथमं वस्त्रं रुभ्यते तस्य ये चत्वारो कोणकाम्ने वक्ष्यमाणाञ्जन-सञ्जनलेपादि-३० चिह्नोपरुक्षिता रूपमाय मवन्ति, उपरुक्षणमित्रम्, तेन यो षाज्ञरूमध्यमागी ताविप रामाय

१ ये तु मातृ-पितृप्रभृतयो 'निजकाः' स्वजनास्ते बिन्तयम्ति—"णं" इति पनां संयतीं कस्यापि व्रयं दास्यामः, सः "णे" अस्माकं गं॰॥ जं किंचि होइ वर्त्थं, पमाणवं सम रुइं थिरं निद्धं। परदोसे निरुवहतं, तारिसगं खु भवे धन्नं॥ २८३५

यत्किञ्चिद् वस्तं 'प्रमाणवत्' स्त्रोक्तप्रमाणोपेतं 'समं नाम' नान्यत्र स्थूलमन्यत्र स्रक्ष्णं 'रुचि नाम' रुचिकारकं 'स्थिरं' दृढं 'किंग्धं' सतेजः, एमि. पञ्चभिः पदेर्द्वीत्रिंगद् भङ्गा भवन्ति, एपे प्रथमो भङ्गो गृहीतः । तथा परदोपाः—आसुर-राक्षसभागेष्यञ्जन-खञ्जनप्रभृत- घ यस्तेः 'निरुपहतं' वर्जितम्, यद्वा परः—ढायकस्तस्य ये ढोपाः क्रीत-कृतादयस्तिर्विवर्जितं तादृशं वस्त्रम्, खुरवधारणे, तादृशमेव 'धन्यं' ज्ञानादिधनप्रापकलक्षणोपेतिमित्यर्थः ॥ २८३५ ॥

॥ अवग्रहप्रकृतं समाप्तम् ॥

रात्रिभ क्त प्रकृत म्

सूत्रम्--

10

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाले वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्तए ४२॥

अस्य सम्बन्धं घटयन्नाह-

वयअहिगारे पगए, राईभत्तवयपालणा इणमी । सुत्तं उदाहु थेरा, मा पीला होज सन्वेसि ॥ २८३६ ॥

15

पूर्वसूत्रे द्वितीयावश्रहानुज्ञामन्तरेण वस्त न परिभोक्तव्यमिति तृतीयव्रतस्याधिकारः प्रकृतः । तिसिश्च प्रकृते रात्रिभक्तव्यालनार्थमिवं सूत्र 'स्विवराः' श्रीभद्रवाहुस्वामिन उदाहृतवन्तः । कुतः १ इत्याह—मा तिसन् पष्टवते भग्ने 'सर्वेपामिप' महाव्रताना 'पीडा' विराधना भवेदिति कृत्वा ॥ २८३६ ॥ प्रकारान्तरेण सम्बन्धमाह—

अहवा पिंडो भणिओ, न यावि तस्स भणिओ गहणकाली । तस्स गहणं रापाए, वारेइ अणंतरे सुत्ते ॥ २८३७ ॥

अथवा "निग्गर्थं च ण गाहावइकुरुं पिंडवायपिडियाए" (उ० स्० ३८-४१) इत्या-दिपु सूत्रेषु पिण्डो भणितः । न च तस्य पिण्डस्य अपिशक्दाद् चम्त्रादेवी ग्रहणकारो भणितः 'कदा गृह्यते ? कदा च न ?' इति, अतः पूर्वसूत्रेभ्यो यदनन्तरमिद्गेव सूत्रं तत्र 'तस्य' 25 पिण्डस्य ग्रहण 'क्षपाया' रात्री निवारयतीति ॥ २८३७ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्थास्य व्याख्या—नो करूपते निर्धन्थाना वा निर्धन्थीना वा रात्रो वा विकाले वा 'अञ्चन वा' ओदनादि 'पान वा' आयामादि 'त्यादिमं वा' फलादि 'त्यादिमं वा' क्राण्ट्यादि प्रतिप्रहीतुमिति स्त्राक्षरार्थः ॥ अय भाष्यविक्तरः—

६ 'प नवमो भ' त॰ दे॰ मो॰ रे॰। "एम पडमो भगो गहिती" इति चूर्णी ॥

29

रातो वं वियाले वा, संन्या राई उ केसिइ विकालो । चडरो य अणुग्वाया, चोदगपडिवाय आणादी ॥ २८३८ ॥

भिन्नीं वा विकाले वा' इति यदुक्तं सुत्रे तत्र सन्व्यां रात्रिरुच्यते, राजते—शोमते इति निरुक्ति-मशाद् । शेषा सर्वांऽि रजनी विगतः सन्व्याकालोऽत्रेति कृत्वा विकाल उच्यते । कृषािश्च-मृद्यार्थाणी दिवमल्झणकालिवगमान् सन्व्या विकालः, शेषा तु रात्रिः, रज्ञंति (रङ्गान्ति) स्तेन-पारवारिकार्योऽत्रेनि कृत्वा । एनयो रात्रि-विकालयोः स्त्रोक्तं चतुर्वियमाहारं गृह्यते मृङ्गानसं च चत्वारोऽनुद्वाता मासाः प्रायक्षित्तम् । नोदकः प्रस्यति—किमिति रात्रिमोजनं परिद्वियते ! उच्यते—वहुद्वारदर्शनात् । पुनरि परः पाह—युम्माकं द्वाच्तारिश्वहोषपरि-शुद्धः निण्डः परिमुज्यते इति समयस्थितिः, तेषु च द्वाच्त्वारिश्वहोषेषु रात्रिमोजनं न क्वापि 10प्रतिषिद्धम्, अप्रतिषिद्धत्वाचावस्यमेव निर्वोषभिति ने मितः । अस्य नोदकवचनस्य प्रतिवातं— पतिषणमाचार्यः करोति—नोदक ! मवत एवं वृवाणस्थाज्ञामङ्गादयो दोषाः, तथाहि—यत् तथा प्रतिपादितं 'रात्रिमोजनप्रतिषेषः काप्यसामिनं दृष्टः' इत्यादि तदेनद्ज्ञानप्रलपितिनव लक्ष्यते ॥ २८३८ ॥ यनः—

> जेंद् वि य न प्यडिसिटं, वायालीसाएँ राद्मत्तं तु । छेंद्र महस्वयम्मी, पडिसेहो तस्स नणु चुत्तो ॥ २८३९ ॥

यग्री च द्वाचलारिंग्रति दोषेषु रात्रिमकं न मतिषिद्धं तथानि पष्ट महात्रते पद्जीवनि-कायां ननु तस मतिषेत्र एक एव । तथा च सुत्रम्—

अहावरे छट्टे मंते ! वए राइमोयणाओं वरमणं । (दस्ते अ० १) इत्यादि । ॥ २८३६ ॥ अपि च—

20 वह ता दिया न कप्यह, तमं ति काळण कोइयाईसु । किं पुणं तमस्मईए, कप्पिस्मइ सव्वरीए र ॥ २८४० ॥

यदि तावत् 'तमः' अन्वकारमिति इत्वा नीचहारकोष्टकादिषु दिवाऽपि मक्तपानं प्रहीतुं न करणते,

"नीयदुवारं तमसं, कोष्टमं परिवज्ञए।" (दश्के० अ० ५ ८० १ गा० २०) १६ इति बचनात्; ततः किं पुनः 'तमस्त्रयां' बहल्तन पटल्कल्तियां 'शर्वर्य्यो' रात्रो कल्पि-प्यते १ नैवेति मावः ॥ २८१० ॥ यञ्चोक्तम्—'रात्रिमके दोषा न मन्ति' इति तद्प्यपरि-मात्रितमापितम्, यतः साक्षादेवामां दोषासत्रोपलम्यन्ते—

मिच्छचम्मी मिक्छ्, विराहणा होइ संजमायाए । पुक्खलण खाणु फंटग, विसम दरी वाल साण य ॥ २८४१ ॥ गोण य तेणमादी, उद्मामग एवमाइ आयाए ।

१ °न्था, येन राजते-शोमते वतो निर्युक्तया राजिरच्यते । शेषा सर्वाऽपि रजनी विकालः । केषाञ्चिदाचार्याणां दिवसविगमात् सन्त्या विकाल इत्युच्यते, शेषा तु सर्वाऽपि राजिरिति । एतयो राजि॰ भा॰ ॥ २ °ते ! महद्वंप भा॰ ॥

संजमविराहणाए, छकाया पाणवहमादी ॥ २८४२ ॥

भगवता प्रतिपिद्धं रात्रिभोजनं कुर्वता आज्ञाभङ्गः कृतो भवति । तं दृष्ट्वाडन्येडपि रात्रिभक्ते प्रवर्तनते इत्यनवस्थाऽपि स्थात् । मिथ्यात्वे तु मिश्चदृष्टान्तो वक्तव्यः---

 जहा—कालोदाई नाम भिक्खुगो रयणीए एगस्स माहणस्स गिहं भिक्खटा पविट्टो । तओ माहणी तस्स भिक्लानिमित्त जाव मज्ञे पवियइ ताव अंधयारवहरुयाए अगाओ इ खीलओ न दिहो । तत्थाविडयाए तीसे खीलएण कुच्छी फाडिओ । सा य गुविणी आसि । गठभो फुरफ़रंतो पडिओ मओ य । सा वि य मया । तं दहुं होगेण भणियं—अदिष्ट-धम्माणो एए ति ॥

एवं साधुरि रात्रो मिक्षामटन् भगवत्यसर्वज्ञत्वज्ञहामुत्पादयति । तथा ⊳ विराधना द्विवि-धा—सयमे आत्मिन च । तत्रात्मिवराधना भाव्यते—रात्रो मार्गमपश्यतः प्रस्खलनं भवति, 16 स्थाणु-कण्टकाभ्यां वा पादयोः परिताप्येत, विषमं-निम्नोन्नतं दरी-गर्चा तयोर्वा प्रपतेत्, व्यालः-सर्पस्तेन वा दस्येतं, स्वानो वा रात्रावुषद्रवं कुर्यात् ॥ २८४१ ॥

'गौः' वलीवर्दस्तेन अभिहन्येत, स्तेना आदिशन्दादारक्षिकादयो वा तमकाले पर्यटन्तं गृहीयुः । यद्वा स एव साधुरकाले पर्यटन् स्तेन आदिशब्दाचारिको वा अभिमरो वा उद्घा-मको वा आरक्षिकपुरुषैः शङ्क्षेत, तत्रश्च प्रान्तापनादयो दोपाः । एवमाटयो दोपा आरमविरा-15 धनाविषया भवन्ति । सयमविराधनायां तु पट् काया निश्चि तमस्यदृश्यमानाः स्फुटमेव विरा-ध्यन्ते, अथवा प्राणवधादयो दोषा रात्री पिण्डं गचेपयतो भवन्ति ॥ २८४२ ॥

तानेव भावयति—

पाणवह पाणगहणे, कप्पद्वीदाणए अ संका उ । भणिओ न ठाइ ठाणे, मोसम्मि उ संकणा साणे ॥ २८४३ ॥

20

^४दिवा वीजससक्तीदकार्द्रादीनि सुप्रखुपेक्षतया सुखेनेत्र साधुः परिहर्जुगीष्टे, रात्री तु दुःप्र-स्यपेक्षतया तेपां परिहारः कर्न्चं न शक्यते, अतः प्राणिग्रहणे प्राणवधी भवति । कल्पस्यते चापद्राणेऽगारिणो वक्ष्यमाणनीत्या गद्धा भवेत् -- नूनमेतेनापद्रावित इति । तथा कोऽपि साधु-रगारिणा भणितः—रात्रां मा मदीय गृहमायासीरिति । ततः 'श्वानस्ते गृहमायास्यन्ति' इति । प्रतिज्ञा कृत्वा गतः, परमसौ 'स्थाने' स्ववचने न तिष्टति ततश्च मृपावादमसौ मृत इति शद्धा²⁵ गृहस्थस्य स्यात् । एतदुत्तरत्र भावयिप्यते ॥ २८४३ ॥

१ 🗗 🗁 एत्रिशान्तर्वनी पाठ भाव नान्ति॥

२ °त, यहा मर्कोटकादिनाऽपि द्रष्टः सर्पे शहूत तनः शहाविषं समुहलित, भ्वा° भा॰ ।

३ °श्च ते चध-प्रशादिकं पिद्ध्यु । एव° पाँ० ॥

४ इस दिया त्रसप्राणिसंसकादीनि पा॰ । "पाणिवधो पाणिवहणे माठि, कृषं । दर्द्वापीयधर्गां, पाणा नियतिता महिं। दिशा एताणि वर्जेनो, सभे तथ वधं नरे । ॥ चूर्णां विशेषचूर्णां न ॥
५ 'पाणित्रद्वणे' त्रसत्राणिसंसकादीनामादाने 'प्राणयधः' प्रथममहायतिवराधनान्त-

क्षणो भवति गां॰॥

25

थघ करपसकेऽपद्राणे यथा शहा मत्रति तदेतद्रुप्दर्शयति— हंतुं सवित्तिणिसुयं, पडियर्ड् काउमञ्गदारम्मि । समणेण णोछियम्मी, पवेदण जणस्स आसंका ॥ २८४४ ॥

काचिवित्रतिका रजन्यां सपक्रीमुतं हत्वा ततस्तमग्रहारे कृत्वा कपाटस्य पृष्ठतस्तमग्रहम्य ६ 'प्रतिचरित' प्रतिज्ञायती तिष्ठति । यमण्य तदानीं मिल्लार्थमायातः तेन कपाटं प्रेरितम्, स च दारकः सहसेन मुमा पतितः । तनस्त्रया प्रवेदनं कृतं पृत्कृतमित्यर्थः, यथा—आः ! कष्टं सयतेन दारको व्यापादित इति । तत्व्य जनस्याग्रह्णा भवति—किं मन्ये सत्यमेवेदम् १ इति । तत्र प्रकृणाकर्पणाद्यो दोषाः ॥ २८१२ ॥ अय मृषावादं विराधनामाग्रह्णां चाह—

मा नित्ति मोकं एज्जसु, मणाइ एहिति ते निहं सुणगा।
पुणरिंतं सिहुपई, मणाइ सुणओ सि किं नातो।। २८४५॥
एवं चिय मे रित्तं, कुसणं दिज्ञाहि तं च सुणएण।
चह्यं ति य मणमाणे, मणाइ नाणामि ते सुणए॥ २८४६॥

काचिद्रितिकां कस्यापि साधोरपञ्चान्ता, सा तस रात्रावण्यागतस मक्त-पानं प्रयच्छिति, तद् दृष्ट्वा तदीयेन भन्नी स साबुरिमिहितः—मा 'निजि' रात्री मदीयम् 'ओकः' गृहमायासीः । 15 ततः साबुर्मणिति—एप्यन्ति त्वदीयं गृहं ज्ञुनका इति । ततः स साबुर्जिह्वादण्डदोपेणाक्चण्य-माणः पुनस्तदीयं गृहमागतवान् । तं पुनरायान्तं स श्राद्धिकापितमणिति—किमेवं तं श्रा नो जातः ! । एवं मृपावाद्वोपमापद्यते । अथवा एवमेव केनिवदगारिणा साबुर्निश्च समागच्छन् प्रतिपिद्धः 'श्रान्छे गृहमागिन्यिन्त' इति प्रतिज्ञां कृतवान् । अन्यदा च तेनाविरितिकेन दिवा सङ्गानेन महिला मणिता—मित्रिनिक्तम कुसणं स्वापयेः, पश्चाच मम रात्री मुझानस्य 20 'दद्याः' परिवेषयेः । ततन्त्या स्वापितम् । तच्च ज्ञुनकेन मित्रतम् । र्पंत्रे मणन्त्यां तस्यां गायायां पुंस्त्रनिदेशः प्राक्वतस्तात् । स प्राह—वानाम्बहं 'ते' त्वदीयान् ज्ञुनकान् । एवं मृपावादिवया स्वाप्ता स्वा । २८४६ ॥ २८४६ ॥

थय तृतीयचतुर्थवतयोर्विरावनामाशङ्कां च मतिपादयति—

सयमेव कोइ छढ़ो, अवहरती तं पड्ड कम्पकरी । वाणिगिणी मेहुनं, बहुसी व चिरं व संका या ॥ २८४७ ॥

कश्चिहुन्यो मिलाथे प्रतिष्टो रजन्यामाकीर्णितिपकीर्ण वल-हिरण्यादि दृष्टा खयमेवापहरेत्। अथवा तं संयतं प्रतीत्य कर्मकरी काचिदपहरेत्, 'संयतेन हृतं मित्रप्यतीति गृहपितप्रमृतय-श्चिन्तयिष्यन्ति' इति बुद्धा सा सुवर्णादिकं चोरयेदिति मावः । तथा काचिद् वाणिनिका

१ °वं भवान् श्वा मा॰ । "अविरत्यो मगति—तुमं सा णो जातो ?" इति चूर्णी विशेषचूर्णी व ॥ २ ॰वं ▷ एउन्मध्यगदः पाठः मा॰ त॰ हे॰ नाचि ॥

३ °म्यहं तद् मातुपं येन शुनकेन भूत्वा भिक्षितम्। एवं मा॰। "से मणड़—जाणामि तं माजुमसागं नेग खहनं" इति विशेषसूर्णां ॥

प्रोपितमर्तृका मैथुनमवभाषेत, तद्वचनाभ्युपगमे चतुर्थव्रतविराधना । तथा आहारनिमित्तं घहुवः प्रवेश-निर्गमो कुर्वाणश्चिरं चालाप-संलापादिभित्तिष्ठन् मैथुनवित्तेवायां जनैः शङ्कयेत ॥२८४०॥ अथ पञ्चमव्रतविपये विराधना-शङ्के दर्शयति—

अणभोगेण भएण व, पिंडणीओम्मीस भत्तपाणं तु । दिस्रा हिरत्रमादी, आवसण संकणा दिद्वे ॥ २८४८ ॥

कश्चिदनाभोगेन भक्त-पानोन्मिश्रतं हिरण्यादि दद्याद् भयेन वा। यथा—कयाचिद् द्यहारि-क्या हिरण्यादिकमपहृतम्, सा च तं न शकोति सङ्गोपियतुं वा प्रत्यपियतुं वा, ततः सयतस्य भेक्षेण समं दद्यात् । प्रत्यनीकतया वा दद्यात्, यथा काष्ठश्रेष्ठिसाघोर्वज्ञानामिकया प्राक्तन-भार्थया इति । एवं च हिरण्यादिके गृहीते सति कश्चित् तत्रेव ◄ मूच्छी कुर्यात्, ▷ मूच्छीया चैकानते सङ्गोप्य घारयतः परिमहदोपस्यापित्तर्भवति । तथा तत् सुवर्णादिकं भक्तपानसिन्मश्रं 10 दीयमानं दत्तं वा प्रतिश्रहे जाज्यस्यमानं कश्चित् पत्रयेत्, हष्टे च तस्य शङ्का जायेत—िक मन्येऽयं जानानो छुठ्यतया गृहाति ! उताजानानः प्रमाटात् ! इत्यादि । यत एते दोपा अतो रात्रो न पर्यटितव्यम् ॥ २८४८ ॥ अथ रात्रिभक्तमेव मेदतः म्रह्मप्यन्नाह—

तं पि य चउन्त्रिहं राइभीयणं चोलपट्टमहरेगे।

परियावन्न विगिचण, दर गुलिया रुक्ख सुन्नघरे ॥ २८४९ ॥

तदिष च रात्रिभोजनं चतुर्विधम्, तद्यथा—दिवा गृहीतं दिवा मुक्तं १ दिवा गृहीतं रात्रो भुक्तं २ रात्रो गृहीतं दिवा भुक्तं ३ रात्रो गृहीतं रात्रो भुक्तं च ४ इति । एतेषु चतुर्व्विष भक्तेषु यथाक्रमं तपःकारुरुषु १ कारुगुरु २ तपोगुरुको ३ भयगुरुकरूपाध्यत्वारो गुरवः । तत्र प्रथमभक्तो भार्यते—"चोरुपष्ट्" ति कस्यापि संयतस्य संज्ञातकानां सद्घडिरुपिश्वता, स च तिसन् दिवसे प्रातरेवाभक्तार्थं प्रत्याख्यातवान्, ततः 'मा मामेतेऽभक्तार्थन न ज्ञास्यन्ति' इति २० कृत्वा पात्रकरनुद्वाहितैश्वोरुपष्टकसहितो गतः संज्ञातकगृहं पृष्टश्य —िकं भवद्विभाजनानि नानी-तानि ?; ततस्तेनान्येन वा साधुना भणितम् —अद्याभक्तार्थिक इति; ततस्ते संज्ञातकाः 'करुये वयं दास्यामः' इति कृत्वा यत् तद्र्थं स्थापयन्ति द्वितीयदिने च यद्यसो तद् गृहीत्वा भुद्धे तदा प्रथमभक्तो भवति । ''अइरेगे'' ति सद्घड्यामन्यत्र वा कचिदितिरिक्तमवगाहिमादि स्वयम्, तत्रत्वस्य 'विगिद्यलं' परिष्ठापनायोग्यतां प्राप्तम्, ततस्तस्य 'विगिद्यलं' परिष्ठापनं तद्र्थं निर्गतः, २५ तच्चात्कृष्टमिनाति द्वत्यं मत्वा द्वितीयदिने समुद्देशनार्थं दर-गुलिका-वृद्ध-शून्यगृहे स्थापयति । दरः—विरुम्, गुलिका नाम—पिटेकं वुसपुक्तो वा, यहायाद्वेन वृक्षकोटरमुच्यते, यद्वा 'गुलिया रुक्स' ति गुलिकाः—पिण्डकास्तान् कृत्वा पृद्धकोटरे स्थापयति, शून्यगृहं—प्रतीतम् । एतेषु स्थापयत्वा द्वितीयदिवसे भुज्ञानस्य प्रथमभक्तो भवतीति निर्युक्तिगाधासमासार्थः॥ २८४९॥

१ -४ > एतमाधागतः पाठः त॰ दे॰ मी॰ छे॰ नास्ति । "पृष्टिपीयताए जपा कटुस्त । सल्दो न सरयेव छुम्मेळा, एवं परिगद्दे शावज्ञना" इति चूर्णी विद्योवज्यूर्णी च ॥

२ ष्यु तपः कालविशेषिताक्षत्यारी गुरवः। तत्र मा॰ ॥

३ विकारक मो के में ध पति गायां भा व दे ।।

-15

39

अय भाष्यकार एवैनां व्याख्यानयति—

खमणं मोहतिगिच्छा, पच्छित्तमजीरमाण खमओ वा । गच्छह् सचोलपड्डो, पुच्छ हुवणं पहमभंगो ॥ २८५० ॥

एकेन साबुना क्षपणं छतं उपवास इत्यंगः, तच मोहचिकित्साथं वा प्रायिश्विविद्युद्धिः क्रितां अजायमाणमक्तपरिणतिनिमित्तं वा, 'क्षपको वा' एकान्तरितादिक्षपणकर्ताऽसोः; तिह्ने च तस संज्ञातंकानां मह्नुद्धिन्यस्तिता, तेश्च साधवो मिद्याग्रहणार्थमामित्रताः, क्षपक्रसावुश्चानुद्धान्द्रा-हितपात्रकः 'सचोल्पद्धः' चोल्पट्टकद्वित्यो 'मामेतंऽत्र स्वितममक्तार्थनं न ज्ञास्वन्ति, अजानानाश्च न मद्धं संविमागं सापियप्यन्ति' इति बुद्धा प्रस्थितः, आचार्यान् प्रतिव्रवीति च—ते समावत एवातिपान्ता मां विना न पर्याप्तं प्रज्ञास्वन्ति, न वा अवगाहिमादीन्युक्तयद्वयाणि १० होक्यिप्यन्ति, नतोऽहं गच्छामाति । स च तत्र गतः सम्बनुद्धाहितपात्रको हृद्धा तः पृष्टः— किमद्योपवानां च्येष्ठार्थः ! इति । स प्राह—आमम् । तत्तत्तद्धंमवगाहिमादिसंविमागममणिता व्याप्तान्ति 'कर्ये पारणकदिवसे ठास्यामः' इति कृत्वा । यद्यपि ते न स्यापयन्ति नथापि क्षपक्तस चत्वारो गुरुकाः, मावतकेन सित्रविस्थापनायाः कारितत्वात् । द्वितीयदिवसे च नद् गृद्दीत्वा भुज्ञानस्य प्रथममङ्गो मवति ॥ २८५० ॥ अथातिरिक्तादिपदानि व्याच्छे—

कारणगहिउच्चरियं, आविलयविहीऍ पुच्छिकण गओ । भोक्खं सुए दराइसु, ठवेइ साभिग्गहऽन्नो वा ॥ २८५१ ॥

इह साय्नां भिक्षामद्रजां कविद्निर्कतः प्रभृतमक्तस्य लामोऽमवत्, सङ्घां वा प्रज्ञुत्मवन् गाहिमादि ल्व्यम्, अनुपिवत्येत्रं वा गुल्-लानार्दानां प्रायोग्यमहणाय सर्वरिष सङ्घादेकेमीन्न काणि व्यापारितानि, ण्वमादिभिः कारणेः प्रायोग्यम्ल्यमितिरक्तं गृहीतं तच्चोद्वरितम् । तत १० आविल्का [म्]—आचान्दिका-इमक्तार्थकादिपरिपादिक्षां विधिना—प्रत्याख्यानिर्धुक्यादि-लान्नप्रसिद्धेन प्रकारण 'पृष्ठा' निमन्न्य तथाप्यतिरिक्तं परिष्ठापनाय गन एकान्तमनापातं बहुपाग्रकं स्विण्डलम् । तत्र च प्राप्त ब्ल्लाखाद्वर्यकामन "सुष्" ति 'श्वः' कल्ये मोक्ष्येऽहमिति चिन्त्रयत्वा दरं आदेशव्वाद् गुल्किन-वृक्षकोटर-शृन्यगृहेषु स्वापयति । स च सामिम्रहो चा स्वाद् 'अन्यो वा' अनिमन्नहः । सामिन्नहो नाम—'यत् किव्विद्वाहारोपकरणादिकं परिष्ठापनायोग्यं १६ भवति तन् सर्वे मया प्ररिष्ठापयित्वत्रम् द्वेतं प्रतिपन्नामिन्नहः, त्विद्वपरीतोऽनिमन्नह इति ॥-२८५१ ॥ अथेतेषु स्वापयतः प्रायश्चित्तमह—

विटें मृतं गुम्ना वा, अणंतें गुरु ठहुन सेस नं चडनं। येरीय ट निक्खिने, पाहुण-साणाइखइए वा ॥ २८५२ ॥ आरोवणा ट तस्सा, वंबस्स परुवणा य कायव्वा । इंट नामडिह्नमाउं, मंसाडिनेसं न लाडडडहो ॥ २८५३ ॥

विष्टे स्थापयतो मूर्ल गुरुका ब्राः—यदि वसिम विष्टे स्थापयति तदा मूलम्, उद्वसे चत्वारो गुरवः । अनन्तवनम्पतिकोटरं स्थापयतश्चतुर्ग्रुखः । 'दोषेषु' प्रत्यकवनस्पतिकोटर-गुलिका-शून्य-गृहेषु स्थापयतश्चतुर्ण्यवः, यच 'अन्यद्' आत्म-संयमिवराधनादिकमापद्यते तिविष्यत्रं प्राय-

श्चित्तम् । अथं स्वित्तगृहे स्वापयित ततस्तत्र निक्षिते चत्वारो रुघवः । अथं तया तत् प्राष्टुणकाय दत्तं स्वयमेव वा प्राष्टुणकेन अक्तं स्वान-गवादिभिन्नां मित्रतं तदा 'तस्य' स्वापकस्यारोपणा
कर्त्तव्या, चतुर्रुष्ठकादिकं यथायोग्यं प्रायश्चित्तं दातव्यमिति भावः । तत्र च प्राष्टुणकादिना
अक्तं कियन्तं कारुं यावत् कर्मबन्धो भवति ! इत्याशद्भायां बन्धस्य-प्ररूपणा कर्त्तव्या । सा
चेयम्—"कुरु" इत्यादि । केचिदाचार्यदेशीयाः ब्रुवते—यावत् तस्य प्राष्टुणकस्य सप्तमः इ
कुरुवंशः तावदनुसमयं तस्य स्थापकस्य साधोः कर्मबन्धो मन्तव्यः । अपरे प्राहुः—यावत् तस्य
नाम-गोत्रं नाद्यापि प्रक्षीणम् । अन्ये भणन्ति—यावत् तस्यास्थीनि ध्रियन्ते । इतरे ब्रुवते—
यावदसावायुर्धारयिति । तदपरे कथयन्ति—यावत् तस्य तत्वत्ययो मांसोपचयो ध्रियते । अन्ये
प्रतिपादयन्ति—यावत् तस्य तद् भक्तमद्यापि न जीर्णम् । आचार्यः प्राह—एते सर्वेऽष्यनादेशाः, सिद्धान्तसद्भावः पुनरयम्—यावदसौ स्थापकसाधुरद्यापि तस्मात् स्थानाद् 'नावृत्तः' 10
नारुनेचनपदानादिना प्रतिकान्तः तावत् तस्य कर्मबन्धो न व्यवच्छिद्यते ॥ २८५२॥ २८५३॥

गतः प्रथमो भङ्गः । अथ शेपभङ्गत्रयी भावयति—

संखिडिगमणे वीओ, वीयारगयस्स तइयओ होइ। सन्नायगमण चरिमो, तस्स इमे विनया भेदा॥ २८५४॥

- अपराहे या सङ्घर्डी तस्यां गमने 'दिवा गृहीतं रात्री मुक्तम्' इति द्वितीयभङ्गो भवति-। 15 अनुद्रते सूर्ये विहिर्विचारभूमी गतस्य विलना निमन्नितस्य 'रात्री गृहीतं दिवा मुक्तम्' इति वृतीयो भङ्गः । संज्ञातककुरुगमने सज्ञातकानामेव वचनेनात्मीयरुगेरुयेन वा रात्री गृहीत्वा रात्रावेव मुझानस्य 'चरमः' चतुर्थो भङ्गः । तस्य च चतुर्थभङ्गस्य 'इँमे' वक्ष्यमाणाः प्रायश्चित्तमेदा वर्णिता इति निर्मुक्तिगाथासमासार्थः ॥ २८५४ ॥

अथेनामेव गाथां व्याख्यानयति—

2

ँगिरिजनगमाईसु व, संखिंड उक्कोसलंभें विइओ उ। अग्गिष्टि मंगलद्वी, पंथिग-वइगाइस तइओ ॥ २८५५ ॥

गिरियज्ञो नाम—कोङ्कणादिदेशेषु सायाहकालभानी प्रकरणिवशेषः । आह च चूर्णिकृत्— गिरियज्ञः कोङ्कणादिषु भवति उस्तरे चि ।

विशेपचूर्णिकारः पुनराह—

25

गिरिजनो मत्तवालसंखडी भन्नइ, सा लाडविसए वरिसारते भवह ति । [गिरिकं(ज)न ति भगिटाहो ति भणितं होइ ।]

तदादिपु सङ्घिषु ्य वा शब्दादन्यत्र वा कापि > सूर्ये श्रियमाणे उत्कृष्टम्—अवगाहिमादि द्रव्यं स्टब्वा यावत् प्रतिश्रयमागच्छति तावदस्तमुपगतो रविः ततो रात्रो सुझ इति द्वितीयो

१ 'नायर्तते' ना॰ भा॰ ॥ २ 'क्रामित ताय॰ भा॰ । "णाऽऽन्द्रह ण पिक्निति" इति चूर्णों ॥ ३ इमे मेदा भवन्ति । ते चाग्रतो घह्यन्ते ॥ २८५४ ॥ अथैनामेव नायां विद्यणोति—
निरि॰ भा॰ ॥ ४ गिरिनतिज्ञातीसु च ता॰ ॥ ५ गिरिकन्ना मत्ते इति विदेशपचूर्णिप्रते ॥ ६ ४ १० एतन्मप्यातः पाठ भा॰ त॰ डे॰ नान्ति ॥

महः । तथा दक्षिणापथे कुडवाईमात्रया मिन्दयां महाप्रमाणो नण्डकः कियते, से हैमन्त-कालेऽकणोद्यवेद्ययां अग्निष्टिकायां पत्त्वा घृत्रीनञ्चाय दायते, तं गृहीत्वा अञ्चानस तृतीयो महः । आदो वा पान्तर्गन्तुकामः माधं विचारम्मो गच्छन्तं हृद्वा मङ्गलर्थी अनुद्रते सूर्यं निम्हयेन्, पिका वा पन्धानं व्यनिवनन्तो निम्हययुः, विकायां वाऽनुद्रते सूर्यं उच्चित-गृक्तिमाः साधं प्रतिज्ञामयेयुः, एवमादिषु गृहीत्वा अञ्चानस्य तृतीयो मङ्गो मनति ॥ २८५५॥ अथं चन्ध्यकं व्यास्थानयति—

> छन्दिय-सर्यगयाणं व, सन्नायगसंखर्डाह त्रीमरणं । दिवसें गते संमरणं, खामण कर्छं न दृष्टि ति ॥ २८५६ ॥

क्यांबित् सावृतां संज्ञातकगृहे सङ्घाहिलासिता, तत्र ते छन्द्रिताः—निमित्रताः सयं वा— 10 अनिमित्रता गताः । ततः संज्ञातकेने संयता अमिहिताः—अद्य यृयं मा मिश्रां पर्यटन, वयमेव पर्यास महासाम इति । ते च संयता मोजनकाळ परिवेषणादिकृत्यव्यमाणां तेषा विसरणपथ-सुपागमन् । ततो यदा ळोकस्य यद् दात्व्यं तद् दत्तम्, यच कर्चव्यं तत् कृतम्, ततः क्षणिकी-मृतेन्द्रित्वसे 'गते' व्यतीते सति संयनानां संसर्णं कृतम् । ततन्ते रात्रो प्राञ्जितिपुदाः पादयोः पतित्वा क्षमणां क्षत्रिन्ति—परिवेषणव्यत्रेरस्मामित्र्यं न संस्रताः, क्षमव्यमसद्वपरायम्, गृहीव्य-१६ मसद्विप्रदाय मक्तपानिति । संयता व्यते कृत्वे अहीप्यामः, नेदानीं रात्राविति ॥ २८५६ ॥ गृहस्याः प्रश्यन्ति—क्षि कारणन् । संयताः प्रतिवृत्रते—

संसत्ताह न सुट्यह, नणु जोण्हा अवि य दो वि उसिणाई। काले अञ्म रए वा, मणिदीयुद्दित्तए वैति ॥ २८५७ ॥

(अन्यायम्—८००० । सर्वयन्यायम्—२०२२०) रात्री मक्तरानं कीटिकादिमिः संसक्त20 मसंसकं वेति न शुद्धाति, आदिश्र ब्याद् यृथमस्मद्रश्चे मिश्रामानयन्त्रो मार्गे कीटिकादिजन्तूनामाक्रमणं कुरुय तच यृथं वयं च न पद्यामः । तदा च चन्द्र ब्योत्सा वर्षते तनस्ते गृहस्या

हवते—निवयमीदशी च्योत्मा या दिवममिति विद्रोपयिति, अति च 'द्रे अति' कृर-कुसणे

मक्त-पानके वा चण्णे, नास्ति नंसक्तिद्रोप इति । अर्थे 'काक्षः' कृष्णोऽसो पक्षो वर्षते, शृक्षपक्षे

वा अष्ठ च्छलो रत्र श्रम्का वा चन्द्रो भवेत्, ततन्ते गृहस्याः 'विति' चि ह्रवते—अस्माकं

2: मिगरक्रमिति तेन दिवसोऽपि विश्रिप्यते, प्रदीपा वा चर्द्शा वा—'व्योतिः पूर्वकृतं विद्यते तेन

परिस्कृदः प्रकाशो स्वति । एवसुक्तं यदि गृहिन्ति सुञ्जते वा तत इदं नीसंस्थितं प्रायश्चित्तम्

॥ २८५७ ॥ < तेदं व दर्श्यति— >

१ स ग्रुद-वृतोन्मिश्रोऽचणोद्यवेलायां घृर्लातङ्घाय दीवते, एपोऽग्निष्टिकात्राह्मण सन्यते, तं गृही॰ मा॰ ॥

२ त॰ दे॰ मो॰ डे॰ विराज्यत—ध्मः, मात्रकस्य चोन्क्षेपण-निक्षेपणादि न गुन्धतीत्यादि । तदां मा॰ । भः प्रत्यादिन्रेषपित्रहः । तदा हो॰ ॥

३ व्यवा "काल" चि स कृष्णः पक्षी वर्तते, न्योन्सायक्षे मा॰ ॥ ४ मनिता मा॰ कां॰॥ ५ ४ मनिता मा॰ कां॰ ॥

जोण्हा-मणी-पदीवा, उद्दित्त जहस्रगाइँ ठाणाई । चउगुरुगा छग्गुरुगा, छेओ मूलं जहण्णिम्म ॥ २८५८ ॥

ज्योत्काया उद्योते भुझानस्य चत्वारो गुरवः, मेणिपकाशे पहुरवः, प्रदीपपकाशे च्छेटः, उद्दीप्तोद्योते मूलम् । अ अमूनि प्रायश्चित्तानि ज्योत्कादिपदोपलक्षितानि यथाक्रममधोऽधः स्थाप-नीयानि । ▶ एतानि जघन्यानि स्थानानि । किमुक्तं भवति १—प्रसङ्गमन्तरेण जघन्यतोऽप्येतानि ऽ प्रायश्चित्तानि द्रष्टव्यानि ॥२८५८॥ अथ प्रसङ्गतो यत् प्रायश्चित्तं भवति तद् विभणिपुराह—

भोत्तूण य आगमणं, गुरूहिं वसभेहि कुल गणे संघे। आरोवण कायन्वा, विइया य अभिक्खगहणेणं ॥ २८५९॥

रात्री ज्योत्काप्रकाशादिपु अत्तवा गुरूणां समीपे तेपामागमनम् । आगतैश्वालोचनापरिण-तैरन्यथा वा गुरूणां कथितम्। ततो गुरुभिरुक्तम्—दुषु कृतं भवद्भियत्रिशाभक्तमासेवितम्। 10 इत्युक्ते यदि सम्यगावृत्ताः—'मिथ्यादुप्कृतम्, न भ्य एवं करिप्यामः' इति ततश्चतुर्गुरवः । अथ नावृत्ताः किन्तु गुरुवचनातिक्रमं कुर्वन्ति—'को नाम दोपो यदि ज्योत्लाप्रकाशे दिवससद्वाशे भुक्तम् ?' इति ततः पद्मरुकाः । वृपभैरभिहिताः—'आर्याः ! किमेवं गुरूणा वचनमतिकामध ?' यदि (इति) वृपभवचने सम्यगावृत्तास्ततः पङ्ग्रुका एव, अथ वृपभवचनातिक्रमं कुर्वन्ति तत-इछेदः। एवं कुलेन कुलस्थविरैर्वा प्रतिनोदिताना सम्यगावृत्तानां छेद एव, अनावृत्तानां मूलम् । 15 गणेन गणस्यविरैर्वा नोदिता यद्यावृत्तास्ततो मूलमेव, अथ नावृत्तास्ततोऽनवस्याप्यम् । सद्देन सहस्थविरैर्वा नोदिताः 'किमिति गणं गणस्थविरान् वा अतिकामथ १ इत्युक्ते यद्यावर्चन्ते ततोऽ-नवस्थाप्यमेव, अनावर्त्तमानानां पाराश्चिकम् । एपा च 'आरोपणा' प्रायश्चित्तवृद्धिर्गुरु-वृपभादिवच-नातिक्रमनिष्पन्ना प्रागुक्तजघन्यप्रायश्चित्तस्थानेभ्यो दक्षिणतः कर्त्तव्या । द्वितीया तु रात्रिभक्त-स्येव यद् अभीदणग्रहणं—पुनःपुनरासेवा तन्निप्पन्ना वामपार्धतः कर्त्तव्या । तद्यथा—एकं वारं 20 ज्योत्कापकाशे भुज्जतश्चत्वारो गुरवः, द्वितीयं वारं पद्मरवः, तृतीयं वारं छेदः, चतुर्थं वारं मूलम्, पञ्चमं वारमनवस्थाप्यम्, पष्टं वारं भुज्ञानस्य पाराञ्चिकम्, एपा ज्योत्लापकाशे प्राय-श्चित्तवृद्धिरुक्ता । एवं मणिप्रकारोऽपि, नवरं गुरुमिः प्रतिनोदिता यद्यावृत्तास्ताः पद्गरुकम्, अथ गुरुवचनमतिकामन्ति ततश्छेदः; एवं वृपभवचनातिकमे मृलम्, कुलस्यविरातिकमेऽन-वस्थाप्यम्, गणस्थविर-सह्यस्थविरातिकमे पाराञ्चिकम्, अमीक्ष्णसेवायां तु पञ्चिभवीरेः पाराञ्च-25 कम् । एवं प्रदीपेऽपि दक्षिणतो वामतश्चारोपणा, नवरमाचार्यातिकमे मूलम्, वृपभातिकमेऽन-वस्याप्यम्, कुल-गण-सद्यस्यविरातिकमे पाराञ्चिकम्, अमीक्ष्णसेवाया तु चतुर्भिवीरेः पाराञ्चि-कम् । एवमुद्दीप्तप्रकाशेऽपि, नवरमाचार्यातिक्रगेऽनवस्याप्यम्, वृपम-कुरु-गण-सहस्यविराणां चतुर्णामप्यतिक्रमे पाराञ्चिकम्, अमीक्ष्णसेवायां तु त्रिमिवीरैः पाराञ्चिकम्, एपा प्रथमा नौरवसातव्या । द्वितीयादेंयोऽपि वक्ष्यमाणा एवमेव स्थाप्याः ॥ २८५९ ॥ 50

१ प्रान्मप्पातः पाटः भा॰ नाति ॥ २ °ति १ इत्याद्द—"जदम्मि" सि पञ्चम्यर्थे सप्तमी, ततः प्रस° कां॰ ॥ ३ °द्रा तेभ्य एव जघन्यप्रायश्चित्तस्थानेभ्यो वाम॰ कां॰ ॥ ४ °द्रयस्तु पुरतोऽभिघास्यन्ते ॥ २८५९ ॥ अथ शिष्यः पृच्छति—कुलनाण॰ भा॰ ॥

5-

शिष्यः प्राह—कुछ-गण-सङ्घर्णविष्वनमतिकानतां यद् गुरुतरं प्रायश्चित्तमुकं तदत्र किं कारणन् ? अत्रोच्यते—एते त्रयोऽपि स्वविरा आचार्यादिनि गर्रायांसो नन्तव्याः, प्रनागपुरन-तमा सापितत्वात् । कथं पुनरेते प्रनागपुरमाः ? टच्यते—

तिहिं थेरेहिं ऋयं नं, सङ्घापे तं तिगं न वोलेइ । हेडिङ्का वि उवरिमे, उवरिमथेरा उ मझ्यव्वा ॥ २८६० ॥

'त्रिक्षः' कुल-गण-सङ्घसितः य्द् कामब्बबहारादिविषयं क्यं कृतं तव् क्रयं सस्गने'त्रिकं' कुल-गण-सङ्घलक्षणं 'न वोल्यति' न व्यतिक मतीस्यर्थः । किन्नुकं मनित ?—कुलसविरेण कृतं कुलं नातिकानित, गणस्विरेण कृतं गणो नातिकानित, सङ्घसिरेण कृतं सङ्घो
नातिकानितं । 'हिन्निल्ला वि व्यत्ति' 'ति 'अय्यतनाः' कुलस्यविरान्तेष्यपुपरितनैः—गणस10 विरेः सङ्घसित्ये कृतं नातिकानित, तथा गणस्विराः सङ्घसिरेष्योऽञ्चनान्त्रतो य्द्
सङ्घित्रे कृतं तद् गणस्यिरा नगितकानित । व्यरितनान्त स्विराः 'मक्क्याः' विञ्चनयित्र्याः । क्यम् । इति चेद् वच्यते—कुलस्यविरेररक्षिष्टेर्यत् कृतं तद् गणस्यविराः
सङ्घित्रिस्य नान्य्या कृतिनित, स्यग्ननोक्तिविनन्तरेण रक्षिष्टेः कृतं तत्तव्य मनाग्यन्ति ।
एवं गणस्यविरापि यदरक्षिष्टेः कृतं तत् सङ्घसिरा नातिकानित, स्य रक्षित्रेः कृतं तत्ते।
। एवं गणस्यविरापि यदरक्षित्रेः कृतं तत् सङ्घसिरा नातिकानित, स्य रक्षित्रेः कृतं तत्ते।

· अय द्वितीयनृतीयच्चर्यनौदर्शनार्थनाह—

चंडुडोवें कों दोसी, अप्यपाणे य फातुए दन्ते । मिक्त वसमाऽऽयरिए, गच्छिमा य अह संवाडा ॥ २८६१ ॥

प्योत्हाम्कारो सुक्का समागत्य सुरुपानालोक्चर्यन्त ततो मिक्षानिः प्रतिनोदिता यदि श्रासन्यावर्तनते तद्वश्चरुपुरुक्ते । अय बुवते—'क्क्रोणेते को नम दोणः ! को वा अरूपामेऽक्याहिनादा प्राप्तके द्रव्ये ! एवं मगतां षड्कवदः । ततो द्वानेतिर्माणंवन्ते—'कार्यः ! मा
मिक्ष्यामित्रक्तं कुर्तां वणविन्ते तदः पड्कद्वकः एव, अय द्वामानिक्रामन्ति ततः पड्रकाः । तत व्यक्तांर्यमिद्देता वण्णद्वतः प्रदुरुकः एव, अनाद्वतः छेदः । "गच्छन्ति यः वि क्वन्यानःसङ्घा इह गच्छ्यक्रदेनोच्यन्ते, ततः कुकेन मन्ति यदि सम्प्रपुरतासानक्षेत्र शः एव, अय नोगतन्ते ततो सूक्त् । गनेनाप्यमिद्दिता व्याद्वतःस्त्रेत्र स्थ नोगतन्ते ततः पराविक्रम् । ततः सङ्घानिद्दिता यद्युरुक्तते ततोऽनवस्यायम्, अय नोगतन्ते ततः पराविक्रम् । एवा प्रव्यक्षित्रद्विदिन्दतः कर्तव्य । अर्माक्तत्तेवायान्—द्वितांचं वारं क्योत्तःप्रशास्त्रम् । एवा प्रव्यक्षित्रद्विदिन्दतः कर्तव्य । अर्माक्तत्तेवायान्—द्वितांचं वारं क्योत्तःप्रशास्त्रम् पड्कुकम्, नृतीयं वारं पङ्क्कम्, चुर्यं छेदः, प्रवनं नृत्वन्, ण्यन्तवः
स्वाप्यम्, सतनं वारं पराञ्चिकम्, एना-प्राव्यितद्विविन्तंदः स्वप्रवित्वया । एवं निज-प्रदा-

१ 'ति । अथवा "विचियं" ति पाठः, वाबन्मात्रमेव कार्य कुटाइयो व्यवहरन्ति याव-न्मात्रं तुटस्विरादिमिः कृतं नोपरिष्टाद् व्यवहारं संबर्दयन्ति । 'हिट्टि' मार्थ ॥

२ °व, रात्रुमकप्रतिसेवनानिष्यव्रसिति सावः। अय इं० n

२ ^दबृहिस्तयेव प्रागुक्तवन्यप्रायश्चित्तस्यानेम्यो दक्षि^{*} टां॰ ॥

पोद्दीसपकारोप्चिप भिक्षु-वृपभाचितिकमनिष्पन्ना दक्षिणतोऽभीक्ष्णसेवानिष्पन्ना तु वामतो यथा-क्रमं प्रायश्चित्तवृद्धिः स्थापनीया । एपा द्वितीया नौरिभधीयते । तृतीयाऽपि नौरेवमेव कर्त्तव्या, नवरं तस्यां ज्योत्स्वादिप्रकादोषु भुत्तवा न कस्याप्याचार्यादेः कथयन्ति किन्तु भिक्षुप्रभृतयस्तेषां परस्परं संलापं श्रुत्वाऽन्यस्य वा श्रावकादेर्मुखादाकण्यं तान् प्रतिनोदयन्ति, शेपं सर्वमपि द्वितीयनीवद् द्रष्टव्यम् । चतुर्थी पुनरियम्—भिक्ष्णामतिकमे चतुर्गुरु, वृषभाणामति- 5 क्रमे पड्लघु, आचार्याणामतिक्रमे पङ्गरु, गच्छस्य साधुसमृह्रूपस्यातिक्रमे छेदः, कुरुस्या-तिकमे मूलम्, गणस्यातिकमेऽनवस्थाप्यम्, सङ्घर्यातिकमे पाराञ्चिकम्, एपा दक्षिणतः प्रायश्चित्तवृद्धिः । द्वितीया त्वभीक्ष्णसेवानिष्पत्रा चतुर्गुरुकाटारभ्य सप्तभिर्वारैः पाराञ्चिकं यावद् वामतः स्थापनीया, एवं ज्योत्स्रायामुक्तम् । मणि-प्रदीपोद्दीप्तेप्वपि यथाकम पड्छपुक-पहुरुक-च्छेदानादौ कृत्वा पाराश्चिकान्ता दक्षिणतो वामतश्चैवमेव पायश्चित्तवृद्धिईष्टन्या, एपा चतुर्थी 10 नौरुच्यते । "अट्ट संघाड" ति एकैकस्यां च नावि द्वे द्वे प्रायश्चित्तरुते भवतः, तद्यथा—दक्षि-णपार्श्ववर्तिनी वामपार्श्ववर्तिनी च; ततश्चतसृपु नौपु सर्वसह्ययाऽधे रुता रुभ्यन्ते, ताश्चाधी सङ्घाटका मन्तन्याः । यत आह चूर्णिकृत्—

"अद्व संघाड" ति जो जोण्हा-मणि-पदीवुद्दितेषु मूलपच्छित्तपत्थारो तस्स इतो वि चत्तारि पच्छित्तरुयाओ इतो वि चत्तारि, सब्वेते अह सधाडगा । संघाड ति वा रूप ति वा पगारो 15 त्ति वा एगद्रं ति । ॥ २८६१ ॥

अथ ज्योत्कादिविवक्षारिहेतं सामान्यतः प्रायश्चित्तमाह-

सनायग आगमणे, संखिड राओ अ भोयणे मूलं। विइए अणवहुप्पो, तड्यम्मि य होइ पारंची ॥ २८६२ ॥

सज्ञातककुले आगमनं कृत्वा सहुड्या वा गत्वा रात्रो यदि मुद्रे तदा मूलव्रतविराधनानि-20 पनं मूलं नाम प्रायश्चितम्, द्वितीय वारं रात्री भुझानत्यानवस्थाप्यम्, तृतीयं वारं पाराञ्च-कम् । अथवा भिक्षो रात्री भुज्ञानस्य मूलम्, द्वितीयः—उपाध्यायस्तस्यानवस्थाप्यम्, तृतीर्यः— आचार्यस्तस्य रात्री भुज्ञानस्य पाराञ्चिकम् ॥ २८६२ ॥

अथ यद्क्तम् 'अल्पपाणे पाशुकद्रव्ये को दोपः !' इति तदेतत् परिहरन्नाह-जइ वि य फासुगदन्त्रं, कुंधू-पणगाइ तह वि दुप्पस्सा । पचक्लनाणिणो वि हु, राईभत्तं परिहरंति ॥ २८६३ ॥

यद्यपि तत् प्राञ्चकद्रव्यमवगाहिगादि तथापि 'कुन्यु-पनकादयः' आगन्तुक-तदुद्भवा जन्तवो रात्रो दुर्दर्शा भवन्ति । किञ्च येऽपि तावत् 'प्रत्यक्षज्ञानिनः' केवलिपभृनयमे ययपि ज्ञाना-रोफेन तदुद्भवा-SSगन्तुकसत्त्वविरहितं भक्तपानं पश्यन्ति तथापि 'हु' निश्चित रात्रिभक्तं परि-

हरन्ति, मूलगुणविराधना मा भूदिति कृत्वा ॥ २८६३ ॥

30

25

६ °त प्रकारान्तरन, प्राय° मां ॥

२ वारं रात्रां भुआनः पाराञ्चिको भवति । अथवा मां ॥ ३ °यं पदमाचार्यत्वलक्षणं तत्र पर्तमानो रात्री भुआनः पाराञ्चिको भवति ॥ हां ॥

25

अथ यदुक्तम् 'चन्द्र-प्रदीषादिप्रकाशे को दोषः ?' इति तत्र परिहारमाह— जह वि य पिपीलियाई, दीसंनि पैईव-जोइउजोए । तह वि खलु अणाइमं, मूलवयविराहणा जेणं ॥ २८६४ ॥

यद्यपि प्रदीप-ज्योतिषोः उपन्ज्ञणत्यात् चन्द्रस्य चोद्योते पिपीछिकादयो जन्तवो दृश्यन्ते क्रियापि 'व्रत्यु' तिश्चयेन अनार्चाणिमदं रात्रिमक्तम् । कुनः १ इत्याह—'मूँ छत्रतानां' प्राणाति- पातिवरमणादीनां महात्रतानां प्रागुक्तनीत्या विराधना येन रात्रिमक्ते भवति अतो रात्रो न मोक्तन्यम् ॥ २८६४ ॥ अथ ''गच्छिम् य'' ति पदं व्याच्छे—

गच्छगहणेण गच्छो, भणाइ अहवा कुलाइओ गच्छो । गच्छग्गहणे व कए, गहणं पुण गच्छवासीणं ॥ २८६५ ॥

10 गच्छग्रहणेन 'गच्छ.' साधुसम्हरूपो रात्रिमक्तप्रतिसेवकान् 'मणति' नोदयतीति मन्तन्यम्, यथा चतुर्थ्या नावि चतुर्थ पटे । अथवा गच्छग्रहणेन 'कुलादिकः' कुल-गण-सङ्ख्रूपो गच्छो नोदयतीति मन्तन्यम्, यथा सर्वाखिप नोषु । यद्वा गच्छप्रहणे कृते गच्छवासिनां प्रहणं विज्ञेयम्, तेपामेवेदं प्रायश्चित्तनिकुरुम्वं न जिनकिष्णकादीनाम् ॥ २८६५ ॥ इह पूर्व माण्य-कारेण प्रथमा नाः परिस्पष्टमुपदर्थिता न द्विनीयादयः, अतो यथाकमं तासां व्याख्यानमाह—

विइयादेसे भिक्ख, भणंति दुहु में कयं ति वोलंति । छछहु वसमे छग्गुरु, छेदो मूलाइ जा चरिमं ॥ २८६६ ॥

'द्वितीयादेशो नाम' द्वितीयने।सस्थितः प्रायिधितप्रकारः, तत्र तथैव रात्रो मुक्तवा गुरूणां निवेदिते भिक्षवो मणन्ति—हुपु ''मे'' मबद्धिः क्वतमिति । तच्च वचनं यदि ते 'वोलयन्ति' न प्रतिपद्यन्ते तदा पद्ल्युकम्, वृषमवचनातिकमे पद्भुरुकम्, आचार्याणामतिकमे च्छेदः, 20 कुलस्यविरस्याप्रमाणीकरणं मृलम्, गणस्यविरस्याप्रमाणनेऽनवस्याप्यम्, सङ्घस्यविरस्यातिक्रमणे पाराध्विकम् । एवं मणिप्रकाशादिष्यिप मन्तन्यम्, नवरं मणिप्रकाशे पङ्गुरुकात् प्रदीपप्रकाशे छेत्राद् उदीसे मूलादारव्यव्यम् । अमीक्ष्णसेवायां तु सप्तमिर्वारेः पाराध्विकम् । भावना तु प्रागेव र्छतेति ॥ २८६६ ॥ तृतीया भाव्यते—

तद्यादंसे भोत्तृण आगया नेव कस्सइ कहिंति । तेसऽत्रतो व सोचा, खिसंतऽह भिक्खुणो ते उ ॥ २८६७ ॥

'तृतीयादेशे' तृतीयायां नानि तथेव मुक्तवा समागताः सन्तो नैन कस्यापि कथयन्ति । ननरं मिक्षनस्तेषां परस्परं संख्यां श्रुत्वा, तिर्वाऽन्यस्य कस्यापि श्रावकादेः कथितं ततो वा

१ पईवमारउद्धोप भा॰ । एतरनुमारेणैव भा॰ टीका । द्रयता टिव्यणी ३ ॥

२ मृत्रगुणविराहणा भा॰। एनव्नुसारेणैव भा॰ टीका। दृश्यता टिप्पणी ४ ॥

३ प्रदीपाद्युद्योते पिपीलि^२ मा॰ ॥ ४ 'मूलगुणानां' प्राणा^० सा॰ ॥

५°म्, पुनःशन्दो गच्छवासिनामेव रात्रिमकप्रतिसेवनासम्मव इति विशेषणार्थः, ततश्च तेपामवे° का ॥

६ रुतेति न भूयो माव्यते ॥ २८६६ ॥ तद्दया भा॰ कां॰ ॥

श्रुत्वा भिक्षवस्तान् 'अथ' श्रवणानन्तरं 'लिंसंति' खरण्टयन्तीत्यर्थः ॥ २८६७ ॥ खरण्टिताश्च यद्यतिकामन्ति तत इयं पायश्चित्तवृद्धिः—

भिक्खुणों अतिकमंते, छछहुगा वसमें होति छग्गुरुगा । गुरु-कुल-गण-संघाइकमे य छेदाइ जा चरिमं॥ २८६८॥

भिक्षूनितकामित पद्लघुकाः, वृपभाणामितकमे पद्गुरुकाः, गुरूणामितकमे छेदः कुल- इ स्यातिकमे मूलम् , गणस्यातिकमेऽनवस्थाप्यम् , सहस्यातिकमे पाराश्चिकम् ॥ २८६८ ॥ अथ चतुर्था नावमुपदर्शयति—

> भिक्ख् वसमाऽऽयरिए, वयणं गच्छस्स कुल गणे संघे। गुरुगादऽइक्षमंते, जा सपद चउत्थ आदेसो॥ २८६९॥

्य ज्योत्साप्रकाशादिषु भुतवा गुरूणामालोचिते भिक्षुभिनोदिता यद्यावृत्तास्ततश्चतुर्गुरुकाः । 10 अथ ► भिक्षूणां वचनमतिक्रामेंनित ततोऽपि चतुर्गुरु, वृपभाणां वचनमतिक्रामतः पड्लघुकाः, आचार्यानितकामतः पद्वरुकाः, गच्छममन्यमानस्य च्छेदः, कुलमप्रमाणीकुर्वतो मूलम्, गणम-प्रमाणयतोऽनवस्थाप्यम्, सद्घं व्यतिक्रामतः 'स्वपदं' पाराधिकम् । अभीक्ष्णसेवायामिप प्रथमे द्वितीये च वारे चतुर्गुरुकम्, तृतीयादिष्यप्टमान्तेषु वारेषु पड्लघुकादि पाराधिकान्तम् । एपः 'चतुर्थ आदेशः' चतुर्था नौः इत्यर्थः ॥ २८६९ ॥

अथ पूर्वोक्तानेव प्रायश्चित्तवृद्धिहेतून्ँ सन्दर्शयति—

पेच्छह उ अणायारं, रिंच भुतुं न कस्मइ कहंति। एवं एकेकनिवेयणेण गुह्री उ पच्छित्ते॥ २८७०॥

'पश्यताममीपामनाचारं यदेवं रात्रो भुत्तवा न कस्यापि कथयन्ति' एवं भिश्लभिः खरण्टिना यदि नावर्तन्ते ततो भिक्षवो वृपभाणा कथयन्ति, वृपभा गुरूणाम्, गुरवोऽपि कुर्रुसेत्यादि । २० एवमेकेकस्य-वृपभादेनिवेदनेन प्रायध्यितस्य वृद्धिभैत्रति ॥ २८७० ॥

को दोसो को टोसो, ति भणंते लग्गई विइयटाणं। अहवा अभिक्सगहणे, अहवा वन्धुस्स अइयारो॥ २८७१॥

१ त॰ है॰ गो॰ है॰ निनाऽन्यन—'ध्रूणामतिक्रमे पह् गा॰ । 'ध्रून् शिक्षां प्रयच्छ तोऽतिक्रमे पह् गा॰ ॥

२ भग भा॰ पुरुषे—अथ यथा भिक्षवस्तान् गरण्डयन्ति तथा प्रतिपादयिन रगाभि पेच्छद्व उ अणायारं० इति २८७० गाथा बाल्याताऽन्ति । तदनन्तर अय चतुर्थी नाचमुपदरायित इतातीर्थ भिषरम् चसभाऽऽयरिष्० इति २८६९ गाथा बार्याताऽन्ति ॥

३ 🗸 🗠 एतिबहान्तर्गत पाठ मा० नाना ।

४ भतश्चत्वारो गुग्काः, वृषभानतिकामतः पर्' भः ॥ ५°वार्याणां वचनमनि णः॥

६ °मपि चतुर्गुरुकादारम्थ्रमपृभिवारं सपदम्। एपः भा॰॥ ७ 'न् संगृहा सन्द्रभा॰॥

८ °लस्य, कुलमपि गणस्य, गणोऽपि सहास्य निवेदयति । पवमे भा॰ ॥

९ अह्यारा भा॰ । एतदनुसारेजैन भा॰ ई.ण । रायना पर्न ८१४ टिप्पणी ३ ॥

चैन्द्रोचोतादिषु को ढाँपः १ को ढाँपः १ इत्युर्तरप्रदानन हितीयं प्रायिश्वस्थानं 'ल्गिति' प्राप्तोति । अथया 'अभीक्षणग्रहणे' पुनःपुनरामेवायाम् , अथवा 'वस्तुनः' आचार्योपाध्यायादि- रूपस्य यः 'अतिचारः' रात्रिभक्तलक्षणस्त्रसात् प्रायिश्वत्तवृद्धिभवति । यत एवं प्रायिश्वत्तवालम् अतो न कत्यते चतुर्विधमपि रात्रिभक्तम् । कारणसद्धाव पुनः कल्पते ॥ २८७१ ॥

तान्येच कारणानि दर्शयनि—

विद्यपयं गेलने, पहमे विद्य य अणहियासम्मि । फिट्टर् चंद्गवेज्झं, समाहिमरणं व अद्वाणे ॥ २८७२ ॥

'द्वितीयपदं नाम' 'दिवा गृहीतं दिवा भुक्तम्' इत्यादिचतुर्मर्झाप्रतिसेवनात्मकं तदागाढे ग्लानत्वे आसेवितव्यम् । प्रथमद्वितीयपरीपहातुरतायां चा, ''अणिहयासिमि'' ति असिहप्णु-१०तायां चा, चन्द्रकवेधं नामानशनं तदसमाधिमुपगतस्य 'स्फिटति' न निर्वहर्तानि भावः, अत-स्तस्य यथा समाथिमरणं भवति नथा चतुर्भक्तयाऽपि चतितव्यम् । अध्वनि वा चतुर्प्वपि भक्तेषु प्रहणं कर्चव्यमिति द्वारगाथासमासार्थः ॥ २८७२ ॥

अथेनामेव विवरीपुर्छानत्वद्वारं व्याच्यानयति-

पहित्णमलन्ममाणे, विसोहि समहिन्छउं पहम भंगो । दुछम दिवसंते वा, अहि-मूलरुयाइमुं विह्ओ ॥ २८७३ ॥ एमेव तह्यमंगो, आह् तमो अंतए पगासो उ । दुहुओ वि अप्पगासो, एमेव य अंतिमो भंगो ॥ २८७४ ॥

यदा ग्लानस प्रतिदिनं विशुद्धं भक्तपानं न ल्यांत तदा पञ्चकपरिहाण्या ये विद्योघिको-श्लादयो दोपास्तेषु प्रतिदिवसं प्रहीतन्त्रम्, यावचनुर्लशुकाः प्रायश्चित्तम्; यदा तदि समित-20कान्तस्तदा प्रथममक्षां भवति , गत्रे। परिवास्य दिवा दातन्त्र्यमित्यर्थः । तथा 'दुर्लमं' ग्लानपायो-ग्यमशनादि द्रन्त्रं तच गृहीत्वा यावत् प्रतिश्रयमागच्छति तावदस्तपुपगतः सविता अतो दिवा गृहीत्वा रात्रे। ग्लानस्य दातन्त्र्यम्; अथवा कश्चिद् दिवमान्ते 'अहिना' सपेण खाचेत, शूल्रुग् चा कस्त्रापि तदानीसुद्धावत, आदिम्रहणाद् विष-विम्चिकादिप्तागादेषु समुल्पकेषु सपे-दक्षाशुपन्नमनस्त्रव्ययमगदाद्यीपवमानीय यावद् दीयते तावदस्तं गतो रिवः अतो रात्राविष 25दातन्त्रम्, एष हितीयो भक्षः । एवमेव तृतीयो भक्षो वक्तन्त्र्यः, यानि प्रथम-हितीयमक्षयोः

१ अग्नि चन्द्रो° त॰ दे॰ ॥

२ 'चरोत्तरं भणन् हिती' का ॥

३ °नः' मिश्रु-घृषमादेः 'अतिचाराद्' अतिक्रमणाद् उत्तरोत्तरप्रायश्चित्तवृद्धिर्भवति । यत पताचत् प्रायश्चित्तजालमुपदाकते अतो न मा॰ ॥

थ ° शोधिकादयो दो "मा॰ का॰ विना। "विसोहि ति विसोहिकोदी" इति चुर्णो ॥

५ °ति, दिघा गृहीत्या दिचा भुद्धे इत्यर्थः मा॰ । "जता पितिवन ण उन्मित तदा 'निसोहि' ति विसोहिकोरी पणगातो आरब्म जाव चडलहुगा जत्य पिन्छत्तं तं पितिवन गेण्हितः, जाचे चडलहुगं बोर्डाणो ताथ परममंगर्ण दिया चेतुं दिया शुंजित, परिवानितमिल्यं ।" इति चूर्णो विद्यापचूर्णो च ॥

६ आदिशस्त्राद् विष² मा॰ ॥

b

10

कारणानि तानि तृतीयभद्गेऽपि भवन्तीति भावः । अत्र च भद्गे औदी 'तमः' अन्यकारं रात्रिपदमित्यर्थः, अन्ते च 'प्रकाशः' दिवापदम् । 'अन्तिमः' चतुर्थो भङ्गः सोऽपि 'एवमेव' अहिद्रष्टादावागाढकारणे प्रतिसेवितव्यः, नवरमसौ द्विधाऽप्यप्रकाशो मन्तव्य इति ॥२८७३॥ ॥ २८७४ ॥ गतं ग्लानद्वारम् । अथ प्रथम-द्वितीया-ऽसहिप्णुपदानि व्याचष्टे-

> पढमविइयाउरस्सा, असहुस्स हवेज अहव जुअलस्स । कालिम दुरहियासे, भंगचउकेण गहणं तु ॥ २८७५ ॥

प्रथमः-क्षुधापरीपहो द्वितीयः-पिपासापरीपहस्ताभ्यामातुरस्य, 'असहिष्णोर्चा' स्थूलभद्र-खामिलघुम्रातृश्रीयककल्पस्य, युगलं-वाल-वृद्धरूपं तस्य वा असहिष्णोः, काले वा 'दुरिध-सहे' अवमोदर्यलक्षणे भद्गचतुप्केणापि ग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ २८७५ ॥

एमेव उत्तिमहे, चंद्गवेज्झसरिसे भवे भंगा। उभयपगासो पढमो, आदी अंते य सन्त्रतमो ॥ २८७६ ॥

चन्द्रको नाम-चकाष्टकोपरिवर्त्तिन्याः पुत्तिकाया वामाक्षिगोलकः तस्य वेधः-ताडनं तत्स-हरो-तद्वद् दुराराधे 'उत्तमार्थे' अनशने प्रतिपन्ने सति यदि कदाचिदसमाधिरुत्पद्यते तदा 'मा नमस्कारं नाराधयिष्यति, असमाधिमृत्युना वा मा म्रियताम्' इति कृत्वा चत्वारोऽपि भङ्गाः प्रयोक्तव्या भवेयुः । तत्र च प्रथमो भङ्ग उभयपर्कागः, द्वितीयो भङ्ग आदौ प्रकाशवान् अन्ते 15 तमलान्, तृतीयो अन्ते प्रकाशवान् आदौ तमलान्, चतुर्थो भन्नः 'सर्वतमः' उभयथाऽपि तमोयुक्तः, रात्रो गृहीत्वा रात्रावेव भोगभावादिति ॥ २८७६ ॥

अथाध्वद्वारं सविस्तरं व्याचिख्यासुराह-

अद्धाणिमम व होजा, भंगा चउरो उ तं न कप्पह उ। दुनिहा उ होंति उ दरा, पोट्टे तह धन्नभाणे य ॥ २८७७ ॥

अध्विन वा वर्त्तमानाना चत्वारोऽपि भद्गा भवेयुः, पर 'तंद्' अध्वगमनं कर्तुमूर्द्धदरे साधृनां न करुपते । ते च दरा द्विविधाः, तद्यथा — पोट्ट रा धान्यभाजनदराश्च । तत्र पोट्टम्-उदरं तद्रूपा दराः पोद्यदराः, धान्यभाजनानि-कटपल्यादयस्तान्येव दरा धान्यभाजनदराः। ते दरा ऊर्द्ध यत्र पूर्यन्ते तद्रुद्धंदरमुच्यते ॥ २८७७ ॥

र्ज र्जमुमेवार्थ सिवदोषं भणन् प्रायिधतं च दर्शयत्राह—⊳

25

उद्दरे सुभिक्ले, अद्धाणपवज्जणं तु दृष्पेण । लहुगा पुण सुद्धपए, जं वा आवजई जत्य ॥ २८७८ ॥

ऊर्द्धदरम्-अनन्तरोक्तं सुभिक्षं-सुरुभभक्षम् । अत्र चत्वारो भङ्गाः---ऊर्द्धवरमपि सुभि-क्षमपि १ ऊर्च्चरमसुभिक्षं २ सुभिक्षं नोर्च्चर ३ नोर्च्चर्रं न सुभिक्षम् ४ । अत्र हितीय-

१ 'आदें।' आदे प्रदणारयपदे 'तमः' गं•॥ २ 'अन्ते च' मुक्तलक्षणे पदे 'प्र° गं•॥ ३ 'हिधाऽप्यप्रकाराः' प्रदण भोगयोरमयोरपि रात्रिपद्युक्तो मन्त° गं•॥

४ °काशो भवति, प्रहण-भोगपदयो छभयोरपि दिवापटयुक्त इति भावः, पर्व हितीं वां ।। ५ 'तम्' अध्वानं गन्तुमूर्यूदरे न क॰ भा॰ ॥ ६ प्र १ एतिकहगत्तनदर्गं वां । एव वर्षवे ॥

10

20

चतुर्धमङ्गयोरध्वगमनं कर्त्तव्यम् । अथ पथमतृतीयमङ्गयोरध्वपतिपत्तिं दर्पतः करोति तदा शुद्धपदेऽपि चलारो रुषुकाः । यद् वा यत्र संयमत्रिगधनादिकमापद्यते तन्निप्पन्नं तत्र प्राय-श्चित्तं द्रष्टस्यम् ॥ २८७८ ॥ प्रथमतृतीयमङ्गयोरप्येतः कारणर्गन्तुं करूगत इति दर्शयति —

नाणह दंसणहा, चरितहा एवमाइ गंतव्वं ।

उचगरणपुट्यपडिलेहिएण सत्थेण गंतव्यं ॥ २८७९ ॥

ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थमेवमादिमिः कारणैर्गन्तव्यम् । गच्छिङ्गश्च तिलकादिकसुपकरणं श्रहीतव्यम् । पूर्वप्रन्युपेक्षितेन च सार्थेन सह गन्तव्यमिति निर्म्यक्तिगाथासमासार्थः ॥२८७९॥ अधैनामेव व्याख्यानयति—

सगुरु कुल सदेसे वा, नाणे गहिए सई य सामत्थे। वचह उ अन्नदेसे, दंसणजुत्ताहअन्थो वा॥ २८८०॥

ज्ञानम्-आचारादिश्चतं तद् यावन् सगुरूणां समीपं न्त्रनोऽर्थतश्च विद्यते तावित सम्पृणेंऽपि गृहीते, < यद्यपरस्यापि श्चतस्य प्रहणं सामर्थ्यमस्ति > तनः न्यदेशे यदारमीयं कुछं तत्र,
तद्भाव परकुछे वा गत्वा शेपश्चतप्रहणं कर्तव्यम् । अथ नास्ति सदेशे तथाविषः कोऽपि वहुश्चत आचार्यस्तोऽन्यदेशं गच्छति । तत्रापि ये आमन्ननग एकवाचनाकाश्चाचार्यासेपां समी15 पेऽविश्वत्यमाणं श्चतं गृहाति । यदा च परिश्णेमपि विविश्वतयुगसम्मित्र श्चतं गृहीत तदा
यद्यासनः प्रतिमादिकं सामर्थ्यमस्ति ततः "दंसणज्जाह्यस्यो व" ति दर्शनविश्चिद्वकारणीया
गोविन्द्निर्धिक्तिः आदिश्वव्यात् सम्म(न्म)ति-तत्त्वार्थप्रमृतीनि च शास्त्राणि तदर्थः—तस्योवनः प्रमाणशास्त्रकुश्चानामाचार्याणां समीपे गच्छेत् ॥२८८०॥ अथ चारित्रार्थामिति द्वारमाह—

पडिकुद्ध देस कारण गया उ तदुवरिम निंति चरणद्वा । असिवाई व मविस्तद्द, भृए व वयंति परदेसं ॥ २८८१ ॥

सिन्धुदेशपमृतिको योऽसंयमविषयः सं मगवना 'प्रतिकृष्टः' न तत्र विहर्तव्यम् । परं तं प्रतिषिद्धदेशमधिवादिमिः कारणेर्गताः ततो यदा तेषां कारणानाम् 'टपरमः' परिसमाप्तिमैवति तदा चारित्रार्थं ततोऽसंयमविषयाद् निर्गच्छिन्ति, निर्गत्य च संयमविषयं गच्छिन्ति । यदा तत्र क्षेत्रे वसतां निमित्तवछेन ज्ञातम्, यथा—अधिवादिकमत्र मविष्यति, अथवा 'मृतम्' टल- 25 न्नमन्नाधिवादि, अतः परदेशं व्रजन्ति । एवमादिमिः कारणेरच्वानं गन्तव्यतया निश्चित्य गच्छो- पप्रहक्तिमिद्युपकरणं गृहन्ति ॥ २८८१ ॥ ४ कि पुनन्तत् १ इति अत आह—>

चम्माइलोहगहणं, नंदीमाण य धम्मकरए य । परउत्थियटवकरणे, गुलियाओ खोलमाईणि ॥ २८८२ ॥ चर्मछन्देन चर्ममयं तिलकाद्युपकरणं गृह्यते, आदिशब्दात् सिक्कादिपरिग्रहः । स्रोहग्रह-

१ एतरत्रे त॰ डे॰ मो॰ डे॰ प्रतिष्ठ अन्याग्रम्-४५०० इति वर्तते ॥

२ ॰४ ▷ एतन्मकानः पाटः मा॰ तः॰ दे॰ नास्ति ॥

३ < 🗗 एतन्मध्यगतमवतरणं झं॰ एव वर्तते ॥

क्षे अल्लन्दरेषु इनिन् सम्मकरए इति इव्यते । एवमप्रेऽपि बोदव्यम् ॥

20

णेन पिप्पलकादिलोहमयोपकरणानां च ब्रहणमध्वानं गच्छता कर्चन्यम् । नन्दीमाजनं धैर्मकर-कश्च तथा 'परतीर्थिकोपकरण' वस्यमाणरूप तथा 'गुलिका नाम' तुवरवृक्षचूर्णगुटिकाः खोलाः-गोरसभावितानि पोतानि । एवमादीन्युपकरणानि ब्रहीतब्यानीति द्वारगाथासमासार्थः ॥२८८२॥

अथास्या एवाद्यपदं व्याचिख्यासुः प्रतिद्वारगाथामाह-

तलिय पुडग वज्झे या, कोसग कत्ती य सिकए काए। पिप्पलग सह आरिय, नक्खचणि सत्थकोसे य॥ २८८३॥

तिलकाः—उपानहः, पुटकाः—खल्लकानि, वर्धः–प्रतीतः, कोशकः–नखभन्नरक्षार्थं यत्राङ्गुल्यः प्रक्षिप्यन्ते, कृत्तिः-चर्म, सिककं-प्रतीतम्, कायो नाम-कापोतिका, पिप्पलकः सूची आरिका च मतीताः, नलार्चनी-नलहरणिका, 'शस्त्रकोगः' शिरावेधादिशरासमुदाय इति प्रतिद्वारगा-थासह्वेपार्थः ॥ २८८३ ॥ अथैनामेव गाथां प्रतिपदं विवृणोति— 10

> तलियाउ रत्तिगमणे, कंडुप्पहतेण सावए असह । पुडगा विविच सीए, वन्झो पुण छिन्नसंघट्टा ॥ २८८४ ॥

तिलकाः-क्रमणिकास्ताश्च रात्रो गमने कण्टकरक्षणार्थ पादेषु वध्यन्ते । सार्धवशाद्वा पन्धानं मुत्तवोरंपथेन गच्छतां स्तेन-धापरभयेन वा स्तरितं गम्यमाने दिवाऽपि वण्यन्ते । 'असिहप्णुः' सुकुमारपादः स कण्टकसंरक्षणार्थे कमणिकाः पादयोर्वभाति । ताश्च प्रथममेकतलिकाः, तदपासी 15 यावचतुरतिका अपि गृह्यन्ते । 'पुटकानि' खल्लकानि तानि शीतेन पादयोः 'विवर्षिकामु' विपादिकासु रफटन्तीपु वध्यन्ते । 'वर्धः' पुनस्तलिकाटीना छिन्नाना-मुटितानां सन्धानं-सहु-हन तदर्थ गृह्यते ॥ २८८४ ॥

> कोसग नहरक्खड्ढा, हिमा-ऽहि-कंटाइस उ खपुसादी । कत्ती वि विकरणहा, विवित्त पुढवाइरक्खहा ॥ २८८५ ॥

"कोसग" ति अज्ञुलीकोशको नलभजरक्षार्थ गृहाते, तत्र पादयोरज्ञुल्योऽज्ञुष्ठकश्च प्रक्षि-प्यन्ते । तथा हिगं-शितम् अहि-कण्टको-प्रतीतो तदादिपत्यपायरक्षणार्थे खपुमा आदिशब्दाद-ईनिद्यका-निद्यकादयश्च गृरान्ते । 'कृतिः' चर्म तत् प्रलम्मदिविकरणार्थ गृह्यते, मा पूर्या रोलीभावमनुभ्य मलिनानि भृवितिति कृत्या । तथा "विविच" ति ते साधवः कदापि स्त्रेनैः 'विविक्ताः' मुपिता भदेयुस्ततो वस्त्राभावे कृति प्रावृण्यन्ति । यत्र वा प्रथिवीकायो भवति तत्र २५ कृति मसीर्य समुद्शिन्त, एवं पृथिवीकायरक्षा । आदिशन्द्रात् मतिलोमे वनद्वे तृणरहित-प्रदेशाभावे कृति प्रसीर्य तिष्ठन्तीति कृत्वा तेज कायरें धाऽपि कृता स्यात् ॥ २८८५ ॥

गतं चर्मद्वारम् । अथादिमहणलब्दे सिकक्र-कापीतिके ब्याल्यानयति---तहिं सिफएहिं हिंडति, जत्य विवित्ता व पिछ्रगमणं वा ।

६ प्रलम्भरेषु एनित् चर्मकरक ही वर्तते । एवनप्रेडपे एउन्पन्॥

२ °ति गाधाहयसमा विष्ये में विष्य

३ °सार्थः । प्तानि चर्ममयादीन्युपकरणानि प्रहीतव्यानि ॥ २८८२ ॥ अधास्या कां • ॥ ४ °रक्षणार्थमपि एसिर्युदाते ॥ २८८५ ॥ वां • ॥

चर्यया त्रजिकादिपु नयन्ति । तथा प्राप्तकमप्राप्तकं वा 'द्रवं' पानकं 'करकेण' धर्मकरकेण गाल्यन्ति ॥ २८९० ॥ परतीर्थिकोपकरणमाह—

परउत्थियउवगरणं, खेत्ते काले य जं तु अविरुद्धं । तं रयणि-पलंबद्घा, पडिणीऍ दिया च कोङ्वादी ॥ २८९१ ॥

परयूथिकाः—तच्चित्रकादयस्तेषां सम्बन्धि यद् उपकरणं यत्र क्षेत्रे काले वा 'अविरुद्धम्' 5 अचित तद् रजन्यां भक्त-पानप्रहणार्थं प्रलम्बानयनार्थं वा कर्त्तव्यम् । यत्र वा प्रत्यनीका भवन्ति तत्र परतीर्थिकवेपच्छन्ना गच्छन्ति भक्तपान वोत्पादयन्ति । म्लेच्छकोष्ट वा गताः परतीर्थिक-वेपण दिवा पुद्गलादिकं गृहन्ति । आदिशच्डात् प्रत्यन्तकोष्टादिपरिग्रहः ॥ २८९१ ॥

अय गुलिका-खोल्ह्रारे व्याख्यानयति-

गोरसभाविय पोत्ते, पुन्त्रकय द्वस्सऽसंभवे धोवे । असईय उ गुलिय मिए, सुन्ने नवरंगदइयादी ॥ २८९२ ॥

गोरसभावितानि 'पोतानि' वस्ताणि खोलानि भण्यन्ते । तेषु पूर्वकृतेप्वध्वानं प्रविष्टानां यदा प्राशुकद्रवस्यासम्भवस्तदा तानि पोतानि 'धावेषुः' प्रक्षालयेषुः । अगीतार्थप्रत्ययोत्पादनार्थ च आलोच्यते—गोकुलादिदं संस्रष्टपानकमानीतम् । अथ न सन्ति गोलानि ततो गुलिकाः— वुवरवृक्षचूर्णगुटिकास्तद्भावनया पानकं प्राशुकीकृत्य 'मृगाः' अगीतार्थान्तेपां चित्तरक्षणार्थं 'शून्ये 15 प्रामे प्रतिसार्थिकादीना नवरद्भद्दतिकादेरिदं गृहीतम्' इत्यालोचयन्ति ।

विशेषचूर्णी तु गुलिका-खोलपदे इत्थं व्यास्याते—जत्थ पद्यकोद्दाइयु पंडरंगाटी पुञ्जंति संजयाण ते पडिणीया होज्ज तत्थ 'गुलिय' ति वक्तलाणि घेप्पंति । 'रोल' ति सीसरोला, तीए सिरं चेढियद्यं जहा न नज्जह लोयह्य सीस, सीससरक्यणद्वाण वा ॥ २८९२ ॥

अंथेपासपकरणानां प्रहणं न करोति ततः-

एकेकिम्म य ठाणे, चडरो मासा हवंतऽणुग्वाया । आणाइणो य दोसा, विराहणा संजमाऽऽयाए ॥ २८९३ ॥

'एकैकसिन् स्थाने' एकैकस्योपकरणस्याग्रहणे इत्यर्थः चत्वारो गासाः 'अनुद्धाताः' गुरवो भवन्ति, आज्ञादयध्य दोषाः, विराधना च सयमा-ऽऽत्मविषया ॥ २८९३ ॥

अमुमेवार्थ स्पष्टतरमाह—

25

20

१ कित । अधवा "गुलिया गोल" सि जन्यथा व्याच्यायने—यत्र पर्वतकोहादी पाण्डुराह्नाः पृष्यन्ते ते च संयतानां प्रत्यनीकाः तत्र गुलिका नाम-चहक्रतानि नाः परिधातव्याः, येन पाण्डुराज्ञवेद्यो भवति । खोला नाम-द्यीपंषेष्टनं तया द्यापं वेष्ट्यिनव्य यथा
न हायते लोवद्वतं द्यीपंमिति, द्यीपंरहाणार्थं चा गोला त्राष्ट्या । न धनन् गमनीपिकादिजुक्तितम्, यत बाद विद्यप्यूर्णिकन्—पद्ययकोहाद्दनु पंष्ट्रगादी पुञ्चति, गंजयाण ने
पिहणीया होज्ञा, तेण दिया नि 'गुलिय' सि वद्यलाणि घेष्पति, 'गोल' सि मीनगोया,
जदा न नज्ञद्र लोयद्वयं सीतं, सीसमंदरमण्डाण चा ॥ २८९२ ॥ अधामीपा मा ॥

२ अधामीपा॰ मा• ६०॥ ३ 'वार्थ निर्वुकिंगाधोक्तं भाष्यकारः स्पष्टे गं०॥

ΙŪ

27

एमाइ अजानवदोसरक्खणहा अगेन्हणे गुरुना । अणुक्ते निनामओ, पत्ता सत्यस्त मडणेणं ॥ २८९४ ॥

एक्मार्शनाह्यकर्यानामनागर्भव मंद्रमात्मविश्वनादिदेश्वरह्यार्थं बहुमं कर्जव्यम् । अय न गृहति ततः प्रकेषं चलारो गुरवः । गत्रह्यकर्यद्वारम् । अय पृत्रेष्ठत्युपेक्षितेन सार्थेन उग्तनक्रमिति व्यास्कृति—"अगुकूले" इत्यदि । अनुकूलं चन्द्रवलं तारावलं वा यदा सूर्ययां मक्ति तदा "निर्मनका" यस नं विवने । निर्मनक्षोग्रथ्याद् यावत् सार्थे न प्रापृत्वन्ति ताव-द्यास्नेव दक्षनं गृहन्ति । सार्थे प्रकृत्यु मार्थमक्षेन सक्कोन गच्छान्ति ॥ २८९४ ॥

इत्नेव सविदेशयनाह—

अप्यचाप निमित्तं, पत्ता सत्यम्मि निमि परिसाओं । सुद्धे ति परिययापं, अद्याप मिक्सपिंसिंहा ॥ २८९५ ॥

संदेश तकं 'किसितं' रकुन्यहरं मणि । नातानं तु यः सार्यस रकुनः स संयत-न मिर मणी । सार्यं च प्राताः सन्तितितः परिवदः कुर्वन्ति, तवया—सिंहपरंदं हुरमपर्वदं स्वारंद्रम् । तया सार्थः 'शुढ्रः' निर्वेषं हुत्वा प्रस्थिनः परं यदा 'अव्वनि' अर्थां पाता मणीत तदा केडिय नक्तिको मिलायाः निर्वेषं कुर्यादिति < 'निर्वृक्तिगायासमासार्थः 15॥ २८९७ ॥ अर एत्.मेव विवर्तशुः नयमत्वव्याक्यानं सुगमत्वदनाहत्व > सिंहार्दानां पर्यदां व्याक्यानमाह—

कडनागि सीहपरिसा, गीयत्य थिरा च वसमपरिसा छ । स्वत्तकडमगीयत्या, मिगपरिमा होह नायव्या ॥ २८९६ ॥

इत्योगिनो नम-र्गातार्थाः परं न तयो समर्थासे सिंहपर्यहुच्यन्ते, ये तु गीतार्था अपरं १२च 'स्थिगः' बच्यन्तसे हुरमर्ग्यन्, ये तु 'कृतमूत्रः' स्त्रेऽर्घातिनः परमर्गातार्थासे सगर्पदिति इ.तत्र्यः स्वति ॥ २८९६ ॥

त्रस "सुन्दि ति परित्रमार्न" ति पर्द व्यास्त्रमण्ये—सासुनिः प्रयम्त एव सार्थाविपति-गीनगान्त्रसः—त्रदे सुन्मानिः सनं त्रज्ञमो व्यास त्रमुद्दन्तसुद्वहस्य । एवसुक्ते व्यास वस्युप-गान्द्यति ततः सुदः सार्वे इति महा असिताः प्रसर्वापादानां कोऽप्येवं दुर्यात्—

सिद्धन्यग युष्के वा, एवं वृद्धं पि निच्छमइ पंतो । मर्च वा पिडसेहइ, निष्हऽजुमहाइ तन्य इसा ॥ २८९७ ॥

य्या निख्यं: सर्पेश्च स्क्रुप्यात् वा खिरसि स्वाति निकाबिदारे पीडां न दुर्वनि, एतं यूवमीर सम कमीर भागे न कुरुष । एवस्क्राधीर कश्चित् 'प्रन्तः' निख्यसकादिरद्वी-मक्षे सर्थद् निकाद्यदि—ना यूवमस्त मिः सर्द्धमागच्छतितिः मक्तरानं वा प्रतिषेष्यति— अस्टर्माणं केडित किबिद्दि द्वातः तमः 'वदायां' मार्थ-मार्थवाद्या-ऽऽयिकामामनुशिष्टा-दिका द्वं यतन कर्नका ॥ २८९७ ॥ तमेवाद्

अरुपर्द्धा वम्मऋदा, विज्ञ निमित्ते पशुत्तकरणं वा ।

१ ४ ४ एन्डिएनांनः पटः कां॰ एव वर्तते ।

६ ^०था बडवन्तले मा॰ ॥

25

परउत्थिगा व वसभा, सयं व थेरी व चउभंगी ॥ २८९८ ॥

यद् इहलोकापायप्रदर्शनं कियते साऽनुशिष्टिरुच्यते, यत् पुनरिह परत्र च सप्रपन्नं कर्म-विपाकोपदर्शनं सा धर्मकथा, तयाऽनुशिष्टा धर्मकथया वा सार्थः सार्थवाह आयत्तिका वा उपशमयितन्याः, विद्यया मन्नेण वा ते वशीकर्तन्याः, निमित्तेन वा आवर्त्तनीयाः । यो वा साधुः प्रभुः-सहस्रयोधी वलवान् स सार्थवाहं वद्धा स्वयमेव सार्थनिधष्ठाय प्रभुत्वं करोति । 5 एपा निष्काशने यतना । भिक्षाप्रतिपेधे पुनरियम्—सर्वथा भिक्षाया अरुमे वृपमाः परयू-थिका भूत्वा भक्तपानमुत्पादयन्ति, सार्थवाहं वा प्रजापयन्ति । यदि च सर्वेऽपि गीतार्था-स्ततः 'स्तयं वा' स्वलिङ्गेनैव रात्रिभक्तविषयया चतुर्भद्वया यतन्ते । अथागीतार्थमिश्रास्ततः स्यविराया गृहे निक्षिपन्ति ॥ २८९८ ॥ अमुमेवान्त्यपाढं ब्याख्यानयति-

> पिंडसेह अलंभे वा, गीयत्थेस सयमेव चडमंगी। थेरिसगासं तु मिए, पेसे तत्तो व आणीयं ॥ २८९९ ॥

सार्थीधिपतिना भक्तपानस्य प्रतिपेधः कृतः, यद्वा न कृतः प्रतिपेधः परं निनैः सार्थः सर्वोऽपि विल्लितः अतो भक्तपानं न रूम्यते, ततो यदि सर्वेऽपि गीतार्थाग्तदाँ 'स्वयमेव' पर-लिक्समन्तरेण रात्रिभक्तचतुर्भक्षी यतनया प्रतिसेवितव्या । गाथाया पुस्त प्राकृतत्वात् । अथा-गीतार्थमिश्रास्ततो यदि तत्र सार्थे भद्रिका स्थविरा विद्यते तदा तस्याः सगीपे निक्षिपन्ति । 13 ततः स्वितायाः सकाशं मृगान् प्रेप्य तेपा पार्धाटानाययेत्, 'ततो वा' स्वविराममीपादानीत-मित्यगीतार्थाना पुरतो भणन्ति ॥ २८९९ ॥ अथवा-

> कुओं एयं पछीओ, सहा थेरि पडिसरिथगाओ वा । नायम्मि य पन्नवणा, न हु असरीरो भवइ धम्मो ॥ २९०० ॥

ष्ट्रपभेः स्वविरासगीपादानीते सति यदि ते गृगाः प्रश्नयेयुः—कुन एनडानीतम् र, ततो २० वक्तव्यम्—पहयाः सकायादिदगानीतम्, दानादिश्रादेवी दत्तम्, सविरैया वा वितीर्णम्, प्रतिसार्थिकाद् वा रुव्धम् । एवमपि यदि तेर्मृगेर्जातं भवति ततस्तेपां प्रजापना कर्चव्या— भो भद्राः । नास्ति 'अयरीरः' शरीरविरहितो धर्मः अत इद शरीरं मर्वपयवन रक्षणीयग्,

⊲ उंक्तज़—

शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयतनः । शरीराच्युवते भर्मः, पर्वतात् सलिल यथा ॥

अतः प्रतिसेयध्वभिदम् ,> पश्चादिदं चान्यच प्रायधिचेन विशोवयित्र्याम इति ॥२९००॥ अथ पूर्वोक्ताना तिस्णामि पर्पटा गमनविधिमात्-

१ °िन्त । 'खर्य या' ग्यतिद्वेत्वय रार्था मन्तमुन्पादयन्ति यदि नर्पेऽपि गीनार्थाः । अधा-गीतार्थभिक्षास्ततः स्वविराया गृद्दे निक्षिपन्ति । एयं चतुर्भह्वाऽपि यतन्ते ॥२८९८॥ भा• ॥

२ 'दा "गीयत्थेमु" ति विभक्तिव्यत्ययाद् गीताथः न्ययं गं॰ ॥ ३ 'विराम्लाहाऽऽनीतम्, प्र° भा॰ ॥ ४ 'ति पथा—स्विधिर्यापिनसिति, नन' शं॰ ॥ 4 -4 P एतन्मध्यमत. पाठ को महासेव यगाँउ ॥

पुरतो वर्चित मिगा, मज्जे वसमा उ मग्गओ सीहा । पिइओं वसमाऽनेसिं, पडियाऽसहरक्खगा दोण्हं ॥ २९०१ ॥

अध्वित गच्छता पुरतः 'मृगाः' अगीतार्था मध्ये 'वृषमाः' नमर्थ-गीतार्थाः 'मार्गतः' पृष्टनः 'सिंहाः' गीतार्था त्रजन्ति । अन्येपामाचार्याणां मतेन—पृष्टतो वृपमा त्रजन्ति । किं क्रारणम् १ इति अत आह—'हृणना' मृग-सिंहानां वाछ-बृह्वानां वा ये 'पतिताः' परि-श्रान्ता ये च 'असिंह्णावः' ख्रुवा-पिपासापरीयहाम्यां पीडितास्तेषां रक्षका वृपमाः पृष्ठतः स्थिता त्रजन्ति ॥ २९०१ ॥ अथवा—

पुरतो य पासतो पिइतो य वसमा हवंति अद्वाणे । गणबद्दासे वसमा, मिगमच्चे नियम वसमेगो ॥ २९०२ ॥

10 अध्विन त्रजतां वृपनाः पुरतः पार्श्वनः पृष्ठतश्च त्रजन्ति । तथा गणपितः—आचार्यत्तस्य पार्श्वे नियनादेव वृपमा भवन्ति । मृगाणा च मध्ये नियमादेको वृपमो मत्रति ॥ २९०२ ॥

ते च दृपमाः किं कुर्वन्ति ? इत्याह--

वसमा सीहेमु मिगेमु चेव थामावहारविजडा छ । जो जत्थ होइ असह, तस्स तह उवग्गह कुणंति ॥ २९०३ ॥

15 हुपमाः 'स्यामापहारित्रमुक्ताः' अनिगृहितत्रल-त्रीयीः सन्तो मृगेषु सिंहेषु वा यो यत्र येपां मन्ये असहिष्णुर्भवति तस्य तथोपयहं कुर्वन्ति ॥ २९०३ ॥ कथम् १ इत्याह—

> भत्ते पाणे विस्सामणे य उत्रगरण-देहबहणे य । थामाबहारविजदा, तिन्नि वि उत्रगिण्हए वसमा ॥ २९०४ ॥

मृगाणां सिंहानां दृपमाणां च मध्ये यः खुधाचीं भवति तस्य मक्तं प्रयच्छन्ति, पिपासितस्य 20 पानकं दृवति, परिश्रान्तस्य विश्रामणां कुर्वन्ति। य उपकरणं देहं वा वोहुं न छक्तोति तस्य तयोर्व-हनं कुर्वन्ति। एवं स्थामापहारविमुक्ता दृपमाः 'त्रीनिप' मृग-सिंह-वृषमानुरगृहन्ति॥ २९०४॥

> नो सो उत्रगरणगणो, पनिमंताणं अणागयं मणिक्षो । सङ्घाणे सङ्घाणे, तस्स्वक्षोगो इहं कमसो ॥ २९०५ ॥

अञ्चिन प्रविश्वतां योऽसा तिलकादिरुपकरणगणोऽनागतं प्रहीतन्त्र्यो मणितः तस्येह सस्याने १० सस्याने अच्छाविषयगमनादान्नुपस्थितं 'कमद्यः' क्रमेणोपयोगः कर्चन्यः, येन यदा प्रयोजनं भवति तत् तदा तत्र प्रयोक्तन्यमिति मावः ॥ २९०५ ॥

४ अंथाव्यति गच्छतामेव मक्तयानास्यमे विविमाह—>
 अमई य गम्ममाणे, पडिसन्थे तेण-सुन्नगामे वा ।

१ सिना य मन्झिम्म वसमाणं मा॰ ता॰ । एतटनुसारेणेन मा॰ टीहा । स्वतां टिप्पणी २ ॥

२ °िन्त । ये तु मृगास्ते त्रुपमाणां मध्ये भवन्ति ॥ २९०२ ॥ वसमा मा॰ ॥

३ मध्ये पुरतः पार्वतः पृष्टतव्यासिहः डां॰ ॥

४ एवं मक्तपानादिविषयं वैयावृत्यं स्थामा° डा॰॥

प् 🗸 🥍 एतन्मध्यगतः पाट. मा॰ त॰ है॰ नाति ॥

रुक्लाईण पलोयण, अमर्ड नंदी दुविह दर्व्य ॥ २९०६ ॥

तत्राघ्विन गम्यमाने भक्तपानस्य 'असित' अलाभे प्रतिसार्थं वा म्नेनपत्यां वा शून्यग्रामे वा भक्तपानादि गवेपयन्ति, वृक्षादीनां वा प्रलम्बादिनिमित्तं प्रलोकनं कर्त्तन्यम् । सर्वथा वा सस्तरणस्यासित द्विविधं—परीचानन्तादिमेदाद् द्विप्रकारं यद् व्रव्य तेन यथा 'निन्दः' तपः-स्यमयोगानां स्कातिभवति तथा विधेयमिति निर्मुक्तिगाथासमासार्थः ॥ २९०६ ॥

अथैनामेव विवरीपुराह—

भत्तेण व पाणेण च, निर्मतएऽणुग्गए व अत्थमिए । आइचो उदिय त्ति य, गहणं गीयत्थसंविग्गे ॥ २९०७ ॥

अध्यानं गच्छतां यदि कोऽपि मितसार्थों मिलितः, तत्र च केचिद् टानरुचयो भक्तेन वा पानेन वा रात्रावनुद्रते वाऽस्तमिते वा सूर्यं निमग्नयेयुः ततो यदि सर्वेऽपि गीतार्थाम्नदा गृहन्तिः 10 अथागीतार्थमिश्रास्ततो गीतार्था गुवते—गच्छत यूयम्, वयमुदित एवादित्य भक्तपानं गृहीत्वा पश्चादागमिप्याम इति । ततः प्रक्षितेषु मृगेषु गीतार्थास्तरक्षणमेव गृहीत्वा सार्थमनुगच्छन्ति । स्थिते सार्थे मृगाणां शृण्वतामारोचयन्ति—आदित्य उदित इति मत्या वयं गृहणं कृत्वा समागताः । एवंविधां यतनां गीतार्थः संविद्यः करोति ॥ २९०७ ॥

अथ किमर्थ गीतार्थसंविमम्हणम् ! इत्याह—>>

15

गीयत्थग्गहणेणं, सामाए गिण्हए भवे गीओ । संविग्गग्गहणेणं, तं गेण्हंतो वि संविग्गो ॥ २९०८ ॥

गीतार्थप्रहणेनेदमावेदितम्—यो गीतार्था भवति स एव 'श्यामायां' रात्रे। गृहाति नार्गा-तार्थः । संविमग्रहणेन तु सद् रात्रिमक्तं गृहत्रप्यमा संविम एव, यथोक्तयतनाकारित्वेन मोक्षा-मिलाप्येव मन्तव्य इत्युक्तं भवति ॥ २९०८ ॥

गतं मितसार्थद्वारम् । अथ खेनपछीद्वारम् —तत्यां च पित्रितं सम्भवति तत्रायं विधि —

वेइंदियमाईणं, संथरणे चउलह उ सविसेमा।

ते चेव असंधरणे, विविरीय सभाव माहारे ॥ २९०९ ॥

यदि 'संनरणे' - इतेरभक्तपानिर्वाहे सित क हीन्द्रियादीना पुद्गलं गृहन्ति नदा चनुर्व-घवः 'सिविदोपाः' तपः-कालविदोपिताः । तयया—हीन्द्रियपुट्गल गृहाति चतारो लघवमापमा 20 कालेन च लपुकाः, बीन्द्रियपुद्गले त एव कालेन गुरुषाः तपमा लपुकाः, चनुरिन्द्रियपुट्गले तपोगुरुकाः काललपुकाः, पद्मेन्द्रियपुद्गले हाभ्यामपि तपः-जालभ्यां गुरुकाः । अथानिराणं भवति ततो यदि हीन्द्रियादिकमगुन्द्वि 'विपर्गतम्' उरक्रमेण गृहाति तनना एव चर्यारो लघवः । अथापवादस्याप्यपदाद चन्द्रते—हीन्द्रियादीनां पुन्नक्षिक्तरेन्द्रियपुट्गनारक्यन्तवन्त्र ततो यत् समावेनेव माधारण तेद् गृहन्ति ॥ २९०९ ॥ जन्य विसेसं जाणंति तत्य लिंगेण चउलह पिसिए। अन्नाएण उ गहणं, सत्यम्मि वि होह एसेव॥ २९१०॥

यत्र आमे तिरोषं जानन्ति यथा 'सादवः पिशितं न सुझते' तत्र यदि खिलेक्षेन पिशितं गृहन्ति तदा चतुर्लघवः । अतोऽज्ञातेनेव तत्र श्रदणं कार्यम्, परिलक्षेनेत्यर्थः । स्तेनपश्यादी-धनाममावे सार्थेऽपि पुद्रस्त्रहणे एप एव कसो विज्ञेयः ॥ २९१० ॥ अथ शृत्यग्रामहारमाह—

अद्वाणासंयरणे, सुन्न दुव्वस्मि कपूई गहुणं।

लहुओं लहुया गुरुगा, नहन्नए मन्दिमृकोसे ॥ २९११ ॥

अध्वयतिपत्रानानमंत्तरणे जाते शृत्ययाने' < तं सार्थमायान्तं हृद्वा 'वैारसेना समाग-च्छति' इति श्रद्धयोद्वसितं याने अवयन्यनव्यनोत्कृष्टमेदनिवसः 'द्रव्यसः' आहारादेर्वहणं कर्तुं 10 कर्यते । < अत्र "द्रवन्य" ति षष्ट्यर्थे सप्तमी । अवय संतरणे गृहाति तत इद्रमोवतः प्रायक्षित्तम्—तवन्ये नासङ्ख् नव्यने चत्वारो रुष्ट्यः, रक्कृष्टे चत्वारो गुरवः ॥ २९११ ॥ आह तवन्यन्थ्यमोत्कृष्टान्येव वर्षं न जानीनः अत्रो निरूप्यतानेतस्तरूपन्, रच्यते—

> उक्रोसं विगईओ, मन्सिमनं होइ कृरमाईणि । दोसीणाइ जहनं, निण्हंने आयरियमादी ॥ २९१२ ॥

ठळ्छं द्रव्यं 'विञ्चतयः' ढिव-तुग्य-वृतादयः, मञ्यमं द्रव्यं कृत-कुमणादीनि, जवन्यं द्रव्यं
 दोषात्रादि । एतानि गृहतामाचार्यदीनामाज्ञादयो दोषीः ॥ २९१२ ॥

अय पुरुरविमागेन प्रायश्चित्तनाह—

अद्धाण संयरणे, सुन्ने गामिन्म नो उ गिण्हेजा । डेटार्टी आरोवण, नायच्या नाव मासलह ॥ २९१२ ॥

27 अव्वित संसर्णे शून्यमाने विक्रत्यादि द्रव्यं यो गृहीयात् तस च्छेदमादी क्रता मामल-ष्ठुकं यावदारोपर्णां हात्रव्या ॥ २९१३ ॥ इदमेवे स्टुटनरमाह—

> छेदो *छ*ग्गुरु छ्छहु, चउगुरु चउछहु य गुरु सहू मासा । आयरिय वसम मिक्खु, उक्कोसे मन्त्रिम जहके ॥ २९१४ ॥

आचार्यस विक्टलादिकसञ्च्छद्रव्यं शून्यशामेऽन्तर्हष्टं गृह्तद्रहेदः, सन्तरेग्रहष्टं गृह्तः 25ण्हरकाः, विह्हेष्टं पह्रकाः, बहिरहष्टं पह्रव्यक्ताः; 'मव्यमम्' ओदनादिद्रव्यमन्तर्हष्टं गृह्तः पह्रकाः, सहष्टे पह्रव्यक्ताः, विह्हेष्टं पह्रव्यक्ताः, सहष्टं चतुर्गुरदः; नयन्यं दोगन्नादिक्रमन्तर्हष्टं गृह्तः पह्रव्यक्ताः, सहरे चतुर्गुरदः, बहिर्हेष्टं चतुर्गुरदः, सहष्टं चतुर्व्यकाःः एवनाचार्य-स्थानम् । वृष्यसानयेव चारितेक्या पह्रकातारक्यं मासगुरके, मिलोस्त पह्रव्यक्ताःरास्यं मासच्यके तिष्टति । यत एवमदः संस्तरोग न अद्दीनव्यम् ॥ २९१० ॥

१ 'इटार्ने हुल्याने ति व्ह पुरावना व्यक्तयमाहा—ब्हायाहंबरो॰ याहा" इति विशेषचूर्यो ॥ २ ≺ > प्रतिवृह्यतः पाठः सा॰ साहि ॥ ३ ≺ > एन्डिह्यतः पाठः सा॰ त॰ दे॰ साहि ॥ ४ 'पाः, छञ्जमासादिकं चानम्त्ररगायोक्तं यथात्रमं प्रायिश्चसम् ॥ २९१२ ॥ वं॰ ॥ ५ नेयव्या वं॰ विता ॥ ६ 'णा कर्सस्या मा॰ ॥ ७ 'व स्पष्टतर' मा॰ त॰ दे॰ ॥

असंस्तरणे गृहतां यतनामाह—

विलओलए व जायइ, अहवा कडवालए अणुन्नवए। इयरेण व सत्थभया, अन्नभया बुद्धिने कोट्टे ॥ २९१५ ॥

''विरुओरुग'' ति देशीपदत्वार्द् लुण्टाकाः, यैः स ग्रामो मुपित इत्यर्थः, तान् वा तत्र श्रन्ययामे विकृत्यादिद्रव्यं याचते । अथवा कटपालकाः-ये तत्र वृद्घादयोऽजन्नमा गृहपालकाः ध स्थिता न नष्टास्ताननुजीपयेत् । "इयरेण य" ति स्वलिक्षेनालभ्यमाने 'इतरेण' परलिक्षेनापि गृहन्ति । तथा कोष्ट नाम-यदटव्यां चतुर्वर्णजनपदिमश्र भिल्नदुर्गं वसति तसिन्निप सार्थग-याद्वा 'अन्यभयाद्वा' परचकागमादिरुक्षणाद् 'उत्थिते' उद्वसीभृते सित जघन्यादिद्रन्यस्य प्रहणं कल्पते ॥ २९१५ ॥ तत्रेयं यतना-

> उद्दरोस वाहिं, अंतो वी पंत गिण्हमिद्दहं। वहि अंत तओ दिइं, एवं मज्झे तहुकोसे ॥ २९१६ ॥

"उद्दं" ति देशीवचनत्वाद् मुपितं तस्य यत् शेपं — छण्टांकर्भुक्त्वा यामादेर्वहिः परित्यक्तं तद् जघन्यमदृष्टं प्रथमतो गृहन्ति, तस्यासित मामाद्रम्तः प्रान्तमेवादृष्टम् , नद्रभावे प्रामादैर्विहः प्रान्तं दृष्टम्, ततो प्रामादेरन्तरपि प्रान्तं दृष्ट गृहन्ति । तदभावे मध्यममप्येवमेव चारणीयम् । तदमाप्तानुत्कृष्टमप्यन्येय चारणिकया महीतव्यम् ॥ २९१६ ॥ 15

अथवा किमनेन जयन्यादिविकल्पप्रदर्शनेन ?---

तुद्धन्मि अदत्तम्मी, तं गिण्हसु जेण आवहं तरित । तुछी तत्थ अवाओ, तुच्छवरूं वजए तेणं ॥ २९१७ ॥

जघन्यमध्यमोत्कृष्टेर्षु 'तुल्ये' समानेऽदत्तदोषे सति 'तद्' विदृत्यादिकं द्रन्य गृहाण येन 'आपढम्' असस्तरणरुक्षणां 'तरित' पारं मापयिस, यतस्तुल्यं एव तन सयमारपविरायनारं,पोऽ- 20 पायः तेन हेतुना 'तुर्च्छवल' दोषान्नाव्दिव्व्यं वर्नयेत् ॥ २९१७ ॥

गतं शुन्यमामहारम् । अथ "रुक्साईण पलोयण" ति (गा० २९०६) परं व्याग्यानयति—

फासुग जोणिपरित्ते, एगहि अवद्व भिन्नऽभिने य । बद्धहिए वि एवं, एमेव य होइ बहुवीए ॥ २९१८ ॥

'प्राशुक्रम्' अचिची गृतम्, परीचा योनिरलेति परीचयोनिकम्, गांभाया प्राह्मस्याद् 🕫

१ °द् खुण्टाका उच्यन्ते, खुण्टाका नाम-ये कि ॥ २ °द्राप्य गृहाति । "इय" मा ॥ ३ °िता। यहा स माम पर्व शून्यो जानः? इत्याह—"इनरेण" नि इनरमाम-चीर्भयं तेन तथा महनः सार्थस्य भयागा 'अन्यभयागा' प्रत्यकागमादिन्हस्या दुरियते त्रामे, "कोटे" ति यर्टवीमध्ये भिरू पुरिन्द्र-चतुर्यण-जनपदमिश्चं दुर्ग पस्ति गन् बोट-मुच्यते, तसिरापि शून्ये जयन्यादिश्यम्य प्रदर्ण पाल्यने भार ॥

४ °वं तरुद्दरोपम्, लुण्टारागां मुण्णगां यरमादिकमुलरिनमित्यर्थं , तद् जग्र वै । ५ तुष्ठियातं भारतो ६ ९९ तुस्य पत्र तायदवत्तादानशेषः, अनम्तुन्तेऽदत्ते भारता ७ १ रुपो प्रदणाक्षयंणादिका पाऽवाय भारता ८ तुष्ठक्ततं भारत

20

व्यवासेन प्रांपरिनपादः, 'एकाल्किन् एक्वालम्, 'अबद्धासिकं नाम' अधाप्यबद्धवीतम् अनिप्यतिन्यर्थः, 'मिलं' विद्यारितम्, एतेन प्रथमा मङ्गः स्वितः, "अमिले य" ति 'अमिन् अन् अविद्यारितम्, अनेन द्वितीयो मङ्ग उपादः । उच्चारपत्रिविः पुनरेतम्—प्राञ्चकं परीत्रयो-निक्रमेकान्तिकस्वद्धासिकं मिलन् १. प्राञ्चकं परीत्रयोनिक्रमेकासिकनव्द्धासिकमित्रत् २, उप्तं बद्धासिकेऽपि हो। मङ्गे। वक्तव्यो ४ । एते एकासिके चत्वारो मङ्गा स्वयाः, बहुनिवेऽप्येन्वमेत्र चत्वारो स्वयाने, जाता वर्ष्टां मङ्गाः । एते परीत्रयोनिपद्मसुद्धता स्वयाः, प्रवमेवानन्त-योनिपद्नाप्यदे। मङ्गाः प्राप्यन्ते, जाताः पोड्य मङ्गः । एते प्राञ्चकपदेन स्वयाः, प्रवमेवा-प्राञ्चक्षपदेनाम्यदे। पोद्यवाद्याः, प्रवमेवा-प्राञ्चक्षपदेनामि पोद्यवाद्याः मङ्गाः । पते प्राञ्चकपदेन स्वयाः, प्रवमेवा-प्राञ्चक्षपदेनामि पोद्यवाद्याः । २९१८ ॥

एमेव होह उचरिं, एगड्डिय तह च होह बहुर्वाए । साहारेणं मभावा, आदीऍ बहुगुणं जं च ॥ २९१९ ॥

एवंनव वृक्षसोपर्याः एकासिकादे तथैव वहुवीजादे उपलक्षणत्वात् प्राशुक्रादिशेषपदेषु च द्वाविष्ठद् महाः कर्त्रत्याः । अत्र च यो यः पूर्वा महकः स स प्रथमसासेवितव्यः । सर्वया वाऽयनात् पतिलानां प्रज्ञनानामपाता वृक्षोर्यारवर्तियन्त्रविषया अति द्वाविष्ठद् महका यथा15 कर्मनासेवित्रत्याः । अथारवादसाय्ययवाद उच्यते — 'स्वयावत्' प्रकृत्येव 'सावारणं' अर्रारोयप्रमकारकं दृत्यमेकास्थिकमनेकास्थिकं वा बद्धासिकमबद्धास्थिकं वा परीत्तमनन्तं वा दद् व्यक्तमेणाति 'आदत्ते' गृहाति, 'यद्' यन्तात् तस्यानवस्थायां तदेव 'बहुगुणं' संयनादीनां वद्द्रपत्राक्तिनित ॥ २९१९ ॥ क्षय द्वारणाय्या(२९०६) अत्रगेतं नन्दिपदं व्यक्त्यानयति —

नंदंति जेप तब-संजमेस नेव य दर चि खिझंति । जायंति न दीणा वा, नंदि अतो समयतो मन्ता ॥ २९२० ॥

< अंज्ञीन वर्त्तनाः साववा > येन ह्रव्येणाम्यवहनेन तपः-संयनयोः 'नन्दन्ति' समा-

१ 'रमस्समा' मा॰ । एत्रदुसरोंन्ड मा॰ बीछा। दरुदाँ दिपानी ३ 🏾

२ 'पि हार्तिशद् महाः कतंत्र्याः । कयम्? इत्याह—"एगद्विय तह य होइ बहुर्वाए" चि उपलक्षणितदं प्राशुकादीनां शेषपदानाम् । अत्र च यो यः मा॰ ॥

३ द० दे० मो० दे० विनय्यत्र—'ते—''साहारण'' इत्यादि । साधारणः-श्रागरोषष्ट्रमार्कार्य यः समायसम्पन् यंचित्रश्रद्धः प्रकारान्तरोपन्यासे स्वगनानेकमेदस्यने वा, यद् द्रव्यमेकास्थिकमनेकास्थिकं वा वहास्थिकमनद्धास्थिकं वा परास्तिमननं वा यसाम्बस्थायां [यत्] साधारणन्यमायाद् 'यहुगुणं' संयमादीनां बहुतकारकं तदा तदेव 'व्यक्तं यहाति न क्रमाक्रमविचारणं निद्याति ॥ २९१९ ॥ अथ मा० ।

^{&#}x27;ते—वादयेऽव्यति बह्मानानां 'खमाबाव्' प्रहत्येव 'साधारणं' शरीरोपप्टम्मकारि ''जं चं' चि यदेव द्रव्यमेकास्थिक' हो ।

[&]quot;बहार स्टम्ब नि बन्दों समई पर्ड केन सहरत सहर्ग्स्बह से दं नेपहर" विशेषसूर्ती ॥ ४ त्रथ निशुक्तिनाथा॰ सं ः । ५ % १० एत्दन्दर्गदः पाठः मा० त० हे० नादि ॥

धिसमृद्धिमनुभवन्ति तद् निन्दः । यद्वा येन द्रव्येणोपमुक्तेन नेव "दर" ति द्वतं 'क्षीयन्ते' न कृशीभवन्तीत्यर्थः तद् निन्दः । अथवा येनोपयुक्तेन न दीना जायन्ते तदिप निरुक्तिवशाद् निन्दः । अत्र पाठान्तरम्—"जायित निदया व" ति नन्द्या-ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मिकया समृद्या युक्ताः साधवो यंतस्तेन द्रव्येण जायन्ते अतस्तस्य निन्दिरिति 'समयतः संज्ञा' आग-मतः परिभाषा ॥ २९२० ॥ तच्च द्रव्यं द्विविधम्, तद्यथा—

परिनिद्धिय जीवजढं, जलयं थलयं अचित्तमियरं च । परित्तेतरं च दुविहं, पाणगजयणं अतो वोच्छं ॥ २९२१ ॥

द्विधा द्रव्यम्—परिनिष्ठितं जीवविष्रमुक्तं च । परिनिष्ठितं नाम—यत् परार्थमचिचीकृतम् । जीवविष्रमुक्तं तु—साध्वर्थमचिचीकृतम्, आधाकर्गेति हृदयम् । आह च चूर्णिकृत्— परिनिद्वियं ति जं परकडमचित्तं, जीवजढं ति आहाकम्मं ।

यद्वा द्विविधं द्रव्यम्—जरुजं स्थरज चेति । अथवा अचित्तेतरमेदाद् द्विधा । तत्राचित्तं ताम-यद् न परार्थमचित्तीकृतं नापि संयतार्थं केवरुमायुःक्षेयेणाचित्तीमृतम् ।

च तैंथा चाह चृणिंकृत्—अचित्तं ति जं नावि परहाए अचित्तीभृयं, नावि संजयहाए,
केवलं आउक्लएणं अचित्तं ति ▷ ।

यत् पुनरायुर्धारयति तत् सिचतम् । अथवा 'परीत्तं' प्रत्येकम् 'इतरद्' अनन्तमिति वा 15 द्विविधम् । अ ऍवमादिकं द्विविधं द्रव्यमसस्तरणे बहीतव्यम् । > तदेवमुक्ता तावदाहारय-तना । अथ पानकयतनामत ऊर्ज्वं वक्ष्ये ॥ २९२१ ॥ यथाप्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—

तुवरे फले अ पत्ते, रुक्ख-सिला-तुप्प-मद्दणाईसु । पासंदणे पवाए, आयवतत्ते वहे अवहे ॥ २९२२ ॥

अध्वित वर्षमाँनः काञ्जिकादिपाशुक्रपानकाप्राप्तावीह्यानि पानकानि महीतन्यानि । 20 तद्यथा—तुवरफलानि—हरितकीषभृतीनि तुवरपत्राणि—पलाञपत्रादीनि ते. परिणामितं अपानकं प्रथमतो ग्राह्मम् । > तथा "रुवस्वे" ति वृक्षकोटरे कटुक्फल-पत्रादिपरिणामितम्, एवंविधस्या-भावे "सिल्" ति सिलाजतुभावितम्, तदभावे "तुप्प" ति मृतक-कटेवर-वद्या-पृतादिभिः परिणामितम्, तदप्राप्तो "महणाईसु" ति हस्त्यादिमर्वनेनाकान्तम्, आदिशब्दो हस्त्यादीनानेन्वानेकभेदस्चकः, तदभावे प्रसन्दनं—निर्दारणं तत्पानकम्, < र्तनः प्रपातोदकम्, > प्रपातो 25 नाम—यत्र पर्वतात् पानीय निपतति, यथा उज्जयन्तादिगिरी, तदभावे व्यानपेन यत् तमं तत् प्रथमम् 'अवहं' अवहमानक प्रधात् तदेव 'वहं' वत्मानकं प्राप्तम् । अगंधायां वत्मानुन्तेभ्याद् वहपदस्य पूर्व पाठ > इति ॥ २९२२ ॥ अथ "नहणाईसु" ति पद द्यानपे—

१ यतो जायन्तेऽतः संस्तरणस्य निद्दिति 'समयसंता' जागमपरिभाषा, यथा यथा संसरणं भयति तथा नथा विषेयमिति भाव ॥ २९२०॥ अय जितिथ द्रव्यं व्यानप्टे— परि॰ मा• ॥ २ °क्षपणाउचित्ती॰ नो• टे•॥ २ ४ > राव्यिता पाट- मा• पां• विराणिता

४-'१ -: १- एपनमध्यमतः पष्टः सा० त० दे० म.नि ॥

६-७ री- लामप्यत पाठ. एक हा गरीते॥

जहें खग्गे महिसे, गोण गवए य सूपर मिगे य । उप्परिवाडी गहण, चाउम्मामा भवे छहुगा ॥ २९२३ ॥

'ज्ञदुः' हानी, सन्नी नाम-एकशृह आटव्यतिर्यनिवदोषः, 'गो-महिषा' मसिद्धां, 'गवयः' गवाकृतिराटव्यजाविदोषः, 'म्कर-सुगा' मसिद्धां । एतेर्जेङ्कादिभिर्मर्दनेन परिणामितं पानकं ध्यशक्रममध्वति ब्रह्मतव्यम् । अथ 'उत्परिपाद्या' वशोक्तक्रमसुक्कृत्व ब्रह्मं करोति ततश्चत्यारो मामा रुषुका भवेयुः ॥ २९२३ ॥

सूत्रम्---

15

20 _

नऽन्नत्थ एगेणं पुरवपडिलेहिएणं सेजा-संथारएणं ४३॥

"न कल्पते रात्रौ वा विकाले वा" (मृत्रं १२) इति योऽयं प्रतिपेषः स एकसात् 10 पूर्वेप्रत्युपेक्षितान् जन्या-संस्तारकादन्यत्र । इहान्यत्रज्ञन्तः परिवर्जनार्थः, यथा—

अन्यत्र द्रोण-र्माप्माम्यां, मंत्रं योघाः पराक्तुग्वाः ।

द्रोण-मीप्मी वर्जयिन्त्रेत्यर्थः । तत्रश्चैकं शय्या-संखारकं विहायापरं किमपि रात्रे। प्रहीतुं न करुरत इति नृत्रसद्वेपार्थः ॥ अथ निर्धिक्तिवित्तरः—

रातो सिजा-संथारग्गहण, चढरो मामा हवंति उग्वाया । आणाहणो च दोसा, विराहणा संजमाऽऽयाए ॥ २९२४ ॥

रोरनेऽस्यामिति शय्या—वसतिः, सैव संम्तारकः शय्यासंलारकः; यद्वा श्रय्या—वसतिरेव, संलारको द्विषा—परिशार्टा अपरिशार्टा चेति, ततः श्रय्योपछितः संलारकः शय्या-संलारकः, ⁴ श्रय्या च संलारकश्रेत्यर्थः । ा तस्य च यद्यपि स्व रात्रो अहणमनुज्ञातं तथाप्युत्सर्गतो न करपते । यदि गृह्याति नतश्रद्धारां मासा उद्घाताः प्रायश्चित्तम्, आज्ञादयश्च 20दोषाः, विरायना च संयमात्मविषया ॥ २९२० ॥ तामव भावयति—

छकायाण विराहण, पासवणुचारमेव संथारे । पक्खरुण खाणु कंटग, विसम दुरी वाल गोणे य ॥ २९२५ ॥

रात्रावप्रखेपेक्षितायां स्मावृचारं प्रश्रवणं वा व्युत्मृजतः 'पद्कायानां' पृथिव्यादीनां विराध्या । व्यंयतहोपमयात्र व्युत्मृजति तन आत्मिवराधना । यत्र वा व्युत्मृजति तत्र विलानिर्गत्य १८ द्वीयंजातीयेन मक्ष्येत, एवमप्यात्मिवराधना । "सथारे" ति अप्रखेपेक्षिताया स्मा संस्तारकं प्रक्षिपतः 'एवमव' पट्कायितराधना, विलादावात्मिवराधनाऽपि । तथा 'स्वाणुः' कीलकत्तत्र प्रस्तकनं भवेत्, कण्टकवा विष्येत, 'विषमे' निम्नोन्नतं 'दरीषु' वा विल्यु प्रस्तलेत् प्रपतेहा, 'व्यालाः' सर्पास्तेदृत्येत, 'गाः' वलीवर्ष्येनामियातो मवेन् ॥ २९२५ ॥ किञ्च—

एरंडइए साण, गोम्मिय आरिक्य नेणगा दुविहा । एए हवंति दोमा, वेसित्यि-नपुंसएसुं वा ॥ २९२६ ॥

१ <४ 1 एतटन्तर्गतः पाठ. कां॰ एव वर्शते ॥

२ °म्, चतुर्लघय इत्यथैः। आद्या^०, कां॰ ॥

३ एवमुत्सर्जनेऽप्यात्म^२ मा॰ ॥

"ऐरंडइए साणे" चि हडवायतः श्वा तेन खायेत । 'गोलिम कः' बद्धसान के रहापाले: 'आरक्षकेवी' चारप्राहेर्गृषेत । लेनका द्विविधाः—शरीरस्तेना उपधिलेनाध्व, तिरुपधिरपि येत साधयो वा हियेरन् । एते दोषा रात्री बच्या-संन्तारकब्रहणे भवन्ति । तथा 'बेच्यानी-नपुंसकेषु वा' वेश्यापाटके नपुंसकपाटके वा स्थितानां रात्री परिवर्त्तयक्षां स्थाध्यायशब्दं श्रुत्मा होकः प्रवचनावर्णवादं कुर्यात्—अहो ! साधवलपोवनमासेवन्ते । यत एते दोपा अतो न रात्री ह शय्या-संस्तारको महीतन्य इति ॥ २९२६ ॥ आह ययेवं ततः-

> सुत्तं निरत्थगं कारणियं, इणमो अद्धाणनिग्गया साह । मरुगाण कोहगम्मी, पुन्त्रदिहुम्मि संन्झाए ॥ २९२७ ॥

सूत्रं निरर्थकं प्राप्तोति । सूरिराह—न भवति सूत्रं निरर्थकं किन्तु कारणिकम् । किं पुनस्तत् कारणम् ! इत्याह--'इटम्' अनन्तरमेबोच्यमानम्-अध्वनिर्गताः केचन साधवोऽमा- 10 मनवेलायां म्रामं प्राप्ताः, तत्र तर्मरुकाणा 'कोष्टकः' अध्ययनापवरको दृष्टः परं तदीयः स्वामी तत्र सन्निहितो न विद्यते, तत्तरते साधवस्त मरुककोष्ठकमुचार-प्रश्रवणगृगिकाश्च प्रत्युपेध्य सामिनम्-अव्यापकं समागनं याचन्ते; याचयित्वा च तत्र कोष्ठके पूर्वहष्टे सन्ध्यायां गृरामाणे सूत्रनिपातो द्रष्टव्यः ॥ २९२७ ॥ एवं सन्ध्यारुक्षणां रात्रिमहोकृत्योक्तम्, न केवलं सन्ध्यायां किन्तु विकालेऽपि शस्या-संग्तारकस्यागीभिः कारणेर्श्रहणं कल्पते-15

> द्रे व अन्नगामी, उच्याया तेण सावय नदी वा । इक्षम नसिह ग्गामे, रुक्जाइठियाण समुदाणं ॥ २९२८ ॥

यती मामात् प्रशिताः तती यत्र गन्तुमीप्सितं सोऽन्यमामो दृरे, अथवा 'इहाताः' परिधा-न्तासतो विश्राम्यन्तः समायाताः, स्तेन-धापदभयाद्वा सार्धमन्तरेणागन्तु न शक्यते स न सार्थिक्षेरेण रुज्यः, नदी वा प्रज्युदाः एतैः कार्णयीमान् ग्रामे प्रशितानगमम्प्राप्ता अपान्तराल-20 मामे भिक्षावेलायां पाप्ताः, तत्र च वयति. दुर्रुगा, अतो गार्गयद्विरिप तन्क्षणं न स्ट्या, नती पृक्षादिमुले बहिः शिखा सर्वेऽपि 'समुदानं' भेद्यं रिण्डिनवन्नः ॥ २९२८ ॥

तिश्र हिण्डमानिरमृयां चमतीनामेकतरा दृष्टा भवति-

कम्मार-णंत-दारग-कलाय-सग भुजमाणि दिय दिहा । तेसु गएसु विसंते, जहिँ दिहा उभयभोमाई ॥ २९२९ ॥

कर्मारा:-होहकारालेपां झाटा वर्गारशाला, नन्तरानि-वन्ताण नानि गत न्यूयने सा नन्तकशाला, दारका.—बालकाले यत्र दिवयतः पटनित मा दारकशाला हैनशाहित्यर्धः, फलादाः-सुवर्णकारानीया जाला कलावजाला, नमा-बहुतनीरवेशनस्थानम् । गरा मनाघटरः धालापर्यायोऽनः प्रत्येकमभिनम्बध्यते—कर्गारमभा नन्तरमभा इत्यदि । एनाग्यमेकनग दिवा शुँज्यमाना दृष्टा. तनी व्यतीनायां मन्ध्यायां 'तेषु' लोहकामिटपु गनेषु नाननुहास्य सपः

कमीरशालादो प्रविशन्ति । तत्रापि यत्र दिवयन एव (ग्रन्थायम्—८५०० । सर्वेग्रन्था-प्रम्—२०७२०) 'डमयम्मिकं' उचार-प्रश्रवणम्मिकालक्षणे आदिशब्दात् कालम्मिश्च यत्र 'दृष्टाः' प्रत्युपेक्षिता मवन्ति तत्र रजन्यामपि गन्तुं कृष्यते, अत्र च सृत्रनिपातः ॥ २९२९ ॥

ण्यमापयादिके मृत्रे स्योऽप्यर्थतो हित्तीयपदमुच्यते—पृत्रेमप्रखुपेक्षितासपि सस्तारकोचार-तप्रथवणमृमिषु तिष्ठन्ति । कथम् ^१ हत्याह्—

मुद्धे व देउलाई, वाहिं व ठियाण होइ अद्गमणं । मावय मुक्कोडग तेण वाल मुसयाऽयगर साणे ॥ २९३० ॥

'भध्ये वा' श्रामादं मध्यभागे यद् देवकुछम् आदिग्रहणात् कोष्ठकशान्य वा तत्र दिवसती विधिना स्थिताः, अथवा श्रामादेः 'बहिः' देवकुछादे। सकछमपि दिवसं स्थिताः, तता छोक10 सत्र स्थितान् दृष्ट्वा त्र्यात्—"मावय" इत्यादि, अत्र देवकुछादे। रात्रे। ब्वापदः—सिंह-च्याशादिसद्धयं भवति अतो नात्र भवतां वस्तु युज्यतः अथवा—मकाटका अत्र रात्राञ्चिष्ठस्ते,
स्तेना वा द्विविधा अत्र रजन्यामिषपतिन्त, व्याछो वा मधः म न्वादित, मशका वा नियायामत्रामिद्दवन्ति, अजगरो वाऽत्र गत्रे। गिछति, ब्वानो वा समागत्य दशतिः एतेर्व्यावातकारणे
रात्रावन्यस्यां वसते। 'अतिगमनं' प्रवेशो भवति ॥ २९३०॥ इदमेव स्फुटनरमाह—

दिवसहिया वि रत्ति, दोसे मकोडगाइए नाउं । अंतो वयंति अर्च, वसर्हि वहिया व अंतो उ ॥ २९३१ ॥

देवकुळादें। दिवसतः स्त्रिना अपि रात्रें। मर्कोटकादीन् दोपान् ज्ञात्वा यदि 'अन्तः' प्रामाभ्यन्तरे स्थिनास्ततो प्रामान्तर्वीर्धनीमेवान्यां वसिनं वजन्ति, तद्पाष्ठे। वाहिरिकायां गच्छन्ति । अथ दिवसतो बहिर्देवकुळादिषु स्थिताः तनस्त्रवापि रात्रें। पूर्वोक्तान् दोपान् मत्वा 20'बहिः' वाहिरिकाया अन्तः समागच्छन्ति ॥ २९३१ ॥

अथोक्तमेवार्थमन्याचार्यपरिपाठ्या मतिपाउयति-

पुट्यहिए व रत्ति, दङ्गण जणी भणाइ मा एत्थं । निवसह इत्थं सावय-तक्स्रमाइ उ अहिछिति ॥ २९३२ ॥

देवकुलादी प्वेस्थितान् साघृन् रात्री दृष्ट्वा बनी मणति, यथा—माऽत्र निवसत, यतोऽत्र १३ रात्री द्वापद-तस्करादयः 'अभिछीयन्ते' समागच्छन्ति ॥ २९३२ ॥

> इत्थी नर्षुंसओ वा, खंघारो आगतो ति अइगमणं । गामाणुगामि एहि वि, हांज विगाली इमहिं तु ॥ २९३३ ॥

छोको त्र्यात्—अत्र देवकुछादी रात्री स्त्री वा नपुंसको वा समागत्योपसर्ग करोति, स्कन्यावारो वा आगतः, एवमादिमिः कारणवीहिरिकायाः मकागादन्नः 'अतिगमनं' प्रवेशं कुर्युः ४० मामाभ्यन्तराद्वा वहिर्गच्छेयुः । एवं तावद्व्वनिर्गनानां यतनोक्ता । अथ विहरतां प्रतिपादते— ''गामाणुगामि'' इत्यादि, ये मासकच्यविविना प्रामानुप्रामं विहरन्ति तेषामपि 'एमिः' वक्ष्य

१ व्यते । एवंत्रिषे पूर्वप्रत्युपेश्रिते शय्या-संस्नारके सन्ध्यासमये तिष्ठतां प्रस्तुत-सूत्रनिपातो द्रष्टव्यः ॥ २९२९ ॥ ऋ ॥

20

माणः कारणविकालो भवेत् ॥ २९३३ ॥ तान्येवाह---

वितिगिद्व तेण सावय, फिडिय गिलाणे च दुव्वल नई वा। पडिणीय सेह मत्थे, न उ पत्ता पढमविइयाई ॥ २९२४ ॥

यत्र क्षेत्रे मासकल्पः कृतर्निगाद् यमन्यं आमं प्रस्थिताः सः 'व्यतिकृष्टः' दूरदेशवर्ता, न्तेना वा द्वितिधाः स्वापदा वा पथि वर्षन्ते तद्धयात् चिरलब्धमार्थन सह आगताः, 'स्फिटिता वा' ह सार्थात् परिश्रष्टास्ततो यावन्मार्गमवतीर्णाग्वावहुत्तुरं समजनि, यहा साबुः कोऽपि स्किटितः स यावदन्वेपितलावचिरीभृतम् , ग्टानो वा साधुरधुनोध्यिनः झनः झनः समागच्छति, दुर्वहो वा स्वगावेनव कश्चित् सोऽपि न शीघ्रं गन्तुं शक्कोति, नटी वा पूर्णा यावदवरिच्यते तावन् प्रती-क्षमाणाः स्थिताः, यहा नदी यावन् परिस्यगगनेन परिहियते तावद् विलग्नो लग्नः, प्रत्यनीकर्वा पन्थाः समन्ततो रुद्धः ततो यावदपरेण मार्गेणागम्यते तावदुत्तुमं जानम् , दांद्यो या कथिदु-10 त्पन्नः स पथि प्रतीक्षितः, अथवा तस्य दिवा वजनः सागारिकं मार्थी वा शनैः शनैरागच्छिते, यद्वा तं सार्थं प्रतीक्षमाणानां विकालः सञातः । एनः कारणः प्रयगद्वितीयपारुप्योः आदिग्र-हणात् तृतीयचतुथ्यौरिष पारुप्योः 'न तु' नैय प्राप्ता भवेयुः, अर्थादापन्नं विकाले रात्रे। प्राप्ताः, ततथ तदानीं प्राप्तिकेविधिना ग्रामे प्रवेष्ट्य नाविधिना ॥ २९३४ ॥ यत आह-

अइगमणे अविहीए, चउगुरुगा पुन्ववित्रया दोया।

आणाइणो विराहण, नायच्या संजमाऽऽयाए ॥ २९३५ ॥

ययविधिना 'अतिगमन' प्रवेशं कुर्वन्ति तनश्चत्यारो गुरुकाः 'पृर्ववर्णिताध्य' पद्कायविस-धना-ज भैस्खलन-प्रपतना ⊳दयो दोषा अत्रायनानव्याः, आज्ञाद्यध्य दोषाः, विरायना च संयगात्गविषया ज्ञातन्या, यत एत्रमतो विधिना प्रत्रेष्टन्यम् ॥ २९३५ ॥

कः पुनर्विधिः ! इति अत आह—

सब्दे वा गीयत्था, मीसा वा अजयणाएँ चडगुरुगा। आणाइणो विराहण, पुटिंग पविसंति गीयत्था ॥ २९३६ ॥

ते साधवैः यदि गर्वेऽपि गीताबीननः सर्व एव प्रविज्ञानि । अथ गिश्राननो यदि 'अय-त्तनया' -< बेंक्ष्यमाणयतनामरुत्या :- प्रविशन्ति तदा चतुर्गुरुका., आज्ञादयो द्रोपाः, विराधना च संयमा-ऽऽत्मविषया । का पुनर्थनना ! इति अन आह्—'पूर्व' प्रथमं नावरु गीतार्थाः 23 मिवनित, पश्चादगीताथी इति सद्वर्गाधामहैतार्थः ॥ २९३६ ॥ धर्यनतेत्र विद्वनौति-

जह सञ्वे गीयन्था, सञ्चे पविसंति ने बसहिमेव ।

विहि अविहीएँ पवेसी, मिन्से अविहीई गुरुवा उ ॥ २९३७॥ यदि ते साधवः मर्वे गीनायीनन गर्नेडिंग ने नगरमेव वर्गान प्रविद्यानि । जपार्यानार्थ-गिधास्त्रे ततो द्विपा प्रवेशः—विधिना अविधिना च । यशविधिना प्रतिशन्ति उत्तर्धार्गुरमः । :) अविविनीस-यवगीत्र धीपक्षः संदेशिः प्रविक्रीन ॥ २०३७ ॥

कः पुनस्तव दोग्रे एवनि ! इनि उच्यते —

विष्यिग्णामी अयद्येश य दुक्तं च चौदणा होह। पुरनी जयणाकरणे, अकरों पन्ने वि संख चता ॥ २९,३८ ॥

र्थाद सुगाणां पुग्ता उद्योतन प्रकादिकां वस्त्रमाणां यतमां कृतिन ततस्त्राः विश्रीयासी भौत्—म वर्तने अभिकायनपानमः कर्नुचिन्युतिहस्य मध्यनि त्येव सर्य समारमन्ते इति। श्रम्यवैद्धि नेरापुरन्येन—र्यवदर्काकं नया सर्वनयनीरामेवंवियसिनिः तस्थ प्रतिगस-भारको दीताः । तथः तेरां मुलायां पश्चारकिकायणहर्द्धाद कुर्वनसरगं वा सामाच में वितया-मत्यानी हुन्दं मे दता महिन, निद्या स्वयन्त्रेन वा अग्निक्षयपण्यमं कृता सम्ययमान् १८ दाखन' इत्यदि एत्युनदक्तनः सन्यह् छिटां न प्रतिभवन इत्यर्थः । वर्षेन्द्रोपस्य देतां वैद्योतिदंतरां न छुदंन्ति ननः 'छदेंऽरि' आचार्यात्रः पांत्यचा महन्ति, तेरां मर्न-धतादि-क्षित्रलंबिरायनाष्ट्रहादान् । रान्याद् दिल्या प्रवेष्टव्यस् ॥ २९३८ ॥ तमद विविधाद—

यादि काछन मिए, गीया पविनंति पुंछणे वेतुं। इंडल सम परिस्ने, सर्गित सजीइए चेव ॥ २०३० ॥

सुगान क्षीतः क्षित्रा स्वार्यस्या क्षेत्रकराति वाक्तरस्याति गृहीत्वा गीनार्थाः ५ मैयमनी शर्म > प्रविश्रन्ति । प्रविश्य व देवकुण-प्रमादीनि 'र्यासुन्तानि' परिसुन्यमान नि 'सन्योतीपि च' सर्वोर्गेतेत्र उर्वेतिःर्माहरुति मार्गेवन्ति । अय पूर्वकृतं उर्वेतिस्तव न प्राप्यते ततः स्वयंत्व <u> तत्रानयन्ति थानायर्थन्त यः । एतष्ट्रानदिन्दिकाः प्रन्युरेश्य स्वातानर्थान्त ॥ २०३६ ॥</u>

परिश्रुज्याण अपई, सुन्नागारे वर्षति सार्विए ।

अदुगुन्दामिय मद्भवाड तिब्बिले निचले चेव ॥ २०४० ॥ 23 परिमुक्यमामा वस्तिर्विद न स्म्बन तहा 'शुन्यामार' शुन्यगृहं गवेगयनि । तच 'अहु-मैह्मिने रायत्रेपरोहमीयुर्न 'मकार्ट' क्रारयुक्तं 'निर्दिणे सरीदिविकहिने 'निध्यले द्धं न पतितुकामम् < एंडियरं गरेवकीयम् । > अत्र चतुर्विः पर्वः वोदय महा मयन्ति । एयां च मध्ये यः प्रथमे महस्तदुर्गने शुन्यगुद्दे 'सानितने' प्रमार्दिने वसन्ति ॥ २०७० ॥

र्थंत्र एंत्रंषु रातांशंषु ताबद् विविग्द-

दह नाणर्यन कोई, गिहिना ना गंतु अवाना आहे। कालामयर्पयागण भृमिको पहुए तेर्व ॥ २९४१ ॥

यदि गृहिणः मेरिता अपि क्ये वित्वस्थित तत आपनार्था गत्या गीवार्थ आनयित । उटलेन च्यातिया कार्यमयर्गनानां स्थाः प्रावृत्तेत्त, कार्यसी महासूत्री कार्यकासूत्री श मंत्रास्थ्यी चेत्रकः ॥ २५४१ ॥

अमर्द य पर्देवस्मा, गीत्रालाकेचु दास्ट्रेंडेणै ।

१ स्योदियानयनादिको यतनां रूं० ॥ २-३ ४ % एत्रव्यानः पढः सा० ह० डे० मीन ए ४ सन्नापि खर्षेपां गीतार्थानां स एय विधिक्तयापि विनेयद्मनातुप्रहार्थे पुनरत्याह मः 🖫

विल पृंछणण इक्षण, मंतेण व जा पनायं तु ॥ २९४२ ॥

अथ प्रदीपो न प्राप्यने ननः प्रदीपखाननि गोपालकञ्चकं परिवाय तेन खगरीरं सुख्यिनं कृत्वा डारुडण्डकेन वर्गानं प्रमाजयन्ति । यानि च तत्र विक्रीनि तेषां पाठप्रोब्छनेन ''ढक्रगं'' ति स्थगनं कुर्वन्ति, मंग्रण चा तान्यभिमग्रयन्ति यावत् प्रशानं मञ्जातम् । प्रमाते तु पाद-शोब्छनादिकमपनयन्ति ॥ २२४२ ॥ Б

🗠 ऐवं सर्वेषां गीनार्थानां विधिरुक्तः । अथ गीनार्थामश्राणां नमवातिद्यिति--> एमेव य भूमितिए, हरियाई खाण-कंट-विलमाई। दोनदग्वज्ञणद्वा, पहिच इयरे पवेमंति ॥ २९४३ ॥

यथा सर्वेषां गीतार्थीनां विधिरुक्तम्त्रया अगीतार्थिमिश्राणामध्येवमेव ज्ञातन्यः । नवरं तान-गीतार्थान् वहिः स्थापयित्वा गीतार्थाः प्रविध्य < वर्गीतं गृहीत्वा नत्र 🔑 'मुमित्रिके' संज्ञा-10 कायिकी-कालम्मिलक्षणे हरित-वीजादीन् जन्तृन् साणु-कण्टक-विलादींश्च प्रत्यगयान् 'दोपह्रय-वर्जनार्थं सयमा-ऽज्यविराधनाल्खणटोपद्वयपरिहारार्थं प्रत्युपेक्ष्य तनः 'इतरान्' मृगान् वसर्ति प्रवेशयन्ति ॥ २९४३ ॥

> ठाणामई य बाहिं, नेणगदोचा व सर्वे पविसंति। गुरुगा उ अजयणाए, विष्यरिणामाह ते चेव ॥ २९४४ ॥

यदि वहिः स्थानं नास्ति यत्र मृगाः स्थाप्यन्ते ''तेणगडोचा व'' ति स्तेनक्रमयं वा वहि-र्वर्तते ततः सैर्य एत प्रविशन्ति । प्रविष्टाश्च यद्ययतनां कुर्वन्ति तुनश्चतुर्गुरुकाः, त एव च विपरिणामा-ऽप्रत्ययादयो दोषाः ॥ २९४४ ॥

अथ यतनामेव वयं न जानीम इति प्रश्नावकाशमाशङ्का तत्स्वरूपमाह-अविगीयविमिस्पाणं, जयण हमा तत्थ अंधकार्मिम । आणणऽणाभोगेणं, अणागयं कोह वारंह ॥ २९४५ ॥

20

15

अर्गातार्थमिश्राणां 'तत्र' वसतावन्यकारे इयं यनना—''आणणऽणामोनेणं' ति यथा ते भृगा नामागयन्ति-न जानते तथा प्रदीपस्यान्यव्यपदेशेनानयनं विघेयम् । अथ गृहस्योऽन्य-व्यपदेशेनोक्तोऽपि दीपं गृहीत्वा भीगच्छति ततम्नमनागतं गृहमपि गत्वा प्रज्ञापयन्ति यथा र्दापमानयति । तथा तं चानीयमानं यदि कश्चिद् वारयति ततस्तस्य शिक्षा प्रदातन्या । 25 विशेषचूणों तु-"अञ्चाणणे कोइ वारेइ" ति पाठः, अन्येन-गृहस्थेनामेरानयने विधीय-माने यदि कोऽप्यगीतार्था वारयति तनस्तस्य नोदना कर्चच्या ॥ २९४५॥ इँदमेव भावयति---

अम्हेहि अभिणओ अप्पणो ए आओ ए अम्ह अद्वाए ।

१ °छानि तानि पाद्पोब्छनेन स्थगयन्ति, मन्त्रेण मा॰॥

२ 🛂 🗠 एनदन्नर्गन पाठ. भाव नाम्ति ॥ ३ ⁴ > एतदन्तर्गन, पाठः कां० एव वर्तते ॥

४ 'सर्वेऽपि' गीताथी सृगाद्य सम्भूय प्रवि° ३ा०॥

५ °श्राणामपि 'तर्त्रच' चसती रजन्यां तिष्ठतामन्ध का ॥

६ नायाति भा०॥ ७ तामेच दुर्शयति का॰॥

आणेइ इहं जोईं, अयगोलं मा निवारेह ॥ २९४६ ॥

यदा गृही दक्षतया खयमेव ज्योतिरानयति तं च कोऽप्यगीतार्थो वारयति तदा स वक्तव्यः—असामिरभणितः खयोगेन यद्येष गृहस्थ आत्मनोऽर्थ 'नुः' इति संगये उताहो नु अस्मदर्थ 'इह' अस्मिन् स्थाने ज्योतिरानयति ततः किमसाकमेतदीयया चिन्तया ? । अत क एनमयोगोळकरूपं मा निवारयतेति ॥ २९४६॥

> गिहिणं भणंति पुरओ, अइतमसमिणं न पस्सिमो किंचि । आणंति जइ अबुत्ता, तहेव जयणा निवारंते ॥ २९४७ ॥

अथ ते गृहस्थाः स्वयं नानयन्ति ततो गीतार्था अन्यव्यपदेशेन तेषां गृहिणां पुरतो भणन्ति—'अतितंमः' अतीवान्धकारमिदम्, न पश्यामो वयं किश्चिदपीति । यद्येवम् 'अनुक्ताः' 10साक्षादभणिताः सन्तो ज्योतिरानयन्ति ततः सुन्दरमेव । यश्च तत्र निवारयति तस्य 'यतना' तथैव नोदना कार्यो ॥ २९४७ ॥

अथ ते गृहस्था अन्यन्यपदेशेनोक्तं नावबुध्यन्ते ततः किं कर्त्तन्यम् र इत्याह— गंतूण य पन्नवणा, आणण तह चेत्र पुन्वभणियं तु । भणण अदायण असई, पच्छायण मछगाईसु ॥ २९४८ ॥

15 गीतार्थेर्गत्वा चगव्दादगत्वाऽपि तत्र स्थितैर्गृहिणां प्रज्ञापना विधेया, यथा—न पश्यामी वृयमत्र विलादिकं स्थाणु-कण्टकादिकं वा, अत उद्योतो यथा भवति तथा कुरुत । एवं परि-स्फूटम्भिहिताः सन्तत्ते प्रदीपस्थानयनं कुर्वन्ति । यश्चागीतार्थो निवारयति तस्य 'तथैव' नोद-नायाम् ''अयगोर्लं मा निवारेह'' (गा० २९४६) इत्यादिकं पूर्वभणितमेव द्रष्टव्यम् । ''भणण' ति गृहिषु 'प्रदीपमानय' इति प्रज्ञाप्यमानेषु यो त्रवीति 'किमेवं सावद्यप्रवृत्तिं कार-20्यसि ?' इति तस्याप्र मिथ्यादुष्कृतभणनं कर्तव्यम् । "असई'' ति अथ गृहस्थः प्रदीपमानेद्वं नेच्छिति ततः ''अदायण पच्छायण मह्यगाईसु'' ति मृगाणामदर्भनाय मह्यकादिभिः प्रच्छाद्य प्रदीपः स्वयमानेतन्यः ॥ २९४८ ॥ अथेदमेवोत्तरार्द्धं विवरीषुराह—

गिहि जोई मग्गंतो, मिगपुरओ भणइ चोइओ इणमो । णाभोगेण मज्तं, मिच्छाकारं भणामि अहं ॥ २९४९ ॥

25 गृहिणां समीपे 'ज्योतिः' प्रदीपं 'मृगपुरतः' मृगाणा शृण्वता मार्गर्यंन् यदि केनचिन्नो-दितः—किमेवं सावद्यं कारयसि १ इति; ततोऽसौ गीतार्थ इत्थं भणति—अनामोगेन मयेद-सुक्तम्, अतोऽहं मिथ्याकारं भणामि, मिथ्यादुण्कृतं प्रयच्छामीत्यर्थः ॥ २९४९ ॥

> एमेव जइ परोक्खं, जाणंति मिगा जहेइणा भणिओ । तत्य वि चोइजंतो, सहसाऽणाभोगओ भणइ ॥ २९५० ॥

30 एवमेव यदि मृगाणा परोक्ष गृहे गत्वा गृहस्थो भणितः तटाऽपि यदि ते मृगाः कथमपि जानन्ति, यथा—एतेन साघुना गृहस्थः 'भणितः' प्रदीपानयनाय प्रेरितः; तत्राप्यपरेण नोचमानः सन् भणिति—सहसाकारेणानाभोगतो वा मयेदमुक्तम्, मिथ्या मे दुष्कृतमिति ॥ २९५० ॥

१ °तितामसम्' अतीत्र सान्घ° मा॰ ॥

20

गिहिगम्मि अणिच्छंते, सयमेवाणेइ आवरित्ताणं । जत्थ दुगाई दीवा, तत्तो मा पच्छकम्मं तु ॥ २९५१ ॥

अथ गृही प्रदीपमानेतुं नेच्छति ततः स्वयमेव महाकसम्पुटेन वा कर्परेण वा फल्पेन वा पदीपमाष्ट्रत्यानयति । तत्रापि यत्र गृहे 'द्विकादयः' द्वित्रिपभृतयः दीपाः ततो गृहादानयति । कुतः ? इत्याह—"मा पच्छकम्मं तु" ति यत्रैक एव दीपो भवति तत्रापरप्रदीपकरणलक्षणं ठ पश्चात्कर्म मा भूदिति कृत्वा ततः प्रदीपो नानेतव्यः ॥ २९५१ ॥ ततश्च-

> उज्जोविय आयरिओ, किमिदं अहगं मि जीवियहीओ। आयरिए पन्नवणाः नद्रो य मओ य पन्वहुओ ॥ २९५२ ॥

उद्योतिते प्रतिश्रये सति आचार्यो भणति—हन्त ! किमिदं भवता कृतम् ? । स प्राह— क्षमाश्रमणाः ! अहमद्यापि जीवितार्थी अतो विलादिपरिज्ञानार्थं मयेरथं कृतम् । तत आचार्यो 10 मातृस्थानेन तस्य प्रज्ञापना करोति—हन्त ! मृत एव त्वम् , क्रुतो भवतो जीवितम् ! यत एवं क्वन् पत्रजितः 'नष्टश्च' सन्मार्गपरिश्रष्टो 'मृतश्च' संयमजीवितविरहितो भवतीति ॥ २९५२ ॥

ॳथ पूर्वोक्तमेवार्थ विशेपयन्नाह—>

तस्सेव य मग्गेणं, वारणलक्खेण निंति वसभा उ । भूमितियम्मि उ दिहे, पचिष्य मो इमा मेरा ॥ २९५३ ॥

'तस्येव' ज्योतिरानेतुः साधोः 'मार्गेण' पृष्ठतः 'वारणारुक्ष्येण' निवारणव्याजेन वृषमा निर्गच्छन्ति। ततः 'भूमित्रिके' उचार-प्रश्रवण कालभूमिलक्षणे दृष्टे सित प्रदीपे प्रत्यिते "मो" इति निपातः पादपूरणे इयं 'मर्यादा' सामाचारी ॥ २९५३ ॥ अ तामेवाह—⊳

खरंटण वेंटिय भायण, गहिए निविखवण बाहि पिडलेहा । वसभेहि गहियचित्ता, इयरें पसाइंति कछाणं ॥ २९५४ ॥

येन प्रदीपानयनायाविरतकः पेरितो येन वा प्रदीप आनीतः तस्य गुरुभिः खरण्टना कर्त्तव्या । ततोऽसौ वेण्टिकां भाजनानि च गृहीत्वा "निक्खिवण" त्ति बहिः स्थाप्यते, निर्गच्छासाकं गच्छाद् न त्वया कार्यमिति । ततोऽसौ कैतवनिष्काशितो वहिःस्थितैः प्रतिलेखयति प्रति-क्रमणं च विद्धाति । ततो वृपभैर्गृहीतचित्ताः 'इतरे' मृगा गुरुं 'प्रसादयन्ति' प्रसन्नं कुर्वन्ति । ततो गुरवस्तं भूयोऽप्यानाय्य पञ्चकल्याणकं शायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ॥ २९५४ ॥

अथ कथं व्रपमा मृगाणां चित्तग्रहणं कुर्वन्ति ? इत्याह-

तम्ह य अम्ह य अट्टा, एसमकासी न केवलं सभया। खामेग्र गुरुं पविसउ, वहुसुंदरकारओ अम्हं ॥ २९५५ ॥

आर्याः ! युष्माकमस्माकं च सर्पादिपत्यपायरक्षणार्थमेष एवमकार्पात्, न केवलं खभयादेव, अत आगच्छत येन सर्वेऽपि 'गुरुं' क्षमाश्रमणं क्षमयामः, प्रविशतु 'बहुसुन्दरकारकः' प्रत्यपाय-१० रक्षकतया बहुकल्याणकरोऽसाकं भ्यः प्रतिश्रयम् । एवमुक्ता मृगा वृषभैः सह समागत्य गुरुं

१ ॰ एतदन्तर्गतः पाठ सा॰ त॰ डे॰ नास्ति ॥ २ ॰ १० एतन्मध्यगतमवतरण का० एव वर्तते ॥

३ °तः प्रत्युपेक्षते प्रतिक्रमणं मा॰ ॥ इ॰ १०६

35

प्रशादयन्ति तत्तो गुरवः शान्ययागा हुन्ते—आर्थः ! यूयनपि निर्दर्गायः सङ्घाताः ! ॥२९५५॥ यतः—

> असे वि विद्येहिंद, अलमजो ! अहव तुत्रम मरिसेमि । नेसि पि होट् बलियं, अकलमेयं न य तुदंति ॥ २९५६ ॥

इ. एए एवं कुर्वक्रन्यानी साइत् 'विद्वाविष्यति' विनाशिष्यति अत आर्थाः! 'अर्थं एर्यानम्साक्रमेतेन । सावते हुवने—अनाश्रमताः! न मृत्र एवं करियानि, एकवारमनरावं क्ष्मयन्तु मगवन्तः। गुरुतो मणिन्त—य्येवं ततेऽवं युक्ताकं मर्थवानि, परमेतस्य प्रवक्रत्याणकं प्राथितं प्रदीयते । एवद्वन्ते 'तिग्रमि' अर्गातार्थानां 'विक्रिक्त्' अर्थ्यं हृदयं मविन, यथा— नृत्तनवार्यमेनदिति । न च पश्चाद् व्योति स्तर्धनातौ नौदमानास्तुद्गाना, प्रतिनीदनया च पश्चाद्वयादयन्तीत्य्यंः ॥ २६५६ ॥

एने। निर्दा उ अंतो, बाहि निरुद्धे इमी निर्दा होइ। सावय तेणय पहिणीय देवयाए विद्या ठाणं॥ २९५७॥

प्र विविः 'जन्तः' शनाम्यन्तरे प्रविद्यनात्तकः । अय बहित्तिष्टतां विविक्त्यते—
र तेत्राव्यप्तिपतान्ते साय्दो विकाले वं शमं शमाः, परं द्वागित तत्र स्विगतिन, वत्ते ।

15 मिल्द्वे' स्विगिट्ढारे श्रामदो विकाले वात्त्रप्रदेः प्रवेशं न ज्यते इत्यदिकारणसम्ये विदिः

स्वित्तनां बदि श्वापद्यस्यं नेतन्त्रसयं प्रत्यतंत्रसयं वा सदिन वदा वस्त्यमानो विविः कर्षत्र्यो

सदिन, यादद् देवदाया आकृत्यनार्थे विविना 'स्यानं' क्रायोत्तर्योत्तरमं श्वाकेत्र कर्षत्र्यमिति

॥ २९५७ ॥ यदनानेवाह—

सृमिवर देख्छे वा, सिंह्यावरणे व रहियञावरणे । रहिए विज्ञा अचित्त मीम मचित्त गुरु आणा ॥ २९५८ ॥

बहितिष्ठतां यदि श्वपद्मदिनयं तता मृतिगृहे देवहुळे व आवर्ष-क्यादं तेन सहिते विष्टित । गायावां माइदल्य क्रायातेन पूर्वान्तिनातः । व्य सकरादं न मान्यते वत आव-र्याहेनश्रेत तिप्टित, ५ वैत्र विष्ण्य हारं सगयित, ५ देशां वा विष्णायोगेण वन्यं विद्यवि यथा श्वारद्वारयो न प्रविद्यति । विष्ण्या अस्यवे अविद्यत्रितः, वद्याते श्वास्त्रितः, वद्याने स्विद्यति सगयितः । वद्याने "तृत आन्त" विद्यती सगयितः । वद्याने "तृत आन्त" विद्यती सगयितः । वद्याने "तृत आन्त" विद्यती स्वति यः सगर्यो नवि देन वय्यानय्ये विद्यान्ति प्रविद्यायिति । विद्यति गायानगसार्थः ॥ २९५८ ॥ वर्ष्यनमेव विद्वतिष्टुत्वः—

सकवाडिम्म उ पृथ्वि, तस्मुञ्सई आपईति उ कवाई । विज्ञाएँ कंटियाहि व, अचित्त-चित्ताहि वि टयंति ॥ २९५९ ॥ पूर्वे एकपाट स्तिगृहे देवकुने वा सादव्यन् । तसासति अक्रयटे तिष्टन्तः कपटनन्यत

१ < > एतिहास्त सः पञ दां॰ एवं वर्तते ॥ २ भाषा यतना कर्त्तवा, यावद् मः ॥ ३ < > एतिहास्तः पञ मः वर्षे॰ वर्तते ॥ ४ °ति सङ्ग्रसाया भः ॥

आनयन्ति । अथ नास्ति कपाटं ततो विद्यया द्वारं स्थगयन्ति । तद्भावे कण्टिकाभिः प्रथमम-चित्ताभिः ततो मिश्राभिः ततः सचित्ताभिरिष स्थगयन्ति ॥ १९५९ ॥

> एएसि असईए, पागार वई व रुक्ख नीसाए। परिखेय विज अचित्त मीस सचित्त गुरु आणा ॥ २९६० ॥

'एतेषां' भूमिगृहादीनामसति प्राकारं वा वृतिं वा वृक्षं वा 'निश्राय' निश्रां कृत्वा तिष्ठन्ति 15 तत्रापि विद्यया परिक्षेपं कुर्वन्ति । तदभावे कण्टिकाभिर्यथाक्रममचित्त-मिश्र-सचिताभिः परि-क्षिपन्ति । गुरवश्चाज्ञाप्ररूपणां वक्ष्यमाणां कुर्वन्ति ॥ २९६० ॥

> गिरि-नइ-तलागमाई, एमेवागम ठएंति विजाई। एग दुगे तिदिसिं वा, ठएंति असईऍ सन्वत्तो ॥ २९६१ ॥

गिरिं वा नदी वा तडागं वा आदियहणाद् गत्तीदिक वा निश्रां कृत्वा तिष्ठन्ति । तेषां च 10 यत्रेक एव प्रवेशस्तत्र प्रथमतस्तिष्ठन्ति, तद्भावे यत्र द्वयोर्दिशोः प्रवेशः, तद्पासौ यत्र तिसृषु दिक्ष प्रवेशस्तत्रापि तिष्ठन्ति । तेपा च 'आगमं' प्रवेशमुखम् 'एवमेव' विद्यादिभिः स्थगयन्ति । "असईय सबत्तो" ति प्राकारादिनिश्राया एकप्रवेशाटीना वा गिरिप्रभृतीनामप्राप्तावाकारों वसन्तः सर्वतो विद्यापयोगेण स्थगयन्ति दिशां वा वन्धं कुर्वन्ति । विद्याया अभावे कण्टिकाभिः सर्वतो वृतिं कुर्वन्ति । तदभावे गुरव आज्ञापरूपणां कुर्वन्ति ॥ २९६१ ॥

केन विधिना ! इति चेद् उच्यते---

नाउमगीयं विलणं, अविजाणंता व तेसि वलसारं। घोरे भयम्मि थेरा, भणंति अविगीयथे अत्थं ॥ २९६२ ॥

ज्ञात्वा कमप्यगीतार्थं 'विलनं' समर्थम्, यद्वा अविजानन्तः 'तेपां' स्वसाधूनां 'वलसारं' पराक्रममाहात्म्यम् , कस्य कीद्दशः पराक्रमो विद्यते इत्येवमजानन्त इत्यर्थः, 'घोरे' रैाद्रे श्वापदा- 20 दिभये 'स्थविराः' आचार्याः 'अविगीतस्थैर्यार्थम्' अगीतार्थस्थिरीकरणार्थे भणन्ति ॥ २९६२ ॥

कथम् १ इत्याह-

आयरिए गच्छमिम य, कुल गण संघे य चेइय विणासे। आलोइयपिंडकंतो, सुद्धी जं निजरा विउला ॥ २९६३ ॥

षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्यमेदाद् आचार्यस्य वा गच्छस्य वा गुरुस्य वा गणस्य वा सङ्घस्य वा 25 चैत्यस्य वा विनाशे उपस्थिते सति सहस्रयोधिपभृतिना सवीर्यमहापयता तथा पराक्रमणीयं यथा तेपामाचार्यादीनां विनाशो नोपजायते । स च तथा पराक्रममाणो यद्यपराधमापन्नस्तथाप्यालो-चितप्रतिकान्तः ग्रुद्धः, गुरुसमक्षमालोच्य मिथ्यादुष्कृतप्रदानमात्रेणैवासौ ग्रुद्ध इति भावः । कुतः ? इत्याह—'यद्' यसात् कारणाद् 'विपुला' महती 'निर्जरा' कर्मक्षयलक्षणा तस्य भवति, प्रष्टालम्बनमवलम्ब्य भगवदाज्ञ्या प्रवर्तमानत्वादिति ॥ २९६३ ॥ 30

सोऊण च पन्नवणं, कयकरणस्ता गयाइणो गहणं। सीहाई चेव तिगं, तवबलिए देवयद्वाणं ॥ २९६४ ॥

१ एतद्मे अन्थामम्-५००० इति त॰ डे॰ मो॰ छे॰॥

25

ण्वंतियां प्रज्ञापनां शुला यः शृतकरणः—सहस्योविष्रमृतिकलास गदाया आदिशब्दार् लगुडस वा प्रहणं मवति । गृहीला च गदादिकपना गुन्द त्रवाति—भगवन् ! दोरतां विश्वलाः सर्वेऽपि साववः, अहं सिंहार्दानां निवारणां करिप्यामि । ततः सुमाः साववः । स पुनरकाकी गदाहस्तः प्रतिजायद्वतिष्टने । तस च प्रतिजायतः निहित्रकं समागच्छेन, आदिशब्दाद् विव्यावादिपरिषदः । तत्र च बृद्धमस्प्रदायः—

सी साह गयाहरथा पिडयरमागा चिट्ट । नवर सीहो आगतो । तेण ईसि ि आहतो नाहरूर गंतुं मुंतो । अन्नो सीहो आगओ । सो चितेह—सो चेव पुणो आगओ । तुओ गाढ- तुरं आहओ । सो नम्मंना पढमम्म आरओ मुओ । अन्नो वि सीहो आगओ । सो चितेह— तुरं पि वारं सो चेव पुणो आगओ । तुहं विह्याओं विलयपर आहुओं । नस्संतो वीयस्स 10 आरओ मुओ । तुओ वोलिया खेमण स्वणि ति ॥

इंद्रग्रस कृतकरणसामात्रे यः 'तपार्वाळकः' विक्रष्टतपमा वर्ळायान् क्षपकः स देवताया आकृत्यननिमित्तं 'सानं' कायोत्सर्गं करोनि । एतद्यतो भावयित्यते ॥ २९६७ ॥ अथ तेन कृतकरणसावृना यामातिकपनिकमणवेळायां यथा गुरुसमक्षमाळे चितं तथा प्रतिपादयति—

हंन मिम पुरा सीहं, खुडुयाह ह्याणि मंद्रथामा मि ।

15 निमाऽऽचाए सीहो, रति पहुआ मया न मुको ॥ २९६५ ॥

क्षमाश्रमणाः ! 'पुरा' पूर्वमहं प्रबच्छारीरतया खुडुक्षामात्रेणेव सिंहं हन्ताऽस्ति, इटानीं तु मन्द्रस्तामाऽन्यि ततः ''तिद्याऽऽवाए'' चि विभक्तिच्यत्ययात् 'त्रित्वापातेष्ठ' आगमनेषु गडावा-तेन सिंहो रात्रे। मया प्रहतः परं 'न सृतः' नाषद्राणः । एवमान्नोच्य मिथ्यादुष्कृतं दत्तवान् । एतावतेव चासो शुद्धः, अदुष्टर्गरणामत्वात् ॥ २९६५ ॥

निनेहिँ निन्न सीहा, आसम्न नाइद्र द्रे य ।

निग्गयजीहा दिङ्का, स चावि प्रद्वा इमें मणइ ॥ २९६६ ॥

प्रमात निर्गत्य पन्यानं गच्छिद्धः त त्रयः सिंहा निर्गतिज्ञिह्य हृष्टाः । तत्रेक आपक्षे, हिनीयो नातिदृरे, नृतीयन्तु दृरे । स च आचार्यः पृष्टः—आर्थ ! किमेवं सिंहत्रयं विपन्नमवछोक्त्यते ? । ततः स इदं मणति ॥ २९६६ ॥

मा मरिहिद्द ति गार्दं, न आहुओं नेण पहमुत्रो दुरे । गारतर निद्दय तद्द्यों, न य में नार्य नहऽस्त्रों ॥ २९६७ ॥

मगवन्! यदा प्रथमः सिंह आयातसाता मया 'मा मरिप्यति' इति इस्ता गार्ड नाहनसे-नामी दूरे गत्ना विषयः। द्वितियस्तु 'स एवार्य मृयोऽप्यायातः' इति बुद्धा गाइतरमाहतः तेनासी नामने नातिदूरे। तृतीयस्तु द्वितीयादि गाइतरमाहतस्त्रेनामी प्रत्यासन एव मृमाने गत्न अस्तः। न च मया ज्ञातम्, यया—अयमन्यान्यः सिंहः समागतो न स एवेति॥ २९६७॥ ईस्झस इतकरणसामावे देवतायाः कायोत्सर्गः कर्तव्यः, स च केन कियन्तं वा काउं यावन्! इति अत्रोच्यते—

१ 'सायातम्, आदि' मा॰ ॥

20

खमओ व देवयाए, उस्सम्म करेइ जाव आउद्या । रक्खामि जा पभायं, सुवंत जङ्णो सुवीसत्था ॥ २९६८ ॥

क्षपको वा देवताया आकम्पनिमित्तं कायोत्सर्गं करोति यावदसौ 'आवृत्ता' आराधिता सती ब्रूते—भगवन् ! पारय कायोत्सर्गम्, यावत् प्रभातं तावदहं श्वापदाद्यपसर्गं रक्षामि, स्वपन्त यतयः सुविश्वस्ता इति ॥ २९६८ ॥

॥ रात्रिभक्तप्रकृतं समाप्तम् ॥

व स्त्र म कुत म्

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा रातो वा वियाले वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंवलं वा पायपुंछणं वा पडिगाहित्तए ४४॥

अथास्य सूत्रस्य कः सम्बन्धः ² इत्याह—

जह सेजाऽणाहारो, वत्थादेमेव मा अइपसंगा । दियदिष्टवत्थगहणं, कुजा उ निसिं अतो सुत्तं ॥ २९६९ ॥

यथा शय्या—वसितः अनाहार इति कृत्वा रात्रौ प्रहीतुं करुपते, एवमेव वस्नादिकमि 15 किल्पप्यते इत्यतिप्रसङ्गाद् दिवादप्टस्य वस्नस्य 'निशि' रात्रौ प्रहणं मा कुर्यादित्यत इदं सूत्र-मारभ्यत इति ॥ २९६९॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—नो कल्पते निर्श्रन्थानां वा निर्श्रन्थीनां वा रात्रौ वा विकाले वा वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादपोञ्छनं वा प्रतिग्रहीतुमिति सूत्राक्षरगमनिका ॥ अथ भाष्यविस्तरः—

रातो वत्थग्गहणे, चउरो मासा हवंति उग्घाया । आणाइणो य दोसा, आवज्जण संकणा जाव ॥ २९७० ॥

रात्री वस्त्रमहणे चत्वारो मासा उद्धाताः प्रायश्चित्तं आज्ञादयश्च दोषाः । तथा यथा रात्री भक्तमहणे मिथ्यात्व-पद्कायविराधनादयो दोषा उक्ताः यावत् पञ्चस्रपि प्राणातिपातादिष्वापत्ति- स्तद्विषया च शङ्का एतत् सर्वमिष दोषजालं रात्री वस्त्रमहणेऽपि तथैव वक्तव्यम् ॥ २९७० ॥ 25

चैतश्चैवमतो न प्रहीतन्यं रात्रौ वस्नम्, कारणे तु गृह्णीयादपीति दर्शयति—>
 विदृं विदे विवित्ता, पिंडसत्याई सिमच रयणीए ।

ते य पए चिय सत्था, चिलहिंतुभए व इको वा ॥ २९७१ ॥

१ प्रतदन्तर्गतः पाठ भा० त० डे० नास्ति ॥ २ विद्यम्मि विह विवित्ता भा० ता०। एतदमुसारेणैव भा० टीका। दृश्यता पत्र ८४० टिप्पणी १॥

20

25

हितीयपैद्मत्रोच्यते—'विहे' अव्वनि 'विविक्ताः' मुपिताः सन्तः प्रतिसार्घोदिकं 'समेत्य' प्राप्य रजन्यामि वल्ल-प्रतिप्रहादिकं गृहन्ति । तत्रापि कथम् **? इत्याह—ता**त्रुमाविप सार्थी 'प्रगे' प्रातरेवानुद्रते सूर्यं चलिप्यतः, 'एको वा' अन्यतरः सार्थप्रतिसार्थयोर्मध्ये चलिप्यतीति मत्वा रात्राविष ग्रहणं कुर्वन्ति । अत एव चोत्सर्गपदेऽध्वा गन्तुमेव न कल्पते यत्रैते दोषा उत्पद्यन्ते 511 २९७१ ॥ तथा चाह-

उद्दरे समिक्ते, अद्वाणपवज्ञणं तु दप्पेण । लहुना पुण सुद्वपंद, नं वा आवर्ज्य नत्य ॥ २५७२ ॥ यहैंयं रात्रिमक्तमूत्रे > व्याख्यातार्था (गा० २८७८) ॥ २९७२ ॥ द्वितीयपदमाह— नाणहु दंसणहा, चरिचहा एवमाइ गंतव्वं । उचगरण पुट्यपडिलेहिएण सत्थेण गंतव्यं ॥ २९७३ ॥

इयमपि गतार्था (गा० २८७९) ॥ २९७३ ॥

सत्ये विविचमाणे, असंजए संजए तदुभए य । मगौतें जयण दाणें, छिन्नं पि हु कप्पई चेतुं ॥ २९७४ ॥

ज्ञानाद्यर्थमध्यानं प्रतिपन्नानामपान्तराले चतुर्वियाः सेना भवेयुः—एके असंयतपान्ताः १ 15 अन्ये संयतपान्ताः २ अपरे तदुमयपान्ताः २ अन्ये तदुमयमद्रकाः १ । तत्रासंयतपान्तैः स्तेनैः सार्थे 'विविच्यमाने' मुख्यमाणेऽत एव साबूनां पार्श्वाद् वस्त्राणि मार्गयति यतनया दानं कर्चन्यम् । प्रत्यर्ध्यमाणं च च्छित्रमपि तदेव वसं प्रहीतुं कल्पते नान्यदिति सङ्गहगाया-समासार्थः ॥ २९७१ ॥ अथैनामेन निनरीपुराह—

> संजयभदा गिहिमदगा य पंतोमए उभयभदा। तेणा होति चउदा, विगिचणा दोमु त् नहणं ॥ २९७५ ॥

एक स्ता: संयतमद्रका परं गृहस्यमानाः, अँपरे गृहस्यमद्रकाः परं संयतपान्ताः, अन्ये डमयेपामपि प्रान्ताः, अपरे डमयेपामपि मद्रकाः, एवं खेनाश्चनुर्विया मवन्ति । अत्र च हिर्तायतृर्ताययोर्हयोर्भङ्गयोर्यतीनां 'विवचनं' वल्लेम्यः पृथकर्णं भवति ॥ २९७५ ॥

अय यत्र संयता न त्रितिकाः 🗸 गृहसास्त त्रितिका 🕨 तत्र त्रिविमाहं—

नइ देत्रजाइया नाइया व न वि देति लहुग गुरुगा य। सागार दाण गमणं, गहणं तस्तेवं नऽन्नस्त ॥ २९७६ ॥

सामनो यद्ययाचिताः सन्तो वल्लाणि गृहिणां ययच्छिन्त तदा चतुर्रह्य । अय याचिताः मन्तो न प्रयच्छन्ति तदा चत्वारो गुरवः । अतः 'साकारं' प्रातिहारिकं भणित्वा प्रयच्छन्ति, यथा—भनद्भिः यत्यर्पणीयमिदमसाकं यद्यर्नान्वर्तमाना गृहं वा गता अन्यद् वस्नं रुभघ्ने ।

१ °पदे 'बिहे' मा॰ ॥ २ < > एउटन्दर्गतः पाठः झाँ॰ एवं वर्तते ॥

२ काः ४। यंत्र च गृहस्या त्रितिकास्तत्र तेषां बस्त्राणि मार्गयतां यतन्या मा॰ ॥

४ °ति निर्वृक्तिगाथा° द्या । ५ एके गृह° त॰ है॰ मो॰ है॰ ॥

६ < 🗠 एनदन्नर्गतः पाठ- सा० ऋं० एव वर्तते ॥ 😗 व्य बन्थस्स सा० क्रां० विना ॥

ħ

'गमनं नाम' येषां गृहस्थानां तद् वस्तं प्रदत्तं ते यद्यन्येन पथा गच्छिन्ति ततः साधुभिरिष तेनैव पथा गन्तव्यम् ; यद्यन्येन व्रजन्ति ततश्चतुर्रुषु । यदा तेऽध्वनो निर्गता भवन्ति तदा छिन्नस्यापि तस्येव वस्तस्य प्रहणं कर्तव्यं नान्यस्य ॥ २९७६ ॥

ततः पुनर्वस्तं कीद्यं दातव्यम् ? इत्याह-

दंडपिडहारवर्ञं, चोल-पडल-पत्तर्वधवर्ञं च । परिजुण्णाणं दाणं, उद्घाह-पञोसपरिहरणा ॥ २९७७ ॥

महती जीर्णकम्बिका दण्डपरिहार उच्यते, तद्वर्जम्, चोरुपट्ट-पडरुक-पात्रवन्धवर्जं च यानि शेपाणि परिजीर्णवस्त्राणि तेपामुड्डाह-प्रद्वेपपरिहरणार्थं दानं कर्त्तव्यम् । उड्डाहो नाम—अहो । अमीपामनुकम्पा ये विविक्तानामप्यस्माकं चीवराणि न प्रयच्छन्ति, प्रद्वेपो नाम—अप्री-तिकम्; तद्वशाच प्रान्तापनादयो दोपास्तत्परिहरणार्थं दातव्यम् ॥ २९७७ ॥

अथ ''छिन्नं पि'' ति (गा० २९७४) योऽयमपिशव्दस्तत्स् चितमिदमपरमाह— धोयस्स व रत्तस्स व, अन्नस्स वऽगिण्हणम्मि चउलहुगा।

तं चेव घेतु घोडं, परिभुंजे जुण्णमुज्झेला ॥ २९७८ ॥

यदि तैर्गृहस्थेस्तद् वस्तं धोतं वा रक्तं वा तथापि तैस्येव ग्रहणं कर्चव्यम् । अधासाधु-प्रायोग्यं कृतिमिति मत्वा न गृह्णन्ति अन्यस्य वा ग्रहणं कुर्वन्ति तदा चतुर्रुघवः । अतस्तदेव 15 वस्तं गृहीत्वा क्षारादिना धौत्वा च साधुप्रायोग्यं कृत्वा परिभुज्ञते। अधातीव जीण ततः 'उज्झेयुः' परिष्ठापयेयुरित्यर्थः ॥ २९७८ ॥

ं गतः प्रथमो भङ्गः । अथ 'गृहस्थमद्रकाः सयतप्रान्ताः' इति द्वितीयो भङ्गो भाव्यते तत्र भूयश्चतुर्भङ्गी—संयत्यो विविक्ता न संयताः १ संयता विविक्ता न सयत्यः २ संयत्योऽपि विविक्ताः संयता अपि विविक्ताः ३ न सयत्यो नापि सयता विविक्ताः ४ । अत्र विधिम-20 मिधित्सुराह—

सद्वाणे अणुकंपा, संजय पिंडहारिए निसिट्टे य । -असईअ तदुभए वा, जयणा पिंडसत्थमाईसु ॥ २९७९ ॥

यंत्र संयता गृहिणश्च विविक्ता न संयत्यः तत्र संयतीनां स्वस्थानं साधवः तत्रानुकम्पां कर्त्तव्या, साधूनां वस्तं वातव्यमित्यर्थः, साधुमिरिष तत् प्रातिहारिकं श्राह्मम् । यत्र सयत्यो 25 गृहस्थाश्च मुपिता न सयताः तत्र साधूनां सयत्यः स्वस्थानं तासां वस्त्रदानेनानुकम्पा कर्त्तव्या, तच्च 'निस्र्रष्टं' निदेजं दातव्यं न प्रातिहारिकम् । ''असईय'' ति अथात्मनोऽप्यधिकमुपकरणं नास्ति ततः प्रातिहारिकमि तासां दात्रव्यम् । तथा तदुभयं—साधुसाध्वीवर्गः तस्य विविक्तस्य वस्त्राभावे प्रतिसार्थादिषु 'यतना' वस्तान्वेपणविषया कर्त्तव्येति सङ्ग्रहगाथासमासार्थः ॥२९७९॥

अथेनामेव विवृणोति---

-30

न विवित्ता जत्थ मुणी, समणी य गिही य जत्थ उद्दूढा।

१ तदेव ग्रहीतव्यम् । अथा° भा॰ ॥ २ साधु-साध्वीजनैः स्तेनविविक्तैः सिद्धः स्वस्थाः नेऽनुकम्पा कर्त्तव्या । तत्र यत्र संयता कां॰ ॥ ३ निर्युक्तिगाथा॰ का॰ ॥

सङ्घाणऽणुकंप तर्हि, नमणुनियरासु वि तहेव ॥ २९८० ॥

यत्र मृतयो न विविक्ताः श्रमण्यश्च गृहिराश्च यत्र "उद्दर्ध ति मुपिताः तत्र 'ससाने' संय-र्तार्वोऽनुकृष्ण वर्षक्या । दाख संक्यो हिविकाः—संविधा असंविधाख । यदि सन्ति तदः सर्वासानी वादच्यानि । अय न सन्ति त्यन्ति वस्राठि ततः संविधसंयनीनां देयानि । ता ध्वति द्विविवाः—सनतोज्ञाः—सन्कोगिन्य इतराश्च—असान्मोगिन्यः । यदि पूर्यन्ते ततो हुयोर्गन वर्गयोद्धरेय वाद्ययानि । अयन पूर्यन्ते तदः सःसाने वाद्ययानि, समनोज्ञानामित्यर्थः। < अंतिङ्काद् या षृतिदुर्वसन्ताः मंत्रिया असंविधा वा स्वितगत्तरुग्यो वा भवन्तु नियनात् तामां वानव्यम् ५ ॥ २९८० ॥

यत्र सावते विविक्तनतेयं यदना-

10

लिंगड्ड मिक्ख सीए, निण्हेंनी पाडिहारियमिमेसु । अमणुनियरगिई। नुं, नं सहं तिन्नमं दिति ॥ २९८१ ॥

विक्रर्यं राज्यदस्यं रजोहरण-सुन्विके ब्रह्मतस्य, मिलार्थं तु पात्रवस्य-पटलकादि, शीतत्राणार्थं तु पावरणादि, एतत् सर्वमित प्रतिहारिकमेनेषु गृहन्ति । तथया—अमनोज्ञाः-अमान्मोगिकाः इदरे—प/र्श्वसादयः गृहिषाः—यनीनाः, < प्नेरु यदि प्राप्यते दतः सुन्दरमेव, ⊳ 13 अधेतेष्ठ न प्रास्यते ततः संयतीनामान हस्तात् प्रातिहारिकं प्राह्म । तनो 🗠 अँब्बोर्सार्नैः 🗠 यत् चोल्यङ्कदित्रं यदा ल्व्यं मन्ति तत्रा 'तन्निमं' तत्मद्यं प्रातिदारिकम् < अंसान्मोगिका-टीनां ⊳ 'दद्ति' प्रसर्वयन्ति । इह हिनीयमेंहे व्यास्थायनाने प्रथम-तृनीय-चतुर्थमहा अपि हेक्कः स्ट्रष्टा अवगन्तत्र्याः ॥२९८१ ॥ गते। हिर्तायमङः । अय तृर्तायमङं व्यास्थानयति—

> उहृहे व तदुमए, सपक्त परपक्त तदुमयं होइ। अह्वा वि समण समणी, समणुन्नियरें हु एमेव ॥ २९८२ ॥

टहुमंबे वा 'टह्दें' मुन्तितं सत्येवमेव यनना ज्ञातच्या । अय तहुमयमिति किम्रुच्यते ? इलाह—-८ न्वैंग्यः परण्यश्चेति तदुमणं मनति, ৮ लगशः-संयताः परपशः-गृहसाः । अथवा तहुमयं नान श्रमञाः श्रमञ्ज्ञश्च । यहा तहुमयं समनोज्ञाः 'इतरे' अमनोज्ञाश्च । < अपिछन्दाद् न्यवहितमन्दान्त्र योजिताद् ⊳ यदि वा संविद्या असंविद्याश्चेति तदुमवर्ष् 25|| २९८२ || तत्र स्विते स्ति त्रिविमाह—

> अंमण्रनेतर गिहि-संजईमु अमृद्द पडिसत्य-पर्छामु । तिष्ट्ऽहाए गहणं, परिहारिय एतरे चेव ॥ २९८३ ॥

१ °घाः—"समणुत्र" त्ति समनोद्वया-परस्वरसद्दशया सामाचार्या वर्त्तन्त इति सम-नोद्धाः-कां० ॥ २ ४. ५ एतर्न्दर्गतः पठः मः० नान्ति ॥ ३-४-५, ४ ५ एतर्न्दर्गतः पाठः छां० एव बर्सेंडे । ६ एवर्न्टर्गटः पाडः ट॰ दे॰ मो॰ हे॰ तस्ति । ७ < 🗠 एन्ट्न्टर्गटः पाडः हं॰ एन बर्तेंडे 🛭 ८ भू। एतेष्वपि मुपितेषु 'एवमव' अनन्तरोक्तो विधिर्दृष्ट्यः ॥ २९८२ ॥ यस्तु विशे-पस्तमुपर्धयति—समणुके द्यं ।। ९ समणुके मा॰ विशेषचूर्णां न । दसतां पत्र ८४३ हिनारी १। द॰ दे॰ दो॰ में॰ टे॰ महिश् चूर्णी बृहक्राध्ये व अमणुत्रे॰ इह वर्तदे ॥

अंमनोज्ञाः-असाम्मोगिकाः इतरे-पार्श्वस्थादयः, गृहिणः संयत्यश्च प्रतीताः, एतेषु विवि-क्तत्रया वस्त्राभावे प्रतिसार्थे वा पह्यां वा पञ्चकपरिहाण्या वस्त्रं मार्गयितव्यम् । संयतीनां त नास्ति पञ्चकपरिहाणिः, यदैव रुभ्यते तदैव गृहीत्वा गात्राच्छादनं ताभिः कर्त्तव्यम् । तच्च वस्तं 'त्रयाणा' लिङ्ग-भिक्षा-शीतत्राणानामशीय प्रातिहारिकं वा 'इतरद् वा' निसृष्टं याह्यम् ॥ २९८३ ॥

> एवं तु दिया गहणं, अहवा रत्ति मिलेज पिडसत्थो । गीएस रत्ति गहणं, मीसेस इमा तिहं जयणा ॥ २९८४ ॥

एवं दिवा ग्रहणमभिहितम् । अथ रात्रै। प्रतिसार्थो मिलेत् तत्र च यदि सर्वेऽपि गीतार्था-स्ततो रात्रावेव गृह्यन्ति । अथागीतार्थमिश्रास्ततस्तेषु मिश्रेष्वियं यतना ॥ २९८४ ॥ तामेवाह—

वत्थेण व पाएण व, निमंतएऽणुग्गए व अत्थमिए। आइचो उदिउ त्ति य, गहणं गीयत्थसंविग्गे ॥ २९८५ ॥

प्रतिसार्थे कश्चिद् दानश्राद्धादिरनुद्धते वाऽरतमिते वा सूर्ये वस्रेण वा पात्रेण वा निमन्नयेत्, तत्र च यदि सार्थो रात्रावेव चलितुकामसादा गीतार्था गुरून् भणन्ति—यूरं त्रजत, वयमुदिते आदित्ये गृहीत्वा समागमिष्यामः । तैतो रजन्यामेव गृहीत्वा सार्थस्य पृष्ठतो नातिदूरासने समागच्छन्ति । स्थिते च सार्थे गुरूणामालोचयन्ति—उदिते सूर्ये वस्त्रमहणं कृत्वा समायाताः । एवं गीतार्थाः संविमा गृह्धन्ति ॥ २९८५ ॥ 15

अथ प्रतिसार्थे पहयां वा न लभ्येत न वा प्रतिसार्थादिकं दृश्येत ततः किम् १ इत्याह-

खंडे पत्ते तह दव्भचीवरे तह य हत्थपिहणं तु । अद्धाणविवित्ताणं, आगाढं सेसऽणागाढं ॥ २९८६ ॥

चर्मखण्डानि संयतीनां विविक्ताना परिधानाय दातव्यानि । तद्भावे शाकादिपत्राणि । तदप्राप्ती दर्भेश्चीवरं घनं अथित्वा समर्पयन्ति । सर्वथा परिधानाभावे हस्तेनापि गुह्यदेशस्य 20 पिधानं ताभिः कैत्तेव्यम् । एवमध्वनि विविक्तानामागाढं कारणं मन्तव्यम् । शेषं तु सर्वमप्यु-पकरणाभावेऽनागाढम् ॥ २९८६ ॥

> असईय निग्गया खुडुगाइ पेसंति चउसु वग्गेसु । अप्पाहिंति वऽगारं, साहुं व वियारमाइगयं ॥ २९८७ ॥

मतिसार्थपहयादौ वस्त्राणाम् 'असति' अपासौ अध्वनो निर्गता उद्यानं प्राप्ताः सन्तः 'शुह्नकादि' 25 क्षुहुकं क्षुहुकां वा विवक्षितं ग्रामं नगरं वा चत्वारः—संयत-सयती-श्रावक-श्राविकालक्षणा ये वर्गास्तेषु-तेपा समीपे प्रेषयन्ति; यद्वा साम्भोगिकाः सयता एको वर्गः, अन्यसाम्भोगिका इति द्वितीयः, साम्भोगिकाः संयत्य इति तृतीयः, अन्यसाम्भोगिका इति चतुर्थः, एतेषां वा समीपे

१ समनोक्ता.-साम्भो° मा॰ । "समणुना असमणुना वि अविवित्ता णित्य, सनईओ वि णित्य, ताहे पिडसत्यपहीस मिगयन्तं।" इति विदेशपन्तूर्णो ॥

२ °काः तेषु तथा इतरेषु-पार्श्वस्थादिषु गृहिषु संयतीषु वा तदुभयविवि° कां॰ ॥

३ ततो मा सार्थात् स्फिटामेति हेतो रजन्या का ॥ ४ कार्यम् । एव मो ० वे०॥ ५ "आदिगाहणेणं थेरं थेरि वा पेसवेंति" इति चूणों विशेषचूणों च ॥

प्रेयपन्ति । अय नान्ति झुड्कः झुङ्किः वा नतो यन्तनो श्रामाद् नगगहा 'अगारः' गृहसः समायातः यो त्रा मार्ह्यात्रवारशृम्यादात्रागतन्तं "अप्पाहिति" सन्दिशन्ति, यथा—साहु-साब्दी-प्रसर्नानां साम्मोनिकसंबतादीनां वा सवता क्यवित्रव्यम्—माववः साव्यक्ष विहरशेषाने सिदाः मन्त्र, ने चान्त्रनि सेनैविविकाः, अवनेषां योग्यानि चीवराणि प्रेषणीयानि । अत्र ४चार्य तिविः—संयतः संयत्तानां बलागि वात्रव्यानि, संयतीनां तु संयतीमिः । अय तत्र संयनाः संयन्यो वा न मन्ति नदा श्रावकाः श्राविका वा प्रयच्छन्ति ॥ २९८७ ॥

यत्र तु संयत्यः संयनानां संयना वा संयतीनां पयच्छन्ति तत्र तिथिमाह-खुई। थेगणऽयं, आलोगिनर्ग ठवित्त पविसंति । ने वि य घेतुमहगया, ममणुन्नजहे जयंतेवं ॥ २९८८ ॥

खुडिका उद्यानं गत्वा स्वित्रसावृनां बकाण्यपंयिनाः अय न मन्ति खुडिकाः ततः 'इतराः' मञ्जनान्तरुखो वा गन्ता स्वविराणामाङोके म्यापियत्वा मुखेऽपि आमं प्रविद्यन्ति । यत्र संयैतः मुंबर्नानां ठानव्यं तत्र हुछुकाः सविन्माञ्चानामप्यन्तिः हुछुकामावे दोना अपि सायवः खबिराया आङोक सापयन्ति । 'तेऽरि च' संयताः संयतीद्तानि वकाणि गृहीता प्राहत्य नगम् 'अनिगनाः' प्रतिष्टाः सन्त आस्त्रयोग्यमुपऋरणमुन्याच संयतीमऋवस्त्राणि प्रसर्पयन्ति । 15 एवं समनोहेषु विविहन्तः । "मनणुष्ठज्ञदे जयंतेवं" ति यत्र समनोहाः—साम्मोगिका न भवन्ति तत्र 'एवं' वश्यमार्ग्नात्या यतन्ते ॥ २९.८८ ॥

> अद्वाणनिग्गयाई, मंत्रिग्गा सन्नि द्विह अस्सर्णा । संजद्द एसणमाई, अमंदिन्गा दोण्णि वी वन्गा ॥ २९८९ ॥

र्जञ्जनो निर्गता यत्र यामारो प्राप्तास्तेत्रमे मनेष्टः—'संनियाः' उचतनिहारिणः, ते चेहा-थ्यमार्गागिका गृह्यैत । 'संहिनः' श्रावकाने द्विविधाः—संविधमाविता अनंविधमाविताश्च। अमंहिनोऽपि हिनियाः—आमिप्रहिका-ऽनामिप्रहिकमिय्यादृष्टिमेदात्। "संजद्" वि अमनो-इनंबन्यः । असंविद्या अति हैं। वर्गी, तबया—साबुवर्गः सार्व्वावर्गश्च । अत्र विविरुच्यते— ''एम्गमार्'' ति संज्ञितस्तिष्ठ शुढं बम्नमग्रामुबन्नः पञ्चकपिहाणिकमेणेषणाज्ञेषेषु यतन्त इति ॥ २९८९ ॥ अँधेनदेव मविन्तरं व्यास्यानयति-

संविग्गेनस्माविय, सन्नी मिच्छा उ गादऽणागाहै। असंविन्ग मिगाहरणं, अभिनगहमिच्छेसु विस हीला ॥ २९९० ॥

महिना हिविधाः—संविद्यमाविजा इत्तरमाविजाश्च । मिय्यादृष्टयोऽपि हिविधाः—आगादा थनागाराश्च । तत्र पथमं संविद्यमावितेष्ठ संज्ञिष्ठ, तद्याप्तावनागादमिय्यादृष्टिषु शुद्धं वस्नम-न्वेषगीयम् । असंविद्यमात्रिनेन्वागादमिय्यादृष्टिषु च न गृङ्क्ति, ङुतः १ इत्याह—अमंविद्य-थ्ऽसाविताः 'स्वाइरणं' छुन्धकदृष्टान्तं (गा० १६०७) चेतसि प्रणिवाय साबुनामकरन्यं

[?] यननामेबाह इपन्तर्भ हो॰ u २ अध्वनिर्गताः आदिशब्दाद् चलिमे वर्त्तमाना डप-धेरमात्रे वक्यमाणां यतनां कृषिन्ति । तस्रते साधयोऽध्यनो निर्गता कां॰ ॥ ३ °न्ते, साम्मोर गिकेषु विषेक्तत्यात् । 'संदिनः' कां॰ ॥ ४ अधैनामेव निर्शुक्तिगार्था सवि° कां॰ ॥

पयच्छन्ति । ये त्वाभित्रहिकमिथ्यादृष्टयस्ते साधुदर्शनप्रद्वेषतो विषं प्रयुक्षीरन् हीरुां वा कुर्युः— अहो । अदत्तदाना अमी वराका इत्थं क्लिश्यन्तीत्यादि ॥ २९९० ॥

अथानागाढमिथ्यादृष्टिषु शुद्धं न प्राप्यते ततः किं विधेयम् ? इत्याह—

असंविग्गभाविएसं, आगाढेसं जयंति पणगादी । उवएसो संघाडग, पुन्वग्गहियं व अनेसु ॥ २९९१ ॥

असंविमभावितेषु यद् उद्गमादिदोषविशुद्धं वस्त्रं तद् महीतन्यम् । तदमावे आगाद-मिध्यादृष्टिप्विष यद्यात्म-भवचनोषघातो न स्यात् । अथ तेप्विष शुद्धं न प्राप्यते ततः सविम-भावितादिप्वेव पञ्चकादिपरिहाण्या तावद् यतन्ते यावद् भिन्नमास प्राप्ता भवन्ति । ततो अन्य-साम्भोगिकैर्येषु कुलेपूपदेशो दत्तः तेषु याचितन्यम् । तथाप्यप्राप्तौ तेषां सङ्घाटकेन । एवमप्य-लामे तेषामेव यत् पूर्वगृहीतं वस्त्रादि तद् महीतन्यम् ॥ २९९१ ॥

अमुमेर्वार्थं सविशेषज्ञापनाय पुनरप्याह—

उवएसो संघाडग, तेसि अहाए पुन्वगहियं तु । अभिनव पुराण सुद्धं, उत्तर मूले सयं वा वि ॥ २९९२ ॥

अन्यसाम्मोगिकोषैदेशेन प्रथमतः पर्यटिन्त । ततस्तदीयसङ्घाटकेन । तथाप्यप्राप्तौ तेषामर्थायान्यसाम्मोगिकाः पर्यटिन्त । तथापि यदि न रुभ्यते ततस्तेषामेव यत् पूर्वगृहीतं वस्तं तद् 15
प्रहीतन्यम् । तच्चाभिनवं वा स्यात् पुराणं वा, पूर्वमिभनवं पश्चात् पुराणमि गृह्यते । तदिष यद्यत्तरगुण-मूरुगुणशुद्धं तत उपादेयं नान्यथा । अथ सर्वथाऽपि न प्राप्यते ततो यः कृत-करणो भवति तेन स्वयमेव न्यूतन्यम् । एतच्च यथावसरमुत्तरत्र भावयिष्यते ॥ २९९२ ॥

तदेवमन्यसाम्भोगिकानामपि पूर्वगृहीतं यदा न प्राप्यते तदा मासलघुकादारभ्य तावद् यतन्ते यावत् चतुर्लघुकं प्राप्ताः । ततः किं कर्तव्यम् १ इत्याह—

> उनएसी संघाडग, पुन्नग्गहियं व निइयमाईणं । अभिनव पुराण सुद्धं, पुन्वमभुत्तं ततो भुत्तं ॥ २९९३ ॥

चतुरुंघुप्राप्ताः सन्तो नित्यवासि-पार्श्वस्थादीनामुपदेशेन वस्तमुत्पादयन्ति । तदमाने तेषामेव सङ्घाटकेन । तथाऽप्यलामे यत् तेषां पूर्वगृहीतं मूलोत्तरगुणग्रुद्धमभिनवमपरिभुक्तं तत् प्रथमतो प्रहीतन्यम्, ततः परिभुक्तमपि । तदप्राप्ती पुराणमपि मूलोत्तरगुणग्रुद्धमपरिभुक्तम्, ततः परि-25 मुक्तमपि प्राह्मम् । इह निश्तीथन्व्विभिप्रायेणास्येन करूपस्य विशेषन्व्विभिप्रायेण न्वान्यसान्मोगिकान् यावन्नास्ति पञ्चकपरिहाणिः किन्तु तत ऊर्द्ध पञ्चकपरिहाण्या यतित्वा यदा मासर्व्याप्ताः तदा पार्श्वस्थादीनामुपदेशादिना गृह्णन्तीति द्वयोरपि न्व्वर्योरभिप्रायः; परमेतन्व्विन्धृता भिन्नमासप्राप्ता अन्यसाम्भोगिकानां नतुरुंघुप्राप्ताश्च पार्श्वस्थादीनामुपदेशादिना वस्त- महणे यतन्त इति प्रतिपादितम्; अतस्तदनुरोधेनासाभिरपि तथेव व्याख्यातमित्यवगन्तव्यम् ३० ॥ २९९३ ॥ अथोक्तमप्यर्थं विशेषज्ञापनार्थं भूयोऽप्याह—

१ °स्भोगिकैरुपदिष्टेषु कुलेषु मार्गयितव्यम् । मा॰ ॥ २ °वार्थं विधिशेष° त॰ डे॰ ॥ ३ °पदेशो येषु कुलेषु जातस्तेषु प्रथ° का॰ ॥

(2)

उत्तर मृते मुद्दे, नवे पुराणे चउक्कमयणवे । परिक्रमण परिमोगे, न होनि दोसा अभिनवस्मि ॥ २९९४ ॥

्रहें मृत्रोत्तरगुणशुद्धयोश्चतुर्मक्षां, तद्यथा—> मृत्रगुणशुद्धमप्युत्तरगुणशुद्धमि १ मृत्रगुणशुद्धं नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नोत्तरगुणन्धः नात्त्वः प्रतिष्ठः प्रतिष्यः प्रतिष्ठः प्रत

असह्य लिंगकरणं, पन्नवणद्वा सयं व गहणद्वा । आगारें कारणम्मी, लहेव हंसाहणो गहणं ॥ २९९५ ॥

एवमीर 'अमित' अञ्चयनाने श्राह्मयादिवेषण तदीयोगासकानां यतिस्यो वस्त्रापनाय महाप्रनार्थं स्वयं वा अहणं—वस्त्रोतादनं तहथं परिष्ठक्षं कर्त्तव्यन् । किं बहुना १ ईहरो आगार्दे कारणे यथेव हंस्तेन्व्यदेरनुज्ञानितस्यानि अहणं हष्टं तथेव वस्त्रस्यानि द्रष्टव्यम् । तथाप्यष्टाने स्वयं नागियस्याञ्चेर्यवयति । तदमावे स्वयंनेवाच्यसागारिकं वयति ॥ २९९५ ॥

25 अय सुत्रं न छम्यने ततः को त्रिविः ? इत्याह—

सेंद्रय रूप पिंजिय, पेछ गाहणे य छहुग दप्येणी। नव-कालेंद्रि विभिद्वा, कार्ग्णे अक्रमेण ने चेव ॥ २९९६ ॥

'संडुगा नाम' कर्णसः, स एवं छोडितः सन् बीवरहितां करम्, तदेव रूनं निल्लिकया वाडितं निलित्तम्, तदेव पृणिकया विकतं पेखिरित भग्यते । एतेषां यदि दर्पेण प्रहणं करोति १८ तता चलागं छष्टकान्तरः-काळाम्यां विशिष्टाः । तत्र सेडुके उभयगुरुकाः, रूते तपोगुरुकाः, निलितं काळ्गुरुकाः, पेखुके द्वास्यां छष्टकाः । कारणे पुनः प्रथमं पेखुकं पश्चात् पिलितं ततो रूतं ततः सेडुकमि गृहाति । अयाक्रमेण गृहाति ततन्त एव चलारो छष्टकाः । सेडुकं च विवर्षातीनं विक्रमतयोनिक्रमेव प्रहीतुं कर्यने न सचितम् ॥ २९९६ ॥

८ वर्वश्च सेडुकारीनि गृहीचा कि क्रोति ? इत्याह—>

कटजानि एकथा वा, असईए नालवहसहिया वा । निष्काए उवगर्णं, उमश्रोपक्सम्य पाञीगां ॥ २९९७ ॥

१ % > प्राधिकादः पाठः छो । एव वर्षते ॥

२ 'छार्दानामनुद्यापितानामपि यह' मा० ॥ ३ % १० एतविद्यत्मवतरां कं० एव वर्तते ॥

कृतयोगी नाम-यो गृहवासे कर्तनं वयनं वा कृतवान् । स गच्छस्य वस्नाभावे एकको वा नालगद्धसंयतीसिहतो वा विजने भूभागे कर्तनं वयनं च कृत्वा 'उभयपक्षस्य' सयत-संयतील-क्षणस्य प्रायोग्यमुपकरणं ॳ निष्पादयति । ततः संयताः संयत्यश्च यथायोगमुपकरणं № परिभुज्जते ॥ २९९७ ॥ ततः किम् १ इत्याह—

अगीयत्थेसु विगिचे, जहलामं सुलमडविहेखेत्तेसु । पच्छित्तं च वहंति, अलंभें तं चेव घारेंति ॥ २९९८ ॥

यद्यगीतार्थिमिश्रास्ततः सुलमोपिधिक्षेत्रेषु गताः सन्तः 'यथालामं' यद् यद् वस्तं लभन्ते तत्तत्सदृशमपरं व्यूतवस्तं 'विविचन्ति' परिष्ठापयन्तीत्यर्थः, अगीतार्थप्रत्ययनिमित्तं च यथा- लघु प्रायिक्षित्तं वहन्ति । अथापरं न लभ्यते ततः 'तदेव' स्वयंव्यूतं वस्तं धारयन्ति । अथ सर्वेऽपि गीतार्थोस्ततोऽपरस्य लामे प्राक्तनं परित्यजन्ति वा न वा, न कोऽपि नियमः ॥२९९८॥ 10

अथ ''अद्धाणिनगयाई'' (गा० २९८९) इत्यत्र योऽयमादिशब्दस्तस्य फलमुपदर्श-यत्नाह—

> एमेव य वसिमम्मि वि, झामिय ओम हिय वृढ परिज्ञने। पुन्बुद्धिए व सत्थे, समइन्छंता व ते वा वि ॥ २९९९ ॥

न केवलमध्विन विविक्तानामेष विधिः, किन्तु प्रामादौ विसमेऽपि वसतां यत्रोपिधर-15 मिकायेन 'ध्यामितः' दग्धः, अवमौदर्ये वा विक्रीतः, चौरैर्वा हृतः, वर्षाष्ठ वा पानीयपूरेण व्यूदः, 'परिजीणों वा' पुराणतया दुर्वलीभूतो विविक्षितं कार्यं कर्जुमसमर्थः, तत्रापि 'एवमेव' अनन्तरोक्तो विधिर्मन्तव्यः । अत्र चापरो विशेष उपदर्श्यते—यत्र मामे साधवः स्थिताः सन्ति तत्र सार्थः कश्चित् प्राप्तः, स चादित्योदयात् पूर्वमेवोत्थितः—उच्चलितुमारव्धो वर्तते, यत्र च गतस्य तस्य रिवरुदेण्यति तत्र गच्छतामपान्तराले स्तेनभयम्, ''समइच्छता व ते वा वि'' 20 ति 'ते वा' साधवो दग्ध हृताद्युपधयः समतिकामन्तः—गच्छन्तः तं सार्थं रात्रौ प्राप्ताः, अतो रात्रावेव तत्र वस्त्रादिकं यतनया गृह्णन्ति ॥ २९९९ ॥ अथेदमेवोत्तरार्द्धं व्याचष्टे—

सो वि य नत्तं पत्तो, नत्तं चिय चलिउमिच्छइ भयं च । ते वा नत्तं पत्ता, गिण्हिज पए चलिउकामा ॥ ३००० ॥

'सोऽपि च' सार्थः 'नक्त' रात्रौ तत्र यामे प्राप्तः, नक्तमेव च ततश्चिलितुमिच्छिति, अपा-25 न्तराले च स्तेनादिभयम्; 'ते वा' साधवो दग्धाद्युपधयः तं सार्थं 'नक्तं' रात्रौ प्राप्ताः, 'प्रगे' प्रभातेऽनुद्गत एव सूर्येऽप्रतश्चिलितुकामाः, अतो रात्रावेव यथोक्तनीत्या वस्नादि गृहीयुः ॥३०००॥

॥ वस्त्रप्रकृतं समाप्तम् ॥

हरियाहि दिया प्रकृत स्

स्त्रम्—

निऽन्नस्थ एगाए हरियाहिडियाए। र्सा वि य परि-भुत्ता वा घोया वा रत्ता वा घट्टा वा मट्टा वा संप-भृमिया वा १० १५॥

अस स्वन्त्रनाह—

मुत्तेषेत्र य जोगी, हरियाहिंड कष्यए निर्मि घेतुं । हरिज्ञा य आहंडिया, छृदा हरिएसु चाऽऽहहू ॥ ३००१ ॥

'स्रेरोत' स्तर 'योगः' सन्दर्भ अगति । अदन्तरमुत्रे गत्रे। वक्राद्रिभ प्रदित्तुं न कर्राते १८इस्डस्त् । अत्र तु या हत हतिक सा 'निकि' गत्रे। प्रदित्तुं कर्राते इति प्रतिपत्यते ।

अनेन सक्केनायात्सास क्रास्म — "न कराने गर्ने वसं प्रद्यात्म" इति प्रतिषेगः अ-स्केन्न्सा हन इतिनाम हांग्वाहिनिकाम वा । तत्र पूर्वे हनं पक्षावाहत्वम् — आनीतं वसं हताह-तम्, त्रदेव हन हिनिका, तार्थे नप्रचयः, "अनिवर्धनो सार्थिकप्रस्थाः प्रहाति-विक्र-स्वनानि" इति वचनाद् अत्र न्तितः स्वीविक्रनिर्देशः । एवं हारितेष्ठ — वनस्ति स्वाहतं हरिनाहतं वस्त् , १६ तदेव हांग्वाहित्या । < सार्धित च हन्तकृतिकः 'परिस्का' परिवानादो स्थापरिता, 'बोजा' स्वाहित्या, 'स्वाहित्या, 'रक्षा' विविव्यक्तिन्तरित्या वृद्धिता । वहान्याः सर्वेद्धित विक्रमार्थाः । एवंदिवादित्या, 'स्वयकृतिना' ब्राह्यक्रेया समस्तवः प्रकृतिता वृद्धिता । वहान्याः सर्वेद्धित विक्रमार्थाः । एवंदिवादित सर्वाहित्या, न पुनरसाञ्चन्योग्य क्षतिति कृत्या परिहर्तक्येनि स्वार्थः ॥ >-

क्य माण्यम्—"हरिका ए" इत्यदि पश्चाईन् । स्तेनेः पृते हृता पश्चाद् यद् वस्ता-११ हृत्य-अनोतं त्रेत्र हृत्यक्षतिकञ्जूष्यते । यदा हृत्य हरितेषु प्रक्षिमा या सा हरिताइनिका ॥ २००१ ॥ सा पुनः क्रयं मन्ति १ हृत्य हृ—

> अद्यापमणदापि, न निनिचार्ण त होज आहडिया । अनिहे नर्सनि खेमे, निहे न गच्छे सह गुणेसु ॥ २००२ ॥

शक्रीन करकित वा 'तिकिक्त मी' द्वितानां हर इतिका समावति । तत्र 'विविद्दे' वस-थाक्षीन नामकरोप विद्यानाः 'वृंभे' निराव्ये कानात्रे। वसीन्त । वनाः 'सन्तु' विद्यानिषु इतिविद्योग्ध 'विद्वन्' काक्षमं 'म गच्छेन्' मानुक्रिकोत् ॥ ३००२ ॥ तैया चाह—

१-३ एत्रविह्नस्यवर्षी स्रांदाः सङ्गिद्धः सः उत्तै नात्र वर्षते, लिस् "पुढशे वाडङाए०" इति १०२८ गणवृत्त्वनुन्तरं सुद्धम् इत्यवर्षावे पृथ्वस्यकोतः महत्तिहो वर्षते । द्यानां पत्र ८५४ दिव्यती १। स्रुतीं विद्येषस्रुपीं बृहद्वाप्ये दु व्यवेद सत्यं स्रुवे ब्याह्मातं वर्षते । २ १ व्यवः मियते । अन्य मा० ।। ४ अत्रेष प्रायित्रसं द्वितीयपदं च द्र्यापनाह इत्यवदर्षः व्यं ० ॥

Б

उद्दरे समिक्खे, अद्धाणपवस्रणं त दप्पेणं । लहुगा पुण सुद्धपए, जं वा आवज़ई जत्थ ॥ ३००३ ॥ नाणह दंसणहा, चरित्तहा एवमाइ गंतन्त्रं। उवगरण पुरुवपिकलेहिएण सत्थेण गंतरुवं ॥ ३००४ ॥

गाथाद्वयमपि प्राग् (गा० २८७८-७९) व्याख्यातम् ॥ ३००३ ॥ ३००४ ॥ तत्राध्वनि प्रविगतां विधिमाह-

> अद्धाण पविसमाणा, गुरुं पवादिंति ते गता पुरतो । अह तत्थ न वादेंती, चाउम्मासा भवे गुरुगा ॥ ३००५ ॥

अध्वानं प्रविशन्तः प्रथममेव 'गुरुम्' आचार्यं प्रवादयन्ति, गुरोः प्रवादमुत्थापयन्तीत्यर्थः । यथा—'ते' अस्माकमाचार्याः 'पुरतः' पूर्वमेवान्येन सार्थेन सह गताः अत एव वयं त्वरामहे, 10 कथं नाम तेषां समीपं क्षिप्रमेव प्रामुयाम ? । अथ तत्राध्वनि प्रविशन्त एवं न प्रवादयन्ति ततश्चत्रमीसा गुरुकाः प्रायश्चित्तम् ॥ ३००५ ॥

> गुरुसारक्खणहेउं, तम्हा थेरो उ गणधरो होइ। विहरइ य गणाहिवई, अद्धाणे भिक्खुभावेणं ॥ २००६ ॥

तसाद गुरूणा संरक्षणहेतोर्यः 'स्थविरः' वयोवृद्धः स गणधरो भवति, गणधराकारधारकः 15 क्रियत इत्यर्थः । यस्तु गणाधिपतिः सः 'अध्वनि' मार्गे खयं 'भिक्षुभावेन' सामान्यसाधुवेषेण विहरति ॥ ३००६ ॥ कुतः १ इति चेद् उच्यते — कदाचिदध्विन साधवः खेनकैर्विविक्ताः कियेरन् ततस्ते स्तेनकाश्चिन्तयेयुः—

> हयनायगा न काहिंति उत्तरं राउले गणे वा वि । अम्हं आहिपइस्स व, नायग-मित्ताइएहिं वा ॥ २००७ ॥

हतो नायकः-आचार्यो येपा ते हतनायकारतथाभूताः सन्त एते व्रतिनो राजकुले वा गणे वा गत्वा न किमपि 'उत्तरम्' उपकरणापहाररावात्मक करिष्यन्ति, अखामिकतया निराशीमू-

तत्वात् । तथाऽसाकं योऽधिपतिः तस्य वा तदीया वा ये ज्ञातकाः-खजना यानि च तदीयानि मित्राणि तदादीनां-तत्प्रभृतीनामन्तिके गतास्तैः पृष्टाः सन्तो न किमप्युत्तरं प्रदास्यन्ति, आचा-र्थस्यैव तत्प्रदानप्रगल्भत्वादिति भावः । तस्मादाचार्यमेवापद्रावयाम इति विचिन्त्य तथैव कुर्युः । ²⁵ ततो यथोक्तनीत्या गुरवः प्रवाद्यितव्याः ॥ ३००७ ॥ ते च स्तेनाश्चतुर्विधाः---

> संजयपंता य तहा, गिहिभद्दा चैव साहुभद्दा य । तदुभयभद्दा पंता, संजयभद्देसु आहडिया ॥ ३००८ ॥

एके संयतपान्ता गृहस्थमद्रकाः १ अन्ये साधूना भद्रका गृहस्थपान्ताः २ अपरे तदुभय-भद्रकाः ३ अपरे तदुभयपान्ताः ४ । अत्र ये संयतभद्रकास्तेषु हृताहृतिका भवेत्, हृत्वाऽपि 30 ते भूयो वस्नमर्पयेयुरित्यर्थः ॥ ३००८ ॥ ज ईंदमेव स्पष्टयति—⊳

सत्थे विविचमाणे, आहिपई भइओ व पंतो वा ।

१ प्तन्मध्यगतमवतरणं कां॰ वर्तते ॥

भही दहुण निवारणं व गहियं व पेसेइ ॥ ३००९ ॥

सार्थे स्तेन: 'विविच्यमाने' मुप्यमाणे सायवोऽपि विविच्येरन्। तत्र च यः 'अघिपतिः' चौरसनाधिपतिः स साधृनां भद्रको वा स्वान् प्रान्तो वा। यदि भद्रकस्तदा साधृन् विविच्यमा-नान् दृष्ट्वा निवारणं करोति, 'मतेपां वस्त्राण्यपद्दरत' इति । अथ नासा तत्र सन्निहितस्ततः हस्तेन्र्पृहीतं महुपकरणं भ्योऽपि प्रेषयति ॥ ३००९ ॥ अमुमेव गाथाऽवयवं व्याचष्टे---

नीयं दहुण वहिं, छिन्नदसं सिन्त्रणीहि वा नाउं।

पेसे उत्रालभित्ताण तक्करे भद्ओ अहिवो ॥ २०१० ॥

स चैरिसेनाघिपतिः साघृनासुर्पाधं 'नीतम्' उपदौकितं दृद्धा छिन्नदशाक्त्त्रेन साधुसम्बन्धिनीभिः सीवनीभिः सीविनत्वेन वा 'साधूनां सत्कमेतद् वस्त्रप्' इति ज्ञात्वा तान् तस्करानुपाछमते— 10 आ: पापा: ! विनष्टाः स्त्र यूर्वं यदेवं महात्मनां सावृनां वस्त्राण्यपहृनानीत्यादि । एवमुपारुभ्य भ्योऽपि तस्मापघेः साघूनामपेणार्थं तानेव तस्करान् सावृनामन्तिके प्रेपयति ॥ २०१० ॥

वीसत्थमप्पणंते, भएण छड्डित केइ वचंति। बहिया पासवण उवस्सए व दिद्धिम जा जयणा ॥ ३०११ ॥

स्तेना द्वित्रियाः — आकान्तिका अनाकान्तिकाश्च । तत्र ये आकान्तिकास्ते कुतोऽपि न 15 विभ्यति, अन एव ते चें। रसेनापतिना वस्त्रप्रत्यपंणार्थं प्रेपिताः सन्तः 'विश्वस्ताः' निर्भया दिवसत एव आनीय वर्झ सयतानामपंयन्ति । अनाकान्तिकास्तु मयेन 'मा केनाप्यारक्षकादिना ब्रहीप्या-महे इति परिमान्य रात्रावानीयौपाश्रयाद् विहः प्रश्रवणम्मानुपाश्रयमध्ये वा वस्तं छर्दयित्वा 'त्रजन्ति' पछायन्ते । तस्मिन् वल्ले दृष्टे सति या वक्ष्यमाणा यतना सा करणीया ॥ ३०११ ॥ नामवाह्—

गीयमगीया अविगीयपचयद्वा करिति बीसं तु । 20 जह संजर्द वि तहियं, विभिचिया तासि वि तहेव ॥ २०१२ ॥

यदि सर्वेऽपि गीतार्थास्ततसदुपकरणं मोछोपकरणन सह मीछियत्वा यथासरुचि तं परिसु-खते । अथ ते केचिद् गीतार्थाः केचिचागीतार्थाः ततो गीतार्था अविगीतप्रत्ययार्थे ह्नाहृतिको-पकरणं 'विष्वक्' पृथक् स्थापयन्ति । ते द्यगीतार्था एवं चिन्तयेयुः—एष स्नेनप्रत्यपित उपिध-25 स्ताबहुपहतः, उपहतेन च सह मिश्रित इतरोऽप्युपहत एव, अतस्तेषा मत्ययार्थ हृताहृतिकोप-करणं पृथकु स्थापयन्ति । अय संयखोऽपि विविक्ताः ततसासामप्यकरणं तथैव पृथक् कुर्वन्ति ॥ ३०१२ ॥

नो वि य तेसि उनहीं, अहागहऽप्यो य सपरिक्रमो य। तं पि य करिति वीसुं, मा अविगीयाह मंडेजा ॥ २०१२ ॥

20 योऽपि च 'तैपा' सायृनां ययाकृतोऽरुपपरिकर्मा सपरिकर्मा चौपधिस्तमपि विष्वक् परस्परं

२ °द्दीत्या तत्समीपमुपनीनं सद् भृयो॰ मा॰ ॥ २ °द्दा "छिन्नद्सं" ति हेती हितीया, भावप्रधानस्र निर्देशः, ततोऽयमर्थः—छिन्न॰ हां ॥ ३ °या उ भं° ता॰ मा॰ । मा॰ प्रतावेतव्यत्यारंणेय दीहा । स्थानां पत्र ८५१ टिप्पणी १ ॥

कुर्वन्ति । कुतः ! इत्याह—मा 'अविगीतीदयः' अगीतार्थादयः परस्परं 'भण्डेयुः' कलहं कुर्युः, यथा—किमिति त्वया मेदीयो यथाकृतोपिः सपरिकर्मणा सह मीलितः ! इत्यादि ॥३०१३॥ एवं तावद भद्रकसेनापतौ विधिरमिहितः । अथ प्रान्तविषयं विधिमाह—

(प्रन्थायम्—९००० । सर्वप्रन्थायम्—२१२२० ।) पंतोवहिम्मि छद्धो, आयरिए इच्छए विवादेउं ।

कयकरणे करणं वा, आगार्ढे किसी सयं भणइ ॥ ३०१४ ॥

प्रान्तश्चीरसेनापतिः 'उपधो' उपकरणे छुन्धः सन् आचार्यान् न्यापादियतुमिच्छति । ततो यस्तत्र 'कृतकरणः' धर्मकथालिन्धमान् धनुर्वेदादिकृताम्यासो वा स तत्र करणं करोति, धर्म-कथादिना स्वभुजवलप्रकटनेन वा तमुपशमयतीत्यर्थः । अथवा ईदृशे आगाढे कार्ये यः 'कृशः' दुर्वलदेहः सः 'स्वयम्' आत्मनैवात्मानमाचार्यं मणति ॥३०१४॥ एैनामेवें गाथां भावयति—'10

को तुन्भं आयरितो, एवं परिपुच्छियम्मि अद्धाणे । जो कहयइ आयरियं, लग्गइ गुरुए चउम्मासे ॥ ३०१५ ॥

प्रान्तः सेनापतिः प्रच्छति—को युप्माकं मध्ये आचार्यः । एवमध्वनि गच्छतां परिपृष्टे सित यः कश्चिदाचार्य निर्द्धार्य कथयित सः 'लगित' प्रामोति चतुरो मासान् गुरुकानिति ॥ ३०१५ ॥ किं तिर्द्ध वक्तव्यम् १ इत्याह— '15

सत्थेणऽन्नेण गया, एहिंति व मग्गतो गुरू अम्हं । सत्थिछए व पुच्छह, हयं पलायं व साहिंति ॥ ३०१६ ॥

येऽस्माकं गुरवस्तेऽन्येन सार्थेन सह पागेव गताः, 'मार्गतो वा' प्रष्ठतस्ते एष्यन्ति, यदि वा न प्रतीतिर्भवतां ततः सार्थिकान् प्रच्छत, यद्वा 'हतोऽसावस्माकमाचार्यः पलायितो वा, वयं साम्प्रतमनाथा वर्त्तामहे' एवं कथयन्ति ॥ ३०१६॥ ० अत्रैव प्रकारान्तरमाह—>> 20

जो वा दुव्वलदेहो, जुंगियदेहो अँसव्भवको वा । गुरु किल एएसि अहं, न य मि पगव्मो गुरुगुणेहिं ॥ ३०१७ ॥

अथवा यो दुर्वरुदेहो यो वा 'जुङ्गितदेहः' विकलाङ्गः यो वा 'अँसभ्यवाक्यः' असमझस-प्रलापी स सेनापित प्रति विक्ति—आँहं किलैतेषां सर्वेषामिष गुरुः परं 'न च' नैवास्म्यहं 'प्रगल्मः' सम्पूर्णः 'गुरुगुणैः' शरीरसम्पदादिभिः ॥ ३०१७ ॥

वाहीणं व अभिभूतो, खंज कुणी काणओ वं हं जातो । मा मे बाहह सीसे, जं इच्छह तं कुणह मज्झं ॥ २०१८॥ 'व्याधिना वा' रोगेणाहमतीवाभिभूतः तथा 'खझः' पादिवक्लः 'कुणिः' पाणिविकलः

८ अहमेवैतेषां मा॰ ॥ ९ १ण मि यऽमि ता॰ ॥ १० न्न मी जातो भा॰ कां॰ ॥

१ °ताः' अगीतार्थाः पर° भा०॥ २ मदीयमञुपहृतमुपकरणमुपहृतेन सह मीलितम् री. यथाकृतं वा सपरिकर्मणा सह १ इत्यादि भा०॥३ एतदेव भा° भा०॥४ °व निर्युक्तिगा° का०॥ ५ 屆 एतदन्तर्गतमवतरणं कां० एव वर्तते॥ ६ असच्चवक्को त० डे० मो० छे० । टीकाऽप्यत्रै-तद्युसारेणैव । दश्यता टिप्पणी ७॥ ७ 'असत्यवाक्यः' त० डे० मो० छे०॥

'काणः' चक्षुर्विकलः ईद्दशो वाऽहं जातोऽस्मि, अतो मा मदीयान् शिप्यान् वाधध्वम्, यद् मारणादिकं कर्त्तुमिच्छथ तद् मेमव कुरुध्वम् ॥ २०१८ ॥ यतः—

इहरा वि मरिडमिच्छं, संति सिस्साण देह मं हणह। मयमारगत्तणमिणं, वं कीरह मुंचह सुने मे ॥ ३०१९॥

इतरथाऽपि ताबदहं मर्नुमिच्छामि अतो मर्दायशिष्याणां ञान्ति प्रयच्छत, मां पुनः यथा-स्रक्षि 'हन' विनाशयतः, यतो यदिदं मम मारणं मविद्धः क्रियते तद् मृतस्यव मारक्तवं भवति, अनो मुझत मदीयान् 'मृतान्' शिष्यान् ॥ २०१९ ॥ अपि च—

> एयं पि नाव जाणह, रिसिवज्झा जह न मुंदरी होह । इह य परत्थ य लोए, मुंचंतऽणुलोमिया एवं ॥ २०२० ॥

10 भो भद्राः ! एतद्रिष ताबद् यृथं जानीथ, यथा—ऋषिहत्या विधीयमाना इह च परत्र च लोके सुन्द्रग न भवति । एवम् 'अनुक्रोमिनाः' प्रज्ञापिताः सन्तले तम्कराः साधृत् मुख्जन्ति ॥ २०२० ॥ अथेवमपि न सुच्येरन् ततः किं कर्तव्यम् ! इत्याह—

धम्मकहा चुण्णेहि व, मंत निमित्तेण वा वि विजाए । नित्थारेह वलेण व, अप्पाणं चेव गच्छं च ॥ ३०२१ ॥

15 यो धर्मकथाल्टिषमान् स धर्मकथया तं सेनापितमुप्रगमयिन, चूर्णवी मन्नेण वा निमित्तेन वा विद्यया वा तमावर्त्तयेत् । यो वा चनुर्वेदादी कृतपिश्रमः स मुजबलेन तं सेनापितं निर्जिल्यास्मानं गच्छं च नित्तास्यिति ॥ ३०२१ ॥ अधिपामकमिप न विद्यते ततः—

वीसिखया व तेणं, पंथं फिडिया व हिंडमाणा वा । गंत्ण तेणपिंह, यम्मकहाईहिं पन्नवणा ॥ ३०२२ ॥

2) 'तेन' प्रान्तेन सेनापितनापिवमपहृत्य साथवः 'विसर्जिताः' मुक्ता इत्यर्थः, मुक्ताश्च यद्यु-पिथं न गवेषयिन्त ततश्चतुर्लेषुकाः । ततः सेनपर्श्वां गत्ना गवेषयितव्य उपिषः । गच्छतां चापान्तराले यदि कोऽपि प्रश्चयत्—कृतो मवन्त इहागताः ? ततो वक्तव्यम्—'पथः' मार्गात् परिश्रष्टाः 'हिण्डमाना वा' विद्यारक्रमेण विद्युन्न एव वयिमह् सम्याप्ताः । ततश्च सेनपर्शां गत्ना वर्मकथादिमिः सेनापतेः प्रज्ञापना कर्तव्या ॥ २०२२ ॥ अथेदमेव भावयित—

भदमभदं अहिवं, नाउं भदं विसंति तं पिछं । फिडिया मु त्ति य पंथं, भणंति पुड़ा किंहं पिछं ॥ २०२३ ॥

स्तेनपर्द्धा गच्छिद्धः प्रथमत एवतद् ज्ञातच्यम्—िकमत्र सेनापतिर्भद्रकोऽमद्रको वा १ । यदि भद्रक्रतत्तत्तां पर्द्धां प्रविद्यन्ति । अथामद्रक्रततः 'मा प्रान्तापना-ऽपद्रावणादीनि कार्षीद्' इति कृत्वा न तत्र गन्तव्यम् । अथ गच्छिन्ति ततश्चत्वारो गुरवः । अथ कोऽप्युपद्यमनायोत्सहते अतत्तत्तं गृहीत्वा गन्तव्यम् । गच्छन्तश्च 'कुतः किमथे मवन्त इहायाताः १ कुत्र वा ब्रिज्यथ १' इति पृष्टा मणन्ति—ययः 'स्किटिताः' परिष्ठष्टा वयिमह पह्यामाहारान्वेषणं कुर्महे ॥३०२३॥

मुसिय त्ति पुच्छमाणं, को पुच्छइ किं व अम्ह मुसियन्वं। अहिनं मणंति पुच्चि, अणिच्छें सन्नायगादीहिं॥ ३०२४॥ 'किं मुषिता यूयम् ?' इति प्रच्छन्तं ब्रुवते—को नामासान् प्रच्छिति ? किं वा निर्मन्थाना-मसाकं मुषितन्येम् ? इति । ततश्च स्तेनपङ्धां गत्वा यस्तत्र सेनाया अधिपस्तं 'पूर्व' प्रथमतः 'भणन्ति' धर्मकथादिना प्रज्ञापयन्ति । प्रज्ञापितश्च यद्यावृत्तस्ततो वक्तन्यम्—अस्माकमुपधिं प्रयच्छेति । यदि प्रयच्छिति ततः सुन्दरम् । अथ नेच्छिति प्रदातुं ततो ये तस्य संज्ञातकाः— स्वजनाः आदिशब्दाद् मित्रादयश्च ते तथैव धर्मकथादिना प्रज्ञापयितन्याः । ततस्तद्वारेण स ६ सेनापतिरुपशमयितन्यः ॥ २०२४ ॥

> उवसंतो सेणावइ, उवगरणं देइ वा दवावेइ । गीयत्थेहि य गहणं, वीसुं वीसुं च से करणं ॥ ३०२५ ॥

उपशान्तः सन् सेनापितः स्वयमेवोपकरणं ददाति, स्वमानुषैर्वा दापयित, ततो यदि ते सर्वेऽपि गीतार्थास्तत उपकरणं मिश्रयन्ति वा न वा । अथागीतार्थमिश्रास्ततो गीतार्थेस्तस्योपक-10 रणस्य ग्रहणं कर्त्तव्यम् । यच सयत-संयतीनामुपकरणं तद् 'निष्वग् निष्वक्' पृथक् पृथग् विधेयम् ॥ ३०२५ ॥ अथ सेनापितर्ब्र्यात्—

सत्थो वह विवित्तो, गिण्हह जं जत्थ पेन्छह अडंता । इहइं पडिपछीसु य, रूसेह विइजजो हं मे ॥ ३०२६ ॥

सार्थोऽसन्मानुषेः 'बहुः' प्रभूतो विविक्तः अतो न ज्ञायते कस्य कुत्र वस्नादिकमस्ति ² 15 इति, ततो गृह्णीत यूयं स्वकीयसुपकरणं यद् यत्र पर्यटन्तः पश्यथ । ततः साधुमिर्वक्तन्यम्— यद्येवं ततः स्वमानुषमसाभिः सह विसर्जयत । ततस्तदीयमानुषेण सह गच्छन्ति । तच्च ब्रूते—'इह' अस्यामेव पह्यां प्रतिपह्णीषु वा यद् यद् भवतासुपकरणं तत् तद् "रूसेह" चि देशीवचनत्वाद् गवेषयत, अहं भवतां द्वितीयोऽस्मीति । ततो यद् यत्र पश्यन्ति तत् तत्र सेनानुशिक्ष्मादिभिः प्रज्ञाप्य गृह्णन्ति ॥ ३०२६॥

अम्हं ताव न जातो, जह एएसिं पि पावइ न हत्थं। तह कुणिमो मोसमिणं, छुभंति पावा अह इमेसु ॥ ३०२७॥

असाकं तावदयं 'मोषः' मुषितवस्नादिरुक्षणो न जातः, अतो यथैतेषामि इस्तं न प्रामोति तथा वयमेनं मोषं कुर्महे इति विचिन्त्य केचित् 'पापाः' स्तेनकाः 'अथ' इति चिन्तानन्तरमेतेषु प्रक्षिपन्ति ॥ ३०२७ ॥ तद्यथा—

पुढवी आउकाए, अगड-वणस्सइ-तसेसु साहरई। सुत्तत्थजाणएणं, अप्पावहुयं तु नायन्वं ॥ ३०२८॥

पृथिवीकाये वा अप्काये वा अगडे वा—गत्तीयामित्यर्थः वनस्पतिषु वा त्रसेषु वा 'सहरन्ति' निक्षिपन्तीति यावत्, गाथायामेकवचननिर्देशः पाकृतत्वात्, एतेषु निक्षिप्तममीषा प्रहीतुं न करुपत इति बुद्धा। अत्र च 'सूत्रार्थज्ञेन' गीतार्थेन 'पृथिव्यादिनिक्षिप्ते तत्रोपकरणे गृह्य-30 माणे खरुपतरमेवाधिकरणम्, अगृह्यमाणे तु बहुतरमसयतपरिभोगा-ऽप्कायप्रक्षालनादिकम्' [इति] एवमरुपबहुत्वं ज्ञातव्यम्, ज्ञात्वा च ब्रहीतव्यं तद् वस्तम्। अथ न गृह्णाति ततश्चतु-

१ °व्यम् ? येन मुषिता यूयमिति प्रश्नस्यावकाशो भवेदिति । ततश्च भा॰ ॥

र्रुषुकाः, अनवस्या चैवं मवति, मृयोऽपि हृत्वा ते वा अन्य वा एवमेव पृथिव्यादिषु निक्षिप-न्तीति भावः ॥ २०२८ ॥ अय "सा वि य परिसुत्ता वा" इत्यादि स्त्रावयवं विवृणोति—

हरियाहडिया मुविहिय !, पंचवन्ना वि कप्पई येतुं । परिश्वचमपरिश्वचा, अप्पावहुगं वियाणिचा ॥ ३०२९ ॥

इं मुनिहित ! ह्नाहितिका यद्यि तैः स्तेनकैः पञ्चवर्णा कृता तथापि प्रहीतुं करमते । तथा पिरमुक्ता अपिरमुक्ता वा, उपल्ख्यणत्वाद् घोता वृष्टा सृष्टा सम्प्रवृमिना वा भवतु परं तथाप्य- स्पवहुत्वं विज्ञाय स्वीकर्तक्येव, न परिहर्त्तव्या ॥ ३०२९ ॥ < अत्रैव विज्ञेपमाह—>

आघत्ते निर्काए, परिभ्रत्ते तस्म चेव गहणं तु । अन्नस्म गिण्हणं तस्स चेव जयणाऍ हिंडंति ॥ २०२० ॥

10 रेतनेकेलर वसं 'आयरं' प्रहणके नुक्तं भवेट् विक्रीतं वा परिमुक्तं वा ततसे ब्र्युः— वयनन्यद् वसं प्रयच्छाम इति । ततो वक्तव्यम्—तदेवासाकं प्रयच्छत नान्येन केनापि प्रयोजनिमिति मणित्वा तदेव ब्रहीतव्यम् । यदि न रुम्यते ततोऽनवसाशसङ्गनिवारणार्थमन्य-स्यापि प्रहणं कुर्वन्ति । तच यदि संलरित ततः परिष्ठापयितव्यम्, व्यसंतरणं तु परिमोक्त-व्यम् । तथा 'तसेव' सेनापतेर्मानुषः सह वस्त्रान्वेषणाय यननया 'हिण्डन्ते' पर्यटन्ति ॥३०३०॥ 15 इत्मेव मावयति—

> अनं च देइ उनहिं, सो वि य नातो तहेव अन्नातो । सुद्रस्स होइ गहणं, असुद्धि येतुं परिष्ठवणा ॥ २०२१ ॥

अयासी सेनापतिः 'अन्यन्' अन्यसावुसम्बन्धिपर्यं ददाति ततः 'सोऽपि च' उपिष 'शांतो वा सात्' संविद्या-ऽसंविद्यमम्बन्धित्वयोपङक्षितः 'अशांतो वा' तद्विपरीतः । तत्र यः 20 गुद्धः—विविद्यिक्तिनेतो यथोक्तप्रमाणोपेतश्च स सविद्यमम्बन्धि तं गृहीत्वा तेपामेव संविद्याना-नर्पयन्ति । अथ ते देशान्तरं गतान्ततो यदि सन्तरति ततः परिष्ठापयन्ति । अथ न संन्तरति ततः परिमुखते । यः पुनः 'अशुद्धः' एतद्विपरीतः सोऽसंविद्याना सम्बन्धि तमप्यनवस्था-ऽधिकरणपरिहरणार्थं गृहीत्वा पश्चात् परिष्ठापयन्ति ॥ ३०३१ ॥ इद्मेव द्याच्छे—

तं सिन्त्रणीहि नाउं, पमाण हीणाहियं विरंगं वा । इतरात्रीहं पि निण्हइ, मा अहिगरणं पसंगी वा ॥ ३०३२ ॥

25 इतराबाह ।प निण्हह, मा आहेगरण पसंगी दा ।। २०२२ ।।
'तद्' उपकरणनिविक्तविक्तामिः क्तिति प्रमाणतश्च हीनाविकं तथा 'विरक्तं' विचित्रवर्णकरक्तम् एवंविवं हद्या ज्ञातत्र्यम्, यथा—एउ इतरेपान्—असंविद्यानानुपविः, तमि ज्ञाला
गृहात्येव । इतः १ इत्याह—मा तिस्तिकगृह्यमाणेऽधिकरणमनंयतरिसोगादिना 'प्रसक्तो वा'
मृथोऽप्युपकरणहरणस्त्रागो मवत्विति कृत्वा ॥ २०२२ ॥

र एटक्नदरं मा॰ प्रती स्त्रम् इस्वदीवे पश्चवतारिशस्त्रान्तांत. < > एतिवहन्तर्वती स्त्रांशः दृतिकात्र वर्तेतं । दृश्यदां पत्र ८४८ टिप्पणी १-३ । टदनन्तरम् अध माध्यम् इस्वदीवे "हाँसा-हिद्या॰" इति ३०२९ गाम व्यवनादार्शन्त ॥ २ < > एतिवहगतम्बतरणं वर्षे एव वर्तते ॥ २ व्यक्ति स्तरम् च प्रहणं भवति, गूर्हात्वा च तं तेषामेव का॰ ॥

अनस्स व पहीए, जयणा गमणं तु गहण तह चेव वि गामाणुगामियम्मि य, गहिए गहणे य र्जं भणियं।। ३०३३।।

अथान्यस्य सेनापतेः पह्न्यां ह्तोपकरणस्यार्द्धं नीतं भवेत् ततस्तत्रापि यतनया गमनं प्रहणं च 'तथैव' अनुशिष्टि-धर्मकथादिना विधेयम् । एवमध्वनि विविक्तानां विधिरुक्तः । 🗸 अथा-नध्वनि तमेवातिदिशति—"गामाणुगामि" इत्यादि, ▶ श्रामानुश्रामिकेऽपि विहारे मासकल्प- 5 विधिं कुर्वन्तो यदा विविक्ता भवन्ति तदा 'गृहीते' खहस्तचिटते "गहणे" ति गृह्यमाणे चोप-करणे उपिष्टथकरणादिकं धर्मकथादिकं च यत् पूर्वं भणितं तदेवात्रापि द्रष्टव्यम् ॥ ३०३३ ॥

इदमेव व्याचिख्यासुराह-

तत्थेव आणवावेइ तं तु पेसेइ वा जिंह भदो। सत्थेण किप्यारं, व देइ जो णं तिहं नेइ ॥ ३०३४ ॥

10 यद्यपकरणमन्यस्यां पत्थां नीतं तदा यदि मूलपल्लीपतिभेद्रकस्तत उपकरणं 'तत्रैव' आत्मनो मूले तत्पक्षीवास्तव्यमानुषैरानाययति । अथवा 'तम्' इत्यारमीयमनुष्यं तत्र प्रेषयति यत्रासाव-न्यस्य सेनापतेः पह्नयामुपिवर्वर्तते । अथासौ न समर्थः स्वसमीपे आनायि हुं ततः सार्थेन सह तस्या पह्नयां गन्तन्यम् । अथ सार्थो न प्राप्यते ततो मूलप्रहीपतिर्मानुषं मार्गयितन्यः । स च 'कल्पितारं' मार्गदरीयितारं स्वमनुष्य ददाति यः 'तत्र' पह्यां ''ण''मिति तान् साधून् 15 नयति ॥ ३०३४॥

> अणुसद्वाई तत्थ वि, काउ सपिछ इतरीसु वा घेतुं। सत्थेणेव जणवयं, उविंति अह भइए जयणा ॥ ३०३५ ॥

'तत्रापि' पह्यामनुशिष्टि-धर्मकथादिपयोगं कृत्वा गृहीत्वा च स्वकीयमुपकरणजातम्, यदि ततः सार्थो न रूभ्यते ततस्तेनैव मनुष्येण सह स्वपङ्यामांगच्छन्ति, मूरूपङ्यामित्यर्थः । तत्र 20 चागत्य सार्थेन सह जनपदमुपयान्ति । अथ तस्याः पञ्च्याः सकाशादितरासां, जनपदमत्यन्तप-हीनां सार्थों रुभ्यते तासु चोपकरणं नीतं भवेत् ततस्तदर्थे तत्र गत्वा तच गृहीत्वा तत एव सार्थेन सार्द्ध जनपदमुपयान्ति । 'अथ' एषा भद्रकेऽन्यपह्णीपतौ यतना भणिता ॥ ३०३५ ॥

अँथ प्रान्तविषयां तामेवाह
 →
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ

· फड्डगपइए पंते, भणंति सेणावई तर्हि पंते । उत्तरउत्तर माडंवियाइ जा पच्छिमो राया ॥ ३०३६ ॥

25

इह मूलपहीं मुक्तवा या अन्याः पह्नयस्तासामधिपतयो मूलपहीपतिवशवर्तिनः स्पर्द्धकपतय उच्यन्ते । तेपामेकतरेण साधवो विविक्ताः, स च प्रकृत्यैव प्रान्तः, ततस्तस्मिन् प्रान्ते वहु-शोऽपि मार्गिते उपकरणमायच्छति मूळसेनापितं 'भणन्ति' धर्मकथादिना प्रज्ञापयन्ति, स च प्रज्ञापितः सन् दापयति । अथ सोऽपि प्रान्तः ततो यः कोऽपि माङम्बिकः-छिन्नमङम्बाधि-३० पतिः स प्रज्ञाप्यते । तत उत्तरोत्तरं तावन्नेतव्यं यावद् 'अपश्चिमः' सर्वोन्तिमो राजा, तमपि

१ · एतन्मध्यनतः पाठः भा॰ त॰ डे॰ नास्ति ॥ २ एनामेव निर्युक्तिगाथां व्याचि॰ का॰ ॥ ३ ४ > एतन्मध्यवर्त्यवतरणं भा० त० डे॰ नास्ति॥

प्रज्ञाप्योपकरणं प्रहीतत्र्यमिति मानः । अथ प्रमादाग्रुपहनो न मार्गयति न ना धात-रक्तादिक-मसंयतप्रायोग्यमिति कृत्वा गृहाति तत्रश्चतुर्रुयनः ॥ ३०३६ ॥

> वसिमे वि विविनाणं, एमेव य वीसुकरणमादीया । वोसिरण चडलहुराा, वं अहिरारणं च हाणी ला ॥ ३०३७ ॥

न केवल्प्सव्यति विविक्तानां किन्तु 'विसमेऽपि' लनपदे विविक्तानामुपकरणविष्यवरणा-दीति कार्याण्येवनेव मन्तव्यानि । यस्तु स्तोपकरणं व्युन्त्रज्ञति, 'को नामात्मानमायासियप्यति ?' इति कृत्वा न ग्वेपयनीति सावः, तस्य चत्वारो लघवः । यच 'अघिकरणम्' अष्कायप्रशाल-नादिकं या च तेनोपकरणेन विना सुत्रार्थयोः संयमयोगानां वा परिद्याणिन्तविष्यवसपि प्राय-श्चित्तम् । यत एवमतः सर्वप्रयकेन गवेपणीयम् ॥ ३०३७ ॥

॥ हरियाहडियापकृतं समाप्तम् ॥

अघगकुनम्

ख्त्रम्---

नो कप्पद्द निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाछे वा अद्धाणगमणं एत्तए ४६॥

15 अथास सुत्रस कः सम्बन्धः ? इत्याह—

हरियाहडियद्वाए, होज विहंमाह्यं न वारेमो । लं पुण रित्तं गमणं, तदह अन्नह वा मुत्तं ॥ ३०३८ ॥

विहे—अव्वित गच्छतां हनाइतिकार्थम् 'एवमादिकं' पछीगमनप्रमृतिकं मबेद् न वयं तद् वार्यामः । यत् पुना रात्रावव्विति गमनं 'तद्रथे' हनाइतिकानिमित्तम् अथवा 'अन्यार्थम्' 20 अन्येषां—ज्ञानादिकारणानामर्थायं तत्र स्त्रमवत्तन्ति, तद् न कल्यत इति भावः ॥ ३०३८ ॥

> अहवा तत्य अवाया, वचंते होज रत्तिचारिस्म । जह ता विहं पि रत्ति, वारंतऽविहं किमंग प्रणो ॥ २०३९ ॥

अयवा 'तंत्र' अव्वित वनतां यो गृतिचारी—रात्री गमनशिल्तास नयमा-ऽऽसम्यवचन-विषया बहवः प्रत्यपाया भवेशुरिति रात्री गननं वायते । यदि च 'विहमित' अध्वानमित गत्री १०गन्तुं वारयति ततः किमक्ष पुनः 'अविहम्' अनव्वानम् । जनपदे सुतरा गत्री गन्तुं वारयित इति भावः ॥ ३०३९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातसास्य व्याम्या—नो करूपने निर्धन्यानां वा निर्धन्यानां वा रात्रे। वा विकाछ वाऽच्वगमनं 'पृतुं' गन्तुपिति सृत्रार्थः ॥ अथ भाष्यविस्तरः—

१ °य, तिसप्यार्थ प्रस्तुतस्त्रमारस्यत इति ॥ १०३८ ॥ असुमेत्र सम्यन्यं प्रकारान्तरं-णाह—अह्या० गाथा कां० ॥ २ 'तत्र' हताहतिकास्त्रोक्ते अव्य° कां० ॥

इहरा वि ता न कप्पइ, अद्धाणं किंतु राइविसयम्मि । अत्थावत्ती संसइ, कप्पइ कज्जे दिया नूणं ॥ ३०४० ॥

इतरथाऽपि तावन्न कल्पतेऽध्वानं गन्तुं 'किन्तु' किं पुना रात्रिविषये ! तत्र सुतरां न कल्पते । यतश्च सूत्रं रात्रिविषयं प्रतिषेधं विधत्ते अतः 'अर्थापत्तिः' सामर्थ्यगम्यता सैव 'शंसति' कथयति—नूनं ज्ञायते दिवा 'कार्ये' ज्ञानादौ समुत्पन्नेऽध्वानमपि गन्तुं करुपते 5 ॥ ३०४० ॥ अथाध्वानमेव मेदतः प्ररूपयनाह-

> अद्धाणं पि य दुविहं, पंथो मग्गो य होइ नायन्वो । पंथम्मि नित्थ किंची, मग्गो सग्गामों गुरु आणा ॥ ३०४१ ॥

 अंआद्भाणं" ति नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, ततो > अध्वा द्विविधः, तद्यथा—पन्था मार्गश्च । पन्था नाम-यत्र प्राम-नगर-पह्नी-व्रजिकानां 'किञ्चिद्' एकतरमपि नास्ति । यत्र पुन-10 र्श्रामानुत्रामपरम्परया वसिमं भवति स सत्रामो मार्ग उच्यते । द्वयोरपि रात्रौ गच्छतश्चत्वारो गुरुकाः; दिवा तु पथि चतुर्गुरवः, मार्गे चतुर्रुघवः, आज्ञादयश्च दोषाः ॥ ३०४१ ॥

> तं पुण गम्मिज दिवा, रत्तिं वा पंथ गमण मग्गे वा । रत्तिं आएसदुगं, दोसु वि गुरुगा य आणादी ॥ ३०४२ ॥

स पुनरध्वा दिवा गम्येत रात्री वा, तच्चोभयमपि गमनं पथि वा मार्गे वा स्यात् । तत्र 15 रात्रिशब्दे आदेशद्वयम्। केचिदाचार्या बुवते—सन्ध्या यतो राजते-शोभते तेन निरुक्तिशैल्या रात्रिरुच्यते, यस्तु सन्ध्याया अपगमः स विकालः । अन्ये तु ब्रुवते — यतः सन्ध्याया अपगमे चौर-पारदारिकादयो रमन्ते ततोऽसौ रात्रिरिति परिभाष्यते, सन्ध्यायां तु यत एते विरमन्ति ततः सा विकारुः । पन्थानं वा मार्गं वा यदि रात्रौ विकारुं वा गच्छति तदा द्वयोरपि चत्वारो गुरवः आज्ञादयश्च दोषाः । इयमन्याचार्यपरिपाट्या गाथा ततो न पौनरुत्त्यम् 20 ॥ ३०४२ ॥ तत्र मार्गे तावद् दोषानुपदिदर्शयिषुराह-

मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा होइ संजमा-ऽऽयाए। रीयाइ संजमम्मी, छकाय अचक्खुविसयम्मि ॥ २०४३ ॥

रात्री मार्गे गच्छतः साधून् दृष्टा कश्चिद्मिनवधर्मा मिथ्यात्वं गच्छेत् । उड्डाहो वा प्रवच-नस्य भवति । विराधना वा सयमा-ऽऽत्मविषया भवेत् । तत्र संयमविराधनायामीर्यासमिति- 25 प्रभृतिकाः समितीर्न शोधयति, रात्रौ वाऽचक्षुर्विषये षट्काया विराध्यन्ते । एष द्वारगाथासङ्के-पार्थः ॥ ३०४३ ॥ साम्प्रतमेनामेन सनिस्तरं निवृणोति-

किं मण्णे निसि गमणं, जतीण सोहिंति वा कहं इरियं। जइवेसेण व तेणा, अडंति गहणाइ उड्डाहो ॥ ३०४४ ॥

अमीषां परलोककार्योद्यतानां यतीनां किमर्थं 'निशि' रात्रौ गमनम् ! किं मन्ये दुष्टचित्ता 30 अमी ? कथं वा रात्रावटन्तोऽमी ईर्यों शोधयन्ति ? यथा चैतदसत्यं तथा सर्वमप्यमीषामस-त्यमिति मिथ्यात्वं स्थिरीकृतमुत्पादितं वा भवति । तथा 'यतिवेषेण नूनममी स्तेनाः पर्यटन्ति'

१ ॳ ▷ एत्विहगतः पाठः भा० त० है० नास्ति॥

eo

इति कृत्वा ब्रहणा-ऽऽकर्षणादियु परेषु विशेषमानेषु महान् प्रवचनस्रोड्ढाहो सर्वेत् ॥३०४४॥ संज्ञमविराहणाए, महत्र्वया नत्य पदम छकाया । विद्रुष अनेण तेण, नहुएँ अदिसं तु कदाई ॥ ३०४५ ॥

'नंत्रमित्रायना द्वितिया—मृत्युणितिषया उत्तर्गणितिषया च । 'तत्र' मृट्युणितिषयायां ग्रमहात्रतानि विराध्यन्ते । तत्र प्रथमे महात्रने रात्रावच्छुर्विषयतया 'पर्कायाः' पृथिन्यादयो विनाशमक्षुवने, द्वितीये रजन्यामन्त्रनमिष स्त्रेनिमिति भाषेत, तृतीये कन्द्रम्लिदिकम् 'अद्त्तं' न्वामिना अवितीण गृहीयात ॥ ३०४५ ॥ अथवा—

दियदिने वि मचिने, जिणनेनं किम्रुय मव्यरीविसए । जेमि व ने सर्गग, अविदिन्ना नेहिं जीवेहिं ॥ ३०४६ ॥

10 यद्यपि करवादिकं स्वापिना दर्न गृह्यति तथापि सचिचिमिति छत्वा 'जिने ' तीर्थकरैनीनु-ज्ञानिमिति दिवाऽपि नेन्यं सवित किं पुनः शर्वरी—राज्ञिन्तिष्ठिपये—तद्गोचरे गृहनः ! । येषां वा जीवानां नानि कत्वादीनि शरीगणि नरवितीर्णानि गृहनस्तृतीयवनभन्नो भवति ॥ २०४६ ॥

पंचमें अणेसणादी, छंड कप्यो व पहम विद्या वा । मन्तवड चि य जानो, अपरिणनो मेहुणं पि वए ॥ ३०४७॥

15 पद्मं महावते अनेपणीयम्, आदिशब्दादाकीणीविकीणे हिरण्यादिकं च गृहतः परिप्रहो सविति । 'पष्टे' रात्रिमक्तवते → ''कृष्यो व'' ित विमक्तिव्यत्ययाद् > अव्यक्तव्यं भुजीत, ''पदम बीया व'' ित प्रथम-हिनीयपर्गपदानुरो वा रजन्यां भुजीत वा पिवेद्वा, एवं पष्टवन-विगयना । तत्रश्च 'मझवतोऽद्म्' इति बुद्धा मेश्चनम्ति 'वजेन्' मेथेन, यद्वा योऽचाप्यपरि-णतः स सार्थे वजिन सित कायिक्यादिनिमित्तमयस्तः सन् काञ्चिद्विरिक मध्यपस्तां विलो-20 क्याल्यमागारिकं प्रतिसेवेत ॥ ३०४७ ॥

भाविता मृख्युणविरावना । अशेचरगुणिवरावनां भावयति— रीयादऽसोहि र्गत्तं, भामाए उचसहवाहरणं । न य आदाणुस्मरगे, मोहऍ कायाइ टाणाई ॥ ३०४८ ॥

रात्रावीर्यादीनां मिनिनान् 'अग्रोविः' ग्रोविन भवति । तत्राचक्षविषयस्वेनेर्यासमितिम्, १८ पणे विष्णण्यानां सावृनामुच्छव्देन व्याह्ग्णं कुर्वन् माषानमितिम्, उपलक्षणस्वाहुदकाद्दीहे-कमपद्ग्ण्यामितिम्, तथाऽपन्युपेक्षिनं भूमाने ''ठाणाह्'' ति स्थान-निषदनादीनि कुर्वन्ना-दानिक्षप्रमिनिम्, अस्यिण्डेले ''व्यायाह्'' ति काषिक्यादि व्युन्त्यनम् उत्मर्गसमिति च न श्रोव्यति ॥ १०४८ ॥ एषा सर्वा नयमविरायना । अथासविरायनामुपदर्श्यति—

वारे तेण नइ सावण य विसमे य खाणु कैटे य । अकम्हामयं आयममृत्यं, र्गत्तं मग्गे मवे दोमा ॥ ३०४९ ॥

१ राज्ये गच्छतां संयमविराघना द्विविधा सवति, नद्यथा—मूल° कां॰ ॥ २ र्ताण 'सान्यकारतया केनाऽपि न दृद्येऽहृम' इति बुद्ध्या गृहीं° कां॰ ॥

५ °मर्य अहेउसमु ता॰ । "अहम्हानयं अहेतुई" इति चूर्णी विदेशपचूर्णी च ॥

३ °ते सान्यकारतया यमे व्हार्गा ४ ४ ४ एत्रिकरातः पारः मा॰ त॰ दे॰ नाित्र ॥

Б

20

25

रात्री मार्गे गच्छत एते दोषाः- 'व्यालेन' सर्पादिना दश्येत, स्तैनेरुपकरणं संयतो वा हियेत, सिंहादिभिर्वा श्वापदेरुपद्रूयेतं, 'विषमे वा' निम्नोन्नते प्रपतेत्, स्थाणुना वा कण्टेंकेर्वा विध्येत, अथवा 'आत्मसमुत्थं' स्तेनादिवाह्यहेतुविरहेण स्वचित्तकरूपनोत्पेक्षितमकसाद्भयं रात्रो मार्गे गच्छतो भवेत् ॥ ३०४९ ॥ अथात्रेव द्वितीयपदमाह—

> कप्पइ गिलाणगद्वा, रत्तिं मग्गो तहेत्र संझाए । पंथो य पुन्वदिद्वो, आरक्षिलओं पुन्वमणिओ य ॥ ३०५० ॥

अथ ग्लानः—रोगार्त्तः स एकसाद् यामाद् यामान्तरं नेतन्यः, यद्वा ग्लानः कश्चिदपरत्र यामादो सञ्जातः तदर्थं तत्र गन्तव्यम् , एव ग्रानार्थं रात्रो वा सन्ध्यायां वा मार्गो गन्तुं करूपते । येन च पथा गन्तव्यं स पूर्वमेव-अर्वाग्दिने दृष्टः-प्रत्युपेक्षितो यथा भवति तथा कर्त्तव्यम् । आरक्षिकश्च पूर्वमेव भणितो ॳैविधेयः, ⊳ यथा —वयं ग्लानकारणेन रात्रौ गमिप्यामः, भव-10 द्भिर्न किमपि च्छलं ब्रहीतव्यम् । एवमुक्ते तेनानुज्ञाते सति गच्छन्ति ॥ ३०५० ॥

गतं मार्गद्वारम् । अथ पथिद्वारमाह-

दुविहो य होइ पंथो, छिन्नद्वाणंतरं अछिनं च। छिन्नस्मि नित्थ किंची, अछिन्न पह्नीहिं बह्गाहिं ॥ ३०५१ ॥

द्विविधश्च भवति पन्थाः, तद्यथा--छिन्नाध्वान्तरमच्छिन्नाध्वान्तरं च । छिन्नं-ग्रामादिर-15 हितमध्वलक्षणं यदन्तरम्—अपान्तरालं तत् छिन्नाध्वान्तरम् , तद्विपरीतमच्छिन्नाध्वान्तरम् । तत्र च्छिने पथि श्राम-नगर-पद्धी-त्रजिकाना किञ्चिदेकतरमपि नास्ति, सर्वथैव शून्यत्वात् । थः पुनरच्छित्रः पन्थाः स पह्णीभिर्व्रजिकाभिर्वा युक्तो भवति ॥ ३०५१ ॥

> छिन्नेण अछिन्नेण च, रत्तिं गुरुगा य दिवसतो लहुगा। उद्दरे पवजाण, सुद्धपदे सेवती जं च ॥ २०५२ ॥

अनन्तरोक्तेन च्छिन्नेनाच्छिन्नेन वा पथा त्रजतो रात्रो चतुर्गुरुकौः, दिवा गच्छतश्चतुर्रुघुकाः। अत एव यत्रोर्ख्वदराः पूर्यन्ते तत्र यद्यध्वान प्रतिपद्यन्ते तदा शुद्धपदेऽप्येतत् पायश्चित्तम्, यचाकरपनीयादिकं किमीप सेवते तन्निष्पन्नं पृथक् प्रायश्चित्तमाप्यते ॥ ३०५२ ॥

इदमेर्वे स्फुटतरमाह---

उद्दरे सुभिक्खे, खेमे निरुवद्दे सुद्दविहारे। जइ पडिवज्जिति पंथं, दप्पेण परं न अन्नेणं ॥ २०५२ ॥

'ऊर्द्धदरे' अनन्तरोक्ते 'सुभिक्षे' सुलभभेक्षे 'क्षेमे' स्तेन-परचकादिभयरहिते 'निरुपद्रवे' अभिवाशुपद्रववाजिते 'सुखविहारे' सुखेनैव मासकल्पविधिना विहर्तुं शक्ये, एवंविधे जनपदे सित यदि पन्थानं छिन्नमच्छिन्नं वा प्रतिपद्यते । कथम् १ इत्याह— 'परं' केवलं 'दर्पेण' देश-दर्शनादिनिमित्तं न 'अन्येन' ज्ञानादिना प्रप्रालम्बनेन ॥ ३०५३ ॥ ततः किं भवति ? इत्याह— 30

आणा न कप्पइ ति य, अणवत्थ पसंगताए गणणासो ।

१ इतोऽप्रे प्रन्थायं ५५०० इति सा॰ विना ॥ २ ४ ० एतन्मध्यगतः पाठ का॰ एव वर्त्तते ॥ ४ °व स्पप्टतर° भा॰॥ ३ °काः प्रायश्चित्तम्, दिवसतो गच्छ॰ का॰ ॥ बृ० १०९

चम्मकरग सत्थादी, दुलिंग कप्पे अ चिलिमिणिअगहणे। तस विपरिणमुङ्काहो, कंदाइवधो य क्रुच्छा य ॥ ३०५८॥

इह पूर्वार्द्ध-पश्चार्द्धपदाना यथासक्त्येन योजना कार्या । तद्यथा—चर्मकरकं यदि न गृह्णन्ति ततः 'त्रसानां' पूतरकादीनां विराधना भवति । शस्त्रकोशस्य आदिशब्दाद् गुलिका-खोलादीनामग्रहणे कण्टकादिशल्यविद्धानां शैक्षादीनां च विपरिणामो भवति । "दुलिंग" ति ठ लिङ्गद्धयं—गृहिलिङ्गं अन्यपाषण्डिकलिङ्गं च, तयोरुपकरणेऽगृद्धमाणे खलिङ्गेनैव रात्रौ भक्तग्रहणे पिशितादिग्रहणे वा उड्डाहः स्यात् । अध्वकरुपं विना कन्दमूलादीनां वधो भवति । चिलिमि-लिकाया अग्रहणे मण्डल्या भुझानान् विलोक्य जनः 'कुत्सां' जुगुप्सां कुर्यात् ॥ ३०५८ ॥

अप्परिणामगमरणं, अइपरिणामा य होंति नित्थका । निग्गय गहणे चोइय, भणंति तहया कहं कप्पे ॥ ३०५९ ॥

तत्राध्वित गच्छतामेषणीयालाभे पञ्चकादियतनयाऽनेषणीयमि गृह्यते, तच्चापरिणामको न गृह्णाति, अगृह्णानस्य च तस्य मरणं भवेत् । ये पुनरतिपरिणामकास्तेऽकल्पनीयमहणं दृष्ट्या 'नित्थकाः' निर्लज्जा भवन्ति, तत्रश्चाध्वनो निर्गताः सन्तोऽकल्प्यमहणं कुर्वाणा गीतार्थैः प्रति-नोदिताः—'आर्थाः ! मा गृह्णीध्वमकल्प्यम्' ततस्ते म्रवते—तदाऽध्विन वर्त्तमानाना 'कथ-मकल्प्यतः श' कथ कल्पनीयमासीत् ।। ३०५९॥

तेणभयोदककञ्जे, रिंग सिग्घगति दूरगमणे य । वहणावहणे दोसा, वालादी सल्लविद्धे य ॥ ३०६० ॥

स्तेनभये दण्डकचिलिमिलिकां विना, उदककार्ये चर्मकरकं गुलिकां खोलकानि वा विना यत् प्राप्तविन्त ये तेन्निष्पन्नं प्रायश्चित्तम् । ⊳ रात्रौ सार्थवशेन शीव्रगतौ दूरगमने वोपिस्थिते तिलकामिर्विना बाल-वृद्धादयः प्रपतिन्ति तान् यदि कापोतिकया वहन्ति तदा खयं परिताप्यन्ते, 20 अथ कापोतिकाया अभावान्न वहन्ति ततस्ते परिताप्यन्ते । शल्यविद्धाः शस्त्रकोशकेन विना शल्येऽनुद्धियमाणे यत् परितापनादिकं प्राप्तविन्ति तिनिष्पन्नम् ॥ ३०६० ॥

यत एवमतो निष्कारणेऽध्वा न प्रतिपत्तव्यः । कारणे तु प्रतिपद्यमानानामयं क्रमः---

विइयपय गम्ममाणे, मग्गे असतीय पंथें जतणाए । परिप्रच्छिजण गमणं, अछिण्णें पल्लीहिं वहगाहिं ॥ २०६१ ॥

द्वितीयपैंदे अध्विन गम्यमाने प्रथमं मार्गेण, मार्गस्यासित पथाऽपि यतनया गन्तव्यम् । तत्र च जन परिपृच्छ्य यः पष्ठीभिर्वजिकामिर्वा अच्छित्रः पन्थास्तेन गमनं विधेयम् । तद- भावे छिन्नेनापि ॥ ३०६१ ॥ अथ यैः कारणैर्गन्तुं करुपते तानि दर्शयति—

असिवे ओमोदरिए, रायहुट्टे भये व आगाढे। गेलन उत्तिमट्टे, णाणे तह दंसण चरित्ते ॥ २०६२॥

30

१ 'अध्वक्षरुपं' वक्ष्यमाणलक्ष्मणं विना का॰ ॥

२ ० > एतन्मध्यगतः पाठः का॰ एव वर्त्तते ॥

३ °पदे वस्यमाणैः कारणैः अध्व° का॰ ॥ ४ °पि वस्यमाणलक्षणया यत° कां॰ ॥

आगाद्यावदः प्रत्येकमिसम्बच्यते — आगादंऽिर्धिवेऽवमाद्रेयं राजिद्विष्ट वोधिक-स्तेनादि-भये वा; यद्वा आगादं नाम—शैक्ष-सागारिकादिकमन्यतरकारणम् , तथा ग्छान उत्तमार्थभित-पन्नो वा कचिद् देशान्तरे श्रुतोऽपान्तराले च तत्र च्छित्रः पन्था अतस्तक्षतिचरणार्थं गन्तव्यम् , उत्तमार्थं वा प्रतिपित्युः सविद्यर्गातार्थसमीपं च्छिक्तनापि पथा गच्छति । 'ज्ञानम्' आचारादि ६ 'दर्शनं' दर्शनिविद्यद्विकारकाणि शास्त्राणि तद्र्थमध्यानं गच्छेत् । चारित्रार्थं नाम—यत्र देशे स्त्रीदोषा एषणादोषा वा सवन्ति तं परित्यव्य देशान्तरं गन्तव्यम् ॥ ३०६२ ॥

> एएहिँ कारणहिं, आगाहेहिं तु गम्ममाणहिं । उत्रगम्ण पुन्त्रपडिलेहिएण सत्येण गंतव्यं ॥ २०६२ ॥

'एतः' अभिवादिभिः कारणरागाँढरेव 'गम्यमाँनः' प्राप्यमाणरुपकरणमध्वप्रायोग्यं गृहीत्वा 10पूर्व-गमनात् प्राक् प्रत्युपेक्षितः—सम्यक् शुद्धाशुद्धतया निरूपितो यः सार्थग्तेन सह गन्तव्यम् ॥ ३०६३॥ अथवमेव स्पष्टयति—

> अगिवे अगम्ममाणे, गुरुगा नियमा विराहणा दुविहा । तम्हा खढु गंतव्यं, विहिणा जो विश्वओ हिट्टा ॥ २०६४ ॥

अधिवे समुत्पन्ने सित यदि न गम्यते नतश्चत्वारो गुरवः । तत्र च तिष्टतां नियमाद्
15 'द्विविधा' सयमा-ऽऽत्मनोः अथवाऽऽत्मनः परस्य चिति विराधना । यत एवं तस्मात् 'खल्व'
निश्चितं विविधा गन्तच्यम् । कः पुनर्विधिः १ इत्याह—यः 'अधितादृ' ओघिनिर्धुक्तां—
''सवच्छरवारसण्ण, होही असिवं ति ते तओ निति ।'' (मा० गा० १५) इत्यादिगाथाभिवर्णितः । दोषाण्यप्यवमाद्यविनि पटानि यथैयाचिनर्युक्तो तथेव वक्तव्यानीति ॥ २०६१ ॥

उनगरण पुन्यमणियं, अप्पडिलेहितें चउगुरू आणा।

20 ओमाण पंत सिथय, अतियत्तिय अप्यपत्थयणो ॥ ३०६५ ॥

डपकरणं 'पृर्वभणितं' य रात्रिभक्तसृत्रोक्तं नन्दीमाजन-> चर्मकरकादिक तदगृहानस्य चनुर्गुरुका । साथ वा यदि न प्रस्तुपेश्वन्ते तदापि चतुर्गुरवः आज्ञादयश्च दोपाः । तथा सार्थः कटाचिटवमानेन स्वपत्र-परपश्चकृतेनानीवोद्वेजिनो भवत्, यहा सार्थिकाः 'आतियात्रिका वा' सार्थचिन्तकाः प्रान्ता भवेद्यः, 'अल्पपथ्यदनो वा' सल्यक्षम्बङः स सार्थः ॥ ३०६५ ॥

थन एतद्दोषपरिहारार्थं सार्थः प्रत्युपेक्षितच्यः । कथं पुनः १ इति अत्रोच्यते— राग-दासविमुक्को, सत्त्यं पडिलेहें सो उ पंचिविहो ।

भंडी बहिलग भरवह, ओदरिया कप्पडिय सत्यो ॥ ३०६६ ॥

'राग-हेपित्रमुक्तो नाम' यस गन्तव्ये न रागो न वा हेपः स सार्थ प्रस्तुपेक्षते । स च सार्थः पञ्चित्रधः, तद्यथा—नगर्या—गन्नी तदुपलक्षितः प्रथमः सार्थः। विहलकाः—करमी-वेसर-वलीवर्ध-३०प्रमृतयः तदुपलक्षितो हितीयः । मारवहाः—पोहलिकावाहकास्तेषा सार्थः तृतीयः। औद-

१ °वे आगाढेऽवर्माद्यें आगाढे राजिङेष्ट आगाढे वोविक-स्तेनादिसये वा छिन्नेनापि पथा गन्तव्यम् । यहा आगाढं नाम ना॰ ॥ २ °ग्यं नन्दीमाजनादिकं प्रागुक्तनीत्या गृही° हा॰ ॥ ३ प्राप्तिकत्वांता पाटः मा॰ त॰ दं॰ नाति ॥ ४ सार्थारश्रकाः वा॰ ॥

20

रिका नाम—यत्र गताः तत्र रूपकादिकं प्रक्षिप्य समुद्दिशन्त, समुद्देशनानन्तरं भूयोऽप्यप्रतो गच्छन्ति, एप चतुर्थः । कार्पटिकाः—भिक्षाचरास्ते मिक्षां अमन्तो व्रजन्ति तेषां सार्थः पञ्चमः ।। २०६६ ।। अथैनामेर्वं गाथां विवृणोति—

गंतन्त्रदेसरौगी, असत्थ सत्थं पि क्रणति जे दोसा । इअरो सत्थमसत्थं, करेइ अच्छंति जे दोसा ॥ ३०६७ ॥

यो गन्तन्ये देशे रागी स सार्थप्रत्युपेक्षकः क्रतोऽसार्थमपि सार्थं करोति, ततः कुसार्थेन गच्छतां ये दोषास्तानापद्यन्ते, ⊲ तैंकिष्पत्रं प्रायश्चित्तं सूरयः प्रामुवन्तीति भावः । ▷ 'इतरो नाम' गन्तन्यदेशद्वेपवान् स सार्थमप्यसार्थं करोति, ततस्तत्राजिवादिषु सन्तिष्ठमानानां ये दोषा- स्तान् प्राप्नुवन्ति । ⊲ तस्ताद् राग-द्वेषविमुक्तः सार्थप्रत्युपेक्षकः सूरिभिः प्रस्थापनीयः ॥ ३०६७॥

अथ सार्थपञ्चकेऽपि गमनकमं गुणागुणविभागं च दर्शयति—>
जप्परिवाडी गुरुगा, तिसु कंजियमादिसंभवी होजा।
परिवहणं दोसु भवे, वालादी सह गेलन्ने ॥ ३०६८॥

'उत्परिपाट्या' यथोक्तक्रममुल्लद्य यदि सार्थेन सह गच्छिन्त तदा चतुर्गुरुकाः। िकमुक्तं भवित ?—भण्डीसार्थे विद्यमाने यदि विहलकसार्थेन गच्छिन्त तदा चतुर्गुरुकाः, अथ भण्डी-सार्थों न प्राप्यते ततो बहिलकसार्थेनापि गन्तव्यम्, तत्र विद्यमाने भार्रवहसार्थेन गच्छिन्ति 18 तदापि चतुर्गुरुवः, एवं भार्रवहादिसार्थेप्विप भावनीयम्। अत्र चाद्येषु 'त्रिषु' भण्डी-बहिलक-भार्रवहसार्थेषु काञ्जिकादिपानकानां सम्भवो भवेत्, 'द्वयोस्तु' भण्डी-बहिलकसार्थयोर्बालानाम् आदिशब्दाद् बृद्धाना दुर्वेद्यानां गल्यविद्धानां ग्लानानां च परिवहनं भवेत् ॥ २०६८ ॥

कि पुनः सार्थे प्रत्युपेक्षणीयम् ^१ इत्याह—

सत्थं च सत्थवाहं, सत्थविहाणं च आदियत्तं च । दव्वं खेत्तं कालं, भावोमाणं च पडिलेहे ॥ ३०६९ ॥

सार्थ सार्थवाहं सार्थविधानम् आतियात्रिकं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावम् अवमानं च प्रत्युपेक्षेत इति द्वारगाथासङ्केपार्थः ॥ ३०६९ ॥ साम्प्रतमेनामेव विवृणोति—

> सित्थ त्ति पंच भेया, सत्थाहा अट्ट आइयत्तीया । सत्थस्स विहाणं पुण, गणिमाई चउन्त्रिहं होइ ॥ २०७० ॥

सार्थ इति पदेन भण्डीसार्थादयः पूर्वोक्ताः पञ्च भेदा गृहीर्तीः । सार्थवाहाः पुनरष्टो, कीतियात्रिका अप्यष्टो, उमयेऽप्युत्तरत्र वक्ष्यन्ते । सार्थविधानं पुनर्गणिमादिभेदाच्छिविधं भवति ।

१ °व निर्युक्तिगाथां कां०॥ २ रागो मा०। एतद्वसारेणेव भा० टीका। द्दयता टिप्पणी ३॥ ३ यस्य गन्तव्ये देदो रागः स सार्थं° भा०॥ ४-५ ०५ ०० एतन्मध्यगत पाटः भा० त० ३० नास्ति॥ ६ °रवाह् का० विना॥ ७ °रवाह का०॥ ८ °रवाह भो० छ०॥ ९ °कायामोष्णोद्कादि कां०॥ १० कथं पुनः सार्थः प्रत्युपेक्षणीयः १ भा०॥ ११ °ताः, ते च विधिना प्रतिलेखनीयाः। तथा सार्थवा का०॥ १२ 'आतियात्रिकाश्च' सार्थरक्षकाः तेऽप्रहो, उभयेषामि भेदा वक्ष्यमाणलक्षणाः प्रतिलेखनीयाः। सार्थविधानं का०॥

तत्र गणिमं-यदेक्द्यादिमञ्ज्या गणियत्त्रा दायते, यथा—हरीतकी-युगफ्छिदि । घरिमं-यत तुन्त्रयां घृत्रा दायते, यथा—खण्ड-ग्रक्तरादि । मैयं-यत् पछिदिना सेतिकादिना वा मीयते, यथा—घृतादिकं तन्दुछिदिकं वा । पारिच्छेग्गं नाम—यञ्च ध्रुपा परीक्ष्यते, यथा— वन्न-पत्र-मोक्तिकादि । एनञ्चतुर्विधमित द्वयं मण्डीमार्थादिषु प्रत्युपेक्षणीयम् । तथा द्वय-क्षेत्र-क्ष्य-मावरिति सार्थः प्रस्थुपेक्षणीयः ॥ ३०७० ॥ तत्र द्वयतः प्रस्थुपेक्षणी ताववाह—

अणुरंगाई जाणे, गुंठाई बाहणे अणुण्गवणा ।

धम्मु नि वा मईय व, बालादि अणिच्छें पडिसुद्धा ॥ ३०७१ ॥

अनुन्हा नाम-बंसिकालदादानि यानानि गवेषणीयानि, आदिशक्दान् शकटादिपरिष्रदः । बाहनानि 'गुण्यदानि' गुण्ये नाम-बंग्रिको महिषा वा, आदिशक्दान् करमै-व्यमादिपरि10ग्रहः । एनेरां यानानां वाहनानां चानुज्ञारना कर्तक्या, यथा—असाकं कोऽि वाले हृदो हुवंले न्लानः शल्यविद्धो वा गन्तुं न शकुणन् स युमामिरनुरहादां वा न तुंग्हादो वा न आगेहियत्त्र्यः । यदि 'एवम्, धर्मः' इति क्रसाऽनुज्ञानिन तनः गुन्दरम् । अथ नानुज्ञानिन ततः 'मुत्या' मृज्येनापि यथाऽऽरेग्ह्यन्ति तथा प्रज्ञापित्व्याः । अथ मृत्येनापि वालादीनामाराहणं नेच्छन्ति ततः 'प्रतिकृष्णः' प्रतिषिद्धाः, तः सह न गन्तव्यमित्यर्थः ॥ ३००१ ॥

15 अरि च---

27

दंतिङ्ग-गोर-तिछ-गुल-सण्यिषमादिमंडमरिष्मु । अंतरवाघातम्मि व, तं दिनिहरा उ किं देंति ॥ ३०७२ ॥

मीदक-मण्डका-अग्रोक्कच्यादिकं यद् बहुवियं दन्नकाग्यकं तद् दन्निकम्, "गोर" ति गोष्माः, 'तैष्ठ-गुडी' यतीती, 'सर्पः' ष्टनमः, एवमादीनां मक्ष्यमण्डानां यत्र श्रकटानि १०सृतानि प्राप्यन्ते म मार्थो द्रव्यतः शुद्धः । यन एवमादिमाण्डस्तेषु श्रकटादिषु मस्य वद्यपि अन्तरा—अपान्तगरे व्यावादः—वर्षा-नदीषृगदिक उत्तवते नथापि 'तद्' दिनैकादिकं ते सार्थिकाः स्वयमपि मश्यनि मावृतामपि च प्रवच्छन्ति । 'इन्ह्या' तेषानमात्रे किं ददति !, न किमग्रीत्यर्थः ॥ ३०७२ ॥ व्यावानकारणान्येव दर्शयति—

वासेण नदीपूरेण वा वि तेणसय हत्यि रोवे य । न्त्रोमे व जन्य गम्मति, असिवं वेमादि वाघाता ॥ ३०७३ ॥

मार्थस गच्छते। इपान्तगं आगाँ हवर्षेण वा नदी मूंग्ण वा बहुतर्गद वसान् व्याणत उप-सिटः, अप्रतो वा सेनानां भयहत्त्वम्, दुष्टहित्तिना वा मार्गो निरुद्धः, 'यत्र वा' नगरादी 'गम्यतं' गन्तुमिष्णने तत्र रोवको वा राज्यक्षेमो वा अधिवं वा उरुष्वम्, एवमादयो गमनस् व्यायता भवन्ति । तेषु मिस्तेषेषु वचनान्तराज्य सार्थः सित्रवेषे कृत्वा तिष्टनि तथानि दन्तिका-ध्रादिक्द्वियक्षावद्यव्यमुटामु गर्वाषु मुख्येत्व सायवः मंनदन्ति । अत्रसेन सह गन्तव्यम् ॥ ३०७३॥ न पुनर्ताद्योन—

१ °मन्द्रस्याद्विर्गर्°मः ॥ २ ८ % एतदन्तर्गतः पाठः मा० ऋं० एव वर्तते ॥ ३ °नितक्कादिः मा० कं० ॥ ४ °गादं वर्ष पतितुमारम्यम्, चतुमां सवाहिनी चा नदी पूरेण समायाता, अप्र°मः ० ॥

क्रंक्रमें अगुरुं पत्तं, चोयं कत्थूरिया य हिंगुं च । संखग-लोणभरितेण, न तेण सत्थेण गंतव्यं ॥ ३०७४ ॥

कुँङ्कमं अगुरुः तगरपत्रं ''चोयं' ति त्वक् कस्तूरिका हिङ्गुरेवमादिकमखाद्यद्रव्यं यत्र भवति, यश्च शङ्खेन रुवणेन वा भृतः-पूर्णः, तत्रान्तरा व्याघाते समुत्पन्ने निष्ठितशम्बराः सार्थिकाः किं प्रयच्छन्तु ? यत एवमतः 'तेन' ताहशेन सार्थेन सह न गन्तन्यम् ॥ ३०७४ ॥ ३

गता द्रव्यतः प्रत्युपेक्षणा । अथ क्षेत्र-काल-भावैस्तामाह-

खेत्ते जं वालादी, अपरिस्संता वयंति अद्धाणं । काले जो पुन्वण्हे, भावें सपक्लादणोमाणं ॥ ३०७५ ॥

यावन्मात्रमध्वानं वाल-वृद्धादयोऽपरिश्रान्ताः 'त्रजन्ति' गन्तुं शक्नुवैन्ति तावन्मात्रं यदि सार्थो वजित तदा स सीर्थः 'क्षेत्रे' क्षेत्रतः गुद्धः । तथा यः सूर्योदयवेलायां प्रस्थितः पूर्वीहे तिष्ठति 10 स कालतः शुद्धः । यत्र तुं स्वपक्ष-परपक्षभिक्षाचरैरनवमानं स भावतः शुद्धः ॥ ३०७५ ॥

एकिको सो दुविहो, सुद्रो ओमाणपे छितो चेव। मिच्छत्तपरिग्गहितो, गमणाऽऽदियणे य ठाणे अ ॥ २०७६ ॥

भण्डीसार्थ-वहिरुकसार्थयोर्मध्यादेकेको द्विविधः—शुद्धोऽशुद्धश्च। शुद्धो नाम-यो नावमा-नप्रेरितः, अवमानप्रेरितोऽशुद्धः । तथा सार्थवाह आदियात्रिको वा यो वा तत्र प्रधानः स यदि 15 मिथ्यादृष्टिस्तदा स सार्थो मिथ्यात्वपरिगृहीत इति कृत्वा नार्नुगन्तन्यः । "गमणाऽऽइयणे य ठाणे य" त्ति गमने यः सार्थः मृदुगतिः अच्छिन्नेन वा पथा त्रजति, आदनं-मोजनं तद्दे-लाया यस्तिष्ठति, 'स्थाने च' स्थण्डिले यो निवेशं करोति ईद्दशः गृद्धः ॥ ३०७६ ॥

अथ स्वपक्ष-परपक्षावमानं व्याख्यानयति--

समणा समणि सपक्खो, परपक्खो लिंगिणो गिहत्था य । आया-संजमदोसा, असईय सपनस्ववज्जेण ॥ २०७७ ॥

खपक्षः श्रमणाः श्रमण्यश्च द्रष्टच्याः । परपक्षो लिङ्गिनो गृहस्थाश्च । इह लिङ्गिनोऽन्यती-थिका द्रष्टच्याः । ईरहोन मिक्षाचरवर्गेणाकीर्णे पर्याप्तमलभमानानामात्म-संयमदोपा भवन्ति । तत्रात्मदोयाः परितापनादिना, संयमदोपास्तु कन्टादिग्रहणेनेति । अथानवमानं सर्वथैव न माप्यते ततोऽनवमानस्यासति 'खपक्षवर्जेन' स्वपक्षावमानं वर्जियत्वा यत्र परपक्षावमानं भवति 25 तेन गन्तव्यम् । तत्र जनो मिक्षाग्रहणे विशेषं जानाति—इमे श्रमणाः, एते तु तचित्रकादय इति ॥ ३०७७ ॥

''गमणाऽऽदियणे य ठाणे य'' ति पदत्रयं व्याचष्टे-

१°म तगर पत्तं ता॰ ॥ २ यत्र कुङ्कमा-ऽगुरु-तगरपत्र त्वकू-कस्तूरिका-हिङ्ग्वादि-कमखाद्य° मा॰ ॥ ३ °वन्तीति भावः, ताव° मा॰ ॥

४ सार्थः क्षेत्रग्रुद्धः का॰ विना ॥ ५ तु 'खपक्षाद्यनवमानं' खपक्ष° कां॰ ॥

६ ग्रुद्धो मन्तव्यः ॥ ३०७५ ॥ अथावमानप्रत्युपेक्षणां भावयति—एकिको कां॰ ॥ ७ °सार्थादीनामेकैकः सार्थां हिवि॰ भा॰। "एकेको ति भंडिओ बहिलगो य, एस दुविहो वि सुद्धो असुद्धो य" इति चुर्णो विशेषचूर्णो च ॥ ८ व्रुमन्तव्यः भा॰ भो॰ हे॰ ॥

गमणं जो जुत्तगती, बह्गा-पह्णीहिं वा अछिण्णेणं । थंडिक्षं तत्थ मवे, भिक्खग्गहणे य वसही य ॥ ३०७८ ॥ आदियणे भोत्तृणं, ण चलति अवरण्हें तेण गंतव्वं । तेण परं भयणा ऊ, ठाणे थंडिक्षठाई उ ॥ ३०७९ ॥

5 गमनजुद्धो नाम य सार्थः 'युक्तगतिः' मन्द्रगमनः, न गीन्नं गच्छतीत्पर्थः; यो वा न्नजि-का-पद्धीभिरच्छित्रः पन्धास्तेन गच्छिति, यनसत्राच्छित्रे पथि स्रण्डिलं भवति, न्नजिकादौ च अखेनैव मिक्षाग्रहणं वसतिश्च प्राप्यते ॥ २०७८ ॥

आद्नं—मोजनं तहे छायां यतिष्ठति, भुक्त्वा चापराहे न चळति तेन सह गन्तव्यम्। "तेण परं भयणा उ" ति प्राक्चतत्वात् पञ्चम्यर्थं तृतीया, 'ततः परं' मोजनादनन्तरमपराहे 10यश्चळित तत्र भजना कर्तव्या—यदि सर्वेऽपि साववः समधीलवानीं गन्तुं ततः शुद्धः अय न शक्नुवन्ति ततोऽशुद्ध इति । स्थानं नाम—गमनादुपरन्य निवेशं कृत्वा कचिन् प्रदेशेऽव-स्थानम्, तत्र यः स्थण्डिलस्थायो स शुद्धः, अस्थण्डिले तिष्ठक्षशुद्ध इति ॥ २०७९ ॥ अथ यदुक्तन् 'अष्टो मार्थवाहा आदियात्रिकाश्च' (गा० २०७०) इति तदेनद् व्याख्यानयति—

पुराण सावग सम्मदिद्धि अहाभद् दाणंसहे य । अणिनगहिए मिच्छे, अभिग्गहे अण्णतित्वी च ॥ ३०८० ॥

'पुराण' पश्चात्कृतः १ 'श्रावक' प्रतिपन्नाणुत्रतः २ 'सम्बन्दृष्टिः' अविरतसम्बन्दर्शनी ३ 'बशामद्रकः' सामान्यतः साबुद्धनपत्रपाती ४ 'दानश्राद्धः' प्रकृत्येव दानरुचिमान् ५ अन-मिगृद्दीतिमिथ्यादृष्टिः ६ अमिगृद्दीतिमिथ्यादृष्टिः ७ अन्यतीर्थिकः ८ एते त्रयोऽपि प्रतीताः । एवनष्टे। सार्थायिपतयः । आदियात्रिका अध्येवनेवाष्ट्रो मवन्ति ॥ ३०८० ॥

20 माम्प्रतमध्वानं प्रतीत्य भङ्गानुपद्रशेयति—

सत्थपणए य सुद्धे, य पेक्षिओ कालऽकालगम-भोगी । कालमकालहाई, सत्थाहऽहाऽऽदियत्तीया ॥ ३०८१ ॥

सार्थपर्बेके मण्डीसार्थी बहिल्कसार्थश्चावमाने छुद्धो वा स्वात् पेरितो वा, य छुद्धनेत गन्तन्त्रम् । तथा कालगामिनोऽकालगामिनो वा कालमोजिनोऽकालमोजिनो वा कालनिवेधि-२५नोऽकालनिवेधिनो वा स्विण्डलसायिनोऽस्विण्डलसायिनो वा ते पञ्चापि सार्था भवेषु । तथा अष्टा सार्थवाहा अष्टा चाऽऽदियात्रिकाः ॥ २०८१ ॥

< एंमिः परें. कियन्तो मङ्गा उत्तिष्ठन्ते ? इत्याह—>

एतेसिं तु पयाणं, मयणाऍ सयाइँ एक्कपन्नं तु ।

र्वासं च गमा नेया, एत्तो य सयगासो जयणा ॥ ३०८२ ॥

र °च्छिति स गमनशुद्धां मन्तव्यः, यत' इं। ॥ २ °ित्त स भोजनशुद्धः इं। ॥ ३ मो॰ है। विनाडन्यत्र—°ना कार्या—यि मा॰ त॰ दे। भा कार्या, तुराव्दः पादपूर्णे, यृदि इं। ॥ ४ °व्वकं शुद्धमन्त्रेप्यम्, कथम् १ इत्याह—'अप्रेरितं' सपक्ष-परपक्षास्यामनुद्धेनितम्, तथा कार्छे भा। ॥ ५ ४ ० एन्स्यव्यवस्तर्ते मा॰ नित्त ॥

एतेषां पदानां संयोगेन 'भजनायां' भद्गरचनायां विधीयमानायामेकपञ्चाशत्सङ्क्यानि शतानि विश्वतिश्च 'गमाः' भद्गका ज्ञेयाः । ''एत्तो य सयग्गसो जयण'' ति आर्पत्वाद् 'एषु' सार्थेषु शुद्धा-ऽशुद्धेषु सार्थवाहा-ऽऽदियात्रिकेषु च भद्रक-प्रान्तेषु अल्पवहुत्वचिन्तायां 'शताप्रशः' शतसङ्क्ष्यभेदा यतना भवति ॥ २०८२ ॥ असुमेवार्थं भाष्यकारः प्रकृटयन्नाह—

> कालुट्टाई कालनिवेसी, ठाणहाती य कालभोगी य। उग्गतऽणत्थमि थंडिल, मज्झण्ह घरंत सूरे य॥ ३०८३॥

इह पूर्वोद्धे-पश्चार्द्धपदानां यथासङ्खं योजना, तद्यथा—कालोत्थायी नाम स साथों य उद्गते सूर्ये उत्तिष्ठते, चलतीत्यर्थः । कालनिवेशी योऽनस्तिमते रवौ प्रथमायां वा पौरुष्यां निवेशं कृत्वा तिष्ठति । स्थानस्थायी यः स्थण्डिले व्रजिकादौ तिष्ठति । कालभोजी यो मध्याह्वे सूर्ये वा वियमाणे भुद्धे ॥ ३०८३ ॥

एतेसिं तु पयाणं, भयणा सोलसविहा उ कायव्या । सत्थपणएण गुणिया, असिती भंगा तु णायव्या ॥ ३०८४ ॥

'एतेषां' चतुर्णा पदानां षोडशिवधा भजना कर्चन्या, तद्यथा—कालोत्थायी कालनिवेशी स्थानस्थायी कालभोजी १ कालोत्थायी कालनिवेशी स्थानस्थायी अकालभोजी २ कालोत्थायी कालनिवेशी अस्थानस्थायी कालभोजी ३ कालोत्थायी कालनिवेशी अस्थानस्थायी अकालभोजी १ । एवमकालनिवेशि पदेनापि चत्वारो भङ्गा अवाप्यन्ते, लब्धा अष्टी भङ्गाः । एतेऽकालोत्था- यिपदेनाप्यष्टी प्राप्यन्ते, जाताः षोडश भङ्गाः । एते च सार्थपर्श्वकेऽपि प्राप्यन्त इति पञ्चिमर्गु- ण्यन्ते, गुणिताश्चाशीतिर्भङ्गका भवन्ति ॥ २०८४ ॥

सत्थाह अद्वगुणिया, असीति चत्ताल छस्सता होंति । ते आइयत्तिगुणिया, सत एकावण्ण वीसहिया ॥ ३०८५ ॥

पूर्वलब्धा अशीतिर्भन्नकाः प्रतिसार्थवाहं प्राप्यन्ते इति कृत्वा अशीतिरष्टभिः सार्थवाहेर्गुणिताः षद् शतानि चत्वारिंशानि भवन्ति । एतानि चाष्टभिरादियात्रिकेर्गुण्यन्ते जातानि भन्नकानामेकपञ्चाशच्छतानि विंशत्यधिकानि । एषामन्यतरिसान् सार्थे यथायोगमल्पबहुत्वं परिभाव्य
यत्र बहुतरा गुणा भवन्ति तमिरोच्य गुरुपादमूलमागत्य सार्थप्रस्रुपेक्षका आलोचयन्ति
॥ ३०८५ ॥ अथ सार्थवाहस्यानुज्ञापनायां विधिमाह—

दोण्ह वि चियत्त गमणं, एगस्सऽचियत्त होति भयणा उ । अप्पत्ताण णिमित्तं, पत्ते सत्थिमि परिसाओ ॥ २०८६ ॥

्यत्रैकः सार्थवाहस्तत्र तमनुज्ञापयन्ति, ये वा प्रधानपुरुषास्तेऽनुज्ञापयितन्याः । अथ द्वी सार्थाघिपती ततो द्वावप्यनुज्ञापयितन्यो, यदिः प्रीतिकं ततो गमनं कर्तन्यम् । अथैकस्याप्रीतिकम्

१ 'विश्वतिश्च' विश्वत्यधिकानि 'गमाः' का॰ ॥ २ °ध्याद्ववेळायां सूर्ये वा 'भ्रियमाणे' अनस्तमयमाने भु° कां॰ ॥ ३ °धा' षोडशभद्गप्रमाणा भज्ञ° का॰ ॥ ४ °जी ४। पते काळ-निवेशिपदेन ळब्धाः, प्रवमका॰ का॰ ॥ ५ पते काळोत्थायिपदेन ळब्धाः, अकाळो॰ भा॰ कां॰ ॥ ६ °ञ्चकेन गुण्य॰ भा॰ त॰ हे॰ ॥ '७ °दि ह्रयोरिप श्री॰ का॰ ॥

च्येप्रस्य प्रीतिकं > ततो भजना मन्नति, यन्त्रयोः प्रेरकः प्रमाणमृतन्तस्य प्रीतिके गन्तन्त्रम्
 च्येप्रीतिके न गन्तन्त्रम् ▷ । साथै चाप्राप्तानां 'निमिन्तं' ज्ञानुनप्रहणं भन्नति । साथै प्राप्ताः
 पुनः साथैसेव ज्ञानुनेन गच्छन्ति । साथिप्राप्ताव्य तित्रः परिषदः कुर्वन्ति, तद्यया—पुरतो
 मृगपरिषदं मध्ये सिंहपरिषदं पृष्ठतो वृषमगरिषदम् ॥ २०८६ ॥

अथ "दोण्ह नि" ति पदं निवृणोति—

दोनि वि ममागया मत्थिगो य जस्स व वसेण वचित तु । अण्णुण्णविने गुरुगा, एमेव य एगतर्पने ॥ २०८७ ॥

सार्थो विद्यते यसेति व्युत्तस्य हार्वात मिलितो समागतो समक्रमनुज्ञापयन्ति । अथवा 'मार्थिकः' सार्थो विद्यते यसेति व्युत्तस्या सार्थवाहै एक एवानुज्ञाप्यते । यस वा वदोन सार्थो ब्रज्ञति १०सोऽनुज्ञाप्यः । अथाननुज्ञापिते सार्थवाहादो ब्रज्ञन्ति तदा च्य्वारो गुरुक्ताः । अथ हो सार्थानिक तक्त मिलितो स्यातान्, तत्र च हो सार्थाविपती, हावप्यनुज्ञापयितव्यो । अथेकमनुज्ञापयन्ति तत्र 'एवमेव' चतुर्गुरुकाः । अथेकतरः प्रान्तः तत्रश्चिन्तर्नायम् —म भरको वा < स्याद् अभेरको वा > । यदि प्रेरक्तन्ततो न गन्तव्यम् । अथ गच्छन्ति ततः 'एवमेव' चतुर्गुरुकाः ॥ २०८७ ॥ कथं तर्हि गन्तव्यम् ? इत्याह—

जो होइ पेछ्तो तं, मणंति तुह वादृष्ठायसंगहिया । वचामऽणुगाहो त्ति य, गमणं इहरा उ गुरु आणा ।। ३०८८ ।।

यत्तत्र 'प्रेर्कः' प्रनाणमृतो मनति तं वर्नलामयिता मणिन—यद्यनुजानीत ततो वर्षे युमामिः समं युम्महाहुच्लायासङ्गृहीता त्रजामः । एवमुक्ते यद्यसा त्र्यात्—मनवत् ! अनुप्रहोऽयं मे, अहं सबेमि मनवतामुद्रन्तमृह्हामीतिः; एवमनुजाते गमनं विषेयम् । 'इत्रया' 20यद्यसी तृम्णीकृतिष्ठति त्रवाति वा 'मा समागच्छत' इति ततो यदि गच्छन्ति तत्रश्रतारो मुख आज्ञाद्यश्र दोषाः ॥ २०८८ ॥

यदि सार्थवाह्सापरस वा प्रेरक्सार्धातिके गम्यते तत एने दोषाः— पडिसेहण णिच्छुमणं, उवकरणं वालमादि वा हारे । अतियत्त गुम्मिएहि व, उंडमेते ण वारेति ॥ २०८९ ॥

25 स सार्थवाद्यदिः पार्न्तः सन्नटर्शमञ्ज्यप्राप्तानां सादृनां मक्त-पानप्रतिपेत्रं सार्थाद्वा निप्नाद्यनं विद्यात्, उपकरणं वा बाळाडांन् वा अन्येन स्त्रनादिना 'हार्यन्' अपहरणं कारयेदित्यर्थः, 'आदियात्रिकतां' सार्थारक्षकः 'गाहिमकतां' सानरक्षणकः 'उद्द्यमानान्' सुप्यमाणान् सावृत् 'न वारयित' उदासीन आस्त्र इत्यदिः ॥ ३०८६ ॥ यत एवं ततः किं कर्तव्यम् १ इत्याह— र एतिवहगटः पाटः मा० कां० एवं बत्तवे ॥ २ ≺ ≻ एतदस्तर्गतः पाटः मा० एवं वर्तते ॥

्र एवावस्थाः पाठः का० का० एवं वस्ति ॥ २ ४ ४ एवर्न्स्यादः पाठः मा० एवं वस्ति ॥ ३ चाद्याप्यप्रा° कं० ॥ २ 'ईा' सार्यवाहा-५ऽदियात्रिका 'समागतो' निष्ठितो समक° मा० ॥ ५ 'सार्थिका सार्यो विद्यते यस्येति व्युत्पस्या सार्थवाहमेकमेवानुद्यापयन्ति । यस्य वा मा० ॥ ६ दः स एक° इां० ॥ ७ ४ ४ एवर्न्स्यातः पाठः मा० कां० एवं वस्ति ॥ ८ जो वा वि पेह्न° दा० ॥ ९ उड्डूचेते दा० ॥ १० 'न्तः महार्ट' हे० ॥

16

25

भद्गवयणे गमणं, भिक्खे भत्तद्वणाएँ वसधीए । थंडिल्ल असति मत्तमा, वसभा य पदेस वीसिरणं ॥ ३०९० ॥

सार्थवाहादिर्भद्रको ब्रूयात्—यद् यूयमादिश्यत तदहं सर्वमिष सम्पादियण्यामि, सिद्धार्थक-वत् चम्पकपुष्पवद्वा शिरिस स्थिता अपि मे भारं न कुरुथ। एवं वचने भणिते सित गमनं कर्त्तन्यम्। गच्छद्भिश्चाध्विन मैक्षविषया भक्तार्थना—समुद्देशनं तद्विषया वसतिविषया च यतना क कर्त्तन्या। संज्ञां कायिकीं वा ⊲ स्थैण्डिले न्युत्स्डेनेयुः। ⊳ स्थिण्डिलस्यासित मात्रके न्युत्स्डेन्य तावद् चहन्ति यावत् स्थिष्डिलं प्राप्तुवन्ति, एवं वृपभा यतन्ते, यद्वा वृपभाः पुरतो गत्वा यत्र स्थिष्डिलं तत्र प्रथमत एव तिष्ठन्ति। अथ सर्वथैव स्थिष्डिलं न प्राप्यते ततो धर्मा-ऽधर्मा-ऽऽकाशास्तिकायप्रदेशेष्विप न्युत्स्डजन्ति॥ ३०९०॥ अमुमेवार्थमितदेशद्वारेणाह—

> पुन्वं भणिया जयणा, भिक्खे भत्तद्व वसिह थंडिछे। सा चेव य होति इहं, णाणत्तं णवरि कप्पिम ॥ २०९१॥

भिँक्षा-भक्तार्थ-वसति-स्थण्डलविषया यतना या 'पूर्वम्' अधस्तनसूत्रेषु **ओघनिर्धुक्तौ** वा भणिता सैवेहाध्वनि वर्त्तमानानां मन्तव्या, स्थानाशून्यार्थं तु किञ्चिदत्रापि वक्ष्यते । तत्र भैक्ष-द्वारे 'नवरं' केवलमिह 'कल्पे' अध्वकल्पविषयं नानात्वम् ॥ ३०९१ ॥ तदेवाह—

अग्गहणे कप्पस्स उ, गुरुगा दुविधा विराहणा णियमा । पुरिसऽद्धाणं सत्थं, णाउं वा वी ण गिण्हिजा ॥ ३०९२ ॥

छिन्नेऽच्छिन्ने वा पिथ यद्यध्वकरूपं न गृह्णन्ति तदा चतुर्गुरवः, 'द्विविधा च' आत्म-संयममेदाद् विराधना अ नियमाद् मन्तन्या № । तत्रात्मविराधना मक्ताद्यसमे क्षुधार्तस्य परितापनादिना, संयमविराधना तु क्षुधार्तः सन्नध्वकरूपं विना कन्दादिग्रहणं कुर्यात् । अतो प्रहीतन्योऽध्व-करूपः । एभिः कारणैर्न गृह्णीयादि — यदि पुरुषाः सर्वेऽिष सहनन-धृतिवरुवन्तः, अध्वाऽप्ये-20 कदैविसको अ द्विदैविसको № वा, सार्थेऽिष प्रभूतमेक्षमवाप्यते तदिष ध्रुवरुभम् , अ सार्थश्च भद्रकः कारुमोजी कारुखायी च № । एवमादीनि कारणानि ज्ञात्वा च्छित्रपथे अ ऽर्ध्यध्व-करूपं № न गृह्णीयात् ॥ ३०९२ ॥ स पुनरुव्वकरुपः कीहरो ग्रह्णीतन्यः १ इत्युच्यते—

सक्तर-घत-गुलमीसा, अगंठिमा खज्जूरा व तम्मीसा। सत्तू पिण्णागो वा, घत-गुलमिस्सो खरेणं वा ॥ २०९३ ॥

र्शंकरया घृतेन च मिश्राणि 'अंग्रन्थिमानि' कढलीफलानि ⊲ खेँण्डाखण्डीकृतानि > गृह्यन्ते।

१ ०४ ०० एतिचिहान्तर्गतः पाठः मा० कां० एव वर्त्तते ॥ २ एनामेव निर्युक्तिगाथां व्याख्यातुः माह इत्यवतरणं कां० ॥ ३ स चेव भा० ॥ ४ मैक्षविषया भक्तार्थ-चसति-स्थण्डिलविषया च यतना कां० ॥ ५ ०४ ०० एतिचिह्नमध्यगतः पाठः कां० एव वर्त्तते ॥ ६ ०४ ०० एतिच्ह्नमध्यगतः पाठः भा० षां० एव वर्त्तते । "अद्धाणं जइ एगदेविसयं दुदेविसयं वा" इति चूर्णो विद्यापचूर्णो च ॥ ७ ०४ ०० एतदन्तर्गतः पाठः भा० नास्ति । "भइगो य सत्थो कालभोई कालहाई य" इति चूर्णो विद्यापचूर्णो च ॥ ०० ०० एतदन्तर्गतः पाठः भा० नास्ति । "भइगो य सत्थो कालभोई कालहाई य" इति चूर्णो विद्यापच्यूर्णो च ॥ ०० ०० एतदन्तर्गताः पाठः भा० नास्ति । १९ ०० नास्ति ॥ ९० ०० एतदन्तर्गताः च ता० ॥ १० अध्वानं प्रविद्याद्विः द्यार्कः कां० ॥ १९ अध्वानं प्रविद्याद्विः द्यार्कः कां० ॥ १९ अधिया णाम मरहष्ट्विसए फलाणि—'कयलस्स

G

15

अय ग्रर्क्त न प्राप्यंत तता गुंडन घृतेन च निश्चितानि । तेणममाने सर्जूराणि घृत-गुडनिश्राणि । तद्रप्राप्ता सक्तकान् घृत-गुडनिश्रान् । तद्र्डामे निण्याकोऽपि ४ वृंत-गुडमिश्रो प्रदीतव्यः । अय > घृतं न प्राप्यते ततः स्तरसंज्ञकेन तेलेन मिश्चितः पिण्याकः ॥ २०९२॥ एतेषां प्रहणे गुणसुनदर्शयति—

थोवा वि हणंति सुहं, न य तण्ह करेंति एतें खर्जना । सुक्लोदणं वऽरुंमे, समितिम दंतिक चुण्णं वा ॥ २०९४ ॥

'एतानि' अप्रन्थिमादांनि जाद्यमानानि खोजान्यपि क्षुवं ब्रन्ति, न चैतानि सक्तानि सन्ति तृय्यां क्ष्वेन्ति, अत ईह्छोऽव्यक्तस्यो गृह्यते । ई्हछसालामे 'ग्रुक्तोदनः' ग्रुक्क्त्रः, तद्रलामे 'समितिमाः' ग्रुक्तमण्डकाः, तद्रताता 'दिन्तिक्वपूर्णः' तन्द्रल्लोहः, यहा दिन्तिकं—तन्दुल्पूर्णः, 10पूर्णं तु—मोदकादिज्ञाद्यकपूर्णः; एतन् सर्वसी वृत-गुडेन निश्चित्वा स्थापनीयम् । यदि ग्रुढं मक्तं लगन्ते ततो नाव्यकस्यं स्वातं, यावन्मात्रण वा न्यृनं ग्रुढं लमन्ते तावन्मात्रमध्यक्त्याद् परिसुन्नते, अनुपस्थानितेम्यो वा प्रयच्छिन्ति ॥ ३०९४ ॥

य अञ्चानं प्रविद्यद्वित्परमानि यद् प्रहीतच्यं दद् दर्शयति—> तिविद्दाऽऽमयमेसञ्ज, वणमेसञ्ज य सप्पि-महु-पट्टे । सुद्धाऽसति तिपरित्ए, जा कम्मं णाउमद्वाणं ॥ २०९५ ॥

त्रिविद्याः—त्रिमकारा वातज रित्तज-रूज्यज्ञमेदाद् ये खाम्याः—रोगालेषां यानि भेषक्यानि, यानि च त्रास्य भेरक्यानि सार्थार्मश्राणि मद्युनिश्राणि वा त्रणेषु दस्त्वा पहेर्वव्यन्ते तानि गृह्यन्ति । सर्वेमच्येनद्रव्यक्त्र्यादिकं प्रयमतः शुद्धन् दद्मावेऽशुद्धमिष 'त्रिपरिर्ययत्तन्या' पञ्चकपरिहाण्या प्रहीतक्यं यावदाधाकर्मेति । प्रमाणतः पुनरक्वान स्तोकं वा वहुं वा ज्ञात्वा तद्रनुसारेणाव्यक-१० स्पोऽति प्रहीतक्यः ॥ २०६५ ॥ एवं यदा सर्वमप्युसादिनं मवति तदा किं विषेयम् १ इत्याह—

> अद्वाण पविसमाणो, जाणगर्नासाएँ गाहए गच्छं । अह तत्य न गाहिजा, चाडम्मासा भन्ने गुरुगा ॥ २०९६ ॥

अञ्चानं प्रतिद्यन् मृरिः प्रथनन एव इल्ल-गांतार्थस निश्या-तं पुरस्कृत्य गच्छमञ्जकस्यं प्राह्यति । अथ 'तत्र' अव्वयत्रेद्ये गच्छं न प्राहण्ति तत्रश्चतुर्मामा गुरुका सदेयुः । अतो

क्याणे, परिने एर्ज्ज (उर्जन) डाउँ वहुँहें ।'ती प्रजी संदासंदिक्यी" इति विशेष-सूर्यो । "क्षांतिमारं ति क्याणी संदासंदिक्यिन" इति सूर्यो ॥

१२ ८ / एतवन्द्रांतः पठः मा नाति ।

१ इं॰ मे॰ हे॰ दिनऽच्यत्र—'रा यदि न म॰ । 'रया न त॰ द॰ दे॰ ॥

२< > एतदिहान्तीतः पाटः म ॰ हाँ । एव वर्नते ॥

दे "दोवा वि॰ नाय केंद्रा। विलागस्य श्रमें कृते दुव्वित्वो । तबस्ते 'सम्बन्ध' मंद्रोत्रियाको । तबसें 'देदिय' ति अदोक्तर्यादे । तबसेंग्रे मोदक्ष्यूयाँदे देसुं यब्द्राकेंद्वि नास्त्रेते ।" इति स्पूर्णा ॥ ४ भू । ततोऽस्थानं यहमाना यदि द्यं ।। ५ ५ % एन्द्रस्तर्गद्वम्बद्धां क्रं एव दर्गते ॥ ६ 'स्यानि, यद् त्रणमद्वार्थे यृत-मञ्ज, यञ्च त्रणयन्त्रार्थेः चीवरपद्वः । सर्वम मा ॥

25

गीतार्थं पुरस्कृत्यागीतार्थमत्ययनिमित्तमन्तराऽन्तरा द्यानिचिदर्थपटानि परित्यवत् स्रेरेरीच्छमध्य-करुपं त्राहयेत् ॥ २०९६ ॥ ४ एवंनिधेन विधिना निर्गतानामय विधिः—>

> समए सरमेदादो, लिंगविओरां च काट गीयत्था। खरकन्मिया व होडं, करेंति पुत्ति उरायदाने॥ २०९७॥

यत्र समयं तत्र घृषमाः स्वरमेव-वर्णमेवकारिणीमिर्गुलीकामिरन्याह्यं स्वरं वर्ण च कृत्वा । गच्छन्ति । अथवा यथा 'एते संयताः' इति न ज्ञायते तथा लिङ्गवियोग कृत्वा गीतार्था गच्छन्ति । स्वरकन्मिका चा सकद्धपरिकरा यथासम्मदं गृहीतायुधा भृत्वा वृदमाः 'उमयदर्थे' साधु-साध्वीलक्षणे 'गृप्तिं' यथा कुर्वन्ति ॥ ३०९७ ॥ किङ् —

जे पुन्ति उद्यव्हरणा, राहिया अद्धाण पहिस्साणिहिं।
जं जं जोग्गं जस्थ छ, अद्धाणे तस्स परिसोगी। ॥ २०९८ ॥ 10
यानि पूर्व धर्मकरकादीन्युएकरणानि अध्यानं प्रविमिद्धितानि तेषां मध्ये यद् यस्पिद्
काले योग्य तस्य तदा अध्यनि परिसोगः कर्तन्यः ॥ २०९८ ॥

अंथाध्यक्तपमोगं विधिमाह—>>

हुन्सोदणो समितिमा, कंजिसिणोदेहि उष्हदिय श्रंजे । मृह्यत्तरे विभासा, जतिकणं गिरगर्ते विदेगी ॥ २०९९ ॥

"कंजुसिणोदेहि" ति इह च लाटट्रेशेऽवश्रावण काङ्गिकं भण्यते । यदाह चूणिहास्—

अनसावण लाडाणं कंनियं भव्णइ ति।

त्ततोऽवश्रावणेनोप्णोवकेन वा शुप्कोदनं शुष्कसमितिमाश्च 'अप्णायित्वा' मृदुभदनार्थेमुण्णीकृत्य मुझीत । "जङ्कणं निगण् विवेगो" ति एवमादिकया यतनया यतित्या यदा अध्वनी
निर्गतात्तदा तमध्वकल्पमञ्चकं अक्तोद्धरितं वा विविचन्ति, परिष्ठापयन्तीत्पर्थः । "मृद्धक्ते २०
विमास" ति य मूं लोत्तरगुणविषया विभाषा कर्तत्या । तद्यथा— । शिप्यः प्रच्छिति—यो अध्वक्तरम् आधाकिमिकः परिवातितश्च स तावदाधाकिमिकत्वेनोत्तरगुणोपघाती परिवातित्वयं स तावदाधाकिमिकत्वेनोत्तरगुणोपघाती परिवातित्विन तु मृत्रगुणोपघाती ततः किमेष अञ्चताम् १ अत प्रतिदिवसं रुग्यमानमाधाकमें १ अति। च्यते—
अध्वक्तरुपो भुज्यतां नाधाकमें ॥ ३०९९ ॥ ननु दौषद्वयदुष्टोऽसो १ स्त्रिराह—

कामं करमं त सो कप्यो, जिसिं च परिवासिती। तहा वि खळ सो सेओ, ण य करमं दिणे दिणे ॥ ३१००॥ 'कामम्' अँतुमतम्—यदसावध्वकरूप एकं तावदाधिकमें अपरं च 'निशि' सती धिरैवी-

१ ० एतदन्तर्गतमवतरणं भाग नान्ति ॥ ६ विनासम्बन्ति सहमानाना विभि इर्जयति काण ॥ ३ व्यर्भकरकाण्मो छ । ४ ० एतन्मध्यमतमत्तरणं काण्युव वर्षते ॥ ६ ० एत्न्तर्मध्यमतमत्तरणं काण्युव वर्षते ॥ ६ ० एत्न्तर्मध्यमतमत्तरणं काण्युव वर्षते ॥ ६ ० च किचिदाचार्यदेशीयाः अत्युव्यस्यन्ति—आधान्तर्मे सीधान्त्रम्, न पुनराधाकर्मिका परिवासितोऽध्वक्षणः, यनो दोषष्ट्रयपुष्टोऽसी, तनः ५ ७ निकदोषद्वप्रमाधाकर्मे परिवृत्यासी भुज्यते १ ॥ ३७६६ ॥ सृरिस्य ७० ॥ ७ अवधारित-मसामिः—यद्ण्यां ॥

25

सितः, तथापि 'ज़लु' निश्चितं 'स एव' अध्वक्तव्यः थ्रेयान , न चायाक्रमी दिने दिने रुम्य-मानं वरम् ॥ ३१०० ॥ कृतः १ इति चेट्ट उच्यते—

> आधाकम्माऽसिनं घाता, सई पुट्यहते नि य । (प्रन्थाप्रम्—९५०० । मर्वप्रन्थाप्रम्—२१७२०)

जे उ ते कम्मिमच्छेति, निग्यिणा ते न मे मता ॥ २१०१ ॥

यदाबाक्रम दिने दिने छम्यते तत्र 'खसक्टर्' अनेक्रवारं वीवोषयातः, अध्वकरेषे तु यदाबाक्रमे तत्र 'मक्टर्' एक्रमेव वारं जीवोषवातः, पूर्वहताश्च ते जीवा न दिने दिने हम्यन्ते, अतोऽध्वकरुर एव वरं नायाकर्म । ये पुनः 'ते' अविदितपवचनरहस्या अध्वकरुपं म्छोत्तर-गुणोषपातिनं मत्वा न अञ्चतं, आवाकर्म तु केवछोत्तरगुणोषवातकिमिति मत्वा दिने दिने 10मोक्तिमच्छन्ति, तेऽस्यन्तिनिर्युणाः सत्त्वेषु, अत एव न ते नम सम्मता इति ॥ ११०१॥

भेंबेद्वार एव विशेषं दर्शयति— >

कालुहाईमादिसु, मंगेसु जतंति वितियमंगादी । लिंगविवेगोक्षेते, चुडलीए मग्गतो अमए ॥ ३१०२ ॥

कालोत्थायिप्रमृतिष्ट मङ्गपु द्वितायमङ्गमादो इत्वा यनन्ते । तथाहि—कालोत्थायी काल15 निवेशी सानसायी कालमोर्जा इत्यत्र प्रथममङ्ग नान्ति यनना, सर्वथाऽपि शृद्धतात् ; द्वितीग्राद्भिष्ठ तु सन्मर्वेति । तत्र द्वितीयमङ्ग अकालमोर्जाति इत्या स्विद्धविवेकं विवाय रात्री
परिलेङ्गेन गृह्गित । तृतीयचतुर्थमङ्गयोरसानसायीति इत्या यद् गवादिमिराकान्तं स्मानं तत्र
तिष्टन्ति । पञ्चमाद्भिष्ठ चतुर्पु मङ्गयकालनिवेशीति इत्या कालिकायां तिष्टन्तश्चुडलिकया
संतारकमृत्यादिषु विलादिलं गल्ययन्ति । नवमादिषु पोडशान्तेष्वष्यु मङ्गपु अकालोत्थायीति
१० इत्या गलो गन्तव्ये उपस्थितं 'मार्गतः' पृष्ठनः स्थिता गल्लान्ति । क सति ? इत्याह—'अमये'
यदि पृष्ठतो गल्लातं सेनादिमयं न भवत् । मक्तार्थनं तु यः सार्थोऽकालसार्या तत्र निर्भये
पुरतो गला तथा सम्रद्धिशन्त यथा समुद्दिष्ट सार्थन्तत्र प्रामाति, वसति च मध्ये गृह्जन्ति
॥ ३१०२ ॥ तथा—

सावय अण्णहर्कडं, अहा मुक्खें मय जोह जतणाए । तेण वयणच्हगरं, नत्तो व अवाउडा होति ॥ ३१०३ ॥

श्वापद्रमयेऽन्यः—सार्थिकंरात्मार्थं यो द्वितिपरिशेषः कृतस्त्रत्र तिष्टन्ति । तदमावे "अद्दु" ति साय्तामर्थाय कृते द्वितिपरिशेषे तिष्टन्ति । तदमावे "युक्ते सय" ति शुष्ककण्टिकासिः स्वयमव द्वितिपरिशेषे द्वितिति । "नोह न्वयणाए" ति यदि श्वापद्रमये न्योतिषा—अग्निना कार्यं ततः परकृतमीग्ने सेवन्ते । अय ते तं सेवितं न प्रयच्छन्ति ततः परकृतमेवाग्नि गृहीत्वा २०प्राशुक्तराकृषिः प्रज्ञाख्यन्ति । यत्र तु स्तन्यय तत्र तथा 'वचनचटकरं' वागाइम्बरं कुर्वन्ति

१ 'स्या श्राचार्यदेशीया अध्य' हा ॥ २ % !/ एतरन्दर्गतम्बनर्णं भा॰ नाति ॥

३ ° पु पूर्वोक्तमें हुँ रा॰ ॥ ४ ° बनि । वामेब द्र्ययिन—''हिंगविवेग'' इत्यादि, तत्र कां॰ ॥

५ °ने सक्तपानं गु॰ ता॰ ॥ ६ °कहे, सुक्ये सबसेव जोइ ता॰ ॥

यथा ते स्तेना भयादेव शीर्घ नश्यन्ति । अथवा यंतः—यर्स्या दिशस्ते समागच्छन्ति तदिभ-मुखीभूय अपावृता भवन्ति ॥ ३१०३॥

ॳ पैवंविषं विषि कुर्वाणा अध्वनो निखरन्ति । अथायं न्यापातो मवेत् —
 सावय-तेणपरद्धे, सत्थे फिडिया ततो जित हवेजा ।
 अंतिमवइगा विंटिय, णियद्दणय गोउलं कहणा ।। ३१०४ ।।

महाटन्यां सिंहादिभिः श्वापदैः स्तैनेवी सार्थः पारव्धः सन् दिशोदिशि विप्रणष्टः, साध-वोऽप्येकां दिशं गृहीत्वा विप्रणष्टाः 'ततः' सार्थात् स्फिटिता यदि भवेयुः, ततो दिग्भागमजा-नन्तो वनदेवतायाः कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, सा च व्रजिका विकुर्वति, अन्तिमायां च व्रजिकाया-मुपकरणविण्टिकां विस्मारयति, तस्या ग्रहणार्थं साधूनां निवर्तनम्, यावत् तत्रागताः तावद् गोकुलं न पश्यन्ति, ततो गुरूणां समीपे कथनम्, यथा—नास्ति सा व्रजिकेति ॥ ३१०४ ॥ 10

इदमेव स्पप्टयति--

अद्धाणिम्म महंते, वहंतो अंतरा तु अडवीए। सत्थो तेणपरद्धो, जो जत्तो सो ततो नहो॥ ३१०५॥ संजयजणो य सन्वो, कंची सित्थिल्लयं अलभमाणो। पंथं अजाणमाणो, पविसेज महाडविं भीमं॥ ३१०६॥

15

अध्वित महित वर्तमानः सार्थः सर्वोऽप्यन्तरा महाटन्यां स्तेनैः पारव्यः, ततश्च यो यत्र वर्तते स तत एव 'नष्टः' पलायितः ॥ ३१०५ ॥

संयतजनश्च सर्वः कञ्चिदपि सार्थिकमरुभमानः पन्थानं चाजानन् भीमां महाटवीं प्रविशेत्। ३१०६॥ ततः किं कर्त्तन्यम् १ इत्याह—

सन्वत्थामेण ततो, वि सन्वकज्जुज्ञया पुरिससीहा। वसमा गणीपुरोगा, गच्छं धारित जतणाए॥ ३१०७॥

20

ततः 'सर्वस्थामा' सर्वादरेण वृषमाः 'सर्वकार्योद्यताः' सकङगच्छकार्येकबद्धकक्षाः 'पुरुष-, सिंहाः' सातिशयपराक्रमतया पुरुपाणां मध्ये सिंहकल्पाः 'गणिपुरोगाः' आचार्यपुरस्सरा ईट्यमं विषमद्शायां प्रपतन्तं गच्छं यतनया धारयन्ति ॥ ३१०० ॥ तामेवाह—

जइ तत्थ दिसामूढो, हवेज गच्छो सवाल-बुह्वो उ । वणदेवयाऍ ताहे, णियमपगंपं तह करेंति ॥ ३१०८ ॥

25

यदि 'तत्र' अटन्यां सवाल-वृद्धोऽपि गच्छो दिक्क्हो भवेत् ततो नियमेन—निश्चयेन प्रकम्पः— देवताया आकम्पो यसादिति नियमप्रकम्पः—कायोत्सर्गस्तं वनदेवताया आकम्पनार्थं तथा कुर्वन्ति यथा सा आकम्पिता सती दिग्मागं वा पन्थानं वा कथयति ॥ ३१०८ ॥ यँतः—

१ · एतदन्तर्वर्र्यवतरणं भा० नास्ति ॥ २ विधि विद्धाना अध्व° का० ॥

३ °त्। कीहराः ? इति अत आह—अद्धाणिम का॰। नास्यस्या प्रती "सावयतेणपरदेः ॰" ३१०४ गाथा तशका च। चूर्णिकृता विशेषचूर्णिकृता यहद्भाष्यकृता चापि नेय गायाऽशीकृता दश्यते॥ ४ अथवा कां०॥

सम्मिद्द्धी देवा, वेयावयं करेंनि माहणं । गोकुलविउच्यणाए, आमाम परंपरा मुद्धा ॥ २१०९ ॥

ये सम्याहप्रयो देवाने साधृनां 'वैयाग्रस्यं' सक्तवानीपप्टमादिना द्रव्यापदायुद्धरणात्मकं कुर्वन्तीति स्थितिः । तनः सम्याहप्रिदेवता काचिद् गोकुछं विक्वंति । साधृनां तह्र्यनेना- प्रधासः । तत्तम्तया देवतया साधवा गोकुछपरम्परया तावद् नीना यावजनपदं भीमाः । तया एवं नीता अपि ते 'शुद्धाः' निदींषाः ॥ ३१०० ॥ अग्रुमेवार्थं सविशेषमाह—

यात्रय-तेणपरहे, मन्थे फिडिया तथा जह हविजा । अंतिमबह्गा विटिय, नियहुणय गाउन कहणा ॥ ३११० ॥

श्वापदे: स्नेनेश्च प्रारच्ये नष्टे च सार्थे 'तनः' सार्थान् स्किटिना यदि भन्नेसुः तनः कार्यात्सर्गण 10देवनामाकष्ययेन् । आकिष्पना च काचिन् पन्यानं कथ्येन , काचिद् प्रजिकाः परम्परया विकुत्ये जनपदं प्रापयेन् । अन्तिमायां च प्रजिकायामुपकरणविण्टिकामुप्रिं [वा] विम्पार्येन् । तद्र्थं साधूनां नियर्चना । यावन् नत्रागनाम्नायद् गोकुळं न पर्यन्ति । नतो गुरूणां समीपे कथनम् , यथा—नाम्ति मा प्रजिकेति । गुरुभिश्च ज्ञानम् , यथा—णनन् सर्वे देवताकृत-मिति ॥ १११० ॥

15 मंडी-बहिल्ग-भरवाहिनेसु एमा नु बिणिया जतणा । औद्रिय विवित्तेसु य, जयण इसा नत्य णातच्या ॥ ३१११ ॥

भण्टी-बह्छिक-माग्याहिमार्थेषु 'ण्या' अनन्तरोक्ता यतना वर्णिता । अधीदरिकेषु 'विवि-केषु च' कार्पटिकेष्टियं यतना ज्ञातच्या ॥ ३१११ ॥ तामेवाह—

> औदरिपत्थयणाऽसद्द, पत्थयणं तेनि कन्द-मृत्य-फला। अग्गद्गम्मि य रख्नु, वितिनि गहणं च जयणाण् ॥ ३११२॥

थागादै राजिहिष्टादिकार्य और रिकादिनिः सह गम्यमाने 'पथ्यदनस्य' अम्बल्साऽमावे यदि 'तेपाम्' औदिरकादीनां कन्द-मूळ-फक्यन्याहारा सवन् तनः साधृनामिष तमेवाहारं सर्य प्रयच्छिनि । ये च तत्रापरिणताने कन्दादि न गृहिनि । अग्रहण च ते सार्थिका अपरिणतानां सीपणार्थं रज्ञृबेळ्यिन, तना यतनया ग्रहणं कुर्वन्ति ॥ ३११२ ॥ इदमेव स्पष्टयित—

25 कंदाइ अर्धुनंते, अपरिणण सन्धिगाण कह्यंति । पुच्छा वैधामे पूण, दुक्तिवहरा खाइउं पुरतो ॥ ३११२ ॥ अपरिणते कन्दादिकमभुद्धान शुपमाः सार्थिकानां कथयन्ति—एनान् तथा मापयत

१ प्राप्ताः । तत्र चापश्चिमे गोक्कि तथा साधृनामुपकरणविण्टिका विसारिता । तद्र्थं च प्रतिनिद्यना यावद् गोक्कि न पश्यिनत । तता विण्टिकां गृहीत्वा प्रत्यागत्य ग्रुक्तणामिनके यथावदाळांचर्यान्त । ततो ज्ञातं गृक्तिः, यथा—एतत् सर्वे देवता- गृतमिति । अत्र च 'शुद्धाः' निर्देषाः, न प्रार्याश्चन्तमाज इति ॥ ३१०९ ॥ भेडी-बहित्यां भा० । नास्त्रसां प्रती "शाय्य-तेणपरहे॰" ३९९० गाथा तद्दित्व ॥

२ °पाः, अश्राउत्यात् ॥ ३१०९ ॥ असु ° कां० ॥ 🗦 °भिरपि सह ना० का० ॥

Б

10

lō

यथा खादन्ति । ततस्ते सार्थिका रज्जुवलनं कुर्वन्ति । ततो गीतार्थाः कृतसङ्केताः प्रच्छन्ति— कथयत, किमेतामी रज्जुभिः प्रयोजनम् ? । सार्थिका भणन्ति—वयर्भकनावार्द्धाः, अतो योऽ-साकं कन्दादीनि न भक्षयति तं वयमेताभिविंहायसि लम्बयामः, 'इतरथा' तस्य बुभुक्षार्त्तस्य पुरतः खादितुं 'दुःखं' दुष्करम्, न वयं भक्षयितुं शक्तुम इति भावः ॥ ३११३ ॥

> इहरा वि मरति एसी, अम्हे खायामों सी वि तु भएण। कंदादि कजारहणे, इमा उ जतणा तहिं होति ॥ ३११४ ॥

कन्दादीन्यभक्षयंत्रितरथाऽप्यस्यागटव्यामवश्यमेषं म्रियते अतो विहायसि लम्बनेन तं मार-यित्वा सुखेनैव वयं भक्षयामः इत्युक्ते 'सोऽपि' अपरिणतो भयेन कन्दादिभक्षणं करोति । एवमादिषु कार्येषु कन्दादिग्रहणे प्राप्ते इयं यतना भवति ॥ ३११४ ॥ तामेवार्ह-

> फासुग जोणिपरित्ते, एगद्दिगंऽबद्ध भिन्नऽभिण्णे अ। बद्धिष्टिए वि एवं, एमेव य होइ बहुवीए ॥ ३११५ ॥ एमेव होइ उवरिं, एगट्टिय तह य होइ बहुवीए। साहारणस्सभावा, आईए बहुगुणं जं च ॥ ३११६ ॥

द्वे अपि (गा० २९१८–१९) व्याख्यातार्थे ॥ ३११५॥ ३११६॥ पानकयतनामाह-

तुवरे फले य पत्ते, रुक्ख-सिला-तुष्प-मद्दणादीसु । पासंदणे पवाते, आतवतत्ते वहे अवहे ॥ ३११७ ॥

एषाऽपि (गा० २९२२) गतार्था ॥ ३११७॥ गता अशिवविषया यतना । अथावमी-दर्यविषयां यतनामाह-

ओमे एसणसोहिं, पजहति परितावितो दिगिंच्छाए। अलमंते वि य मरणे, असमाही तित्थवीच्छेदी ॥ ३११८ ॥

अवमौदिरिकं विज्ञायानागतमेव द्वादशिमविषेः निर्गन्तव्यम् । अथ न निर्गच्छन्ति ततश्चतुर्गुरु आज्ञादयश्च दोषाः । तत्र च तिष्ठन् 'दिगिञ्छया' क्षुधा परितापितः सनेषणाशुद्धिं मैनहाति, अथवा भक्त-पानमलभमानो मरणमाप्नोति । ◄ असमाधिना च स्रियमाणो देवदुर्गति दुर्रुभवो-धिकत्वं च प्रामोति । > एवं चान्याऽन्यसाधुषु म्रियमाणेषु तीर्थस्य व्यवच्छेदो भवति ॥ ३ ११८॥

यत एवमतः-

25

20

ओमोदरियागमणे, मग्गे असती य पंथें जयणाए। परिपुच्छिऊण गर्मणं, चउन्त्रिहं रायदुईं च ॥ ३११९॥

अवमौदरिकायां गमने प्राप्ते पूर्व मार्गेण गन्तव्यम् । मार्गस्यामावे पथाऽपि 'किं छिन्नो-ऽच्छिन्नो वाऽयं पन्थाः ^१' इति परिपृच्छच 'यतनया' अशिवद्वारोक्तया गमनं विधेयम् । अथ

१ 'मेव क्रिय' मा॰ का॰ विना ॥ २ 'पि गाथे रात्रिभक्तसूत्रप्रस्तावे व्या' का॰ ॥

३ अथ पान° का॰ ॥ ४ °पि रात्रिभक्तसूत्रप्रस्ताव पव गता° का॰ ॥

५ 'प्रजहाति' परित्यज्ञति, अनेवणीयमपि गृह्वातीति भावः । अथवा का॰ ॥

६ 🗸 🗠 एतदन्तर्गत पाठः भा० कां० एव वर्तते ॥

15

IJ

राजहिष्टहारम्—तच निर्विषयादिभिर्वेङ्यमाणमेदेश्वर्तार्वयम् ॥ ३११९ ॥ तत्र स राजा कथं प्रदेषमापन्नः १ इत्याग्रह्वावकाग्रमवलोक्येदमाह— अरोहघरिसणाए, अञ्मरहितसेहदिक्खणाए वा ।

अहिमर अणिहदरिसण, चुन्नाहणया अणायारै ॥ ३१२० ॥

अवरोधः—अन्तःपुरं तस्य िङ्गस्येन केनाप्यावर्षणा इता, राज्ञो वाऽम्यहितः—गौरिवको गजा-ऽमात्यादिषुत्रः देखाँ दिक्षितो भवेत्, सामुवेषेण वा केचित्रभिमराः प्रविद्याः, अनिष्टं वा सामुद्र्यनं स्वयमेव पुराहितप्रभृतिभिन्ना च्युद्धाहिनो मन्यते, संयद्गे वा क्याचिद्दविरतिकया सममनाचारं प्रतिसेवमानो दृष्टः । एकमादिगिः कारणः प्रद्विष्ट इत्यं चतुर्विषं दृण्डं प्रयुक्तीत ॥ ११२० ॥

निव्वितः चि य पदमो, वितिओ मा देह भत्त-पाणं से । वितिवो उवकरणहरो, जीय चरित्तस्य वा मेतो ॥ २१२१ ॥

ययमा गनदण्डा निर्विषयाऽऽज्ञाषनञ्ज्ञणः । द्वितीयो मा मक्तपानमनीषां प्रयच्छतेत्येवं-च्याणः । तृनीयः पुनरुपकरणहरः । चतुर्यो जीवितस्य चारित्रस्य वा मेदः कर्चन्यः ॥ ३१२१॥

एवंनिषे चतुर्विषे गुजहिष्टे थाज्ञानिकमं कुर्वाणानां मायश्चितमाह—

गुन्ता आणालावे, बलियतरं क्रुप्यें पदमए दोसो । गिण्हंत-दंनदोसा, बितिय-तिए चरिमे दुविह मेतो ॥ ३१२२ ॥

येन राज्ञा निर्विषया श्राज्ञसासदाज्ञालोरं विघाय तिष्टतां चलारा गुरुकाः । श्रन्यचाज्ञा-तिक्रमे राज्ञा 'बिलक्दरं' गाददरं कुप्यति, एष प्रथमेभदे दोषोऽभिद्दितः । द्वितीयनृतीय-भेदयोर्थेन गज्ञा ग्राम-नगरादिषु भक्त-यानद्भाकरणं वा बारितं तत्र ये सायवो गृह्वन्ति ये च गृह-20 साम्त्रां प्रयच्छन्ति तेषासुमयेषामि दोषाः-श्रह्णा-ऽऽकर्षणादयो भवन्ति । चरमः-चतुर्थो भेदः ४ तेत्र द्विविधो भेदो ४ भवति, नावित्रभेदश्चारित्रभेदश्चेत्यर्थः ॥ २१२२ ॥

अय निर्वित्रयाज्ञष्ठानां गमनविधिमाह—

सच्छंदंण य गमणं, भिक्ले भन्नहुण य वसहीए। हारं व ठितो रुंमति, एगद्द ठितो व आणावे॥ ३१२३॥

25 यत्र राज्ञी भणिताः—खच्छन्द्रं गच्छन्तु भवन्तः, नाहं गच्छतां कमित निरोधं कुर्वे; तत्र भेदे मक्तार्थनं वसितिविषयां च सामाचारीं न परिहापयिन । अय 'हारे' आमादिपवेशमुखे सितो राजपुरुवर्वाः सादृत् भिक्षागतान् निरुणिद्ध 'एकत्र वा' समान्देवकुळादां सितः सादृत् भोक्तागताम् किता वक्ष्यमागां यतनां कुर्वेन्तीति निर्वृक्तिगायासमामार्थः ॥ ३१२३ ॥ साम्यतिनदमेव व्यक्तीकृत्वेत्राह—

मच्छंद्रण ड गमणं, सर्यं व सत्थेण वा वि पुच्छुत्तं ।

१८० एतन्ययानः पाठः सा० काँ० एव बत्तेते ॥ २० ह्या खळ्छन्तेन गमनममुद्यातम्, किमुक्तं भवति ?—यत्र निर्विषयाह्यने नृपतिना भगिताः कां० ॥ ३ भेशविषयां भकाः र्थने-भोजनं तिहिषयां यसं कां० ॥ ४० म् मिश्रामान्मे सा० ॥ ५ सङ्गह्यायाः मा० ॥

तत्थुग्गमादिसुद्धं, असंथरे वा पणगहाणी ॥ ३१२४ ॥

यत्र राज्ञा सच्छन्देन गमनममुज्ञातं तत्र खये वा सार्थेन वा सिहता गच्छन्तः 'पूर्वोक्तम्' इहैवाशिवद्वारे (गा० ३१०५-१०) ओघनिर्युक्तो वा मणितं मैक्ष-षट्काययतनादिकं कर्त्तव्यम् । नवरं तत्र खच्छन्दगमने उद्गमादिशुद्धं भक्तपानं श्राह्यम् । असंस्तरणे पञ्चकपरि-हाण्या गृह्णन्ति । अथ राजा 'मा अत्रैव जनपदे कचित् प्रदेशे निलीय स्थास्यन्ति' इति बुद्धा ह पुरुषान् सहायान् प्रयच्छति, ततस्ते पुरुषा भणन्ति—यूयं श्रामं प्रविश्य तत्र भिक्षामिटरा भुत्तवा च प्रत्यागच्छत, वयमिहैव शामद्वारे स्थिताः प्रतीक्षामहे; ततस्ते तत्र स्थिता यो यथा साधुः समागच्छति तं तथा निरुन्धते यावता सर्वेऽपि मिलिताः । अथवा ते राजपुरुषाः सभायां देवकुले वा स्थिता बुवते—यूयं भिक्षामिटत्वा गृहीत्वा चेह समागच्छत, असाकं समीपे सम्रहिशतेति ॥ ३१२४ ॥ ततश्य-10

तिण्हेगयरे गमणे, एसणमादीस होति जतियन्वं। मत्तद्रण थंडिल्ले, असती वसहीएँ जं जत्थ ॥३१२५ ॥

त्रैयाणां प्रकाराणामेकतरिसन् गमने एपणायाम् आदिशब्दादुद्गमोत्पादनयोश्च यतितव्यम्। भक्तार्थनं तु द्वयोराचगमनयोर्मण्डल्यादिविधिनैव कुर्वन्ति, तृतीये तु गमने राजपुरुषसमीपे भुञ्जानानां न मण्डल्यादिनियमः । स्थण्डिलसामाचारी तु त्रिष्त्रपि न हापयन्ति, राजपुरुषसमी-15 पस्थिता वा कुरुकुचां कुर्वन्ति । यदि ते ब्रवीरन्—'असत्समीपे वस्तव्यम्' ततो वसतावसत्यां यद यत्रारुपदोपतरं कार्यं तत् तत्र कर्तन्यम् ॥ ३१२५ ॥ अथ प्रकारत्रयमेव न्यक्तीकुर्वनाह-

> सच्छंदओ य एकं, वितियं अण्णत्थ मोत्तिहं एह । ततिए भिक्खं घेतुं, इह भ्रंजह तीसु वी जतणा ॥ ३१२६ ॥

एकं खच्छन्दतो गमनम्, द्वितीयं पुनरन्यत्र अत्तवेह समागच्छत, तृतीयं भिक्षां गृहीत्वा 23 इह समागत्य भोजनं कुरुत, एषु त्रिष्विप भैक्षादियतना कर्तव्या ॥ ३१२६ ॥

अंत्रैव विशेषं दर्शयति—>

सविइजए व मुंचति, आणावेतुं व चोह्रए देति। अम्हुग्गमाइसुद्धं, अणुसद्धि अणिच्छें जं अंतं ॥ ३१२७ ॥

वाशब्दाः प्रकारान्तरोपन्यासे । कश्चिदतिप्रान्तः सद्वितीयान् साधून् मुखति । किमुक्तं र्वेऽ भवति ?—साधूनां भिक्षामटतां राजपुरुषान् पृष्ठतः स्थितान् हिण्डापयति, ते च यद्युत्युकाय-माना अनेषणीयं प्राहयन्ति; यदि वा स राजपुरुप एकत्र स्थाने साधून् निरुव्य 'चोछकं' भोजनमानाय्य ददाति, यथा—सर्वेऽप्येतदाहारयत, ततोऽसौ वक्तव्यः—असाकमुद्गमादि-

१ °तं भैक्षविषयमध्वकल्पग्रहणादिकं पट्काययतनादिकं वा सर्वमिप विधि कुर्वन्ति । नवरं का॰ ॥ २ °म् । अथ शुद्धं न छभ्यते ततः 'वा' इति अथवा असं° का॰ ॥ ३ अनन्तरोक्तादीनां खच्छन्दगमनादीनां त्रयाणां मो॰ छे॰ का॰ ॥

ध 'यतितव्यं' पञ्चकपरिहाण्या यतना कर्त्तव्या भवति । भक्ता° कां॰ ॥ ६ अ ० एतदन्तर्गतमवतरणं कां॰ एव वर्तते ॥ ६ °न् द्वितीयान् पृष्ठ° मा॰ कां०॥

कृताभ्यासः सहस्रयोधी वा स करणं करोति, तं राजानं बद्धा शास्तीत्यर्थः । विद्यावलेन वा वैकियल विध्यसम्पन्नो वा विष्णुकुमारादिरिव तस्य शिक्षां करोति । "असङ्" ति यदा कृतकर-णादयो न प्राप्यन्ते तदाऽध्वानं गच्छद्भिः 'नन्दिः' प्रमोदो येन द्रव्येण गृहीतेन स्यात् तद द्विविधमपि महीतव्यम् । तद्यथा---पाशुकमपाशुकं वा, परीत्तमनन्तं वा, परिवासितमपरिवा-सितं वा, एंपणीयमनेपणीयं वेति ॥ ३१३१ ॥

गतं भक्त-पानप्रतिपेधद्वारम् । अथोपकरणहरद्वारं व्याख्यानयति-

तइए वि होति जतणा, वत्थे पादे अलव्भमाणिम । उच्छुद्ध विष्पइण्णे, एसणमादीसु जतितव्वं ॥ ३१३२ ॥

'तृतीयं राजद्विष्टं नाम' यत्र राज्ञा प्रतिषिद्धम्--'माऽमीषां वस्त्रं पात्रं वा कोऽपि दद्यादृ अपहर्त्तव्यं यी; तत्र वस्त्रे वा पात्रे वा अलभ्यमाने यतना कर्तव्या । कथम् ? इत्याह—देवकु- 10 लादिषु कार्पिटकैर्यद् वस्त्रादिकम् 'उच्छुद्धं' परित्यक्तं यच 'विप्रकीर्णम्' उत्कुरुटिकादिस्थापितं तद् गृह्णन्ति । एषणादिदोषेषु वा यतितन्यम्, ⊲ वैस्त्रप्रहणे पञ्चकपरिहाण्या यतना कर्त्त-न्येति № ॥ ३१३२ ॥

> हियसेसगाण असती, तण अगणी सिक्तगा व वागा वा। पेहुण-चम्मग्गहणं, भत्तं तु पलास पाणिसु वा ॥ ३१३३ ॥

30

राज्ञा साधूनामुपकरणानि हृतानि, ततः तच्छेषाणां-तदुद्धरितानामैभावः सवृत्तः, किश्चि-द्प्यविशाष्यमाणं नास्तीति भावः । ततः शीताभिभूताः सन्तस्तृणानि गृह्णन्ति अग्नि वा सेवन्ति । पात्रकबन्धामावे ॳ सिक्केकानि, प्रावरणाभावे तु ⊳ शणादिवल्कानि गृह्णन्ति । "पेहुणं" ति मयूराङ्गमयी पिच्छिका रजोहरणस्थाने कर्त्तव्या । चर्मणो वा प्रस्तरण-प्रावरणार्थं प्रहणं कार्यम् । भक्तं तु पलाशपत्रादिषु, तेषामभावे पाणिष्वपि गृह्णीयाद्वा भुङ्गीत वा ॥ ३१३३ ॥ 20

> असई य लिंगकरणं, पण्णवणद्वा सयं व गहणद्वा। आगार्टें कारणमिंम, जहेव हंसादिणं गहणं ॥ २१३४ ॥

यदि राजा खिलिङ्गेनोपशाम्यमानोऽपि नोपशाम्यति, उपकरणं वा खिलिङ्गेन मृग्यमाणं न लभ्यते, ततः परलिङ्गं कुर्वन्ति । किमर्थम् ? इत्याह—प्रज्ञापनार्थं खयं वा प्रहणार्थम् । किमुक्तं भवति 2---बौद्धादिना राज्ञोऽनुमतेन परलिङ्गेन स्थिताः स्वसमय-परसमयवेदिनो वृषभा 25 युक्तियुक्तैर्वचोभिस्तं राजानं प्रज्ञापयन्ति, तेन वा परलिङ्गेन स्थिता उपकरणं खयमेवोत्पादयन्ति । र्डे हेरो आगाढे कारणे यथैव हंसतैलादीना महणं तथा वस्न-पात्रादेरप्यवस्वापन-तालोद्घाटनादि- प्रयोगैः कर्तव्यमिति ॥३१३॥ गत्मप्रकरणहरद्वारम्। अथ जीवित-चारित्रमेदद्वारं भावयति—

दुविहम्मि भेरवम्मि, विज णिमित्ते य चुण्ण देवी य। सेंडिम्मि अमंचिम्म य, एसणमादीसु जतितव्वं ॥ ३१३५ ॥

र वार्रमीषां वस्त्र-पात्रादिकसितिः तत्र का॰ ॥ २ ⁴ ▷ एतदन्तर्गतः पाठ॰ का॰ एव वर्तते ॥ ३ °मसत्ता संवृत्ता, कि° का॰ ॥ ४ °न्ते । तथा सिक्ककानि वा वर्टकानि वा गृह्णीयुः । तत्र पात्रक ° का॰ ॥ ५ ⁴ ▷ एतदन्तर्गत. पाठः ता॰ भा॰ का॰ एव वर्तते ॥

िहिनिधे जीवित-पारित्रव्यस्तोपमालके नैरवे समुलके तं राजानं विषया निनित्तेन वा चूर्णैवी वर्दान्द्रणोत्, वा दा देवी तस राज्ञ इष्टा सा विद्यामिरावर्त्यते । एवमप्यनुपद्यान्तो श्रेष्ठिनमनास्यं वा चपलक्षमत्वात् पाष्टिङगणं वा म्ह्यापयन्ति, तत्वल्रह्यारेणोपक्षमयन्ति । स्थवा याज्ञव् वृपतिमुपद्यनयन्ति तावत् श्रेष्ठिनोऽमासस्य वा अवश्रहे तिष्ठन्ति । एपणादिषु च माव-इदेव यतित्वयन् ॥ ३१३५॥

> आगार्हे अप्नर्लिगं, कालक्खेवी व होति गमणं वा । कयकरणे करणं वा, पच्छादण धावरादीसु ॥ २१२६ ॥

आगादे राष्ट्रिष्टेऽन्यलिक्षं विषयमहायगोतेस्येत्रेय काल्क्षेपः कर्चत्र्यः विषयान्तरगमनं वा कर्चत्र्यम् । यो वा क्षत्रकरणः स करणं करोति, ≺ विष्युक्तमारादिरित हरतेः विकां 16 करोतीलर्थः । > अथ तद्दिन नात्ति ततः स्तावरा –हृशातेषां गहनेतु ≺ काँदिखव्यात् > प्रमसः प्रमृतिष्ठ वा काल्पनं प्रच्छाय दिवा निलीना आसते रात्रो च त्रवन्ति ॥ २१२६ ॥ गतं राष्ट्रिष्ट्यारम् । क्य मयादिद्यागणि सुगपदाह—

बोहिय-मिच्छादिसए, एमेव य गम्ममाण जतणाए । दोण्हञ्झा व गिलाणे, णाणादझा व गम्मेते ॥ ३१३७ ॥

15 बोबिकर:—मालबस्तेनाः, न्लेच्छा'—पार्साकाद्यः, तदादीनां सये सन्धिते < देशितं देशन्तरं > गन्दत्यम् । तत्र च गम्यनाने 'एवनेव' अशिवादिह्यस्वद् मेशादिकं यत्तरा वर्षत्रम् । आगादं तु किबिवोसितिकं वार्यम्, यथा संज्ञत्केः सन्दिष्टम्—इदं कुलं प्रव-प्राम्प्युपगच्छति यदि यूयनागच्छथः, अत्र नगनित्र्यव ततो विपरिपंसिति अन्यसिन् वा असने प्रवित्रपतिः ईदृशे आगादे गन्तत्रम् । ग्लनत्त्रे वा द्वयोर्थाय गन्यते, वेदसौनवनां द्वाच्चे प्रवित्रपत्रिः । उत्तनार्थे तु निर्यादनार्थे प्रतिवित्रपत्री गच्छेत् । उत्तनार्थे प्रतिवित्रपत्री विद्यो-विक्तार्थे गीतिवित्रपत्री गच्छेत् । इत्तर्थे गीतिवित्रवर्था विद्यो-विक्तार्थे गीतवित्रपत्री गच्छेत् । इत्तर्थिकार्थे प्रतिवित्रपत्री विद्यो-विक्तार्थे गीतवित्रपत्री गच्छेत् । इत्तर्थकार्थे गीतवित्रपत्री विद्योन्यमाने पूर्वे मोर्गेन पश्चविक्छेन च्छिकेन वा प्रयादि गन्तत्र्यम् ॥ ३१३७ ॥ अत्र यतनानाह—

एनापनं च सता, वीनं चञ्छापणिनामा णेया । एचो एकेक्सिम य, सतनासी होइ चतपाको ॥ २१२८ ॥

भ्र सर्वज्वहेन कालेत्याच्यिमृतिमिश्चतुर्भिः एवैरष्टामिः सार्वबाहैरष्टिमश्चादियात्रिकेरेकन्द्वा-अच्छत् नि विद्याविकानि सम्मिनियक्ताः मवन्ति । एते च प्राक्त स्प्रयद्धं माविताः (गा० २०८२-८५) । एतेषु मङ्केञ्केकित्सन् मङ्केऽछिवादिकारपेऽम्बनि गच्छतः द्यतापद्यः प्रसुक्तनीत्या व्यत्या मवन्ति ॥ २१२८ ॥

॥ अध्वयकृतं समाप्तम् ॥

१ 'देश व ति का व तत्त्व महत्वेशं रह सा विकारित्तें भावतिक्री, वस्त्र सा ते वाचेदेते रावे।'' स्त्रे सूर्यों विशेषसूर्यों क छ २-३ ४ > एत्रकृत्येनः यतः मो० ते० वां० एव वर्षते ॥ ४ व्यः तेषां भये मा० ० ५ ४ > एत्रकृतंनः यतः मो० ते० वां० एव वर्षते ॥

ħ

् सं ख डि प्र कृत मू

संखर्डि वा संखंडिपडियाए इत्तए ४७॥

अथास्य सूत्रस्य कः सम्बन्धः १ इत्याह—

दुविहाऽवाता उ विहे, बुत्ता ते होज संखडीए तु । तत्थ दिया वि न कप्पति, किम्र रातिं एस संवंधी ॥ ३१३९ ॥

'विहे' अध्विन गच्छतां संयमा-ऽऽत्मविराधनामेदाद् द्विविधाः प्रत्यपाया उक्ताः । सङ्ख-ड्यामिप गच्छतां त एव प्रत्यपाया भवेयुः । अतस्तत्र दिवाऽपि गन्तुं न करूपते किमुत रात्रौ ? एप सन्बन्धः ॥ ३१३९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—''संखर्डि वा'' इति वाशव्दाद् ''न करुपते'' 10 इत्यादिपदान्यनुवर्त्तनीयानि । तद्यथा—न केवलमध्वानं रात्री वा विकाले वा गन्तुं न करपते, किन्तु सङ्खिसिप रात्री वा विकाले वा सङ्खिदिमितज्ञया 'एतुं' गन्तुं न कल्पते। एप स्त्रसङ्खे-पार्थः ॥ अथ भाष्यकारो विस्तरार्थ विभणिपुराह-

संखंडिजंति जहिं, आऊणि जियाण संखडी स खलु ।

तप्पंडिताएँ ण कप्पति, अण्णत्थ गते सिया गमणे ॥ ३१४० ॥ सम्-इति सामस्त्येन खण्ड्यन्ते-त्रोट्यन्ते 'जीवानां' वर्नस्पतिषमृतीनामार्यूपि प्राचुर्येण 'यत्र' प्रकरणविशेषे सा खळु सङ्घिडिरित्युच्यते, "खरेभ्य इः" (सि० हे० औ० सू० ६०६) इत्योणादिक इप्रत्ययः, पृपोद्रादित्यादनुस्नारलोपः, तां सङ्घर्डि 'तत्प्रतिज्ञया' 'सङ्घर्डिमहं गमि-प्यामि' इत्येवंरुक्षणया गन्तुं न करुपते । एवं ब्रुवता सूत्रेणेदं सूचितम्—'अन्यार्थम्' अपरका-र्यनिमित्तं सङ्खिडियामं गतस्य सङ्खङ्यामि गमनं स्यादिति ॥ ३१४० ॥ 20

अँथात्रैव प्रायश्चित्तमाह—>>

राओ व दिवसती चा. संखिडिगमणे हवंतऽणुग्धाया। संखिड एगमणेगा, दिवसेहिं तहेव पुरिसेहिं ॥ ३१४१ ॥

रात्री वा दिवसतो वा सङ्ख्यां-ल सङ्खिडियाममुद्दिक्य > गमने चत्वारोऽनुद्धाताः प्राय-श्चित्तम् । सा च सङ्घडी दिवसैः पुरुपेश्चैका अनेका च भवति॥ ३१४१॥ इदमेव स्पष्टयति— 25

एगो एगदिवसियं, एगोऽणेगाहियं च कुजाहि । णेगा व एगदिवसिं, णेगा व अणेगदिवसं तु ॥ ३१४२ ॥

एकपुरुष एकदैवसिकीं सङ्ख्रडी कुर्यात्, एकः 'अनेकाहिकाम्' अनेकदैवसिकीम्, अनेके पुरुपाः सम्भूयैकदैवसिकीम्, अनेके पुरुपा अनेकदैवसिकीं सङ्खर्डी कुर्वन्ति ॥ ३१४२ ॥

१ ण गम्मति ता॰ ॥ २ तां संखंडिकांति जिंहें आऊणि जियाण संखर्डि इति छेतक-प्रमादप्रविष्टः पाठः भा॰ कां॰ विना सर्वोखिप प्रतिष्ठ वर्ततेते ॥ ३ ⁴ ० एतदन्तर्गतः पाठः मो॰ छे॰ का॰ एव वर्तते ॥ ४ ॳ ⊳ एतन्मध्यगतः पाठः कां॰ एव वर्त्तते ॥

'एकस्य' आचार्यादेः 'अनेकेषां वा' बहूनां 'छन्देन' अमिप्रायेण 'तें' सङ्ख्या उपिर प्रधाविताः सन्तो वृत्तामवृत्तां वा सङ्ख्यां श्रुत्वा यदि निवर्तन्ते ततश्चतुर्गुरुका भवन्ति ॥ ३ १४७॥ इदमेव भावयति—

> वेलाए दिवसेहिँ व, वत्तमवत्तं निसम्म पर्चेति । होहिइ अग्रुगं दिवसं, सा पुण अण्णम्मि पक्लिम्म ॥ ३१४८ ॥

³वेलया दिवसैर्वा प्रतिनियता सङ्ख्रुडीं श्रुत्वा प्रस्थिताः, गच्छद्भिश्चापान्तराले श्रुतम्, यथा—सा सङ्ख्रुडी 'वृत्ता' समाप्ता 'अवृत्ता वा' अन्यस्यां वेलायामन्यस्मिन् दिवसे माविनीः; एवं वृत्तामवृत्तां वा 'निश्चम्य' श्रुत्वा 'प्रत्यायान्ति' प्रतिनिवर्तन्ते । अ तेत्र वेलामङ्गीकृत्य > यथा केश्चिदिप साधुभिः श्रुतम्—अद्यामुकगृहे पूर्वाद्धवेलायां सङ्ख्रुडी भविष्यतिः, तत्तर्त्ते पात्रा-ण्युद्गाह्य तस्यां गन्तुं प्रस्थिताः, अपान्तराले च तैः श्रुतम्, यथा—अतिकान्ता सा सङ्ख्रुडी । 10 अ एवमपराद्धवेलाभाविनीं सङ्ख्रुडी श्रुत्वा > प्रस्थिताः, अपान्तराले चाकणितम्, यथा—नाद्यापि तत्र वेलाः, एवं श्रुत्वा प्रतिनिवर्तन्ते । दिवसमिषकृत्य पुनिरत्थम्—''होहिइ'' इत्यादि पश्चार्द्धम् । कचिद् श्रामे स्थितैः श्रुतम्—अमुक्यामे 'अमुकदिवसे' पञ्चमीप्रभृतिके सङ्ख्रुडिभेन्विष्यतिः इत्याकण्यं ते तं श्रामं प्रस्थिताः, तत्र च गच्छद्भिरन्तरा श्रुतम्, यथा—वृत्ता सा सङ्ख्रुडी भविष्यति वा । कथम् ! इत्याह—''सा पुण अन्नम्म पक्ष्वम्मि' ति यस्यां पञ्चम्यां 15 भाविनी सङ्ख्रुडी साधुभिः श्रुता सा पुनः 'अन्यस्मिन्' अतीतेऽनागते वा पक्षे सूता वा भविष्यति वा, न तत्पक्षवर्तिनीति भावः ॥ ३१४८ ॥ अथ सङ्ख्रुडी कथं कुत्र वा मवति ! इत्युच्यते—

आदेसो सेलपुरे, आदाणऽद्वाहियाएँ महिमाए। तोसलिविसए विण्णवणद्वा तह होति गमणं वा ॥ ३१४९॥

'आदेशः' सङ्खिडिविपये दृष्टान्तोऽयम्—

तोसिलिविषये शैलपुरे नगरे ऋषितडागं नाम सरः । तत्र वर्षे वर्षे भूयान् लोकोऽएा-हिकामहिमा करोति । तत्रोत्ऋष्टावगाहिमादिर्द्रव्यस्यादानं—ग्रहणं तद्धे कोऽपि छुव्धो गन्तु-मिच्छति । ततः स गुरूणां विज्ञपनां सङ्घाडिगमनार्थे करोति । आचार्या वारयन्ति । तथापि यदि गमनं करोति ततस्तस्य प्रायश्चित्तं दोषाश्च वक्तव्या इति पुरातनगाथासमासार्थः ॥ २१४९ ॥ अथैनामेव विश्रणोति—

> सेलपुरें इसितलागिम होति अड्डाहिया महामहिमा । कोंडलमेंढ पभासे, अन्बुय पादीणवाहिम्म ॥ ३१५० ॥

तोसलिदेशे शैलपुरे नगरे ऋपितडामे सरसि प्रतिवर्ष महता विच्छर्देनाऽप्राहिकामहा-महिमा भवति । तथा कुण्डलँमेण्ठनास्रो वानमन्तरस्य यात्रायां भरुकच्छपरिसरवर्ती भूयान्

१ वेलायां दिवसे वा प्रतिनियते प्रविच्यमाणां सङ्ख° सा० ॥ २ ⁴ १० एतद्न्तर्गत पाठ का० एव वर्तते ॥ ३ ⁴ १० एतद्न्तर्गत पाठ सा० का० एव वर्तते ॥ ४ ९ दिघान्यस्या ता० भा० का० विना ॥ ४ ९ दानार्थं कोऽपि सा० ॥ ६ ता० सा० का० विनाऽन्यत्र—० लमेत प्रभा० मो० छे० । ० लमेत प्रभा० त० छे० ॥ ७ ० लमेतनास्नो भा० का० विना । "शहवा कों उलिमें दे कों च्या कों उलिमें हैं कों च्या कों उलिमें हैं कों च्या कों उलिमें दे कों च्या कों उलिमें हैं कों च्या कों उलिम के विना । "शहवा कों उलिमें हैं कों च्या का विना । "शहवा कों उलिमें हैं कों च्या के च्या के च्या कों च्या के च्या कों च्या के च्या कों च्या कों च्या के च

लोकः सङ्घाडि करोति । प्रशासे वा तीर्थे अर्चुदे वा पर्वते यात्रायां सङ्घाडिः कियते । 'प्राची-नवाहः सरस्रत्याः सम्बन्धा पूर्वदिगमिसुनः प्रवाहः, तत्राऽऽनन्दपुरवास्तव्यो लोको गता ययात्रिमवं शरदि सङ्घाँडं करोति ॥ ३१५० ॥

एनमादिषु सङ्घरीषु कोऽप्युक्तृष्टद्रव्यलञ्चो गुरून् सङ्घरिगमनार्थं विज्ञपयति । गुरवो व हुवते — आर्थ ! न कल्पते सङ्घाँड गन्तुम्, ततोऽसौ मायया त्रवीति-

अत्थि य में पुन्त्रदिद्वा, चिरदिद्वा ते अवस्स दहन्ता । मायागमणे गुरुगो, तहेत्र गामाणुगामिम ॥ ३१५१ ॥

सन्ति मे तत्र प्रामे 'पूर्वेद्दष्टाः' पूर्वेपरिचिताः सुहृदाद्यः, ते च 'चिरदृष्टाः' प्रमृतकाल-स्तेषां मिलितानाममवदिति भावः, अत इदानीमवश्यं द्रष्टव्यास्ते मया । एवं मायया गुरूना-१७ प्रच्छ्य यदि गच्छति तदा गुरुको मासः । त्रामानुत्रामेऽपि विहरतां सङ्घि श्रुत्वा गच्छतां त्यैव मासगुरुकम् ॥ ३१५१ ॥ इदमेव व्याचष्टे-

गामाणुगामियं वा, रीयंता सीट संखिं तुरियं। छहेंति व सति काले, गामं तेसि पि दोसा उ ॥ ३१५२ ॥

शामानुश्रामिकं वा 'रीयमाणाः' विहरन्तः कापि शामे सङ्खुडि श्रुत्वा ये त्वरितं गच्छन्ति; 15 सित वा भिक्षाकाले तं श्रामं परित्यजनित, परित्यज्य च सङ्ख्रिडिश्रामं गच्छन्ति, तेपामपि 'दोषाः' वक्ष्यमाणा मवन्ति ॥ ३१५२ ॥

गंतुमणा अन्नदिसि, अन्नदिसि वयंति संविडिणिमित्तं। मृलग्गामे व अडं, पडिवसमं गच्छति तदहा ॥ ३१५३ ॥

मिक्षाचर्यायामन्यत्यां दिशि गन्तुमनसः सङ्घाडि श्रुत्वा तित्रमित्तमन्यत्यां दिशि त्रजन्ति । 20 म्ल्यामे वा अटन् सङ्खिनाकर्ण्य प्रतिवृषमप्रामे 'तद्धै' सङ्खिढिहेतोर्गच्छित ॥ ३१५३ ॥ - एतेषु सर्वेप्विप गमनप्रकारेषु दोषानुपदिदर्शयिषुराह-

> एगाहि अणेगाहि, दिया व रातो व गंतु पडिसिद्धं । आणादिणो य दोसा, विराहणा पंधि पर्चे य ॥ ३१५४ ॥

एकाहिकीमनेकाहिकीं वा तां सङ्खर्डी गन्तुं दिवा रात्री वा प्रतिषद्धां यदि गच्छति तत 25 आज्ञादयो दोषाः, विरावना च संयमा-SSत्मविषया पथि वर्तमानानां तत्र प्राप्तानां च मवति ॥ २१५४ ॥ तत्र पथि वर्षमानानां तावद् दोपानभिविखुराह—

मिच्छचे उड़ाहो, विराहणा होति संजमाऽऽयाए । रीयादि संजमिम य, छकाय अचक्चुविसयिम ॥ ३१५५ ॥ सङ्घाडिं गच्छतः साधृत् दञ्चा यथामद्रकाद्यो मिथ्यात्वे सिरतरीमवेद्यः, उड्डाहो वा मवेत्।

दलमेंदो वांगमंतरो । देवडोणी अस्यच्छाहरणीए, तत्य यात्राए बहुनणी चंखिं करेइ । प्रभासे अम्बुए य पत्रए जताए समर्श कीरित । पायीणवाहो सरस्सतीए, तत्य आणंद्पुरगा नधाविमवेणं वबते सरप ।" इति चूर्णा विशेषचूर्णा च ॥ १ भागलक्षणा सिथ्यात्वप्रमृतयो भव° कां॰ ॥

Б

तथा संयमा-ऽऽत्मविराधना भवति । तत्र संयमविराधना ४ भीव्यते—'मा सङ्खि डिदिवसो व्यतिकामतु' इति कृत्वा ⊳ रात्रौ गच्छन् ईर्यादिसमितीर्न शोधयति । अचक्षुर्विषये च गच्छतां षट्कायविराधना । आत्मविराधना तु पुरस्ताद् वक्ष्यते ॥ ३१५५ ॥

अथ मिथ्यात्वोङ्घाहद्वारे व्याचष्टे-

जीहादोसनियत्ता, वयंति छहेहि तिजया भोजे । थिरकरणं मिच्छत्ते, तप्पविखयखोभणा चेव ॥ ३१५६ ॥

रोको त्र्यात्—अहो ! अमी श्रमणाः 'जिह्नादोषनिवृत्ताः' रसगृद्धिरहिता अपि 'रूक्षैः' वल्ल-चणकादिभिराहारैसार्जिताः सन्तः सम्प्रति 'भोज्यार्थं' सङ्घाडिहेतोर्गच्छन्ति इत्युड्डाहो भनेत्। तथा यथैतदमीषामसत्यं तथा अन्यदिप मिध्या प्रकृपितमिति मिध्यात्वे स्थिरीकरणं भवति । ये च तत्पाक्षिकाः-साधुपक्षबहुमानिनः श्रावकारतेषां क्षोमना-मिथ्यादृष्टिभिः सम्यत्तवाचालना १० -भवति ॥ ३१५६ ॥ अथाऽऽत्मविराघनामाह—

> वाले तेणे तह सावते य विसमे य खाणु कंटे य। अकम्हाभयं आतसमुत्थं, रत्तेमादी भवे दोसा ॥ ३१५७ ॥

रात्री सङ्खाडिगमने 'व्यालः' सर्पस्तेन दश्येत, स्तेनैरुपकरणमपहियेत, 'श्वापदैः' सिंहादिभि-रुपद्र्येत, 'विषमे च' निम्नोन्नते प्रपतेत्, स्थाणुना वा कण्टकेन वा विध्येत, अकसाद्भयं 15 चात्मसमुत्थं भवति । रात्रावेवमादयो दोषा भवेयुः ॥ ३१५७ ॥

एवं तावत् पथि गच्छतां दोपा अभिहिताः । अथ तत्र प्राप्तानामाह-

वसहीए जे दोसा, परउत्थियतज्जणा य विलधम्मो । आतोज-गीतसदे, इत्थीसदे य सविकारे ॥ ३१५८ ॥

वसतेः संम्बन्धिनो ये आधाकमीदयो दोषास्तेषु लगन्ति । परतीर्थिकाश्च तत्र गतानां तर्जनां 20 कुर्वन्ति । 'बिलधर्मी नाम' एकस्यामेव वसती गृहस्थैः समं संवर्त्येकत्रावस्थानम्, तत्रासङ्खङं स्यात् । तत्र च सङ्ख्यामातोच-गीतशब्दाचान् स्त्रीशब्दाँश्य सविकारान् श्रुत्वा चशब्दाद्विर-तिका अरुङ्गता दृष्टा स्पृतिकरणादयो दोषा इति द्वारगाथासमासार्थः ॥ ३१५८ ॥

साम्प्रतमेनामेव विवृणोति-

आहाकिम्मियमादी, मंडवमादीस होति अणुमण्णा। रुक्खे अन्मावासे, उवरिं दोसे परूवेस्सं ॥ ३१५९ ॥

25

सङ्खडीकर्ता दानश्राद्धो यथाभद्रको वा साधूनां निमित्तमाधाकर्मिकान् मण्डपान् कारयेत्, आदिशब्दाद् यावन्तिकादिपरिग्रहः । तेषु मण्डपेषु आदिशब्दात् पटकुटीप्रभृतिषु च ◄ उतिष्ठतीमनुमितदोषः प्रामोति । अथैतद्दोषभयाच तत्र तिष्ठन्ति ततोऽन्यत्र वसितमलभमाना वृक्ष ⊳ मूलेऽआवकारो वा वसन्ति । तत्र च वसतां ये दोषास्तानुपरिप्रादिसकोव सूत्रे प्ररूपिय-३०

१ ॰ ♥ एतदन्तर्गतः पाठः मो॰ छे॰ का॰ एव वर्तते ॥

२ सङ्घाडि वजतः साधून रुष्ट्वा लोको कां॰ ॥ ३ ⁴ > एतदन्तर्गतः पाठः भा॰ का॰ एव वर्तते ॥ ४ °तां साधूनाम् "अणुमन्न" ति अनुमति का॰ ॥ -

प्यानि ॥ ३१५९ ॥ परतियिकनर्जनाहारमाह—

इंदियमुंडे सा किंचि बेह सा णे डहेज सावेणं। पेहा-सोयादीसु य, अनेखंड हेउवादी य॥ २१६०॥

ये तत्र सहुडी श्रुता ग्राक्य-भान-भागवतादयः परतिधिकाः समायातान्ते साद्त् तर्जयन्त कह्यं बुवते—इन्द्रियसुण्डा अमी सङ्ख्याष्ठाः श्रमणाः, 'मा किविद्रमृत् वृत' न किमप्यमीयां सम्मुतं विद्यकं भाषणीयन् , मा ''णे'' युप्मान् अमी तपिलन आक्रुष्टाः सन्तः ज्ञापेन दहेयः । एवं तर्जनामसहमाना अगरिणतार्जः सहसङ्घं कृद्धः । तथा प्रेशा—मत्यपेक्षणा तां कृवेतो दृश् श्रीचं वा सहण्कल्लयादिना पानकेन विर्वायमानं दृष्ट्य आदिश्रच्दात् संयतमायया भाषमापान् श्रुत्वा परतीर्थिका उड्डुझकान् कृषिन्त, तत्र तथेवासङ्घडं भवत् । हेतुना वा ते परतीर्थिका 10वादं मार्गयेयुः । यदि दीयते तत्रलेषानात्मनो वा पराजये ययाक्रमं प्रदेवगमन-प्रवचनकान द्यो दोषाः । अथ न दीयते तनले कोक्रसमक्षमवर्णवादं कृष्टिः—व्हर्शिरःशि(शे)स्तर एते न किमिर जानन्तीत्यादि ॥ २१६० ॥ विश्वर्महारमाह—

मिंगारेण ण दिण्णा, ण य तुन्झं येतिगी समा एसा । अतिबहुओ बोबासो, गहितो णु तुए ऋठहों एवं ॥ २१६१ ॥

15 साधारण समाज्ञे निण्डीभ्य सामन्ने गृहस्माश्च यदेकत्रावतिष्टन्ते स निरुवर्मः । तेन वसतां साहुमिः प्रमृतेऽनकान्ने मालिते सति गृहस्मा हुन्ने—मो श्रमण ! एषा समा तुम्यं न मृझ-रण दत्ता, उदकेन न कल्पितेनि मानः; न च तत्रेयं 'पैतृकी' पितृनरम्परागता, अत किन्तु नाम अतिवहुकोऽनकाद्यस्त्रया गृहीतः ! एवं कल्ह्ये मन्नति ॥ ३१६१ ॥

तत्य च अतित गेंतो, संविहो वा छिवेज इत्यीओ । इच्छमणिच्छे दोसा, भ्रुचमभुत्ते च फासादी ॥ २१६२॥

'तत्र च' समादे। कोऽन साबुगतिगच्छन् निर्गच्छन् वा ससुपित्रष्टो वा खीः स्प्रशेत् तत आत्मपरोमयस्त्रस्य दोषाः । तत्र च यदि तामित्ररितिकां प्रतिसेतिन्तिमच्छिति तदा संयमित्रग्न्यना । अय नेच्छिति ततः सा उड्ढाई कुर्यात् । कीनां च स्तरीदिष् तया आतोध-गीतराज्यान् कीसम्बन्धिनश्च हसित-कृतिवादिशञ्दान् श्रुत्वा सका-असुक्तससुत्या दोनाः ॥ ११६२ ॥

25 म्योऽपि दोषदञ्जनार्यमाह—

आवासग सन्झाए, पडिलेहण संज्ञेण य मासाए । वीयार नेलण्णे, जा बहिँ आरोवणा मणिया ॥ २१६२ ॥

आइस्यके १ साध्याये २ प्रखुएकणायां २ मोजने ४ च मान्यां ५ विचारे ६ ग्छानस्त्रे च ७ या बत्रारोपणा मणिता मा तत्र ज्ञातन्त्रेति द्वारमाधासमासार्थः ॥ २१६२ ॥

३८ साम्यज्ञेमनामेन मतिपदं निवृणोति—

आवासगं तत्य करेंति दोसा, सन्झाय एमेव च पेहणिमा । उद्देच वारेंत्रमवारण च, आरोवणा ताणि अक्कव्यओ ला ॥ ३१६४ ॥

१ स्पर्शन-द्शनादिषु मा॰ ॥

25

'तत्र' सभादी गृहस्थैः सह वसन्तो यद्यावश्यकं खाध्यायं वा कुर्वन्ति तदा ते कुर्णाघाटके-नागमयन्ति उडुन्नकान् वा कुर्वन्ति, एवमादयो दोषाः । प्रत्युपेक्षणायामपि 'एवमेव' उडुन्नकान् कुर्वन्ति । यदि वार्यन्ते तदा साधुभिः सहासङ्घङं कुर्युः । अथ न वार्यन्ते ततो भगवत्मवचनस्य भक्तिः कृता न स्यात् । अथैतद्दोषभयादावश्यकादीनि न कुर्वन्ति ततस्तान्यकुर्वतो या काचिदा-रोपणा सा द्रष्टव्या । तद्यथा—कायोत्सर्ग न करोति, वन्दनकं न ददाति, स्तुतिपदानं न ह करोति, सूत्रपौरुषीं न करोति, सर्वेष्वपि मासलघु । अर्थपौरुषीं न करोति मासगुरु । जघन्यमु-पिं न प्रत्युपेक्षते रात्रिन्दिवपञ्चकम् । मध्यमं न प्रत्युपेक्षते मासलघु । उत्कृष्टं न प्रत्युपेक्षते चतुर्रुघु ॥ ३१६४ ॥ व्योख्यातमावश्यक-साध्याय-प्रत्युपेक्षणालक्षणं द्वारत्रयम् । अय भोजन-भाषाद्वारे विवृणोति-

जं मंडिंछ भंजई तत्थ मासी, गारित्थभासासु य एवमेव। चतारि मासा खळु मंडलीए, उड्डाहों भासासमिए वि एवं।। ३१६५ ।।

भोजनं कुर्वन् सागारिकमिति मत्वा यद् मण्डलीं भनक्ति तत्र मासलघु । अँगारस्थभाषासु च भाष्यमाणासु 'प्रवमेव' मासलसु । अथैतत्प्रायश्चित्तमयाद् मण्डल्यां समुद्दिशन्ति तदा चत्वारो मासा क्रघवः, 'उड्डाहश्च' प्रवचनोपघातो मण्डल्यां समुद्देशने भवति । एवं भाषासमि-तेऽपि मन्तव्यम् , संयतभाषया भाषमाणस्य चत्वारो रुघुमासा भवन्तीति भावः ॥ ३१६५ ॥ 15

अंथ विचारद्वारं विवृणोति—>

थोवे घणे गंधजुते अभावे, दवस्स वीयारगताण दोसा । आवायसंलोगगया य दोसा, करेंतऽकुव्वं परितावणादी ॥ ३१६६ ॥

विचारभूमौ गतानां 'स्तोके' खल्पे 'घने' कळुषे 'गन्धयुते' दुर्गन्धिन द्रवेऽभावे वा सर्व-थैव द्रवस्य 'दोषाः' अवर्णवाद-भक्तपानप्रतिषेधादयो भवन्ति । तैया पुरुषादीनामापाते संलोके 20 वा संज्ञां कायिकीं वा कुर्वन्ति तदा तद्गता दोषा यथा पीठिकायां विचारकल्पिकद्वारे (गा० ४३०-३७) उक्तास्तथा द्रष्टन्याः । अथैतद्दोषभयात् कायिकीं वा सज्ञा वा न करोति किन्तु धारयति तदा परितापना-महादुःख-मूच्छीदयो दोषाः ॥ ३१६६ ॥

गिलाणतो तत्थऽतिभ्रंजणेण, उच्चारमादीण व सण्णिरोधा । अगुत्तसिजासु व सिणवासा, उड्डाह कुव्वंतिमकुव्वतो य ॥ ३१६७ ॥

'तत्र' सङ्ख्यामुत्कृष्टद्रव्यलोभादतिमात्रभोजनेन यद्वा सागारिकाकीर्णतया तत्रोचारादीनां सन्निरोधाद् ग्हानो मनेत्। अथवा अगुप्ताः-असंवृता याः शय्याः-वसतयस्तासु सन्निवासाद्

१ °न्ति, ततस्तैः समं कलहे भोजनमेदादयो दोषाः का ।। २ तथा इलेतावदेवावतरणं कां विना ॥ ३ गिहत्थभासा भा । एतद्नुसारेणेव मा टीका । दश्यता टिप्पणी ४ ॥

४ गृहस्थभाषा° भा०॥ ५ ४ > एतदन्तर्गतमनतरणं का० एव नर्तते ॥ ६ ता० त० डे० विनाऽन्यत्र--अथ पुरु° भा॰ । तथा स्थण्डिले सागारिकसमाक्तलतया पुरु° मो॰ है॰ का॰ ॥ ७ < > एतद्दर्गतम्बत्तरणं कां० एव वर्त्तते ॥

ħ

रखनन्बद्धपनायते, प्रतिश्रयकांतक्तया मक्तसार्नार्यमाणत्वात् । म च खाना यदि तत्रोचार-प्रश्रवणादि क्रनेति तदा मागारिका उद्वादं द्वर्धः । अय न क्रोति ततः परितारनादयो दोषाः ॥ २१६७॥ अधिनदोरमयाद् प्रामाद् बहिर्वसन्ति ततः को दोषः स्यात् १ इति प्रश्रावकाध-माधद्वणह—

> वहिया य रुक्खमृन्हे, छक्काया साण-नेण-पडिणीए । मतुम्मत्त विडव्वण, वाहण जाणे मतीकरणे ॥ ३१६८ ॥

यामार्देशहर्षश्चे आकारो वा प्रथिवीकायः सवित्ततः प्रमृतिकः, अफायः सेहकणिकादिः, तेवःकायो विश्वदादिः, वायुक्तयो महावाजादिः, वनस्पतिकायो विविधिनहृशस्करुप्य-क्रजिदिः, व्यक्तयो वृद्धनिश्चिन्द्वीन्द्रयादिक्तयः सम्भवतिः, एने पदकायात्तव तिष्ठनां विरा16 व्यन्ते । अमंद्रने च तत्र श्वानो मावनमपद्देत्, स्त्रेना वा उपद्रवेष्टः, प्रत्यनीको वा विवनं
मत्ता ह्न्याद्वा मार्यद्वा । तथा 'मत्ताः' मदिरामदमाविताः 'उन्मताः' मन्मथोनमादयुक्ता विद्य इत्त्रवेः ते 'विञ्चवेषां' मृषणादिभिर्द्यरणं विवाय तत्रागच्छन्ति, 'वाहनानि' हत्त्यश्चादीनि 'यानानि' छितिका-यादीनि, तानि द्वा सुक्तमोगिनां स्यतिकरणमसुक्तमोगिनां तु कानुकर्य-प्रायत देति नियुक्तिगाथासमासार्थः ॥ ६१६८॥ अथनामेव - सात्रक्ररो > विद्यणोति —

या होज अंनो इति दोमजालं, नो जाति द्रं वहि रुक्खर्म्ले । अग्रजमाणे नहियं तु काया, अवाउने नेण सुणा य पेगे ॥ ३१६९ ॥

'अन्तः' शमास्थन्तरं समादं। वसताम् 'इति' अवन्तरोक्तं दोरबार्छं मा स्वित्यमिसन्याय 'ततः' शमाद् बहिद्रेर् इस्मूले याति । तत्र च 'असुःयमाने' अव्याप्तियमाणे प्रदेशे पूर्वोक्तनीत्या पद्यति काया विराव्यन्ते । अगद्वते च तत्र नेत्रमाः आनुआनेक उपद्ववं विद्यति ॥ १९६९ ॥

इम्मत्तना तत्य विचिचवेसा, पहीन चिनाऽभिणया बहुणि ।
 कीलंनि मना य अमनना य, तित्यित्य-पुंना मुतलंकिता य ॥ ३१७० ॥

् 'तत्र' उद्याने 'उन्मत्तः' विदाः 'विचित्रवेषाः' विविधवकादिनेपव्यवारिषःः 'चित्रामिनयः' नानायकारहत्तः, विभिन्नय रहूनि शृङ्गारकाच्यानि पटन्ति । तथा मृत्ता अनता या तत्र स्त्री-पुरुषाः सुष्टु—चन्ना-ऽऽमर्षे,रस्टङ्कृताः सन्तः क्रीहन्ति ॥ ३१७० ॥

व्य असे रहे गोरहों य चित्ते, तन्यामिरुहा डगणे य केह । वित्रित्तरुत्रा प्रुरिसा छछंता, हगेति चित्ताणऽविकोविताणं ॥ ३१७१ ॥

'तत्र' उद्यान केचित् पुरुष अक्षान् अपेर रक्षान् तद्रन्ये 'गोर्थकान्' करहोडकान् केचित् 'चित्र जि' नानानकराजि खुप्यादीनि यानानि 'डग्यानि च' व्यनिवरोपस्याप्यविरुद्धाः सन्तो विचित्ररुपः गुरुषाः केष्ठिगुत्राद्यः 'ख्यन्तः' क्षीडन्तो 'अविकोविद्यानाम्' अर्थ तार्थानां चित्रानि

ध्हान्ति । तत्रय सक*न*-उसक्तसस्य दोगः ॥ २१७१ ॥

सामिद्धिसंदंसणवावंडण, विष्यस्मता तेसि परेसिं मोक्खे ।

१ इति सङ्करगाया मण्या २ ४ > एत्डन्तर्रतः पठः बांण्यु बत्तरे ॥ ३ भूलं ताला ४ को वस्रतिरोपमन्तिके रोप बांणा ५ भी रिसी ताला

तत्थोतपोत्राम्म समंततेणं, भिक्खा-वियारादिस दुप्पयारं ॥ ३१७२ ॥

समृद्धाः-वस्ता-ऽऽभरणादिरूपायाः सम्-इति सामस्येन यद् दर्शनम्-अवलोकनं तत्र व्यापृतेन-'इदं पश्यामि, इदं वा पश्यामि' इति व्याक्षिप्तचेतसा, तथा 'तेषां परेषां' श्रेष्ठिपभृ-तीनां यान-वाहनादीनि 'मुख्यानि' प्रधानानि विविधम् अनेकप्रकारं पश्यता सूत्रार्थयोः परि-मन्थः कृतः स्यादिति रोषः । तत्र चं स्त्री-पुरुषेः समन्ततः 'उअपोते' ⊲ देरी।पदत्वाद् ⊳ 5-आकीर्णे भिक्षायां विचारभूमौ आदिशब्दाद् विहारभूम्यादौ च दुष्प्रचारं भवति । यत एते दोषा अतः सङ्ख्यां न गन्तव्यम् ॥ ३१७२ ॥ अथ परः प्राह-

> दोसेहिं एत्तिएहिं, अगेण्हंता चेव लिगमो अम्हे। गेण्हासु य भ्रंजासु य, ण य दोस जहा तहा सुणसु ॥ ३१७३ ॥

सङ्खिडिगमने यावन्त एते भवद्भिदोंपा उक्ता एतावद्भिर्वयं सङ्खिडिभक्तमगृह्णाना एव लगामः, 10 ततो न कार्यमसाकं ग्रामादिमध्याध्यासनेन । सूरिराह—वयं सङ्खिङमक्तं गृहीमो वा भुङ्गमहे वा न च 'दोषाः' पूर्वोक्ता यथा भवन्ति तथाऽभिघीयमानं शृणु । इयं पुरातना गाथा ॥३१७३॥ अथैनामेव व्याख्यानयति-

> अपरिग्गहिय अभुत्ते, जित दोसा एत्तिया पसजंती। इत्थं गते सुविहिया, वसंतु रणो अणाहारा ॥ ३१७४ ॥

15

परः पाह—अपरिगृहीतेऽभुक्तेऽपि च सङ्खाडिभक्ते यद्येनावन्तो दोषाः पथि गच्छतां श्रामा-देर्मध्ये बहिश्च तिष्ठतां भवन्ति, ततः 'इत्थम्' एवं 'गते' स्थिते सम्प्रति स्रुविहिता अनाहाराः सन्तोऽरण्ये वसन्तु ॥ ३१७४ ॥ गुरुराह-

होहिंति न वा दोसा, ते जाण जिणो ण चेव छउमत्थो। पाणियसद्देण उवाहणां णाविन्मलो ग्रुयति ॥ ३१७५ ॥

हे नोदक ! नायं नियमो यत् सङ्घाडिं गच्छतामवश्यमनन्तरोक्ता दोषा भवन्ति, कारणे यतनया गच्छतस्तेषामसम्भवात्; ततः 'ते दोषा भविष्यन्ति वा न वा' इत्येवं जिनो जानाति नैव छद्मस्थो भवादशः । अतो यदुक्तं भवता—"इत्थं गते सुविहिता अरण्ये गत्त्रा वसन्तु" (गा० ३१७४) तदेतदज्ञानविजृम्भितम्, यतः पानीयशब्देनोपानहौ न 'अविहरूः' अमूर्खी मुञ्जति, यो मूर्खो भवति स एव मुञ्जतीति भावः; एवं भवानिष सङ्खिलगमनमात्रे दोषोपप्रदर्शनं 25 श्रुत्वा यदेवं प्रामादीन् परित्यज्यारण्यवासमभ्युपगच्छति तद् नूनमबुधचऋवतीति हृदयम् ॥ ३१७५॥ अपि च-

> दोसे चेव विमग्गह, गुणदेसित्तेण णिचगुजुत्ता। ण हु होति सप्पलोद्धी, जीविउकामस्स सेयाए ॥ ३१७६ ॥

हे नोदक ! < यद्यपि कारणे वक्ष्यमाणयतनया सङ्घाडिगमने प्रत्युत वहवो गुणा भवन्ति 30 तथापि ▷ गुणद्वेषित्वेन यूयं नित्यमुद्युक्ताः सन्तो गुणान्वेषणदुद्या दोपानेव विमार्गयथ न

१ च मत्तोन्मत्तादिभिः स्त्री° मा॰ ॥ २ ⁴ 🌣 एतचित्रगत पाठः भा॰ नास्ति ॥ ३ ॳ > एतदन्तर्गतः पाठः मो० ले० कां॰ एव वर्त्तते ॥

गुणान्; भवित्र चेंहणा अपि केचिटिमान् इनित ये दोषानेव केवलन् प्रव्यन्ति न गुणिन-वहम् । उक्तब्र—

> गुणीचये मखिर सुप्रमृते, दोपेषु घरः सुमहान् सकानाम् । क्रमेन्द्रः केव्यनं प्रविच्यः, निरीक्षने क्रप्यक्ताल्मेव ॥

यतः 'न हि' नेन 'म्इंडुव्निः' मर्गमहरूनं जीवितुक्तमस पुरुष्स श्रेयमे मन्ति, किन्तु प्रस्तु मरणायः एवं मन्ते। किन्तु प्रस्तु मरणायः एवं मन्ते। किन्तु प्रस्तु मरणायः एवं मन्ते। मध्यम् मध्यमे सम्पर्धते, प्रस्तुनाहागमावेनानंध्यानादिपार्यामसम्मन्नत् कृत्य-मृत्य-मृत्यदिमस्याद्या नस्येन संयमस्योपनातं वनयित ॥ ११७६ ॥ आह यद्येनं ततो निरूप्यतं क्रयमत्र दोषा मनन्ति । क्यं ना मन्ति । इति उच्यते—

10 मण्यति उत्रेच गमणे, इति दोसा दृष्यदे। य जहि गैतुं । इस गहण सुंजैणे या, न होति दोसा अद्ष्येणं ॥ ३१७७ ॥

सप्यनेऽत्र यनिवचनम्—यदि 'टपेन्य' आङ्कृहिकया सङ्ग्रङ्गां गच्छति, 'दर्पतश्च' गुरु-न्छनादिकारणामायेन यत्र गत्वा गृहानि भुद्रे वा नयानन्दरेन्द्रा दौरा मन्त्रयाः । अय 'क्रमण' गृहपरिग्रङ्मा सङ्कृहिगृदं यातः तनस्त्र ग्रहणं मोजनं वा द्वर्षागस्य न दौरा सवन्ति । 'अद-13 णण वा' पुष्टाग्रस्तेन सङ्कृहिग्रनिद्याऽपि गच्छते। न दौषा सवन्ति ॥ ३१७० ॥

इद्रमेव भावणी-

20

पहिलेहियं च खेनं, पंथ गाम व मिक्लवेछाए । गामाणुगामियम्मि य, जिंदे पायोग्गं तिहं छमते ॥ ३१७८ ॥

माप्रक्रप्रस वर्षात्राहस्य वा योग्यं क्षेत्रं प्रसुपेश्तित् , तत्र च गन्तुं प्रसितानां 'पिथ' मार्गे १०वर्णमानानां यद्वा तिसकेत्र ब्रामे प्रातानां सङ्घिद्यस्थिता, उमयत्राति यदि मिलावेळ्यां सक्त-पानं प्राच्येत तदा करणेन गन्तुम् । श्रामानुष्यानिकेऽव्यतियत्तविद्युरे विद्रुरतां यत्र मिलावेळ्यां प्रायोग्यं शाव्यते तत्र ब्रहीतुं त्यते नान्येत्रति ॥ ३१७८ ॥ अधेनामेत्रं गायां व्याचेष्ट—

त्रामाविहारखेर्च, वर्चनाञ्जंतरा वर्हि मोर्ख । अचहरिनाण वर्हि, मिक्खमर्डनाण क्रेयंखा ॥ ३१७९ ॥

25 व्यक्तिहाँग नाम-वर्शवासनात्रायांग्यं क्षेत्रं बजनाम् 'अन्द्रता' पथि वत्र 'साव्यं' सङ्घडी भवति । अह च चूर्णिक्चन---

मोर्झ ति श मंबहि ति वा एगई।

'तत्र' बामाही 'आत्मार्थिस नातां' सार्थमदस्मिनानां न तु मङ्घाडिनिसित्तं गृहर्पारपाट्या च मिङ्गमटनां सङ्घांडं गाचा मक्त-यानं ब्रह्मातुं क्रव्यने ॥ ३१७२ ॥ इतः १ इति चेद् उच्यते—

निय पत्रचणहोसो, परिवादीपहित मी ण याऽऽह्णा । परसंमहं अविलेवियं च गेर्व्हात अणिनण्या ॥ ३१८० ॥

१ संयमजीजितामिलायिणा यदेतदरण्य सा॰ ० २ थणाऽचु ता॰ त॰ दे॰ ० ३ जिणस य, न रा॰ ० ७ थ व निर्शेषितायां झं॰ ०

नास्ति तत्र सङ्ख्यां गमने पवर्त्तनादोषः, 'परिपाट्यापतितं' प्राप्तावसरं यतस्तत्र भक्त-पानं गृह्माति, न तदेवैकं गृहमुद्दिश्य गत्वेति । "मो" इति पादपूरणे । न च सा सङ्ख्रुडी 'आकीर्णा' जनाकुला, 'परसंस्रष्टं च' गृहस्थादिपरिवेषणनिमित्तं हस्तो वा मात्रकं वा संस्रष्टम् , अविलम्बतं च तत्रानिषण्णाः सन्तो गृह्णन्ति, भिक्षावेलायां गमनात् तत्क्षणादेव भक्त-पानं लभन्ते, न पुन-रुपविष्टाः पतीक्षन्ते इति भावः ॥ ३१८० ॥ किञ्च-

> संतऽन्ने वऽवराधा. कज्जम्मि जतो ण दोसवं जेस । जो पुण जतणारहितो, गुणो वि दोसायते तस्स ॥ ३१८१ ॥

'सन्ति' विद्यन्ते 'अन्येऽपि' अनेषणीयमहणादयोऽपराधा येषु 'कार्ये' ज्ञानीदौ 'यतः' प्रयतं कुर्वेन् प्रतिसेवमानोऽपि न दोषवान् भवति, यः पुनर्यतनारहितः प्रवर्तते तस्य गुणोऽपि 'दोषा-यते' दोष इव मन्तव्य ⊲ ईत्यर्थः ॥ ३१८१ ॥ इदमेव सविशेषमाह---> 10

असदस्सऽप्पिडकारे, अत्थे जततो ण कोइ अवराघो । सप्पडिकारे अजतो, दप्पेण व दोसु वी दोसो ॥ ३१८२ ॥

'अश्वठस्य' राग-द्वेषरहितस्य 'अप्रतिकारे' प्रतिसेवनां विना नास्त्यन्यो यस्य प्रतिकार इत्ये-वंरुक्षणे 'अर्थे' सङ्घाडिगमनादौ 'यतमानस्य' यतनां कुर्वतो न कोऽप्यपराधो भवति । यस्तु 'सप्रतिकारे' परिहर्त्तुं शक्येऽर्थे 'अयतः' न यतनां करोति दर्पेण वा प्रतिसेवते तस्य 'द्वयोरपि' 15 अयतना-दर्पयोदोंषो मवति, कर्मबन्ध इत्यर्थः ॥ ३१८२ ॥ यत एवमतः-

निद्दोसा आदिण्णा, दोसवती संखडी अणाइण्णा। सुत्तमणाइण्णाते, तस्स विहाणा इमे होंति ॥ ३१८३ ॥

'निर्दोषा' वक्ष्यमाणदोषरहिता सङ्ख्रुडी 'आचीर्णा' साधूनां गन्तुं कल्पनीया । या तु दोष-वती सा अनाचीर्णा । तत्र सूत्रमनाचीर्णायामवतरति, न तत्र सङ्ख्विपतिज्ञया रात्रौ वा विकाले वा 20 गन्तन्यम् । 'तस्याश्च' अनाचीर्णाया अमूनि 'विधानानि' मेदा भवन्ति ॥३१८३॥ तानेवाह---

जावंतिया पगणिया, सिक्खत्ताऽखित्त बाहिराऽऽइण्णा। अविसुद्धपंथगमणा, सपचवाता य भेदाय ॥ ३१८४ ॥

'यावन्तो भिक्षाचरा आगमिप्यन्ति तावतां दातन्यम्' इत्यभिप्रायेण यस्यां दीयते सा याव-न्तिका । 'दश शाक्या दश परिव्राजका दश श्वेतपटाः' एवमादिगणनया यत्र दीयते सा प्रग-25 णिता । "सक्खेते" ति सक्रोशयोजनक्षेत्राभ्यन्तरवर्त्तिनी । "अक्खेत्रे" ति सचित्तपृथिव्यादाव-क्षेत्रे-अस्थण्डिले स्थिता । ''बाहिर'' चि सकोशयोजनक्षेत्रबहिर्विची । 'आकीर्णा नाम' चरक-परिवाजकादिभिराकुरु। अविशुद्धेन-पृथिव्यप्कायादिसंसक्तेन पथा गमनं यस्यां साऽवि-शुद्धपथगमना । तथा यत्र स्तेन-श्वापदीदयो दर्शनादिविषयाश्च प्रत्यपाया भवन्ति सा सप्रत्य-

१ °नादौ पुष्टालम्बने 'यतः' का॰ ॥ २ < ▷ एतदन्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्त्तते ॥ अपुद्धि ता॰ ॥ ४ ता, प्रकर्षेण-वस्यमाणलक्षणजाति-नामविशेषनिर्द्धारणेन पापण्डिनां गणनं-गणना यस्यां सा प्रगणितेति न्युत्पत्तेः । "सक्खे° कां॰ ॥ ५ °दादिकृता दर्शन-ब्रह्म-नतादिविराधनालक्षणाभ्य प्रत्य[°] कां॰ ॥ ६ °नापायाद्यभ्य प्रत्य[°] मा॰ ॥

पार्व। । सा च कंक्टिपेराव चरतमेराय वा मंदिति वारगायासमासर्थः ॥ ३१८० ॥ अधेरापेर प्रनिर्द विद्योति—

. काचंद्रान्ता परमा, त्रिनिया पानंद्रजानि-गामेर्हि । सक्लेकें जा सक्रोनं, क्रक्लिके पृद्यिमाईसु ॥ ३१८५ ॥

७ 'यगमा' यहिन्तिम मा 'खन्यहाला' यहन्तः कन्त तरिका-कार्परिकाद्या पिकानग यहद्यक्षिमश्राण्डाण्टाकानां दान्क्रमिति कथा। । 'हितीया' प्रगतित प्रकर्मेण प्रपण्डिनां लच्या नाम दा पर्यास्त्वा वय दीयते । तत्र लाति प्रतीत्य गाना यवा—दस्र मीता द्या स्मानतः दस्र केत्रान्ता दस्यादि । नम् प्रतीत्य गाना यया—खनुकः केत्रारोष्ट्रकथ रक्षण्यादा । नम्बेत्रकङ्कुद्धा नाम या कक्षोत्रयोजनक्षेत्रास्यन्ते सन्ति । यहेत्रकङ्कुद्धा नाम या कक्षोत्रयोजनक्षेत्रास्यन्ते सन्ति । यहेत्रकङ्कुद्धा ता या । १९८५ ॥

एत्सु गच्छतः शयश्चितमञ्ज्

वार्षतिगाएँ रहुगा, चरगुर पगर्वाएँ रहुग सक्खेन । मीसग-मिवन-अंगर-परंपरं कायपन्छितं ॥ ३१८६ ॥

गविन्द्रामं बहुर्ककः। प्राणित्यां बहुर्गुतः। स्वेत्रमङ्कां गच्छतश्चर्ततृतः। अवे-१८ व्यक्तवां निक्रमतिका-अन्त-मन्तर्यतिष्ठितयां कायप्रयक्षितम्। तत्र प्रविक्रित्यां प्रयक्षित्रम् । तत्र प्रविक्रित्यां प्रयक्षित्रम् निकेषु परम्पर्यतिष्ठितयां वहुम्बक्ष्यः, वनन्तर्यतिष्ठित्रम्यं मासब्दुः प्रतिवेत्रम् मिनेतु प्रमार्थतिष्ठितयां मासब्दुः, वतन्तर्यतिष्ठित्रयां बहुर्वदुः, वतन्तर्वत्यति वर्तत्रम्यति प्रयक्षितिति हुन्द्राति कर्तव्यति ॥ ३६८६ ॥

४ वंद च्ह्रेययोद्दर्वाहर्विचित्रपृतितु सङ्घर्षेषु प्रायक्षित्रमाह—>
 वर्दि बुद्धि अद्भोयण, गुरुगार्दा सर्चाई सन्ने मपदं ।
 चरमादी आहला, चत्रगुरु हत्याहर्मगो य ॥ २१८७ ॥

केयत् विशे सङ्ख्यं गच्छत्यत्रिष्ट्-ततः प्रामदेगीवनवद्या चतुर्पुरुक्षमति इत्या मतिन-वैदिनिः 'त्यतं' प्राप्तिकं मनेत् । त्यया—ग्रेगत् ग्रीहर्प्यगेवने चतुर्पुन, गोवने पद्यस्तु, सदिगत्ते यहुरु, द्वरोगीवन्द्रोग्छेदः, अर्द्धत्तियगोवनेषु मृत्यम्, त्रिषु योवनेषु नवमम्, ४: श्रद्धेवतुर्थगोवनेषु ग्राम्बिकस् । तथा या चाक-प्राप्तातक-कार्यद्विकादिनिग्रक्ततः सा आकीर्णा तो पच्छत्यवतुर्वेश्वतम् । तम चतिम्पर्यदेन इन्त-पाद-गणदिमको मनेत् ॥ ११८७ ॥ वर्षाविश्वद्वस्थाननार्वाति द्वराणी व्यन्त्यति—

> काण्हऽविसुद्वयहा, सावय-नेगा पहे अवाया छ । दंगण-पंगवता-उप्ता, निविवा प्रुण होंनि पत्तस्य ॥ ३१८८ ॥ दंगगवादे लहुगा, सेमावादेमु चडगुरू होंनि । जीविय-चित्तमेदा, विम-वित्गादीहि गुनका छ ॥ ३१८९ ॥

- १ °या | तथा "मेदाय" चि सीति हैं ० १ ६ ५ चि निर्युक्तिया है ० ॥ १ ९४ एर बिस्क्यूक्टरण से ० है १ के एर इन्हें १

'कायैः' पृथिव्यादिमिरविद्युद्धः पन्थाः-मार्गो यस्याः सङ्घाडेः सा तथा, अस्यां च कायनिष्पन्नं प्रायश्चित्तम् । प्रत्यपायाश्च द्विनिधाः---पथि वर्त्तमानस्य तत्र प्राप्तस्य च । तत्र पथि वर्त्तमानस्य श्वापद-र्तेन-कण्टकादयः । तत्र प्राप्तस्य तु त्रिविधाः प्रत्यपाया भवन्ति---दर्शन-ब्रह्मव्रता-ऽऽत्मा-पायमेदात् । तत्र सङ्ख्रिं गतस्य चरक-शाक्यादिभिन्धुद्राहणा दर्शनापायः । चरिका-तापसीप-भृतिभिरन्याभिनी मत्तप्रमत्ताभिः स्त्रीभिर्त्रसात्रतापायः । आत्मापायस्तु पूर्वोक्तः एव हस्तभङ्गादिकः 15 एवंविधापायसहिता समत्यपाया ॥ ३१८८ ॥

अत्र च दर्शनापाये चतुर्रुषुकाः । शेषेषु स्तेन-धापदादिषु ब्रह्मवता-ऽऽत्मविषयेषु प्रत्यपा-येषु चतुर्गुरवो भवन्ति । तथा सौगतोपासकादिः सङ्खाडिकर्ता विषं वा गरं वा प्रद्यात् , एवं जीवितमेदः । चरिकादिभिश्चारित्रमेदः । एतयोर्जीवित-चारित्रमेदयोः प्रत्येकं चतुर्गुरवः । एपा यावन्तिकादिदोषद्र्ष्टा सङ्क्षाडिरनाचीर्णा । एतद्विपरीता आचीर्णेति ॥ ३१८९ ॥

हिंतीये पदे एतैः कारणैः सङ्घाडिमपि गच्छेत्—

कप्पइ गिलाणगद्वा, संखिडगमणं दिया व राती वा। दन्वम्मि लब्भमाणे, गुरुउवदेसी ति वत्तव्वं ॥ ३१९० ॥

ग्लानार्थं सङ्घाडिगमनं दिवा रात्रौ वा करुवते । तत्र च द्रव्ये ग्लानप्रायोग्ये लभ्यमाने याव-न्मात्रं ग्लानस्योपयुज्यते तावति प्रमाणप्राप्ते सति प्रतिषेधयन्ति । यद्यसौ दाता ब्रूयात् — किमिति 15 न गृह्वीथ ? ततः 'वक्तन्यं' भणनीयम् —गुरः वैद्यस्तस्योपदेशोऽयम् —यदेतावतः प्रमाणादूर्द्ध ग्लानस्यं पथ्यादिकं न दातन्यम् ॥ ३१९० ॥ ईदमेव भावयति-

> पुन्ति ता सक्खेत्ते, असंखडी संखडीसु वी जतिति । पडिवसममलब्भंते, ता वचिति संखडी जत्थ ॥ ३१९१ ॥

ग्लानस्य प्रायोग्यं पूर्वे तावत् 'खक्षेत्रे' खप्रामेऽसङ्ख्यां गवेपयितन्यम् । यद्यसङ्ख्यां न 20 प्राप्यते ततः खग्राम एव याः सङ्ख्यातासु अ ग्लानप्रायोग्यग्रहणाय > यतते । तदमाने (ग्रन्थाग्रम्-१०००० । सर्वग्रन्थाग्रम्-२२२२०) प्रतिवृषभग्रामेष्विष प्रथममसङ्ख्या ततः सङ्खङ्यामपि । अथ तत्रापि न रुभ्यते ततो यत्र ग्रामादौ सङ्खडी भवति तत्र व्रजन्ति ॥३१९१॥

ताश्च सङ्ख्रहयो द्विघा-सम्यग्दर्शनभाविततीर्थविषया मिथ्यादर्शनभाविततीर्थविषयाश्च । तत्र प्रथममाद्यास गन्तव्यम्, यत आह—

> उर्जेत णायसंडे, सिद्धसिलादीण चैव जत्तासु । सम्मत्तभाविएसं, ण हुंति मिच्छत्तदोसा उ ॥ ३१९२ ॥

उज्जयन्ते ज्ञातखण्डे सिद्धशिलायामेनमादिषु सम्यत्तनभानितेषु तीर्थेषु याः प्रतिवर्ष यात्राः-सङ्ख्रुडयो भवन्ति तासु गच्छतो मिध्यात्वस्थिरीकरणादयो दोपा न भवन्ति ॥ ३१९२॥ एतेसिं असईए, इतरीउ वयंति तत्थिमा जतणा। 80

१ अथ ग्लानार्थे सङ्खिगमने विधि दर्शयति इलेवंप्रकारमवतरण का॰॥

२ पनामेव निर्युक्तिगाथां भाष्यकारो भाव^० कां• ॥

⁻ ३ °म् । अथासक् भा॰॥ ध ⋖ ⊳ एतदन्तर्गतः पाठः मो० हे० कां० एव वर्तते ॥

पुड़ी अतिकमिस्सं, कुणति व अण्णावदेसं तु ॥ ३१९३ ॥

'एतेपां' सम्यक्तनभावितानामभावे 'इतरा अपि' मिथ्यात्वभाविततीर्थविषयाः सङ्घर्डीर्नः जन्ति । तत्र च गच्छत इयं यतना—यदि केनापि प्रच्छयते 'किं सङ्घर्डां गमिप्यय ?' इति । त्रतः प्रष्टः सन्नेवं त्रूयात्—अतिक्रमिष्याम्यहं सङ्घर्डीम्, अग्रतो गमिप्यामीत्यर्थः; अथवा ठ अन्यापदेशं करोति, अन्यत् किमपि प्रतिवचनं त्रृत इति भावः ॥ ३१९३ ॥

तहियं पुन्यं गंतुं, अप्योवासासु ठाति वसहीसु ।

जे य अविपक्कदोसा, ण णैति ते तत्य अगिलाणे ॥ ३१९४ ॥

'तत्र' सङ्घिष्ठमामे पूर्वमेव गत्वा या अल्पावकागा वसतयस्वासु तिष्ठन्ति । ४ गायायां ''टाइ'' ति एकवचननिर्देशः प्राकृतत्वात्, एवमन्यत्रापि वचनव्यत्ययो यथायोगं द्रष्टव्य इति । № 10 विस्तीर्णावकाशासु पुनः स्थितानां गृहस्थादिमिः पश्चावागतेः सह त एवासङ्घ डादयो दोपाः । ये च तत्र 'अविपकदोषाः' इन्द्रिय-कपायान् निमहीतुमसमर्था अविकोविदा वा साधवः,

आह च चूर्णिकृत्—

अविपक्करोसा नाम जे असमत्या निगिण्हिडं ईंदिय-कसाए अविकोविया वा I

ते तत्रीलङ्कुतस्रीदर्शनादिसमुत्थदोपपरिजिहीर्पया 'श्रग्ठाने' ग्लानकार्यामावे न निर्गच्छिन्ति १६॥ ३१९४॥ श्रथ ग्लानस्य प्रायोग्यग्रहणे विधिमाह—

> विणा उ ओमासित-संथवेहिं, जं लब्भती तत्य उ जोग्गद्व्यं । गिलाणश्चतुव्यरियं तगं तु, न श्वंजमाणा वि अतिक्रमंति ॥ ३१९५ ॥

अवमापणमवमापितं—याचनमित्यर्थः, संस्तवनं संस्तवः—दातुर्गुणविकत्थनं तेन सहात्मनः सम्बन्धविकत्थनं वा, ताम्यां विनाऽपि 'तत्र' सङ्ख्यां यत् प्रायोग्यद्वयं रूम्यते तत् प्रथमतो 20 ग्रायान्यद्वयं रूपते तत् प्रथमतो १० ग्रायान्य दात्व्यम् । ततो ग्रानेन तन्मध्याद् यद् मुक्तं तत उद्वरितं मुझाना अपि साधवः 'नातिकामन्ति' न मगवदाज्ञां विद्धम्पन्ति ॥ ३१९५॥

ओमासियं वं तु गिळाणगद्वा, तं माणपत्तं तु णिवारयंति ।

तुत्रमे व अण्ण व लया तु वैति, श्रंजेत्य तो कप्पति णऽण्णहा तू ॥३१९६॥ 'यतु' यत् पुनः मायोग्यद्रत्र्यं ग्लानार्थमवमाषितं तद् यदा 'मानप्राप्तं' वैद्योपदिष्टपथ्यमा- १० त्राप्तां मवति तदा 'निवारयन्ति' पर्याप्तमायुप्पन् । एतावता खतः परं ग्लानस्य नोपयोक्ष्यते । एवश्चके यदा ते गृहस्या एवं ब्रुवते—'य्यं वा अन्ये वा साधवो अञ्जीव्वम्' तदा ग्लानप्रायो-ग्यप्रमाणादिषक्तमि प्रहीतुं कल्पते नान्यथा। तः पादपूर्णे॥३१९६॥ इदमेव स्फुटतरमाह—

दिणे दिणे दाहिसि थीन थोनं, दीहा रुपा तेण ण गिण्हिमीऽम्हे ।

ण हार्वियस्सामों गिलाणगस्सा, तुब्मे व ता गिण्हह गिण्हणेवं ॥ ३१९७ ॥ ३० मो. श्रावक ! ग्लानस 'दीवी' चिरकालस्यायिनी 'रुग्' रोगः समित्त, अतो दिने दिने स्तोर्क स्तोकमिदं ग्लानयोग्यं द्रव्यं दास्यसि, तेन कारणेन वयमिदं न गृह्वीमः । ततो यदि ते गृहस्या छुवते—वयं प्रतिदिनं ग्लानस्य प्रायोग्यं न हापयिष्यामः, यूयमिप च तावत् प्रसादं कृत्वा

१ ॰४ > एतदन्तर्गतः पाठः का॰ एव वर्तते ॥ २ °त्रात्मसमुत्यप्रोमयदोष् मा॰ ॥

गृहीत । एवमुक्ते प्रमाणप्राप्तादिधिकस्यापि प्रहणं कर्तव्यम् ॥ ३१९७ ॥ एवं तावत् साधूनां प्रवेशे लभ्यमाने विधिरुक्तः । अथ यत्र साधवः प्रवेशं न लभनते तद्विपयं विधिमाह—

नं वि लब्भई पवेसी, साधूणं लब्भएतथ अञाणं। वाचारण परिकिरणा, पडिच्छणा चेव अञ्जाणं ॥ ३१९८ ॥

यत्रान्तःपुरादी 'नापि' नैव साधूनां प्रवेशो रूम्यते किन्तु रूम्यते तत्रार्थिकाणां प्रवेशः, ह कर्मकर्चर्ययं प्रयोगः ततः षष्टी विभक्तिरदुष्टा, तत्रार्थिकाणां व्यापारणा विधेया । ततस्ता अन्तः-पुरादौ प्रविश्य प्रज्ञापयन्ति । तथापि चेन्न प्रवेशो रूम्यते ततः "परिकिरण" ति ता आर्थिका ग्लानप्रायोग्यं गृहीत्वा साधूनां पात्रेषु परिकिरन्ति-प्रक्षिपन्ति । तत आर्थिकाणां हस्ताद् ग्लान-प्रायोग्यं प्रतीच्छन्ति ॥ ३१९८ ॥ इँदमेव स्पष्टयति-

अलन्भमाणे जतिणं पवेसे, अंतेपुरे इब्भघरेसु वा वि ।

10

25

उजाणमाईसु व संठियाणं, अज्ञाउ कारिति जतिप्यवेसं ॥ ३१९९ ॥

राजादीनामन्तःपुरे वा इभ्यगृहेषु वा यतीनां प्रवेशेऽरूभ्यमाने उद्यानादिषु वा संख्यितानां साधूनामनागन्तुकानामित्यर्थः, आर्यास्तत्र यतीन् प्रवेशं कारयन्ति । कथम् १ इति चेद् उच्यते---ता आर्थिका अन्तःपुरादौ गत्वा प्रज्ञापयन्ति—यथैते भगवन्तो महातपिखनो निःस्प्रहाः, एतेभ्यो दत्तं बहुफरुं भवति । एवमादिप्रज्ञापनया यदा तानि कुलानि भावितानि भवन्ति तदा 15 साधवः प्रविशन्ति ॥३१९९॥ अथ तथापि प्रवेशो न रुभ्यते ततः किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह—

पुराणमाईसु न णीणवेंति, गिहत्थभाषेसु सर्यं न ताओ । अगारिसंकाएँ जतिचएहीं, हिट्ठोवभोगेहि अ आणवेंती ॥ ३२०० ॥

आर्यिका गृहस्थभाजनेषु ग्लानप्रायोग्यं गृहीत्वा पुराणादिमिर्गृहस्थैः साधुसमीपं 'नाययन्ति' प्रापयन्तीत्यर्थः । अथ तादृशो गृहस्थो न प्राप्यते ततः स्वयमेव ता आर्थिका गृहिमाजनेषु 20 गृहीत्वा साधुसमीपं नयन्ति । अथागारिणः शङ्कां कुर्युः-'नूनमेता गृहस्थमाजनेष्वेवंविधमु-क्ष्रप्रद्रव्यं गृहीत्वा केपाश्चिद्विरतिकानां प्रयच्छन्तिं ततो यतीनां सत्कानि यानि अधस्तादुप-भोग्यानि-असम्भोग्यानि भाजनानि उपहतानीत्यर्थः तेषु गृहीत्वा साधूनां समीपमानाययन्ति आनयन्ति वा ॥ ३२०० ॥ ४ अँथ न सन्ति साधूनामसम्भोग्यानि भाजनानि ततः--->

तेसामभावा अहवा वि संका, गिण्हंति माणेसु सएसु ताओ । अभोइमाणेस उँ तस्स भोगो, गारित्थ तेसेव य भोगिस वा ॥ ३२०१ ॥

'तेषां' संयतभाजनानामभावात्, अथवा तेषु गृह्यमाणे गृह्य्थानां 'शङ्का भवेत्' 'एतानि संयतभाजनानि, तदवश्यमेताः संयतानां प्रयच्छन्ति' ततः 'ताः' आर्यिकाः खकेषु भाजनेषु गृह्धन्ति । ततः साधवोऽसम्भोग्यभाजनेषु गृहीत्वा 'तस्य' प्रायोग्यद्रव्यस्य भोगं कुर्वते । अस-म्भोग्यभाजनाभावे गृहस्थभाजनेषु । अथ तान्यपि न सन्ति ततः 'तेप्वेव' संयतीभाजनेषु ३०

१ "ण वि छ॰ गाहा पुरातना" इति विशेषचूर्णों ॥ २ °ए उ अ° ता० ॥ ३ एनामेच निर्यु-किगाथां स्पष्ट° कां० ॥ ४ ⁴ ▷ एतदन्तर्गतमक्तरणं मो० छे० कां० एव वर्तते ॥ ५ उ तेसि भो॰ ता० ॥ ६ ॰पाम्' असम्मोग्यानां संय° कां० । "तेसि ति सजतभायणाण" इति चूर्णों ॥

चुक्रते । यथ संयतीनां तेमोक्तैः दीवं प्रयोजनं ततः साम्मोगिकेप्नपि माजनेषु प्रक्षिप्यते । एवं तस्वद् ग्लाननिनित्तं यथा गृह्यते तथा मणिनम् ॥ ३२०१ ॥

अय सहुर्डागमने कारणान्तराण्याह—

अद्याणनिग्गयादी, पविसंता वा वि अहव ओमिम्म ।

उत्रिष्ट्स गहण लिएण, माविष्म य तं पि जयणाए ॥ ३२०२ ॥
- अञ्चले निर्गताः आदिशञ्दादशिवादिनिर्गता वा, अञ्चलि वा प्रविश्चन्तः, अथवा 'अवमे'
हिमित्ने वर्तमानाः सङ्ग्रीहं गच्छेयुः । अथवा यत्र शामादा सङ्ग्रीहम्तत्र 'उपिशः' वन्त्रगत्रादिकः
मुख्यस्तस्य प्रहणार्थं गन्तव्यम्; पात्रकाणि वा छेपनीयानि सन्ति, तत्र च हेपः प्रसुरः
नुप्रापश्चः भावो वा श्रेक्षस्य सङ्ग्राहिन्मने समुद्रान्नः; एतेः कार्रणः 'तदिन' सङ्ग्राहिगमने
16 यत्रनया कर्तव्यमिति सङ्ग्रहगाथासमासार्थः ॥ ३२०२ ॥ साम्प्रतमेनामेव विद्वणाति—

पविहुकामा व विहं महंतं, विणिग्गया वा वि ततोऽघवोमे । अप्यायणहाय सरीरगाणं, अत्ता वयंती खलु संखडीओ ॥ २२०३ ॥

'तिहन्' अध्यानं 'महान्तं' तिमकृष्टं प्रवेष्टकामाः, 'ततो वा' अष्टनो निर्गता जनपरं प्राप्ताः, अथवा 'अवने दुर्मिक्षे चिग्मटन्तोऽपि न पर्याप्तं रुमन्ते, अतन्ते द्यरीराण्येत दुर्वे अ- ११ हान्द्रायाव्रत्या कुत्सितत्वात् द्यरीरकाणि तेपामाप्यायनार्थन्; 'आर्चाः' प्रयम-द्वितीयपरीषहपी- दिताः, अथवा 'आप्ताः' राग-देपगहिताः, यद्वा ''मीमो मीमसेनः'' इति न्यायान् आचः पृहीतः सुत्रार्थी येसे आजाः—गीतार्थाः सङ्घर्डार्वजनित ॥ २२०२ ॥

वस्यं च पत्तं च तर्हि सुलंमं, णाणादिसि पिंडियवाणिएस् । पवित्तसं तस्य इन्टादिकजे, लेवं च घेच्छामों अतो वयंति ॥ ३२०४ ॥

थ 'तत्र' क्षेत्रे नानापकाराम्यो दक्षिणापथादिक्याम्यो दिग्म्यो वज्रादिविक्रयार्थं समागत्य प्रिण्डिनाः-निलिना ये वणित्रकेषु वर्लं वा पात्रं वा सुरुमन् । अथवा तत्र क्षेत्रे पासाः 'कुरुदि-कार्याणि' कुरु-गण-सङ्घपयोजनानि प्रवर्षयित्र्यामः, लेपं वा तत्र प्राप्ताः सन्तो प्रदीत्र्यामः । अत प्रवंतिवं पुटारुम्बनमवरुम्ब्य सङ्घर्डी त्रजन्ति ॥ २२०८ ॥

्र अंध ''शंक्स सङ्क्षितमने मात्रः समुत्यन्त '' (गा० २२०२) इति पदं तिवृणोति —≻ सहं विदिचा अतितिव्यमात्रं, गीया गुरुं विष्णात्रयंति तत्य ।

जे तस्य दांसा अमर्विमु पुन्ति, दीवेत्त ते तस्य हिता वर्यति ॥ ३२०५ ॥
श्रीक्षम् अभिनवण्यजितम् 'अनिर्तायमावं' सङ्घाहिमामे गमनेऽतीवतीयामिय्यपं विदित्वा
गीतार्था गुर्त विद्ययन्ति, तत आचार्यान्तं ग्रेंझं मान्ति—एते वृषमान्ते सहायाः समर्पिताः,
एतः समं भवना सङ्घाद्यां गन्तव्यमिनि । ततने वृषमाः 'तत्र' सङ्घाद्यां गच्छतां पिय वर्षमाअज्ञानां तत्र प्रमानां च दोगाः प्रवेतमवन् अमिहिता इति मावः तान् 'तस्य' श्रेष्ठस्य 'हिताः'
मात्ववर्त्वक्ष्यः सन्ते वीपयन्ति । दीपयित्वा च तत्रतं गृहीत्वा व्रजनित ॥ ३२०५ ॥

१ °ति निर्धुन्तिगा° इं॰ ॥

२ ४ १ एर्डाइइसच्यदसस्त्र मी॰ दे॰ झां॰ एव बनेते ॥

्य तैत्र च प्राप्ताः किं कुर्वन्ति ? इत्याह—⊳

पुन्तोदितं दोसगणं च तं तू, नर्जेति सेजाइज्जतं जैताए। संपुण्णमेवं तु भवे गणित्तं, जं कंखियाणं पविणेति कंखं॥ ३२०६॥

'पूर्वोदितं' प्राग्मणितं शय्या—वसितः तैदादिमिर्युतं—सम्बद्धं दोषगणं 'यतनया' प्रागुक्तरुक्ष-णया वर्जयन्ति। आह िकमेवं शैक्षस्यानुवर्तनां कृत्वा सङ्क्षिडगमनमाचार्या अनुजानन्ति दृ हत्याह— 5 'सम्पूर्णम्' असण्डमेवंविदधानस्याचार्यस्य 'गणित्वम्' आचार्यकं भवति, यत् 'काङ्क्षितानां' सङ्क्षिडगमनाद्यमिलापवतां शिष्याणां काङ्क्षां प्रकर्षण—तदीष्मितसम्पादनलक्षणेन विनयति—स्फेट-यति । उक्तञ्च दशाश्चतस्यन्ये गणिसम्पद्धर्णनाप्रक्रमे—

कंखियस्स कंखं पविणिता भवइ ति (चतुर्थी दशा)।

॥ ३२०६॥

॥ संखडिपकृतं समातम्॥

10

15

20

विचारभूमी विहारभूमी प्रकृतम्

सूत्रम्--

ſ

नो कप्पइ निगंथस्स एगाणियस्स राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्ख-मित्तए वा पविसित्तए वा । कप्पइ से अप्पिबइ-यस्स वा अप्पतइयस्स वा राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खिमत्तए वा पविसित्तए वा ४८॥

अथास्य सूत्रस्य कः सम्बन्धः ? इत्याह---

आहारा नीहारो, अवस्समेसो तु सुत्तसंबंधो । तं पुण ण प्पडिसिद्धं, वारे एगस्स निक्लमणं ॥ ३२०७॥

पूर्वसूत्रे सङ्घाडिप्ररूपणाद्वारेणाहार उक्तः, तस्माचाहारादवश्यम्भावी नीहार इत्यतस्तद्विपयो विधिरनेन सूत्रेणोपवर्ण्यते । कथम् १ इत्याह—'तत् पुनः' नीहारकरणमाहारानन्तरमवश्यम्भा-वित्वान्न प्रतिषिद्धम्, किन्तु तद्श्य यद् 'एकस्य' एकाकिनो निष्क्रमणं तदत्र सूत्रे वारयतीति । एप सूत्रसम्बन्धः ॥ ३२०७॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—नो कल्पते 'निर्मन्थस्य' साधोरेकािकनो रात्री वा विकाले वा वहिर्विचारमूिमं वा विहारमूिमं वा उद्दिश्य प्रतिश्रयाद् निष्कमितु वा प्रवेष्टुं वा ।

१ प्रतन्मण्यगतमवतरणं का॰ एव वर्तते ॥ २ जुयाप ता॰ ॥ ३ ता॰ त॰ डे॰ मो॰ हे॰ विनाऽन्यत्र—तया युतं भा॰ । तदाविभिः-तत्प्रभृतिभिर्दारैः युतं कां॰ ॥

23

करपंत "सं" तस्य निर्यन्थस्यात्मद्वितीयस्य वा आत्मतृतीयस्य वा रात्रौ वा विकाले वा वहि-विचारम्पि वा विहारम्भि वा निष्कमितुं वा प्रवेष्टुं वा इति स्वसमासार्थः ॥

अथ निर्शृक्तिविन्तरः—

रत्ति वियारभूमी, णिग्गंथेगाणियस्य परिकृहा । उहुगो य होति मासो, तत्य वि आणारणो दोसा ॥ ३२०८ ॥

तहुगी य होति सासी, तत्य वि आणाइणी दांसा ॥ ३२०८ ॥
 रात्री उपल्यगत्वाद् विकाले वा विचारम्मां निर्वत्यसंकाकिनो गन्त्रव्ये प्रतिकृष्य । सा च द्विविधा—कायिकीम्मिः उचारम्मिश्च । कायिकीम्मिं यदि रात्रावेकाकी गच्छित तत्रो छहुमासः प्रायश्चित्तम्, नत्राप्याज्ञादयो दोषाः ॥ ३२०८ ॥ तया—

तेणा-ऽअक्तिय-सात्रय-पहिणीए थी-णपुंप-तेरिच्छे । ओहाणपेहि वेहाणसे य वाले य मुच्छा य ॥ ३२०९ ॥

मैजेनस्यिः संयते वा हियेत । आरिक्षका एकाकिनं दृष्ट्या चीर इति बुद्धा महणा-ऽऽकर्ष-णादिकं कुर्सः । श्वान्ता वा-सिंह-ज्याबादयो मक्ष्येयुः । मत्यनीको वा तमेकाकिनं मत्वा मान्जा-पनादिकं कुर्यात् । श्री वा नपुंसको वा तमेकाकिनसुदारशरीरं दृष्ट्या बलादि गृहीयात् । तियेश्वो वा दृष्टगवादयत्तमिवात्येयुः, तिर्यन्योनिकां वा स एकाकी मितिसेवत । यो वा १६ अववावनमेशी स एकाकी निर्गतः सन् तत एव परायेत । श्विया वा पण्डकेन वा मितस्विलितः सन् 'मम्बतोऽहं जातः' इति बुद्धा 'वैद्ययसम्' उद्दन्यनं कुर्यात् । 'ज्यालेन वा' सर्पण वा रुम्येत । स्कर्ण वा तत्र गतस्य मवत्, तद्वदोन स्मी प्रगतितस्य परिताप-महादुः स्वममृतयो दौषाः ॥ ३२०९ ॥ अस्या एव गाथाया केश्रतो ज्यास्यानमाह—

> थी पंड तिरिगीस व, खिलतो बेहाणसं व ओघावे । सेमोववी-सरीरे, गहणादी मारणं जोए ॥ ३२१० ॥

चियां पण्डक तिर्यग्योनिकायां वा 'स्तिछितः' मेथुनप्रतिसेवनया अपरावमापनः सन् 'मम-भन्नम कि में नीवितेन ?' इनि बुद्धा वेद्ययसमन्युमाच्छेत् । यो वा अववावनपेशी स तत प्रवावनावेन् । 'दोनाणि' सप्त द्वाराणि तेषु ययाक्रममेते दोनाः । तद्यया—स्तिनेषुनिक्सरीरह-रणम्, आरक्षिकेषु प्रद्णा-ऽऽकर्गणदि, होयेषु तु श्वापदादिषु 'मारणम्' उपवातः संयतस्य ४५ मवतीति 'योजयेन' योजनं क्ष्यीत् ॥ ३२१०॥ यत एवपतः—

दृष्यमिई उ अगम्मा, ण य सहसा साहसं समायरित । वारेति च णं विनिजो, पंच य सक्खी उ घम्मस्स ॥ ३२११ ॥

हिमसृत्यः सावना गत्री कायिकाम्मी गच्छन्तः स्तेना-ऽऽरिक्षकादीनामगम्या मवन्ति । न च हिनीय सावी तरसे सित सहसा 'साहसं' मैयुनयितमवन-वैद्यायसादि समाचरित । समा- श्रविद्यानमित च ''णं'' एनं हितीयः साबुर्वारयित । यतः 'घर्मस' पश्चमहात्रक्रपस पश्च साक्षिणो मवन्ति, तद्यया—व्यक्तिः। साववः सम्यन्द्रध्यो देवा वाला चेति । वतः सावी तृतीयसाहिणि पार्ववर्ति न सहसा साहसं समाचरित ॥ २२११ ॥ एवं तावन् कायिकीमृत्मिम्ब्राह्मोकम् । अयोबारमृत्मिषिकृत्याह—-

एए चेव य दोसा, सविसेसुचारमायरंतस्स । सवितिज्ञगणिक्खमणे, परिहरियाः ते भवे दोसा ॥ ३२१२ ॥

'एत एव' स्तेना-ऽऽरक्षिकादयो दोषाः सप्रायश्चित्ताः, 'सिविशेषाः' समिषका रजन्यामेकािक-नमुचारमाचरतो मन्तन्याः । यदा तु विचारम्मो गच्छन् सिद्धतीयः प्रतिश्रयाद् निष्क्रमणं करोति तदा 'ते' स्तेनादयो दोषाः परिहृता भवेयुः ॥ ३२१२ ॥ कथम् १ इत्याह—

जित दोण्णि तो णिवेदिनु णेंति तेणभएँ ठाति दारेको । सावयभयम्मि एको, णिसिरति तं रक्खती वितिओ ॥ ३२१३ ॥

यदि हो संयतो कायिकीभूमो निर्गच्छतः तदा यस्तत्र जागतिं तस्य निवेद्य द्वाविप निर्ग-च्छतः । स्तेनभये तु तयोर्द्वयोर्मध्यादेको द्वारे तिष्ठति द्वितीयः कायिकीं च्युत्स्जति । अथ श्वापदभयं तत एकस्तत्र कायिकीं निस्जति, द्वितीयो दण्डकहस्तः 'तं' कायिकीं च्युत्स्जन्तमा-10 त्मानं च रक्षति ॥ ३२१३ ॥ अथैकािकनो यतना प्रतिपाद्यते—

सभयाऽसति मत्तस्स उ, एको उवओग डंडओ हत्थे। वित-कुडुंतेण कडी, कुणति य दारे वि उवयोगं॥ ३२१४॥

यदि सभयं द्वितीयस्य च संयतस्य तत्राभावस्ततो मात्रके व्युत्सर्जनीयम् । अथ मात्रकं न विद्यते तत उपयोगं कृत्वा दण्डकं हस्ते गृहीत्वा वृतेर्वा कुट्यस्य वा अन्तेन—पार्श्वेन कटीं कृत्वा 15 कायिकीं व्युत्स्वजित । द्वारेऽपि च स्तेनादिप्रवेशविषयमुपयोगं करोति ॥ ३२१४ ॥

ईदमेव सिवशेषमाह
 →
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ
 अ

वितियपदे उ गिलाणस्स कारणा अहव होज एगागी। पुन्व द्विय निहोसे, जतणाएँ णिवेदिउचारे॥ २२१५॥

द्वितीयपदेन तु ग्लानस्य कारणादेकोऽपि निर्गच्छेत्, अथवा स साधुरिश्चवादिभिः कारणै-20 रेकाकी भवेत्, यद्वा तत्र पूर्व निर्दोषं—निर्भयमिति मत्वा स्थिताः पश्चात् सभयं सञ्चातं तत्रापि यतनया निवेद्य तथैवोच्चारभूमौ प्रश्रवणभूमौ वा गच्छन्ति ॥ ३२१५॥

अथ ''क्लानस्य कारणात्'' इति पदं व्याख्यानयति-

एगो गिलाणपासे, वितिओ आपुच्छिकण तं नीति । चिरगतें गिलाणमितरो, जग्गंतं पुच्छिउं णीति ॥ ३२१६ ॥

इह ते त्रयो जनाः, तेषा च मध्ये एको ग्लानो निचते, एकश्च तस्य ग्लानस्य पार्श्वे तिष्ठति, द्वितीयस्तमाप्टच्छच कायिक्यादिभूमौ निर्गच्छति । स च यदि चिरगतो भवति ततः 'इतरः' ग्लानपार्श्वस्थितो ग्लानं जायतमाप्टच्छच निर्गच्छति ॥ ३२१६ ॥

५ ऐवं स्तेनादीनां सम्भवे विधिरुक्तः । अथ तदसम्भवे विधिमाह—⊳

जहितं पुण ते दोसा, तेणादीया ण होज पुन्तुत्ता । एको वि णिवेदेतुं, णितो वि तर्हि ण्ऽतिकमति ॥ ३२१७ ॥

यत्र पुनः 'ते' पूर्वोक्ताः खेनादयो दोषा न भवन्ति तत्रैकोऽपि शेषसाघूनां जायतां निवेद्य

१-२ ⁴ > एतन्मध्यगतमवतरणं का॰ एव वर्त्तते ॥

निर्गच्छन् नै भगवदाज्ञामितिकामिति ॥ २२१७ ॥
एवं विचारमुमिविषयो विविरुक्तः । अय विद्यारमुमिविषयमाह—
विद्या वियारभृमी, दोसा ते चेव अविय छक्काया ।
पुट्यदिहे कथ्यह, वितियं आगाह संविग्गो ॥ २२१८ ॥

ष्ठ प्रतिष्ठयाद् वृद्धः 'विद्वारम्मी' लाज्यायम्मी रात्रावेकािकनो गच्छतः 'त एव' स्तेना-ऽऽतिक्षकाद्यो तोषा सवन्ति, 'अविकाश्च' अतिरिक्ताः पद्कायविरावनानिष्पत्राः । 'द्वितीयम्' अपवाद्पद्मत्रोच्यते—करुपते रात्रावित लाज्यायम्मी 'पृवेद्दश्यां' दिवापख्पेक्षितायां गन्तुम् । ल गायायां पुंस्त्वनिदंशः प्राञ्चतत्वात्, एवमन्यत्राति छिक्तव्यत्ययो दृष्टव्य इति । ⊳ तत्राप्यागादे कारण यः 'मंत्रिद्यः' < मोश्लामिकार्या अत एव वश्यमाणजितिन्द्रियादिगुणोपेतः सावः ⊳ स 16 गच्छिति ॥ २२१८ ॥ अथागादपदं व्याचेष्टे—

ते तिष्णि दोष्णी अह विक्रमो उ, नवं च सुत्तं सपगासमस्स ।
सद्यातियं परिय रहं च सुत्तं, ण यात्रि पेहाकुसलो स साहू ॥ ३२१९ ॥
'ते' साववा रात्रे। विहारम्से गच्छन्त उत्सर्गतस्रयो जना गच्छन्ति । त्रयाणाममाव हो।
गच्छतः । अथ ग्लानादिकार्यच्यापृतनया हितीयोऽपि न प्राप्यते एवमेकाक्यपि गच्छेत् ।
16 किर्मर्थम् ! इत्याह—'अस्य' विविक्षतस्रयोः 'नवम्' अन्ननाऽत्रीतं [सृत्रं] 'सप्रकाशं' स्त्रम्यश्चिकनिर्मुक्तिरूपेणार्थेन सहितं परावर्षनीयं वर्षते, साध्यायिकं च वसतो तदानीं नास्ति ।
अर्थता 'महस्त्रस्त्रं' निर्शायादिकं तद् यथा हितीयो न श्रणोति तथा परावर्षयितव्यम् , न चासो
सावरन्येकाकुत्रज्ञः । एनेनागादकारणेन राजावित विहारम्मो गन्तं कस्यते ॥ ३२१९ ॥

तत्र कीहरो गृहे कीहरोन वा साष्ट्रना गन्तव्यम् ? इति दर्शयति—

20 आसन्नगेहे दियदिष्टमोम्म, येतृण कार्ल तहि जाइ दोसं ।
विस्तिदेशो दोसिवविज्ञतो य, णिद्दा-विकारा-ऽऽन्नमविज्ञतप्या ॥ ३२२० ॥
कार्ल गृहीत्वा "दोसं" नि प्रादोषिकं साध्यायं कर्तुनासन्नगेहे 'दिवाहष्टमीमे' दिवाप्रसुपेक्षितोचार-प्रश्रवणमृभिके 'याति' गच्छति । स च 'वस्येन्द्रियः' इष्टा-ऽनिष्टविषयेषु वर्तमानानामिन्द्रियाणां निष्रद्यीता, दोषाः—कोवादयस्त्रीर्वविविद्यः, तथा निद्रया विकारेण च—हासा१३ दिना आल्सेन च वर्नित आत्मा यस स तथा एवंवियस्त्रत्र गन्तुमईति नानीद्द्यः ॥३२२०॥
८४ अत्रव विधि दर्शयति—>

तन्मावियं तं तु इछं अद्रे, किचाण झायं णिसिमेव एति । वाघातनो वा अहवा वि द्रे, सोऊण तत्येव उवेह पादो ॥ ३२२१ ॥ यन्मिन् श्रावकादिक्रके स गच्छति तत् तसां वेखायां प्रविश्वद्धिः साबुमिमीवितं तद्सावि-

१ न 'श्रतिक्रामित' मगवदाष्टामितिचरित ॥३२१७॥ मा० ॥ १ ता० त० हे० मो० हे० विनाऽ-चत्र— पय रच्यते—चिहि भाग । 'पयं तमेचाह कां० ॥ ३-४ ४ १० एतदन्तर्गतः पाठः मो० हे० कां० एव वर्तते ॥ ५ किं पुनरज्ञागाढकारणम् १ ह्ला॰कां० ॥ ६ °वा श्रस्ति स्वाघ्यायिकं वसती परं 'रहः श्रुतं' रहस्य° कां० ॥ ७ ४ १० एनदन्तर्गतमिद्मवतर्णं कां० एव वर्सते ॥

तम्, तदिप 'अदूरे' न दूरदेशवर्त्तं, एवंविधे गृहे प्रादोपिकं साध्यायं 'कृत्वा' परिवर्त्त्यं निशा-यामेव प्रतिश्रयमागच्छति । अथ रजन्यामागच्छतोऽपान्तराले दुष्टश्वान-गवादिभिः स्तेनादिभिर्वा व्याघातः अथवा 'दूरे' दूरदेशवर्तिनी सा विहारभूमिः ततस्तत्रैव गृहे सुत्वा 'प्रातः' प्रभाते प्रतिश्रयसुपैति ॥ ३२२१ ॥

सूत्रम्--

5

नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्ख-मित्तए वा पविसित्तए वा। कप्पइ से अप्पबिइयाए वा अप्पतइयाए वा अप्पचउत्थीए वा राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ४९॥

10

अस्य न्याख्या प्राग्वत् ॥ अथ भाष्यम्—

सो चेव य संवंधो, नविर पमाणिम्म होइ णाणत्तं। जे य जतीणं दोसा, सविसेसतरा उ अज्ञाणं।। ३२२२।।

'स एव' निर्मन्थसूत्रोक्तः सम्बन्ध इहापि सूत्रे ज्ञातन्यः । 'नवरं' केवलं प्रमाणे निर्मन्थेभ्यो 15 निर्मन्थीनां नानात्वम् , निर्मन्थानां द्वयोख्याणां वा निर्गन्तुं कल्पते, निर्मन्थीनां तु द्वयोख्ति- स्रणां चतस्रणां वा इत्ययं सह्याकृतो विशेष इति भावः । 'ये च' स्तेना-ऽऽरक्षिकादयो यती- नामेकािकनिर्गमने दोषाः पूर्वसूत्रे उक्ताः आर्याणामपि त एव सविशेषतरा मन्तन्याः, तरुणा- द्युपद्रवसिहता इति भावः ॥ ३२२२ ॥

वहिया वियारभूमी, णिग्गंथेगाणियाएँ पिडसिद्धा । चउगुरुगाऽऽयरियादी, दोसा ते चेव आणादी ॥ ३२२३ ॥

20

रात्री विहिर्विचारम् मो गमनमेकािकन्या निर्मन्थ्याः मितिपिद्धम् । अत एवैतत् सूत्रमाचार्यः प्रवित्तिन्या न कथयित चतुर्गुरवः । प्रवित्तिनी मिक्षुणीनां न कथयित चतुर्गुरवः । मिक्षुण्यो न मित्रिश्व्विन्ति मासल्धुं [सर्वम्रन्थामम्—२२४२०] । प्रवित्तिनीवचनमितिकम्य भिक्षुण्यो वला-मोटिकया एकािकन्यो गच्छिन्ति चतुर्गुरवः । दोपाश्च त एवाज्ञादयो द्रष्टन्याः ॥ ३२२३ ॥ 25

मीरू पिकचिवेंऽवला चला य, आसंकितेगा समणी उ रातो । मा पुष्फभूयस्स भने विणासो, सीलस्स थोवाण ण देंति गंतुं ॥ ३२२४॥ इह स्त्री 'प्रकृत्यैव' समावेनैव 'मीरुः' अल्पसत्त्वा, पुरुषं च प्राप्य सा 'अवला' अकिश्चि-

१ एतदमे भा॰ प्रति विहाय सर्वाष्ठ प्रतिषु ग्रन्थाग्रम्—६५०० इति वर्तते ॥

२ °वऽवलाऽवला य भा॰ त॰ डे॰ भो॰ छे॰॥

३ °रवा, अथवा 'चला' चपला पुरुपं च प्राप्य सा 'अवला' अकिञ्चित्करी, एकािकनी

20

25

करी, यत एवं तसा अवंदित नाम, अवद्याच समावादेव चळ्ळा, अत एव एकाकिनी अमगी गत्री विचानम्मी राज्यन्ती आरुद्धिता सात्—अवस्थमेश व्यमिच रिणीति । अतो मा 'गुप्पमृतक' विर्त्तपुष्पपुकुमान्य कीलस्य विनाको मवेदिति कृत्या मोकानःमायीयां रात्री विचारमुमी गर्न्तुं मगदन्तः 'त दर्दान' नानुद्यानसीत्यर्थः ॥ ३२२० ॥

डयाश्रयेऽति तामिरीहरे। बन्तव्यमिति दर्शयति—

गुने गुत्तदृवारे, इन्युने इन्यिमच्हें निर्दोमे । मीनपरिन महविदं, अजा निजायरे मणिए ॥ ३२२५ ॥

'गुनो नाम' इत्यदियोगिहरः, 'गुन्हारः' महयाटः, ईटरो उपाध्ये स्वान्त्रम् । अय्या-तस्य तामां क्षुत्रप्रको गरेषणीयः । तसेव अय्यातस्य या मिर्गित्रप्रमुख्यः व्यिष्टामां सम्बन्धि 10यद् गृहं तन्मव्यवनी संयतीनामुपाध्यो सवित । सोडिंग 'निर्वेषः' पुरुषमागारिकादिदोषर-हितः । क्षुत्रप्रकृष्ट सीन्दर्भद् मार्चविक्रकान्वेषणीयः । सीन्दर्भद् नाम-यद्भयान् तदीयः परि-वारो न कमव्यनाचारं कर्नुमुसद्दे । मार्चविक्रा नाम-महुग्वचनः । ईट्छ आर्यायाः अय्या-तरो सिजिः ॥ ३२२५ ॥ गणो च प्रतिध्ये तामिरियं यत्ना कर्नव्या-

> पत्यागे अंनो बहि, अंनो बंघाहि चिलिमिली उवरि । नं तह बंबति दारे, जह णं अग्गा ण याणाई ॥ ३२२६ ॥

'प्रकारः' कटः म एकः प्रतिश्रयाम्यन्तेर द्वित्यम्तु प्रतिश्रयन्त् इहिः कर्तव्यः । 'अन्तश्च' अम्यन्तरे कटकोपरि चिक्रिनिकिकां 'वयन' नियहर । तत्र च प्रतिहारी तथा वज्ञाति द्वारं यथा "पं" इति 'ठान्' वन्यन् नान्या संयत्ता मोक्तं जानाति ॥ ३२२६ ॥

मंयारगंतरिया, अभिक्लणाऽऽउलणा य तरुणीणं।

पहिहारि दारमृत, मञ्जे अ पत्रतिणी होनि ॥ ३२२७ ॥

'मंत्रारङः' प्रसर्णमेक्नार्कातां तर्का-इद्वानां मदि । अमीक्ष्यं च तर्कानां यननया प्रवर्दिन्या प्रतिहारिक्त्या च 'टपयोदना' सङ्कता कर्तव्या । प्रतिहार्ग च हारमुके स्विति । 'मव्ये' सर्वेगव्यवर्तित प्रवेदों प्रवर्तिना मन्ति ॥ २२२७॥

निक्तमण पिंडियाणं, अन्गहारं य होह पडिहारी । दारं पत्रचिर्णा सारणा य फिडिताण जयणाए ॥ ३२२८ ॥

रात्री विचारमुमी निष्क्रमधं 'निष्टिनानों' मर्हाइनानीं त्रि-चतुःप्रमृनीनामित्यर्थः । प्रति-द्यां हान्द्रहाव्य प्रयमन एक प्रहार निष्ठति । प्रवर्तिनी पुनर्हीर खिता नंपनी या यहा प्रवि-श्रति तो शिरमि क्योक्योर्थशिन च स्पृष्टा प्रवेशयिन । याद्य तत्र स्फिटिताः—हार्गविपनटा

च रात्री विचार' सः । सा॰ प्रहेम्तेरं दीस "संह प्रक्रित चलाऽयला य" इते पण्डमारिती परेटे । "सीन् एत्स्—पुर्ण प्रत्य या स्वत्या, स्व प्रव दान्यः प्रणेवनाम स्वत्येति । प्रदेश व की वरण्यामात्र । प्रातिनी विमोधी कार्यस्त्र स्वति—श्वत्रव्येषा क्रिक्तिनीति ॥" इति चूर्णी विद्येषचूर्णी व ॥

१ °तां अतुः-पञ्चत्रसृ° २० १

15

इतस्ततः परिश्रमन्ति तासां यतनया यथा अप्रीतिकं न भवति तथा स्मारणा कर्त्तव्या, यथा-आर्थे ! इहागच्छ, इतो न भवति द्वारम् ॥ ३२२८ ॥ अथ द्वितीयपदमाह—

विइयपद गिलाणाए, तु कारणा अहव होज एगागी। आगार्टें कारणमिंग, गिहिणीसाए वसंतीणं ॥ ३२२९ ॥

द्वितीयपदे ग्लानायाः संयत्याः कारणादेकािकन्यपि विचारम्मौ गच्छेत् । कथम् ? इति व चेद् उच्यते—इह प्रवर्तिनी यदा आत्मतृतीया मवति, तत्राप्येका ग्छाना तत एका ग्छानायाः पार्थे तिष्ठति, द्वितीया तु निवेद्य निर्गच्छति । अथवा सा अशिवादिभिः कारणैरेकािकनी भवेत् । तत्र च 'आगाढे' आत्यन्तिके कारणे गृहिनिश्रया वसन्तीनामेकािकनीनां संयतीनां विधिरभिधीयते ॥ ३२२९॥

> एगा उ कारण ठिया, अविकारकुलेसु इत्थिवहुलेसु । तुन्भ वसीहं णीसा, अजा सेजातरं भणति ॥ ३२३० ॥

एका आर्थिका 'कारणेन' पुष्टालम्बनेन 'अविकारकुलेपु' हास्यादिविकारविरहितेषु स्त्रीबहु-लेषु कुलेषु स्थिता सती शय्यातरिमत्थं भणति — अहं युष्मित्रिश्रया वसामि, यच मम किञ्चित् क्षूणमायाति तत्राहं भवद्भिः सारणीया ॥ ३२३० ॥ इदमेव स्फुटतरमाह-

अपुन्वपुंसे अवि पेहमाणी, वारेसि धृतादि जहेव मजं।

तहाऽवराहेसु ममं पि पेक्खे, जीवो पमादी किम्रु जोऽवलाणं।। ३२३१।।

भोः श्रावक! यथा त्वम् 'अपूर्वपुंसः' अदृष्टपूर्वपुरुषान् पश्यन्तीमपि, आस्तां तैः सह सम्भाषणादि कुर्वाणामित्यपिशन्दार्थः, दुहितरम् आदिशन्दाद् भगिनीप्रभृतिकां भार्यो वा यथा वारयसि; तथा 'अपराधेषु' स्लिलेतेष्वनुचितसन्दर्शनादिषु 'मामपि प्रेक्षस' अहमपि तथैव वारणीया, यतो जीवः सर्वोऽपि पायः 'प्रमादी' अनादिभवाभ्यस्तप्रमादवहुलः, किं पुनर्यः 20 'अवलानां' स्त्रीणां सम्बन्धी ! स चपलसभावतया सुत्तरा प्रमादीति भावः ॥३२३१॥ किञ्च---

पायं सकजग्गहणालसेयं, बुद्धी परत्थेसु उ जागरूका।

तमाउरी पस्सति णेह कत्ता, दोसं उदासीणजणो जैंगं तु ॥ ३२३२ ॥

येयं प्रतिप्राणि स्वसंवेदनप्रत्यक्षा वृद्धिः सा प्रायः सं-स्वकीयं यत् कार्य-हिता-ऽहितप्रवृत्ति-निवृत्तिरूपं तद्रहणे-तत्परिच्छेदेऽलसा-जडा, 'परार्थेपु तु' परप्रयोजनेपु 'जागरूका' जागरण-25 शीला, अत एव 'तं' दोषम् 'इह' जीवलोके 'कत्ती' आत्मीयकार्यसाधको जनः 'आतुरः' उत्सुकः सन् न पश्यति, यकं दोपम् 'उदासीनजनः' मध्यस्थलोकः तटस्थः पश्यति । अतोऽहं भवतां पार्श्वादात्मानमहितेषु प्रवर्त्तमान निवारयामीति प्रक्रमः ॥ ३२३२ ॥

तेणिच्छिए तस्स जिं अगम्मा, वसंति णारीतों तिहं वसेजा।

ता वेति रचिं सह तुव्म णीहं, अणिच्छमाणीसु विमेमि वेति ॥ ३२३३ ॥ 30 एवमुक्ते सित यद्यसौ श्रावक इच्छिति—तदुक्तं प्रतिपद्यते तदा 'तस्य' शय्यातरस्य यत्र 'अगम्याः' माता-भगिनीप्रभृतयो नार्यो वसन्ति तत्र सा एकाकिनी सयती वसेत् । ताश्च स्त्रियो

१ °या, नोपेक्षणीया मा॰ ॥

शृते—गत्री युमामिः सहाहं कायिक्यावर्यं निर्गमिष्णमि, अनो यदा मवत्य उत्तिष्ठन्ते तदा मामष्युन्यापयन । यदि ता इच्छन्ति ४ तेना छष्टम्, अय नैच्छन्ति ৮ तर्नः 'अहं रात्रा-वेकाकिनी निर्गच्छन्ती विमेमि' हस्येवं ब्रवीनि ॥ ३२३३ ॥

एवमण्डुका यदि ता हिनीया नागच्छिन तदा किं कर्पच्यम् १ इत्याह—

मचामद्दं अपवत्तेण वा, सागारिए वा निसि णिक्खमंती।

तासि णिवेदेतु ससह-दंडा, अर्तानि वा णीनि व साधुधम्मा ॥ १२१४ ॥ गत्री मात्रक कायिकी व्युत्सर्जनीया, ८ तैन उट्टेन सूर्वे सा मात्रककायिकी विहर्स्छर्द- नीया। ८ अथ मात्रके नास्ति, यहा तसा मात्रके कायिक्याः प्रवर्तनम्-आगमनं न मवति, सागारिकवहुळं वा तद् गृहस्, एतेः कारणेः 'निधि' गत्रावेकाकिनी निष्कामन्ती 'तामां' १० अय्यान्तीणां निवेद्य सञ्ज्या-कासिनादिश्च्दं द्वर्यती दण्डकं हस्ते कृत्वा 'साधुद्यमां' श्रोमन-समादार्थ 'अर्थेनि वा' प्रविश्वनि वा' निर्मेन्छनि वा ॥ १२१२॥

एवं तावद् विचारमृतिविषया विविषकः । अथ विहारमृतिविषयमाह—

एगाहि अणेगाहि च, दिया च गता च गंतु पडिसिद्धं। चडगुरु आयरियादी, दोसा ने चेच जे भणिया॥ ३२३५॥

15 एकाकिनीनाम् 'अनेकाकिनीनां वा' वहीनामित्, गायायां पष्टायें तृतीया, दिवा वा गत्री वा विद्यानम्भी नंयतीनां गन्तुं 'प्रतिपिद्धं' न कर्यते । अत एव येथेनमर्थमाचार्याः प्रवर्तन्या न क्रययन्ति तदा चतुर्गुरवः । प्रवर्तिनी निश्चर्णानां न क्रथयनि चतुर्गुरवः । निश्चर्यो न प्रतिश्वर्यन्ति छञ्जमासः । दोषाश्च न एव द्रष्ट्य्या ये पूर्वे विचारम्भी भणिनाः ॥ ३२३५ ॥ द्विनीयपेंदे गन्तव्यमणीति दर्शयनि—

गुत्ते गुत्तदुवारे, दुजणवजे णिवेसणस्तंता । संवैधि णिए मण्णी, त्रितियं जागाद संविग्ने ॥ ३२३६ ॥

गुप्त गुप्तहारे 'दुर्जनवर्तत्र' हुःश्राळतनरहित गृहे साव्यायकरणार्थं गन्तव्यम्, तच गृहं यदि 'निवेशनस्य' पाटकस्य 'अन्तः' अभ्यन्तरवर्ति मदित । अय निवेशनान्तर्न प्राप्यते तत्रोऽन्य-सिक्षित्र पाटके यः सयतीनां रितृ-आत्रादिरश्रह्मीयः सन्दन्त्री, यो वा श्रव्यातरस्य 'निदः' श्र सहरादिः, यो वा 'मंद्री' अत्रको माना-रितृसमाननस्य गृहे गन्तव्यम् । एतच द्वितीयपदमा-गांद संविद्याण आर्थिकाया मन्तव्यम् । क्रियुक्तं भवित्त !—व्याप्त्रप्राप्तत्रिश्वसम्बन्धि-ममागादयोगं कान्त्रिशर्यक्र प्रतिपत्ता, मा च यदि 'मंविद्या' हास्यादिविकार्यार्वता, तत-स्तरा आत्मवृत्तीयाया आत्मचत्रुशीया आत्मपञ्चमाया वा पृत्रोक्तगुणोपेतं गृहं गत्ता स्वाव्यायः क्रियुं कृत्यने ॥ २२३६ ॥ ४ हेत्रेव गमने विधि दर्शयति—>

१ % १० एउडम्टर्गेवः पाटः सा० छाँ० एवं वर्तते ॥ २ ततोऽनिच्छन्तीषु तासु 'अहं छाँ० ॥ २ % १० एउडम्दर्गेवः पाटः सो० वे० छाँ० एवं वर्तते ॥ १८ सो० वे० छाँ० विदारम्बय—'रा , 'अतियाति त्रा' प्रविद्यति या निर्गे टा० । 'रा अतियाति वा निर्गे ट० वे० । 'रा प्रविद्यति या निर्गे भाँ० ॥ ५ 'पदे तु ईंडरें। गृष्टे गन्ते काँ० ॥ ६ एतङ्स्तर्गतमवत्तर्गं काँ० एवं वर्तते ॥

पिंडवित्तक्तिसरु अजा, सज्झायज्झाणकारणुज्जुत्ता । मोत्तृण अन्भरहितं, अजाण ण कप्पती गंतुं ॥ ३२३७॥

प्रतिपत्तिः—उत्तरप्रदानं तत्र कुञला—निपुणा या काचिदार्या सा तस्याः सहाया समर्पणीया। तथा या सा आगादयोगं प्रतिपन्ना सा साध्यायस्य यद् ध्यानम्—एकाप्रतया करणं तत्रेहरो कारणे उद्युक्ता भवेत्। "मोत्तूण अठमरहियं" ति येषु कुलेषु यथाभद्रकादिषु संयतीनामाग- मनम् 'अभ्यहिंतं' गोरवाहं तानि मुक्तवाऽन्यत्र कुले आर्यिकाणां न करणते गन्तुम्॥ ३२३७॥

एवंविधे कुले गत्वा स्वाध्यायं कुर्वतीनां यद्यसौ गृहपतिः प्रश्चयेत्—किमर्थं मवत्य इहा-गताः १ ततः प्रतिपत्तिकुञ्खया वक्तव्यम्—

सज्झाह्यं नित्य उवस्सएऽम्हं, आगाहजोगं च हमा पवण्णा।

तरेण सोहद्दमिदं च तुन्मं, संभावणिजातों ण अण्णहा ते ॥ ३२३८ ॥ 10 हे श्रावक! योऽयमसाकमुपाश्रयः तत्र साध्यायिकं नास्ति । इयं च संयती आगाढयोगं प्रतिपत्रा वर्तते । ''तरेण'' ति व्ययातरेण सह युष्माकम् 'इदम्' ईद्द्यं सकल्जनप्रतीतं

सौहार्दं तद् मत्वा वयमत्र समागताः । अतो नान्यथा त्वया वयं सम्भावनीयाः ॥ ३२३८ ॥

अपि च--

खुदो जणो णित्थ ण यावि दूरे, पच्छण्णभूमी य इहं पकामा ।
तुन्भेहि लोएँण य चित्तमेतं, सज्झाय-सीलेस जहोजमो णे ॥ ३२३९ ॥
'क्षुद्रो जनः' दुर्जनलोक इह नास्ति, न चेदं युष्मद्वहं 'दूरे' अस्तस्रतिश्रयाद् दूरवर्षि,
प्रच्छन्नमूमिश्च 'इह' युष्मद्वहे 'प्रकामा' विस्तृता, अतोऽत्रासाकं साध्यायो निर्व्याघातं निर्वेहिति । किञ्च युष्माकं लोकस्य च 'चित्तं' प्रतीतमेतत्, यथा—''णे'' अस्ताकं साध्याय-शीलयोगीदतरः 'उद्यमः' प्रयत्तो मवति ॥ ३२३९॥

॥ विचारभूमि-विहारभूमिपकृतं समाप्तम्॥

आर्थ क्षेत्र प्रकृत म्

सूत्रम्--

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुरित्थमेणं जाव अंग-मगहाओ एत्तए, दिक्खणेणं जाव कोसंवीओ, पच्चित्थमेणं जाव थूणाविसयाओ, उत्तरेणं जाव कुणालाविसयाओ एत्तए। एताव ताव कप्पइ। एताव ताव आरिए खेते।णो से कप्पइ एत्तो वाहिं।

१ °पहि य विसमेयं ता । "विण्ण विज्ञातं" इति च्यूणीं ॥

Б

10

तेण परं जस्य नाण-दंसण-चरित्ताइं उस्सप्पंति विने पेश ॥

अधास स्त्रस कः सन्वन्धः १ इत्याह— इति काले पडिसेहो, पर्स्वितो अह इदाणि खेत्तम्मि । चउदिसि समणुण्णायं, मोत्तृण परेण पडिसेहो ॥ ३२४० ॥

'इति' अमुना प्रकारेण रात्रिलक्षणो यः काल्सिद्धिषयः प्रतिषेवः पूर्वसूत्रे प्ररूपितः, 'अथ' अनन्तरमिदानीं क्षेत्रविषयः प्ररूप्यते । कथम् १ इत्याह—चतस्य दिक्ष यावृत् क्षेत्रमत्र सूत्रे समनुज्ञातं तावद् मुक्त्वा 'परेण' वहिःक्षेत्रेषु विहारस्य प्रतिषेधो मन्तव्यः ॥ ३२४०॥ किश्च—

हेड्डा वि य पडिसेहो, दञ्चादी दव्वें आदिसुत्तं तु । शिंडमत्त चिलिमिणीए, वत्थादी चेव चत्तारि ॥ ३२४१ ॥ वगडा रच्छा दगतीरगं च विह चरमगं च खित्तम्मि । सारिय पाहुड भावे, सेमा काले य भावे य ॥ ३२४२ ॥

अंधल्तनसूत्रेप्विष 'द्रव्यादिः' द्रव्य-क्षेत्र-काल-माविषयः प्रतिषेघो मन्तव्यः। तत्र द्रव्य-प्रतिषेघपरम् 'आदिल्त्रं' प्रलम्त्रप्रकृतिमित्यर्थः (स्०१-५) तथा घटीमात्रस्त्रं (स्०१६, 15१७) चिल्लिमिलिकाम्त्रं च (स्०१८)। त्रस्तादिप्रतिषेघकानि च चत्वारि स्त्राणि— एकं तात्रत् "निग्गंथं च णं गाहावद्कुलं० अणुप्पतिष्टं केइ वर्ष्यण वा पाएण वा०" (स्०३८) इत्यादिल्झणम्, द्वितीयमिद्नेव "बहिया वियारमृमिं वा विहारमृमिं वा०" (स्०३९) इति विशेषितम्, तृतीय-चतुर्थं त्वेवमेव निर्श्रन्थाविषये (स्०१०, ११), एतान्यपि द्रव्यप्रतिषेवपराणि । तथा वगडाम्द्रत्रं (स्०१०,११) रथ्यामुखाऽऽपणगृहादिस्त्रं ६०(स्०१२,१३) दक्ततिरस्त्रं (स्०१९) < 'विंहं' अध्या तद्विषयं स्त्रं (स्०१६) ⊳ एतदेव च प्रन्तुतं चरमस्त्रं (स्०५०) एतानि क्षेत्रप्रतिषेघपराणि। तथा यान्योघतो विभागतश्च सागारिकस्त्र्याणि (स्०२२-२१) यच 'प्राभृतम्' अधिकरणं तद्विषयं स्त्रं (स्०११) एतानि मावप्रतिषेघपराणि । 'शेषाणि तु' मासकल्पप्रकृतपंस्तीनि (स्०६-९) सर्वाण्यपि

१ त्ति वेसि इति पाटः नेवर्षं को॰ प्रदावेव वर्तते । नान्याखलन्सर्गापस्थितास्र टीकाप्रतिषु मृष्टस्त्रप्रः तिषु वा दरवते । व्यास्त्रप्तन्थायमंत्रः टीकाकृतेखलगभिर्मूल एवादतः ॥

२ "हेट्टा वि॰ गावा । दन्वतो खेततो बाखतो मावतो । 'वन्याहि' ति वत्यं पहिरगहं इंवर्ल पायपुंछगं । एए वत्तारि सुता-यदमो—"गाहावइङ्करें" (स्० ३८) विह्ञो—"वहिया वियारमूमिं" (स्० ३९) वह्यो—गामामुग्गामं, चटत्यो—वासावानं, एवं टक्वे । सामारियसुत्तं (स्० २२-२४) अहिकरण-सुत्तं (स्० ३४) व मावे । सेसं बण्डस्म् ॥" इति विद्यापसृणिंः ॥ "हेट्टा वि॰ गावा । दन्वतो खेत्तरो खालतो । वन्याहि ति वत्यं पहिरगहं इंवर्ल पादपुंडमं । एतेसि हीणातिरेगपडिसेहो ॥ वगडा॰ गावा । विसमं ति इरमेव सुत्तं (स्० ५०) । अहिगरणसुत्तं च (स्० ३४) मावे । सेसं कंठं ॥" इति सूर्णिः ॥

[्]र °प्याणां प्रतिपेघानामन्यतमः कोऽपि कापि स्त्रे प्रतिपेघो कां॰ ॥

⁻४ ४ ⊳ एतदन्तर्गत• पाठ• मा० जॉ॰ एव वत्तेते ॥

25

सूत्राणि 'काले च भावे च' उभयोरिप प्रतिपेधकानि भवन्ति ॥ ३२४१ ॥ ३२४२ ॥ अहवण सुत्ते सुत्ते, दन्वादीणं चडण्हमीआरो । सो य अधीणो वत्तरि, सोतरि य अतो अणियमोऽयं ॥ ३२४३ ॥

अथवा न पृथग् द्रव्यादिविपयाणि स्त्राणि, किन्तु स्त्रे स्त्रे 'चतुर्णां' द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानामवतारः प्रदर्शयितव्यः । 'स च' अवतारो वक्तरि श्रोतिर च 'अधीनः' आयत्तः, यदि क वक्ता तथाविधप्रतिपादनशक्तिसमन्वितः श्रोता च प्रहण-धारणालिव्धसम्पन्नः तदा भवति स्त्रे स्त्रे चतुर्णा द्रव्यादीनामवतारः, अन्यदा तु नेति भावः । अतो नायं नियमो यदवश्यं प्रतिस्त्रं द्रव्यादिचत्र्ष्ट्यमवतारणीयमिति ॥ ३२४३ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—करुपते निर्धन्थानां वा निर्धन्थीनां वा पूर्वस्यां दिशि यावदङ्ग-मगधान् 'एतु' विहर्तुम् । अङ्गा नाम—चम्पाप्रतिवद्धो जनपदः । मगधा—राजगृह- 10 प्रतिबद्धो देशः । दक्षिणस्यां दिशि यावत् कौशाम्त्रीमेतुम् । प्रतीच्यां दिशि स्थूणाविषयं याव-देतुम् । उत्तरस्यां दिशि कुणालाविषयं यावदेतुम् । सूत्रे पूर्व-दक्षिणादिषदेभ्यस्तृतीयानिदेंशो लिङ्गव्यत्ययश्च प्राकृतत्वात् । एतावत् तावत् क्षेत्रमवधीकृत्य विहर्तुं कल्पते । कृतः ! इत्याह—एतावत् तावद् यसादार्थं क्षेत्रम् । नो 'से' तस्य निर्धन्थस्य निर्धन्थ्या वा कल्पते 'अतः' एवंविधाद् आर्थक्षेत्राद् बहिर्विहर्तुम् । 'ततः परं' वहिर्देशेषु अर्थि सम्प्रतिनृपतिकालादा- 15 रभ्य अत्र ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि 'उत्सर्पन्ति' स्कातिमासादयन्ति तत्र विहर्त्तव्यम् । 'इतिः' परिसमाप्ती । व्रवीमि इति तीर्थकर-गणधरोपदेशेन, न तु स्वमनीपिकयेति सूत्रार्थः ॥

अथ निर्युक्तिविस्तरः—

जो एतं न वि जाणइ, पढमुदेसस्स अंतिमं सुत्तं । अहवण सन्वऽन्झयणं, तत्थ उ नायं इमं होइ ॥ ३२४४ ॥

'यः' आचार्यः 'एतत्' प्रस्तुतं प्रथमोद्देशकस्यान्त्यं सूत्रं न जानाति, अथवा सर्वमपीदं कृष्पाध्ययनं यो न जानाति, 'तत्र' आचार्ये तद्विपयमित्यर्थः 'इटं' वक्ष्यमाणं 'ज्ञातम्' उदाहरणं भवति ॥ ३२४४ ॥ आह किर्मर्थं प्रथमोद्देशकस्यान्त्यं सूत्रं न जानातीत्युक्तम् ² उच्यते—

उजालितो पदीवो, चाउस्सालस्स मज्झयारिम्म । पम्रुहे वा तं सन्त्रं, चाउस्सालं पगासेति ॥ ३२४५ ॥

'चतुःशालस्य' गृहस्य 'मध्यकारे' मध्यभागे 'प्रमुखे वा' प्रवेश-निर्गममुखे प्रदीप उज्ज्वा-लितः सन् 'तत्' चतुःशालं सर्वमपि प्रकाश्यतिः एवमत्रापि सक्लाध्ययनमध्यविति प्रस्तुत-स्त्रे यदिदं प्रथमोद्देशकस्यान्त्यस्त्र न जानातीत्युक्तं तद् मध्यदीपंकमवगन्तव्यम् । यद्वा यसा-दत्र प्रथमोद्देशके समासतः सर्वाऽपि सामाचारी समर्थिता ततश्चतुःशालप्रमुखोज्ज्वालितप्रदीप

१ °ते 'इतः' एवं° भा॰ ॥ २ ॰ ० एतदन्तर्गतः पाठः मो॰ छे॰ का॰ एव वर्तते ॥

३ सूत्रसङ्केषार्थः ॥ अथ विस्तरार्थं भाष्यकृद् विभणिपुराह्—जो पतं गा॰ ॥

ध °मर्थे प्रथमाध्ययनमध्यवित्तिनि प्रस्तुतसूत्रे यदिदं प्रथमो° का• ॥

५ °पकं सकलाध्ययनविषयमव° का॰ ॥

द्यंदरान्यदीर्थनमरायान्यम् । तुन्धेदर्भुकं सर्वति १—वै एत्त कर्याय्ययनं प्रथमोद्देशकं रा च नातानि स गणपरिदर्शं भगर्रद्धिनंपुद्धारः ॥ ३२४५ ॥

इद्रमेव प्रचित्रद्याण्युः "तत्राचार्षे हातमिदं भवति" (गः० १२४४) ईति परं

जा गणइगे च याणित, जाणैतो वा न देसती मग्गे ।
 गे। मध्यमीयगे पित्र, विणम्मती विज्ञपुत्ती वा ॥ ३२४६ ॥

यः कश्चिद् गणघरः 'मर्भि' यद्येक्तसाचार्यक्षं म काराति, जानाति वा एरं न शिष्याणां नं गर्भसुपद्दिश्चति स सर्पद्यापंकसित्र वैद्यपुत्र इव वा विनद्यति ॥ ३२४६ ॥

तन्धं इमं कृष्ण्यं चदाहरणं—ग्गा मन्त्रो निर्च पर्नाग्ती अन्यणे जहानुई विहरह । १८ताँह में पुंछहा भगति—तुनं निर्चामय पुग्ता गच्छाम । अन्यच—

भी-उष्ह-बागे य तुमेशकारे, णिश्चे पि गच्छामि जती मि णैसी । गंतच्यए भीसग ! केचि कालं, अहं पि ता होत्र पुरम्मग ते ॥ ३२४७ ॥ भी: क्षीर्षक ! निरमण्यहं स्वरप्रक्रमा मनी यता यता मां त्यपि तत्र तत्र कीते वा उले। या वर्षे या निपत्रति 'तमीऽन्यकारे या' बहुलतमःपरकिन्त्येत प्रदेशे गच्छामि, कि क्रोमि ! १०परं मण्यतं क्रिक्कत कालं भन्नद्रियं गमकेष्टमित तावत ति' तत्र पुरम्पण भवेषम् ॥ ३२४७॥ द्रीर्षकं प्राट-

> समझरे केंद्रहेंह य मरो, बलेमि मीरे णडरादिए य । विके य जाणामि अदुह दुंहे, मा ना विसगहि अजाणि एवं ॥ ३२४८ ॥

है पुष्ठितः! ८ श्रेहं पुष्पारं मन्यम मन् ४ भ्याकंगन' कर्वनयुक्तान कारकानुर्वश्च मार्गान् ४) वर्षयामि । यत्र च सयुगन नज्ञलं हीं आन्योपद्वयक्तांग्याः पञ्चामि नत्र न गच्छामि । विच्यानि च मिन अदुष्टानि अमृति च दुष्टानि इत्येवसहं मन्यग् ज्ञानामि । चं पुनरेनेयां मच्यादेकमि न ज्ञानामि । अवस्थिमवराज्ञा सनी मा नावन् "विमुगहिं" नि "चिद्रेर्जुन-विमुगि" (सिद्धान् ८-४-१३२) इति प्राकृत्यक्ष्यव्यव्यक्त् मा गेव्हमनुभवेत्यवंः ॥ ३२१८ ॥ पुच्छिका प्राह्—

नं जाणगं होहि अजाणिमा है, पुम्मनं नाव भवाहि अज ।

ग्रेम अहं णंगितियामण्णं, त्रामा दुर्श मीमग ! वच वच ॥ ३२४९ ॥ द्यापंक ! न्वं हायकं भय, अहमहाविकाऽति म्यान्यामि, 'पुग्म्यम्मं' अप्रणासुकं नावन त्रमच भग, अहं पुनंभा नहतियायकेन लग्नः अंत्रव खिना, न्वं पुनः 'हुनं' द्यांवं यज्ञ बदेनि

१ ॰पके सक्छाधमीहराक्रायसम्बद्धाः ॥

२ १% १० १० १० १० १५ १४ अयस—य एनां प्रथमीहेशक्तमणिनां सामाचारी न जानाति भारत्य पनदेश्वित्रमीय कल्याध्ययनमैकनेय या प्रथमीहेशक्तमथेनी न जानानि हों। ॥

३ इति विशुंकिसाथापई हरू ॥ ४ 'मार्ग' प्रस्तुतशाखोकसामा' हाँ० ॥

५ 'स्थ मण्यमामगोशहरणं नाय अधर्—गर्मा हो। ए ६ 'तो स पे॰ में। हे। हा धार स्वा

उ चेंग कारेंग्डिय भाग । ८ % b एत्टन्सीमः पडः डॉ॰ एव वर्नने ॥

॥ ३२४९ ॥ शीर्षकमाह--

अकोविए! होहि पुरस्सरा मे, अलं विरोहेण अपंडितेहिं।

वंसस्स छेदं असुणे ! इमस्स, दहुं जितं गच्छिसि तो गता सि ॥ ३२५० ॥ 'अकोविदे !' मूर्खे ! भव 'मे' मम पुरस्सरा, अलमपण्डितैः सह विरोधेन चिलतेन, परं 'हे अमुणे !' अज्ञे ! अस्य मदीयवंशस्य च्छेदमपि दृष्ट्वा यदि गच्छिसि ततस्त्वमपि 'गताऽिस' ठ विनष्टाऽसीत्पर्थः, अस्य कार्यस्य पर्यवसानं पश्चात् त्वमपि द्रक्ष्यसीति भावः ॥ ३२५० ॥ अपि च—

कुलं विणासेइ सयं प्याता, नदीव कुलं कुलडा उ नारी।

निब्बंध एसो णहि सोभणो ते, जहा सियालरस व गाइतब्वे ॥ ३२५१ ॥ 'खयम्' आत्मच्छन्देन 'प्रयाता' प्रवृत्ता 'कुलटा' स्वैरिणी नारी 'कुलं' पितृकुलं श्रशुरकुलं १० च विनाशयति । केव किम् १ इत्याह—नदीव कुलम्, यथा नदी स्वैरं महापूरप्रवृत्ता सती कुलमुभयमपि पातयति तथैषाऽपि कुलद्वयमित्यर्थः । न चायमीहशः 'निर्वन्धः' कदाग्रहः 'ते' तव 'शोभनः' परिणामसुन्दरो भविता । यथा शृगालस्य 'गातब्ये' उन्नदितब्ये निर्वन्धो न शोभनः सञ्जात इति । अत्र खसद्वमाख्यानकम्—

एको सियालो रिंच घरं पविद्वो । घरमाणुसेहि चेतितो निच्छुभिउमाढतो । सो सुणगाईहि 15 पारस्रो नीलीरागरंजणे पिडतो, किह वि ततो उत्तिण्णो, नीलवण्णो जातो । तं अन्ने सरभ-तरक्त-सियालाई पासिउं भणिति—को तुम एरिसो ! । सो भणाइ—अहं सवाहिं मिगजाईहि खसहुमो नाम मिगराया कतो, ततो अहं एत्थमागतो, पासामि ताव को मं न नमित ! । ते जाणिति—अपुत्रो एयस्स वण्णो, अवस्स एस देवेहि अणुग्गहितो । तओ भणंति—अग्हे तव किंकरा, सिदसह, कि करेमो ! । खसहुमो भणिति—हत्थिवाहणं देह । दिण्णो, विर्लंगो 20 वियरित । अण्णया सियालेहि उण्णईय । ताहे खसहुमेणं तं सियालसहावमसहमाणेण उण्ण-ईयं । ततो हत्थिणा 'सो सियालो' ति नाउ सोंडाए घेन्नं मारितो । जहा सो सियालो उन्न-ईयं सोउं उन्नईए विणहो एवं तुमं पि विणस्सिहिसि ति ॥ ३२५१ ॥ किञ्च—

उछत्तिया भो ! मम किं करेसी, थामं सयं सुहु अजाणमाणी।

सुतं तया किण्ण कताइ मूटे !, जं वाणरो कासि सुगेहियाए !! ३२५२ !! 2: हे पुच्छिके ! यदि नाम त्व 'उल्लिता' मम सम्मुख विलता तैतः खर्क 'स्थाम' वीर्यमजा- नती मम कि करिष्यसि ! न किमपीति भावः । परं मूढे ! त्वया कि न कदाचिद्प्येतत् सविधानकं श्रुतं यद् वानरः सुगेहिकायाः शकुनिकायाः सम्मुखमादृतः सन् कृतवान् १ ।

अत्र कथानकम्---

वासेणें झडिज्ञंतं, रुक्खग्गे वानरं थरथरेतं । सुघरा नाम सङ्गिया, भणति तय निङ्कुए सती ॥

30

१ विलज्जो विय° भा॰ का॰ ॥ २ तथापि ख° भा॰ ॥

३ भा • विनाडन्यन-°ण सिंडि ता • मो • भा • । °ण पिंडि त • हे • हे • ॥

Ĺ

10

15

25

छन्ण मे नगाई, आणेऊणं च म्यनिवहरीम । वसही कता जिवाता, तत्थ वसामि निर्देशना ॥ ण्य इसामि रमामि य, वामारंत य ण वि य दशामि I धंदोल्यानि वानग् !, दयनगामं विल्वंमि ॥ हत्या तत्र माणुनगम्य जारिमा हिर्वण य विष्णाणं । हत्या विष्णाणं जीविनं च मोहण्यत्वं नुज्य ॥ विमह्मि थाग्पहारे, न य इच्छप्ति रोहमयणी कार्ड । बानर ! नुमे अयुद्ति, अन्हे त्रि र्गतं न विदामी ॥ नह देखें नह नचं, गेमिननो नीएँ नामगे णको। रोमेण घमघरेनेतो, उष्फिडिता नं गना मारुं॥ आई. पिनिन तो पानवन्मि फिर्डि चि निगाना मुच्या । अणान्मि दुनिम ठिना, अडिज्जने मीन-नानेणं ॥ इतरो वि य नं पेहं, घेनृणं पादवम्म मिहराओ । तगर्व ऐंडर्ड अंछिडण तो उत्तरती कुवितो ॥ मूनीगनिम नो गिहुयमि अह भणति वानगे पाने। मुघरे ! अवहितहिदए !, ग्रुण नाव वहा अहिरिया मि ॥ ण व मि ममं मयद्तिया, ण व मि ममं मोहिया व जिद्धा वा । मुघरे ! अच्छनु विष्रा, जा बद्दिम लोगनर्तानु ॥

वहा मो वानरी सुवराए पिंडचें हुओं समाणी तीने चेव पिंडणीई मुझी, एवं तुमं पि 20 मण् हिनोबण्सेजाणुमासिया वि नम चेबोपि सूय चि । अन एबोक्स-

> डपरेशो न दानत्यो, यहम तहमे ईनै । पस्य वानग्मृन्देंग, युग्रही निग्रही कृता॥

॥ ३२५२ ॥

किञ्चान्यन्--

न चित्तकम्मस्य वियेनमंत्रो, मंजाणने णावि मियंककीने ।

किं पीरमणी कह दनकर्म, अंधा किंह कन्य य देसियनं ॥ ३२५३ ॥ यथा अन्यश्चित्रकर्मणः 'त्रिशेषं' गमणीयकं न जानीते, नापि सृगाङ्कस-चन्द्रमसः कान्तिम्, एवं लमरि चअर्राह्दतया गार्गे गन्तुं न जानासीति थावः। तथा क पीटेन सर्पितुं— गन्तुं शिष्टमसेति पीरमपी-पट्टः ! इ च 'दृत्कमं' मन्देशहारकृत्वप् !, क चान्यः ! क च 'देशकृतं' मार्गदर्शकृत्वम् १, यथा सर्वथेवाषटमानकृमिदं तथा मवन्या अपि निप्यत्यृहं गमन्मिति अमारः ॥ १२५१ ॥ एवं छार्षकेणोक्त सति सा प्रवाति—

बुर्द्वाचलं द्याणर्वेळा वयंति, कि मनजुनस्य करेह बुद्धी । कि ने कहा णेत्र सुना कतायी, त्रयुंघरंयं जह वीरमोझा ॥ ३२५४ ॥

१ नरे मा॰ ॥ २ विछं मा॰ । एतस्तुरारेनैत मा॰ टीका । दस्यती पत्र ९९९ टिलफी १ ॥

बुद्धिरुक्षणं यद् वरुं तद् 'हीनवर्लाः' निःसत्त्वा एव वदन्ति । यतः सत्त्वयुक्तस्य वुद्धिः किं करोति ! सत्त्वेनैव सर्वकार्यसिद्धेः । किं वा त्वया कदाचिदियं कथा नैव श्रुता—यथा वसु-न्धरेयं वीरमोज्या । तदुक्तम्—

नेयं कुलकमायाता, जासने लिखिता न वा। खंडेनाकम्य भुङ्गीत, वीरभोज्या वसुन्धरा॥

॥ ३२५४॥

5

30

अथ शीर्षकमाह—

असंसयं तं अमुणाण मग्गं, गता विधाणे दुरतिकमिम ।

इमं तु मे वाहाति वामसीलें।, अण्णे वि जं काहिसि एक घातं ॥ ३२५५ ॥ 'असंशयं' निस्तंदेहं त्वम् 'अज्ञानां' मूर्काणां 'मार्गम्' आत्मोप घातरूपं गता । क सित ? इत्याह—विधाने दुरतिक्रमे सित । विधानं नाम-यद् येन यदा प्राप्तव्यं तद् दुरतिक्रमम्, 10 नान्यथा कर्तुं शक्यते । उक्तञ्च—

बुद्धिरुत्पचते तादृग्, न्यवसायश्च तादृशः । सहायास्तादृशा ज्ञेयाः, यादृशी भवितन्यता ॥

अत एव तद् अवश्यम्भावितया नासन्मनो दुनोति, परं 'वामशीले !' प्रतिकूछपथगामिनि ! मामिदमेव वाधते यद् 'अन्यानिप' आत्मव्यतिरिक्तानसाहशानेकघातं करिष्यसि, आत्मना 15 सह मारयसीति भावः ॥ ३२५५॥

सा मंदबुद्धी अह सीसकस्स, सच्छंद मंदा वयणं अकाउं। पुरस्सरा होतु मुहुत्तमेत्तं, अपेयचक्खू सगडेण खुण्णा।। ३२५६।।

'सा' पुच्छिका 'मन्दबुद्धिः' सहुद्धिविकला 'अथ' अनन्तरं शीर्षकस्य वचनमकृत्वा 'खच्छन्दा' समितिप्रवृत्ता 'मन्दा' गमनिकयायामलसा वलामोटिकया पुरस्सरा भूत्वा गन्तुं 20 प्रवृत्ता। ततः किमभूत् ? इत्याह—'अपेतचक्षुः' लोचनरिहता सा पुरो गच्छन्ती मुहूर्तमात्रेण शकटेन 'क्षुण्णा' आकान्ता विपत्तिमुपागता॥ ३२५६॥ एप दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—

जे मज्झदेसे खर्छे देस गामा, अतिप्पितं तेसु भयंतु ! तुज्झं ।

छुक्लण्ण-हिंडीहिँ सुताविया मो, अम्हं पि ता संपइ होउ छंदो ॥ ३२५७ ॥ 'ये' अगीतार्थाः शिष्यास्ते आचार्यान् भणन्ति—भदन्त । ये खलु 'मध्यदेशे' आर्यक्षेत्रे 325 देशाः—मगधादयो ग्रामाश्च—तत्प्रतिवद्धास्तेषु भगवताम् 'अतिप्रियम्' अतीव विहर्तुं रोचते, परं वयमेषु दिवसेषु रूक्षान्नमात्रलामेन हिण्ड्या च—इतस्ततः परिश्रमणरूपया सुष्ठु—अतिशयेन तापिताः—दग्धान्नदेहाः सञ्जाताः, अतोऽस्माकमपि तावत् सम्प्रति च्छन्दो भवतु, खच्छन्देन यत्र यत्र रोचते तत्र तत्र विहरिष्याम इति ॥ ३२५७ ॥ गुरवो शुवते—

देहोवहीतेणग-सावतेहिं, पदुष्टमेच्छेहि य तत्थ तत्थ । जता परिन्मस्सध अंतदेसे, तदा विजाणिस्सह मे विसेसं ॥ ३२५८ ॥

१ °लम्' अकिञ्चित्करं वद् भा॰ ॥ २ °लु भिक्खगा भा॰ । एतदनुमारेणैव गा॰ टीका । हर्यतां टिप्पणी ३ ॥ ३ °न्ने भैक्षग्रामास्तेषु भवताम् मा॰ ॥

मो महाः ! यृष्ं प्रच्यनदेशे विहर्तनो यहा देहलेतेः चर्गग्रहेरः उपिष्टेते - उपक्रणहेरः श्वारेदः - सिंह-क्राणदिनः प्रहिप्टनेष्ठच्छेश्च तत्र तत्रोग्हदः सन्तः संग्रा-ऽप्यविग्यनदिना परिकंशमान्त्रय तदा विज्ञास्य भे नदीषं विद्येषम्, यया — हा ! न दोषतं कृतमन्त्रभिः यदेवं गुन्दां वक्तमकात्रय सम्बन्धाः विद्याः इत हति । यस्तु गण्योः न जानति, ध्वानाने वा शिष्णागां माणै नोपद्छति, स तेपाणहृद्वस्य सन्दर्भमितिकस्यानार्यदेशे विहरत् वेश्व शिष्टेशः सह विन्यानिकश्चितः यया सर्प्यां संस्कृति श्विक्तामितः विव्यक्ति ।। १२.५८ ॥ स्वयः नेपाणहृद्वस्याः स्वयः नेपाणहृद्वस्याः स्वयः नेपाणहृद्वस्याः स्वयः नेपाणहृद्वस्य

अय वेद्यपुत्रदशन्तमहं— वेद्यम्य एगस्य अदेनि पृत्तो, मरुम्मि नाने अपवीयविको ।

गंतुं विदेसं अह मा सिळागं, बेच्णमेगं सगदंसमिति ॥ ३२५९ ॥

10 एकस देवस्य दुव आसात । स व 'टार्न' पिर्नार सूते सनि अन्धानिय इति झूटा गई: सक्तावाद शुँठ न करने । नवा देवकशासण्यताथ विदेशं गणा तत्र करणाति देवस्य एकं एकं खोकं खोति ना—

पृत्रोंहे बम्ने द्यावरगेंद्र विर्वनम् । वानिकेकीर गेरीयु, पळ्याहुर्विद्योगपद् ॥

15 टन्सेन चिन्तितम—हुं इन्ते केवक्तहम्बस्, अनः अपर्थस्य निष्टानि ? इति । 'अय' अनन्तरमञ्जी क्षोत्रे सृहीत्वा 'चक्रम्' आत्मीये देखहुँगति ॥ ३२५६ ॥

> अहाऽजाना मो उ मयम्मि देसे, लढ्ण नं चेत्र पुगणविन्ति । रागो णियोगेण सुने निगिच्छं, कुळ्तेतु नेषेत्र समं विणहो ॥ ३२६० ॥

'खब' अन्तरं 'मः' वैद्युत्रः खेंच वैद्ये ममागतः सन् गदः समीपे तमेत्र तुग्रां दुर्नि द्युक्त्वा अन्यत्र गदो नियोगित 'सुत्य' गदः एतस्य पूर्वेन्छक्केत्रप्रमाणेन विक्रियां अर्तृम- गुव्यत् । तनेष्टिंग गद्युत्रम् द्रांच्या अप्रयोगित्रक्रम् द्वित्यः । गुद्या चारे वैद्याः पृद्यः— विक्रेतन सम्बद्धयेगिया क्रिया कृत्यः । स्त्रप्रयोगियाः । निरुक्तम्—अप्रयोगियिः । तनेष्टिः तेन गद्या व्यक्तिया दृष्टेन दृष्टिनः । एत्रम्याद्यि निन' गद्युत्रेयः समे विनष्ट इनि उक्तम् । एत्र द्यान्यः, अद्यस्ये नियः — यश्यत्ये। वैद्युत्र पृद्यम्वित्तं स्वयम्बद्धानः एवं य व्यक्ति इतं ध्यक्तियाव्ययं न स्वयति पृत्रदेशं वा ज्ञानम् ग्यां परिवर्त्तयनि स्वयम् ग्रामं परिवर्त्तयः विक्रयन्त्रयः प्रवर्त्ताः । इन्द्र्यः ॥ इन्द्र्यः ॥ इन्द्र्यः ।

वर्षेत्रं सूत्रं मातना यह हेत्र ये च बार्च प्रतित्व प्रदृतं तदेवह—

साएयस्यि पुरवरं, सँमृमियागस्यि बढ्माणेग । सृत्तिम्यं प्रशत्तं, प्रदुच तं चेव कालं तु ॥ ३२६१ ॥

१० मान्त्रे रुक्ते समृप्तिमागे उद्येत स्पन्नदंतत कावता वर्द्वनान्य नितः सूत्रसिदं 'तरेव' वर्षमानं कात्रं प्रतीत्य निर्धेन्य-निर्धेन्यं तां पुरतः प्रवतद् ॥ ३२६१ ॥ क्रयन्शं इत्यद्द—

१ एतर्स्नर मे॰ हे॰ जौ क्रम्याक्षम्—३००० इत बनेहे ॥ २ व्यनं सम्यूर्णमञ्जानम् गर्जं मा॰ ॥

20

25

मगहा कोसंवी या, शूणाविसओ कुणालविसओ य। एसा विहारभूसी, एतावंताऽऽरियं खेत्तं ॥ ३२६२ ॥

पूर्विस्यां दिशि मगधान् दक्षिणस्यां दिशि कौशाम्त्रीं अपरस्यां दिशि स्थूणाविषयं उत्त-रस्यां दिशि कुणालाविषयं यावद् ये देशा एतावदार्यक्षेत्रं मन्तव्यम् । अत एव साघूनामेषा विहारभूमी । इतः परं निर्श्रन्थ-निर्श्रन्थीना विहर्तुं न कल्पते ॥ ३२६२ ॥

अथार्थपदस्य निक्षेपनिरूपणायाह—

नामं ठवणा दविए, खेत्ते जाती कुले य कम्मे य। भासारिय सिप्पारिय, णाणे तह दंसण चरित्ते ॥ ३२६३ ॥

नामार्याः स्थापनार्या द्रव्यार्थाः क्षेत्रार्या जात्यार्थाः कुलार्याः कर्मार्थाः भाषार्याः शिल्पार्या ज्ञानार्या दर्शनार्याश्चारित्रार्याश्चेति । तत्र नाम-स्थापने सुप्रतीते । द्रव्यार्या नामनादियोग्याः 10 तिनिश्रवृक्षप्रभृतयः । क्षेत्रार्या अर्द्धषड्विंशतिर्जनपैदाः तद्वासिनो वा । ते च जनपदा राजगृहा-दिनगरोपलक्षिता मगधादयः । उक्तञ्च-

रायगिह मगह १ चंपा, अंगा २ तह तामलित्ति वंगा य ३। कंचणपुरं कलिंगा ४, वाणारिस चेव कासी य ५॥ साकेत कोसला ६ गयपुरं च कुरु ७ सोरियं कुसट्टा य ८। कंपिछं पंचाला ९, अहिछत्ता जंगला चेव १०॥ वारवई य सुरद्वा ११, विदेह मिहिला य १२ वच्छ कोसंवी १३। नंदिपुरं संडिच्मा १४, महिलपुरमेव मलया य १५॥ वेराड वच्छ १६ वरणा, अच्छा १७ तह मत्तियावइ दसन्ना १८। सुत्तीवई य चेदी १९, वीयभयं सिंधुसोवीरा २०॥ महुरा व सूरसेणा २१, पावा भंगी व २२, मास पुरिवट्टा २३। सावत्थी य क्रणाला २४, कोडीवरिसं च लाढा य २५॥ सेयविया वि य नगरी, केगइअद्धं च आरियं भणियं । जत्थपत्ति जिणाणं, चक्कीणं राम-कण्हाणं ॥ ॥ ३२६३॥ सम्प्रति जात्यायीनाह-

अंबड्डा य कलंदा, विदेहा विदका ति य। हारियाँ तुंतुणा चेव, छ एता इन्भजातिओ ॥ ३२६४ ॥

इह यद्यप्याचारादिपु शास्त्रान्तरेपु वहवो जातिभेदा उपवर्ण्यन्ते तथापि लोके एता एवा-म्बष्ट-कलिन्द-वैदेह-विदक-हारित-तुन्तुणरूपाः 'इभ्यजातयः' अभ्यर्चनीया जातयः प्रसिद्धाः । तत एतामिर्जातिभिरुपेता जात्यार्याः, न शेषजातिभिरिति ॥ ३२६४ ॥ 30

१ असात् साकेतात् पूर्वेस्यां दिशि कौशार्स्यां भा॰ विना ॥ २ °पदवासिनः । ते च मा॰ ॥ ३ लाडा य भा॰ कां॰ ॥ ४ °या चुंचुणा भा॰ कां॰ । टीकाऽप्यत्रैतदनुसारेणेव वर्तते । दरयता टिप्पणी ५॥ ५°त-चुञ्जूण° मा॰ का॰॥

27

20

अथ ङुळायांन् निरूपयति---

उन्ना माना राहण्ण खिनया तह य णात कोरव्या । इक्खाना वि य छहा, कुलारिया होति नायव्या ॥ ३२६५ ॥

'उग्राः' च्यदण्डकारित्वादारिककाः । 'मोनााः' गुरुखानीयाः । 'राजन्याः' दयसाः । व्यक्तियाः' नामान्यदो राज्ञेपर्जादिनः । 'ज्ञाताः' च्युग्क्तियाः, 'कार्वाः' कुरुवंशोद्धवाः, ण्ते द्वयंऽप्येक एव मेदः । 'द्वस्याकवः' ऋषमनाथवंश्वजाः पष्टाः । एते कुल्यया ज्ञात्तव्याः ॥ २२६७ ॥

'माषार्थाः' अर्घमागधमाषामाषिणः । 'छिल्यार्थाः' तुष्णाक-नन्तुवायाद्यः । ज्ञानार्थाः पञ्चवा—आमिनिर्वेषिक-श्रुता-अविश्व-मनःपर्यय-केत्रक्षण्णानार्थमेदात् । दर्शनार्था द्विया—सराग10र्षात्रगगदर्शनार्यमेदात् । तत्र सरागदर्शनार्थाः श्रायोपञ्चिकतेषश्चिकतसम्यन्दृष्टिमेदाद् द्विया ।
वीत्रगगदर्शनार्था उपग्रान्त्रमोहादयः । चारित्रार्थाः पञ्चविष्याः—सामायिक-च्छेद्रोपस्थाप्य-परिह्याविशुद्धिक-स्थमस्यगय-यथान्यानमेदात् । अत्र च क्षेत्रार्थरिकत्वारः ॥

अथार्यक्षेत्रजिहारे कारणनाह—

जम्मण-निक्खमणेमु च, नित्यकराणं करेनि महिमाओ । भवणबह-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा ॥ ३२६६ ॥

इहार्यक्षेत्र भगवतां तीर्थकृतां जन्म-निष्क्रमणयोः चछ्ठद्वाद् ज्ञानात्पत्ते। च भवनगति-वान-मन्तर-ज्योतिष्क-वमानिका देवाः 'महिमाः' मातिस्रयपूजाः क्षत्रीन्न । ताश्च दक्षा बहुँवो मन्त्रा विजुल्यन्ते, प्रवज्यां च प्रतिपद्यन्ते, जिर्प्रविज्ञा अपि स्थिरतरा भवन्ति ॥ ३२६६ ॥

उपण्णे णाणवर, तस्मि अर्णने पद्दीणकस्माणी ।

र्ण ना उत्रदिसंति घम्मं, जगजीबहियाय नित्यकरा ॥ ३२६७ ॥
'विलिन् तदेश 'अनन्त' अप्रविधिन 'ज्ञानवर' मित-श्रुतादिशेपज्ञानप्रधाने केवलास्ये 'उत्रवे' नदाबारकर्मक्षयाद्यविस्ते मित 'प्रद्यापकर्माणः' प्रक्षाप्रधानिकर्माद्यार्थकराः 'ततः' ज्ञानेत्रस्यनन्तरं 'वर्म' श्रुत-चारित्रवर्षं जगज्ञाबिहतायोपदिशन्ति ॥ ३२६७ ॥ रोगच्छेरयभृतं, अोवयणं नित्रयणं च देवाणं।

मंसयत्राकरणाणि य, पुच्छंनि नहिं जिणवरिंदे ॥ ३२६८॥

टोक्स्य-मनुत्रकोकस्य आश्रयमृतं-दिन्यकरि देवानामुत्यन्तं निरन्तं च हृङ्घा बह्वा किताः प्रतिवृद्ध्यन्ते । तथा देव-मनुत्र-निर्यश्चा असम्बेद्याः संहितः स्वतःसंद्रयानां व्याकरणा- नि-निर्यचनानि जिनवरेन्द्रान् 'तक्ष' आर्थजनरेदे पृच्छन्ति । भगवन्तोऽरि च सानिश्यस्तात् तपाममहेदेयानामिर युगरदेव मंद्रयानुन्यसन्ति ॥ ३२६८ ॥ अपि च-

ममणगुणविदुऽन्य जणां, मुलमा उवर्षा सर्वतमविरुद्धाः । आन्यिविसयिम गुणां, णाण-वर्षा-गच्छवृही य ॥ ३२६९ ॥

१ फिट्या° स॰ ॥ २ इयो युद्धा विद्यु° त॰ मः ० इं० विन ॥ ३ 'न' ताइरो समस्त्रस्तुस्तोमसाक्षान्करणद्श्चे 'शनन्ने' इं० ॥

अम्णगुणाः-मूलोत्रगुणरूपाः, तत्र पञ्च महात्रतानि मूलगुणाः, उद्गमोत्पादनैपणादोपनि-शुद्धिः अष्टादश श्रीलाङ्गसहस्राणि चोत्तरगुणाः, तान् वेत्ति—जानातीति श्रमणगुण्विद्, ईदृशः 'भत्र' आर्युज्नपदे 'जनः' स्रोकः । अत्र च 'उप्रघः' औषिक औप्रमहिकथ 'सतन्नेण' खसि-द्धान्तोक्केन मकारेण 'अविरुद्धः' अदूषितः 'सुलभः' सुखेनैव लभ्यते । एते आर्यविषये विह-रतां गुणा भवन्ति । तथा ज्ञानस्य चरणस्य उपलक्षणत्वाद् दृशेनस्य चात्र वृद्धिभैवति, न्याघा-ह ताभावाव् ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि स्फातिसुपगच्छन्तीति सावः । गच्छस्य चात्र वृद्धिभैवति, बहूनां भव्यजनतूनां प्रज्ञज्याप्रतिपत्तिः(तेः)॥ ३३६९॥

> एत्थ्र किर सिण्ण सावग, जाणंति अभिग्गहे सुविहियाणं । एतेहिँ कारणेहिं, बहिगमणे होंतिऽणुग्घाया ॥ ३२७० ॥

'अत्र किल' आर्यक्षेत्रे संज्ञानं संज्ञा-देव-गुरु-धर्मपरिज्ञानं सा विद्यते येषां ते संज्ञिनः-10 अविरतसम्यग्दष्टयः, 'श्रावकाः' प्रतिपन्नाणुवताः, एते 'सुविहितानां' साधूनामसिग्रहान् जानन्ति । अभिमहा नाम-यथैरथमाहारादिकमसीषां कल्पते इत्थं च न कल्पते, अथवा अभिमहा:-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविषयाः यागुक्तस्ररूपाः तात् ज्ञात्वा ते संज्ञि-श्रावकारतथेव प्रतिपूर्यन्ति । एतैः कारणैरार्यजनपदे विहारः कर्त्तव्य इति वाक्यशेषः । यद्यार्यक्षेत्राद् बहिर्गच्छति ततश्चत्वासे अनुद्धाता मासाः श्रायश्चित्तम् ॥ ३२७० ॥ 15

आणादिणो य दोसा, विराहणा खंदएण दिइंतो । एतेण कारणेणं, पडुच कालं तु पण्णवणा ॥ ३२७१ ॥

आज्ञादयश्च दोषाः । विराधना चात्म-संयमविषया । तत्र च स्कन्दकाचार्येण दृष्टान्तः कत्तेच्यः । अत एतेन कारणेन बहिर्न गन्तव्यम् । एतद् भगवद्वर्धमानस्वामिकालं प्रतीत्योन क्तम् । ईदानीं तु सम्प्रतिनृपतिकारुं प्रतीत्य प्रज्ञापना कियते—यत्र यत्र ज्ञान-दर्शन-चारि-20 त्राण्यत्सर्पन्ति तत्र तत्र विहर्त्तन्यम् ॥ ३२७१ ॥

अथ स्कन्द्रकाचार्यदृष्टान्तमाह---

दोनेण आगतो खंदएण बादे प्राजितो इवितो । खंदगदिक्ता पुच्छा, णिवारणाऽऽराघ तन्त्रजा ॥ ३२७२ ॥ उज्जाणाऽऽयुध णूमण, णिवकहणं कोव जंतयं पुन्वं । वंध चिरिक णिदाणे, कंबलदाणे रयोहरणं ॥ ३२७३॥ अग्गिकुमारुववातो, चिंता देवीय चिण्ह तयहरणं। खिजण सपरिसदिक्ला, जिण साहर जात डाही य ॥ ३२७४ ॥

सावत्थी नयरी ! जियसत्तू राया । धारिणी देवी । तेसि पुची खंदती कुमारो जुव-राया । भगिणी से पुरंदरजसा । सो य खंदती सावती अभिगती । इस्रो य उत्तरावहे 80 मचंते कुंभकारकडं नगरं । दंडती राया । तस्स पुरोहितो पालतो । सा पुरंदरजसा दंड-

१ °दानीन्तनं तु कालं प्र° मा॰ ॥ पु॰ ११६

तिस्म रण्णो दिण्णो । अत्रया पाछओं दृतो आगतो । खंद्यकुमारेण रायपरिसाए वाण पराजिओ पर्हो सिवनवं गता । खंदनो पंचिंह नर्ण्हं सींद्ध पवतिओ मुणिमुञ्चयसिमणो अंतिए। तस्सेव ते संामा जाया। अलया तित्ययरं आपुच्छति—पंचीई सपीई सिंद कुंमैका-ग्झर्डं बच्चामि ! । भगवया वारितो 'सोवसगां' ति । पुणो पुच्छति—वागह्या ! विराह्या ! । oतुमं मोतुं सेसा आराह्या । एवं सो गतो कुंमकारकहं । तस्स अगुजाण ठितो । पारुगेण य दिहों । ताह तेणं पुत्रवेरणं दंहती बुगाहितो-एस परीसहपरातिता पंचिंह सण्हें सिद्धं तव रलं बेच्छिहिति । सो य न पत्तियार् । ताहै गण व्याटहाणि व्यगुज्जांग ठिनयाणि दंसेकण बुगाहितो । तुत्रो भणति—तुमं चेव स नं जाणिस नं करिह । तेण पुरिसनंतं क्यं । सबे थारद्वा पिछिदं । खंद्रएण मणियं—ममं पदमं मारेहि । ताहै सो मणिति—नुमं पिच्छाहि ताव 10 सीसे विहिजेते । एवं ते सेव विहिया सिद्धा य । पच्छा खंद्यस्य वदस्स रुहिरचिरिक्काहि य सिचमाणस्य सीमेसु य संडिकंनेसु असुद्दी परिणामी जाता । तेण नियाणं कथं । अग्निकुमा-रेसु उननतो । मिगर्णाय से कंनस्रयणं दिन्नयं, ततीहिंतो स्यहरणं क्यं । तं रुहिरानिंतं सेणाय 'मंमं' ति कार्ड गहियं । देवीए अगाती पडियं । 'कती एयं रयहरणं ? किं मम माया मारिङ ?' चि ताप राया भणितो—अहो ! विणहो सि । ताहे मो अग्गिकुमारेख पज्जचो १४ जातो । ताहे नगरस्य सबतो जोयणपरिमंडले जं किंचि तणं वा कहं वा तं साहरिउं दहूं सज-णवयं नगरं । सो य पालुओ अणण सपुत-दारुओ सह सुणएणं कुंमीए पर्शे । पुरंदरजसा य मुणिसुव्वयतित्ययरपायमुले साहरिया सपरिसा ॥

थय गायात्रयस्याध्ययोजना—श्रावस्त्यां पाछको देत्यिनागतः । स च वादे स्कन्द्कृत पराजितः । वतोऽसं वत्योपिर कृषितः । इतश्च स्कन्द्कृतः मुत्रवस्यामिषाश्चं दीक्षा । अवी20 तज्ञार्थस्य च वत्यान्यदा भगवतः समीपं पृच्छा—त्रज्ञान्यदं कुम्मकारकृतं नगरम् । मगवतां तु 'सोपसगम्' इति भणित्वा निवारणा कृता, 'तथा 'त्वह्नाः सर्वेऽप्यारायकाः' इति च मणितम् । तत्रनं कुम्मकारकृतपुरमागच्छन्तं पाछकृत श्रुत्वा यत्रोद्यानेऽसी स्थितः 'तत्रायुधानां ''ण्मण'' वि मच्छनं स्थापना । ततो नृपस्य कथना, यथा—एप परीषहपुराजितस्तां मारयत्वा त्वदीयं राज्यमिष्यष्टासर्तात्यादि । वतो राजः कोषोऽभवत्, भणितं च—यत् ते रोचते

2. तदमीषां कुरुत्वेति । वतन्तेन पुरुपयम् कृत्वा पाडिश्रतुमारव्याः सायवः । स्कन्दकृतोक्तम्—पृवं
मां यग्नमच्ये प्रक्षिप । वतन्तेन पुरुपयम् कृत्वा पाडिश्रतुमारव्याः सायवः । स्कन्दकृतोक्तम्—पृवं
मां यग्नमच्ये प्रक्षिप । वतन्तेन पुरुपयम् कृत्वा पाडिश्रतुमारव्याः सायवः । स्कन्दकृत्वेन निदानं कृतम् । सिनन्या च
तस्य कम्बन्द्रवत्यानं कृतमार्थान्, तेन च रजोहरणं कृतम् । स्कन्दकृत्यः च विषयाप्रिकृमारेष्यपातः । नतो रजोहरणं छोणितिरुष्यं चिद्यनस्य देव्याध्यन्ता—नृनमपद्यविताः सायवः

20 पापान्मनेति । ततः प्रमृतं राजः पुरतः खेदनम् । ततः 'सर्पारपदः सपिरवारायान्तस्य दीक्षा-

दापनार्थ-जिनसमीपे 'संहरणं' नयनम् । संवर्तकवातं विकुर्व्य सकलस्यापि पुरस्य 'दाहः' दह-नम् । यत एवमादयो दोषास्ततो नानार्यक्षेत्रे विहर्त्तव्यम् ॥ ३२७२ ॥ ३२७३ ॥ ३२७४ ॥ अथ ''यत्र ज्ञान-दर्शन-चारित्राण्युत्सर्पन्ति तत्र विहर्त्तव्यम्'' (गा० ३२७१) इति यदुक्तं तिद्विषयमभिषित्यः सम्प्रतिनृपतिदृष्टान्तमाह—

कोसंबाऽऽहारकते, अज्ञसुहत्थीण दमगपन्वजा। अन्वत्तेणं सामाइएण रण्णो घरे जातो ॥ ३२७५ ॥

कौशाम्ब्यामाहारकृते आर्यसुहस्तिनामन्तिके द्रमकेण प्रव्रज्या गृहीता । स तेनाऽव्यक्तेन

सामायिकेन मृत्वा राज्ञो गृहे जात इत्यक्षरार्थः। भावार्थस्तु कथानकगम्यः॥३२७५॥ तचेदम्

कोसंबीए नैयरीए अजसुह्रशि समोसदा। तया य अंचितकालो। साधुजणो य हिंड-माणो फबित । तत्थ एगेण दमएण ते दिद्वा। ताहे सो भत्तं जायित । तेहिं -भिणयं — अन्हं 10 आयरिया जाणंति । ताहे सो गतो आयरियसगासं। आयरिया - उवउत्ता। तेहिं णायं — एस पवयण उवग्गहे विहिहित । ताहे भिणओ — जित पवयिस तो दिज्जए भत्तं। सो भणइ — पव-यामि ति। ताहे पवाइतो, सामाइयं कारिओ। तेण अतिसमुद्दिहं, तओ कालगतो। तस्स अवत्तसामाइयस्स पभावेण कुणालकुमारस्स अंधस्स रण्णो पुत्तो जातो॥

को कुणालो ! किं वा अंधो ! चि—पाडिलिपुत्ते असोगिसरी राया । तस्स पुची 18 कुणालो । तस्स कुमारभुत्तीए उन्नेणी दिण्णा । सो य अड्डविरसो । रण्णा लेहो विसिक्जितो—, शीव्रमधीयतां कुमारः । असंवित्तए लेहे रण्णो उद्वितस्स माइसवित्तीए कर्तं—अन्धीयतां कुमारः । सयमेव तत्तसलागाए अच्छीणि अंजियाणि । सुतं रण्णा । गामो से दिण्णो । गंध- वक्लासिक्लणं । पुत्तस्स रज्जत्थी आगतो पाडिलिपुत्तं । असोगिसिरिणो जवणियंतिरओं गंधवं करेइ । आउट्टो राया भणइ—मग्गसु जं ते अभिरुह्यं ति । तेण भणियं— 20

, चंदगुत्तपपुत्तो य, बिंदुसारस्स नतुओ ।

असोगसिरिणो पुत्तो, अंधो जायति काकणि ॥ ३२७६ ॥

चन्द्रगुप्तस्य राज्ञः प्रपौत्रो विन्दुसारस्य नृपतेः 'नप्ता' पौत्रोऽशोकश्रियो नृपस्य पुत्रः कुणालनामा अन्यः 'काकणीं' राज्यं याचते ॥ ३२७६ ॥

तओ राइणा भणितो—िकं ते अंधस्स रज्जेणं १ । तेण भणियं—पुत्तस्स में कर्जं ति । राइणा 25 भणियं—किं ते पुत्तो १ ति । तेण आणिता दाइओ—इमो में संपइ जाओ पुत्तो ति । तं चेव नामं कयं । तओ संबिद्धओ । दिनं रज्जं । तेण संपर्राइणा उज्जेणि आहं काउं दिन्तिन णावहो सबो तत्थ दिएणं ओअविओ । सबे पर्चंतरायाणो वसीकया । तओ सो विउलं रज्ज-सिरि मंजइ । किञ्च—

अजासुहत्थाऽऽगमणं, दड्डं सरणं च पुच्छणा कहणा। पावयणम्मि य भत्ती, तो जाता संपतीरण्णो॥ ३२७७॥

30

१ "नगरीए महागिरी अज्ञसुदृत्थी य समोसहा" विशेषचूर्णी ॥

जीवन्तस्यासियतिमावन्दनाथेमुखं यिन्यामायेमुहं स्तिन व्यागमनम् । तत्र च रखं यात्रीयां राजाहणप्रदेशे रथपुरतः स्थितानायेमुहं निगुरू इद्धा नृपंत्र जातिसरणम् । तर्ते त्र गतां गुरूपदक्षमलेमियन्य पृच्छा कृता—भगवन् । अञ्चलस्य सामायिकस्य कि फरूम् । स्रिराहि—राज्यादिकस् । तत्रीऽसी सम्त्रान्तः प्रगृहीताङ्गलिगनन्दीदकप्रपृरितनयनयुगः प्राहः—मगवन् । एवमेवेदस् , परमहं भवद्भिः कुत्रापि हष्टपूर्वा न वा ! हति । ततः स्वय द्वयुज्य क्षययन्ति—महाराज । हष्टपूर्वः , स्वं पृवयवे महीयः शिष्यं आसीदित्यादि । तत्रीऽसी परमं सेवेगमापत्र-सदन्तिके सम्यदर्शनस्व पञ्चाणुवनमयं आवक्षयमे प्रयत्नवान् । तत्रक्षेतं प्रवचने सम्प्रतिराजस्य मिकः सञ्जाता ॥ ३२७७ ॥ किञ्च—

जनमञ्ज मुरियर्वसे, दाण विण-निविण दारसंसीए । वसनीवपडिक्रमञी, पमावञी समणसंवस्त ॥ ३२७८॥

यथा यवी मध्यमाने पृथुल बादावन्ते च हीनः एवं मीर्यवंग्रोऽपि । तथाहि—चन्द्रग्राप्त-सावत् वल-वाहनादिविम्त्या हीन बार्गान्, तनी विन्दुसारी बृहत्तरः, तनीऽप्यग्रोकश्रीबृह-त्रमः, तनः सम्प्रतिः सर्वोक्तप्टः, तनी भृयोऽपि तथेव हानिस्वसानन्या, एवं यवमध्यकरुपः सम्प्रतिनृपिनगर्गान् । तेन च गन्ना 'द्वारसंलोके' चतुप्त्रीपि नगरद्वारेषु दीनं प्रवर्षितम् । 15 "वणि-विवणि" ति इह ये बृहत्तग आपणास्त्रे पणय इत्युच्यन्ते, ये तु दरिद्रापणास्त्रे विपणयः; यहा ये आपणस्तिना न्यवहरन्ति ते वणिजः, ये पुनरापणेन विनाऽप्युद्धस्तिता वाणिज्यं कुर्वेन्नि ते विवणिजः । एतेषु तेन राज्ञा साधूनां वस्त्रादिकं दापितम् । स च राजा चक्ष्यमाणनीत्या असजीवप्रतिकामकः प्रमावकक्ष अमणसङ्ख्यासीत् ॥ ३२७८ ॥

अय ''दाण वणि-विवणिदारसंखीए'' इति मानयति--

20 थांद्रियमओ दारेस, चउसं पि महाणसें स कारेति । णिनाऽऽणिते मीयण, प्रच्छा सेसे अञ्चले य ॥ ३२७९ ॥

श्रीदिरकः—द्रमकः पृत्रमंत्रेऽहं भृत्वा मृतः सन् इहायात इत्यातमीयं वृत्तान्त्रमतुस्तर् नगरस्य चतुष्येपि द्वारेषु स राजा सत्राकारमहानसानि कारयनि । ततो दीना-ऽनायादिपियकछोको यस्त्र निर्गच्छन् वा प्रविश्चन् वा भोकुमिच्छति स सर्वोऽपि भोजनं कार्यते । यन् तच्छेप- १० सहति तद् महानसिकानामामवति । तनो राजा ते महानसिकाः प्रद्याः—यद् युग्माकं दीना-दिभ्यो देवतामविश्चयते तेन य्यं किं कुरुष । ते खनते—असाकं गृहे स्पयुज्यते । वृपंतिराह—यद् दीनादिमिरसकं तद् भविद्धः सावृत्तं दातस्त्रम् ॥ ३२७९ ॥

एतदेवाँह—

साहण देह एयं, अहं में दाहामि तत्तियं मीछं।

थ पेन्छंति घरे घेतं, समणा मम रायपिंडों ति ॥ ३२८०॥
साधुनामतद् मक्तपानं प्रयच्छत, अहं "मे" भवतां तावनमात्रं मूल्यं दासामि, यतो मम
गृहे अमणा राजपिण्ड इति इत्वा प्रहीतं नेच्छन्ति ॥ ३२८०॥

एमेंव तेंख्नि-गीलिय-पूचिय-मीर्रड-दुरिसए चैवं। जं देह तस्स मोछं, दलामि पुच्छा य महिगिरिणी ॥ ३२८१ ॥

एवमेव तैलिकासौर्लम्, गोलिकाः-मॅथितविकायिकास्तकादिकम्, धीपका अपूपादिकम्, मोर्ण्डकाः-तिलादिमोदिकाः तिहिकायिकासिलादिमोदिकान् ; दौष्यिका वस्ताणि च दापिताः । कियम् १ इत्याहि - यत् तैरुं तिर्कादि यूर्य साधूनां दत्थ तस्य मूह्यमहं भवतां प्रयच्छामीति । इ ततंश्राहार-वस्त्रादीं किमीप्सिते रुभ्यमाने श्रीमहागिरिरार्यसहिस्तिमं एच्छिति — आर्थ ! प्रसुर-माहार-वेस्नादिकं पार्व्यते तत्तों जानीष्वं मा राज्ञा लोकः प्रवर्त्तितो भवेत् ॥ ३२८१ ॥

> अजसहिष ममत्ते, अणुरायाधम्मती जणी देती । सिमींग वीसुकरणं, तक्लण आउड्डणें नियत्ती ॥ ३२८२ ॥

अर्थिसहस्ती जानानोऽप्यनेषणामात्मीयशिष्यममत्वेन भणति—क्षमाश्रमणाः ! 'अनुराज-10 धर्मतः' राजधर्ममें मुंबर्चमानं एप जन एवं यथेप्सितमाहारादिकं श्यच्छति । तत आर्यमहा-गिरिणा भणितम् — आर्थ ! त्वमणीहशो बहु श्रुतो भूत्वा यद्यवमात्मीयशिष्यममत्वेनेत्वं त्रवीपि, ततो मम तव चांचप्रसृति विष्वक्सम्भोगः-नैकत्र मण्डल्यां समुद्देशनादिज्यवहार इतिः एवं सम्भोगस्य विष्वकरणमभवत् । तत आर्थसुहस्ती चिन्तयर्ति— भया तावदेकमनेषणीयमाहारं जानताऽपि साधवो ब्राहिताः, खयमपि चानेपणीयं भुक्तम्, अपरं चेदानीमहमित्यमपरुपामि, 15 तदैतद् मम द्वितीयं वारुस मन्दल्वमित्यापन्नम्; अथवा नाद्यापि किमपि विनष्टं भूयोऽप्यह-मेतसादशीत् प्रतिक्रमामि' इति विचिन्य तृत्क्षणादेवावर्तनमभवत् । ततौ यथावदाहोचनां दत्त्वा खापराधं सम्यक् क्षामियत्वा तस्या अकल्पमितसेवनायास्तस्य निवृत्तिरभूत् । ततो भूयोऽपि तयोः साम्भोगिकत्वर्मभवत् ॥ ३१४२ ॥

भय ''त्रसंजीवप्रतिकामकः'' (गा० ३२७८) इत्यस भावार्थमाह-

सी रायाडवंतिवती, समणाणं सावती सुविहिताणं। पर्वतियरायाणी, सन्वे सदाविया तेणं ॥ ३२८३ ॥

'सः' सम्प्रतिनामा राजा अवन्तीपतिः श्रमणानां 'श्रावकः' उपासकः अभवदिति शेषः । ते च शाक्यादयोऽपि भवन्तीत्यत आह—'स्विविहितानां' शोभनानुष्ठाना-नाम् । ततस्तेन राज्ञा ये केचित् पात्यन्तिकाः-प्रत्यन्तदेशाधिपतयो राजानस्ते सर्वेऽपि 'शब्दा- १६ पिताः' आकारिताः ॥ ३२८३ ॥

ततः किं कृतम् ? इत्याह—

कहिओ य तेसि धम्मी, वित्थाती गाहिता व सम्मर्त ! अप्याहिता व बहुती, समनाणं भद्गा होह ॥ ३२८४ ॥

कथितश्च 'तेपां' प्रात्यन्तिकराजाना तेन विश्वरतो धर्मः । प्राहिताश्च ते सम्यस्तवम् । ततः ३०

१ "मोरंडा नाम रोहमया गोलया जारिसया कीरंति ।" इति ब्रिटोपचूर्णी ग

२ °शृति जिलस्थी शो के जिला ॥

खदेशं गता अपि ते बहुश्तंन सज्ञा सन्दिष्टाः, यथा—अमणानां 'मद्रकाः'-मिक्तमन्तो भवत ॥ ३२८७ ॥ अथ्र कथर्मसी अमणसङ्घयमावको जातः ! इत्याह—

अणुनाणे अणुनाती, पुष्फारुहणाइ उक्तिरणगाई-।

प्यं च चेंद्याणं, ते वि सरजेस कारिति ॥ ३२८५ ॥

5, अनुयानं-रथयात्रा तत्रासी नृपतिः 'अनुयाति' दण्ड-भट-मोजिकादिसहितो रथेन सह हिण्डते । तत्र च पुष्पारोपणम् आदिशब्दाद् माल्य-गन्य-चूर्णो-ऽऽमरणारोपणं च करोति । 'डिक्करण्गादं' ति रथपुरतो विविधफलानि खाद्यकानि कपर्दक-बस्नप्रभृतीनि चोत्किरणानि करोति । आह च निशीयचूर्णिकृत्—

रहमातो य विविहफ्ले खळगे य कवडुग-त्रःथमादी य खोकिरणे करेह ति ॥

10 अन्येषां च चेत्यगृहस्वितानां 'चेत्यानां' सगबिह्नियानां पूँजां महता विच्छेदेंन करोति । तेऽपि च राजान एवमेव स्वराज्येषु रथयात्रामहोत्सवादिकं कारयन्ति । इदं च ते राजानः सम्प्रतिनृपतिना भणिताः ॥ ३२८५ ॥

नित मं नाणह सामि, समणाणं पणमहा सुविहियाणं। दन्त्रेण मे न कर्जं, एयं खु पियं कुणह मन्त्रं ॥ ३२८६ ॥

16 यदि मां खामिनं यूर्य 'नानीय' मन्यच्चे ततः श्रमणिम्यः सुविहितेम्यः 'प्रणमत' प्रणता भवत । 'द्रव्येण' दण्डदातच्येनार्थेन मे न कार्यम्, किन्त्वेतदेव श्रमणप्रणमनादिकं मम प्रियम्, तदेतद् यूर्य क्रुस्त ॥ २२८६ ॥

वीसिखया य तेणं, गमणं घोसावणं-सम्बेसु । साह्ण सुहविहारा, जाता पर्चतिया देसा ॥ २२८७ ॥

²⁰ एवं 'तेन' राजा शिक्षां- दत्ता विसर्जिताः । त्रवृद्धोपां सराज्येषु गमनम् । तत्र च तैः सदेशेषु सर्वत्राप्यमायातयोपणं कारितम्, चेत्यगृहाणि च कारितानि । तथा प्रात्यन्तिका देशाः साधृनां सुखिवहाराः सञ्जाताः । कथम् १ इति चेदुच्यते—तेन सम्प्रतिना साथ्वो भणिताः— मृगवन्तः । एतान् प्रत्यन्तदेशान् गत्वा धर्मकथया प्रतिवोध्य पर्यटत । साधुमिरुक्तम्—राजन् । एते साधृनामाहार-वन्न-पात्रादेः कल्प्या-ऽकल्प्यविमागं न जानन्ति ततः कथं वयमेतेषु विह25रामः १ । ततः मम्प्रतिना साधुवेषेण समदाः शिक्षां दत्त्वा तेषु प्रत्यन्तदेशेषु विसर्जिताः ॥ ३२८७ ॥ ततः किममृत् १ हत्याह—

समणमडमानिएसं, तेष रखेस एसणादीस । साह् सहं निहरिया, तेणं चिय मह्गा ते छ ॥ ३२८८ ॥

श्रमणवेषवारिमिमेटरेपणादिभिः शुद्धमाहारादिग्रहणं क्वर्वाणेः साबुविधिना मावितेषु तेषु विश्वान्येषु साधवः सुंखं विह्वाः । तत एव च सम्प्रतिनृपतिकाळान् 'ते' प्रत्यन्तदेशा भद्रकाः सङ्गाताः ॥ २२८८ ॥

१ भर्ती पारमेश्वरप्रवचनं प्रमावयित १ इति उच्यते—श्रणुं मा॰॥ २ पूजनां मं वा॰ व॰ देन॥ ३ भणानां खुविहितानां 'प्रण्' मा॰॥-

इदमेव स्पष्टयति-

उदिण्णजोहाउलसिद्धसेणो, स पत्थिवो णिजियसत्तुसेणो । समंततो साहुसुहृप्पयारे, अकासि अंधे दमिले य घोरे ॥ ३२८९ ॥

उदीणी:-प्रवला ये योधासौराकुल-सङ्कीणी सिद्धा-प्रतिष्ठिता सर्वत्राप्यप्रतिहता सेना यस स तथा, अत एव च 'निर्जितशत्रसेनः' स्वशीकृतविपक्षनृपतिसैन्यः एवंविधः स सम्प्रतिनामा प्रपिवः अन्धान् द्रविडान् चशव्दाद् महाराष्ट्र-कुडुकादीन् प्रत्यन्तदेशान् 'घोरान्' प्रत्यपाय-वहुलान् समन्ततः 'साधुसुलप्रचारान्' साधूनां सुलविहरंणान् 'अकापीत्' कृतवान् ॥३२८९॥

॥ आर्यक्षेत्रप्रकृतं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीकल्पाध्ययनटीकायां प्रथम उद्देशकः परिसमाप्तः ॥

करपे माणिक्यकोशे जिनपतिनृपतेः सूरिभिस्तन्नियुक्ते-स्तस्यैवाज्ञैकतानैर्नयपथिनपुणैश्चिन्त्यमानाधिकारे । पेटा उद्देशकाः स्युः पिडहः गहनतामुद्रिता अर्थरतेः, पूर्णास्तत्राऽऽद्यपेटा प्रकटनविधये कुश्चिकेपाऽस्तु टीका ॥ - ॥ सर्वप्रन्थाप्रम्—२२८७५॥



